परमात्म प्रकाश प्रवचन

भाग-६

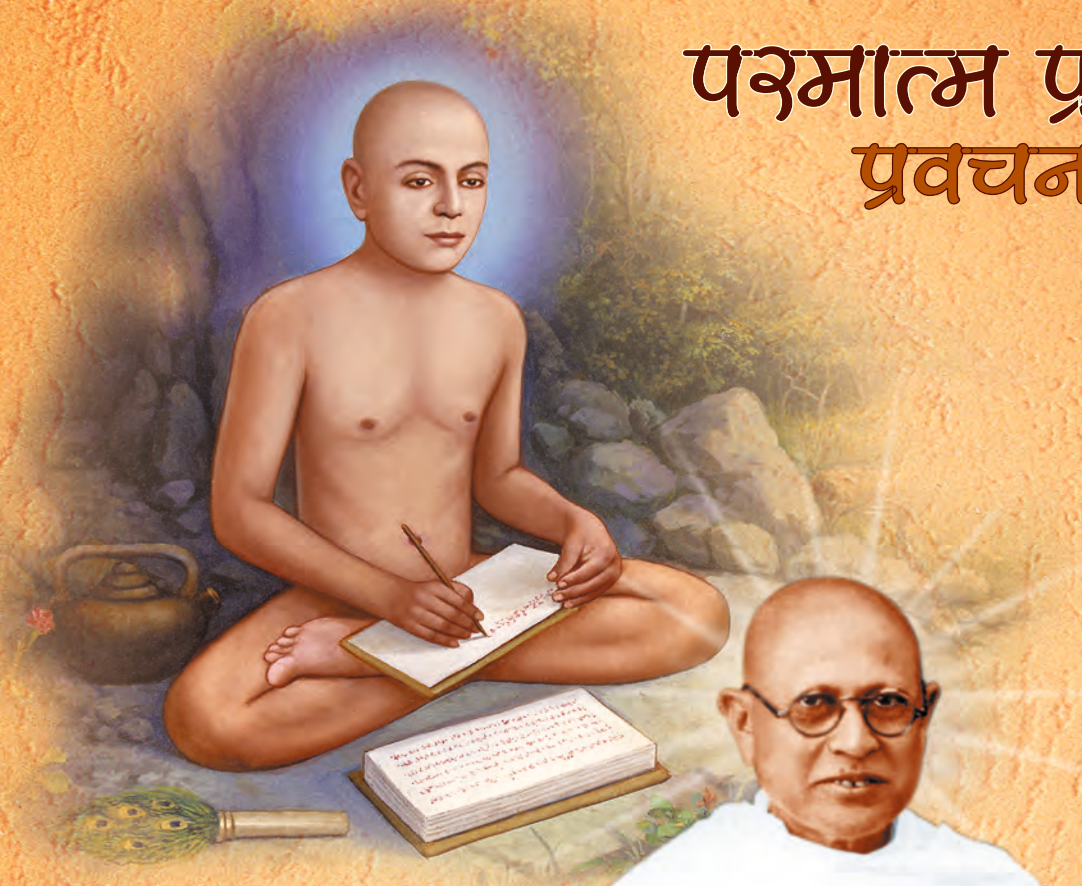

ॐ

श्री सिद्ध परमात्मने नमः
श्री सीमंधरदेवाय नमः
श्री सद्गुरुदेवाय नमः
श्री निजशुद्धात्मने नमः

परमात्मप्रकाश प्रवचन

भाग-6

परमपूज्य योगीन्द्रदेव कृत परमात्मप्रकाश ग्रन्थ पर
अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
के शब्दशः प्रवचन (द्वितीय अधिकार)
गाथा 80 से 120, प्रवचन क्रमांक 155 से 184

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत 2078 | **वीर संवत 2548** | **ई. सन 2022**

—: प्रकाशन :—

दशलक्षण महापर्व

अगस्त, सितम्बर 2022

के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :

विवेक कम्प्यूटर

अलीगढ़।

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं।।

शासननायक अन्तिम तीर्थंकर देवाधिदेव श्री महावीरस्वामी द्वारा प्रवर्तमान जिनशासन अखण्ड मोक्षमार्ग से आज भी सुशोभित है। वीर प्रभु की दिव्यध्वनि में प्रकाशित मोक्षमार्ग, तत्पश्चात् हुए अनेक आचार्यों तथा सन्तों द्वारा अखण्डरूप से प्रकाशित हो रहा है। आचार्यों की परम्परा का इतिहास दृष्टिगोचर किया जाये तो श्री योगीन्द्रदेव ई.स. छठवीं शताब्दी में हुए है। आपश्री ने स्वयं की सातिशय अनुभवलेखनी द्वारा अनेक महान परमागमों की रचना की है। आपने स्वानुभवदर्पण, परमात्मप्रकाश, योगसार, दोहापाहुड़ इत्यादि अनेक वीतरागी ग्रन्थों की रचना की है। परमात्मप्रकाश ग्रन्थ आपश्री की ही कृति है। इस ग्रन्थ में आप की स्वरूप-भावना तथा उसके आश्रय से उत्पन्न हुए स्वसंवेदनज्ञान, वीतरागी अतीन्द्रिय सुख का रस प्रत्येक गाथा में नितरता है। भव्य जीवों के हितार्थ हुई ग्रन्थरचना पाठकवर्ग को भी अत्यन्त रस उत्पन्न होने का निमित्त होती है। आपकी लेखनी में द्रव्यदृष्टि का जोर दर्शाती हुई अनेक गाथायें इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होती हैं।

परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के टीकाकार श्री ब्रह्मदेवजी भी अध्यात्मरसिक महान आचार्य थे। उनका मूल नाम 'देव' और बालब्रह्मचारी होने से ब्रह्मचर्य का बहुत रंग होने के कारण 'ब्रह्म' उनकी उपाधि हो जाने से 'ब्रह्मदेव' नाम पड़ा था। वे ई.स. 1070 से 1110 के दौरान हुए हैं, ऐसा माना जाता है। पण्डित दौलतरामजी ने संस्कृत टीका का आधार लेकर अन्वयार्थ तथा उनके समय की प्रचलित देशभाषा ढूंढारी में सुबोध टीका रची है। ग्रन्थ दो महाअधिकारों में विभाजित है। आत्मा-परमात्मा किस प्रकार हो, इसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होता है।

प्रथम अधिकार में भेद विविक्षा से आत्मा—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ऐसे तीन भेद बतलाये गये हैं। प्रत्येक संसारी जीव को भेदज्ञान निरन्तर भाना चाहिए, इसका विस्तार से वर्णन करके परमात्मा होने की भावना बतलायी है। द्वितीय अधिकार में प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल की रुचि होने के लिये सर्व प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल का स्वरूप बतलाया है।

प्रवर्तमान जिनशासन में हम सबके परम तारणहार भावितीर्थाधिनाथ शासन दिवाकर

अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने लुप्तप्राय: अखण्ड मोक्षमार्ग को पुन: जागृत करके भरतक्षेत्र के जीवों पर अविस्मरणीय अनन्त उपकार किया है। जन्म-मरण से मुक्त होना और सादि-अनन्त स्वरूपसुख में विराजमान होने का मार्ग पूज्य गुरुदेवश्री ने स्वयंबुद्धत्व योग प्रगट कर प्रकाशित किया है। उनका इस काल में उदय वह एक ऐसी अपूर्व घटना है, जैसे सूर्य प्रकाशित होने पर कमल खिल उठते हैं, उसी प्रकार भव्य जीवों का आत्मा रसविभोर होकर पुलकित होकर खिल उठता है। अनेक जीव मोक्षमार्ग प्राप्त करने के प्रति प्रयत्नशील बने हैं। और पंचम काल के अन्त तक गुरुदेवश्री द्वारा प्रस्थापित मोक्षमार्ग अखण्डरूप से प्रवर्तमान रहेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक अध्यात्म शास्त्रों पर अनुभवरस झरते प्रवचन प्रदान किये हैं। उनमें से यह एक ग्रन्थ है—परमात्मप्रकाश। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रवचन डी.वी.डी. में आज मौजूद है, उन्हें सुनते हुए गुरुदेवश्री की अमीरस झरती वाणी के दर्शन होते हैं। गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन में अनेक पहलुओं से आत्मस्वरूप को प्रकाशित करता हुआ तत्त्व प्रकाशमान होता है। आपश्री की उग्र अध्यात्मपरिणति के दर्शन वाणी द्वारा हो सकते हैं। पूर्वापर अविरोध वाणी, अनुभवशीलता, आत्मा को सतत् जागृत करनेवाली वाणी का लाभ जिन्होंने प्रत्यक्ष प्राप्त किया है, वे धन्य हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री ने किसी भी प्रकार के संस्कृत, व्याकरण के अभ्यास बिना आचार्यों के हृदय खोलकर जो अनुपम भाव उन्होंने जगत के समक्ष प्रकाशित किये हैं, वह अलौकिक है! स्वलक्ष्य से स्वयं के भावों के साथ मिलान करके उन्हें समझा जाये तो वह एक अपूर्व कल्याण का कारण है। पूज्य गुरुदेवश्री के लिये या उनकी वाणी के लिये कुछ भी कहना, लिखना अथवा बोलना वह सूर्य को दीपक बतलाने के समान है। तथापि गुरुदेवश्री का अमाप उपकार हृदयगत होने पर शब्द अपने आप ही भक्तिभाव से निकल पड़ते हैं। आपश्री के उपकार का बदला तो किसी भी प्रकार से चुकाया जा सके, ऐसा नहीं है मात्र उनके द्वारा प्रकाशित पन्थ पर शुद्ध भावना से प्रयाण करें, यही भावना है।

पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा स्थापित अनेक जिनमन्दिरों में आज उनके प्रवचन नियमितरूप से सुने जा रहे हैं। अनेक मुमुक्षु उनका लाभ लेकर मोक्षमार्ग में आरूढ़ होने के लिये प्रयत्नशील हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी सबकी भावना होने से पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचनों को शब्दश: ग्रन्थारूढ़ करने के निर्णय के फलस्वरूप परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के प्रवचनों का प्रस्तुत चौथा भाग प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। ऐसा सौभाग्य प्राप्त होने का श्रेय भी पूज्य गुरुदेवश्री को ही जाता है।

गुरुदेवश्री की सातिशय वाणी नित्य श्रवण करना, वह अपूर्व सौभाग्य है। आज अनेक

जिनमन्दिरों में पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन सुनते समय मुमुक्षु उनके अक्षरश: प्रवचनों को सुनने का लाभ ले रहे हैं। अनेक मुमुक्षु जीवों की भावना होने से परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के प्रवचन प्रकाशित करने का निर्णय हमारे ट्रस्ट ने लिया। पूज्य गुरुदेवश्री के इस ग्रन्थ पर दो बार के प्रवचन सी.डी. में उपलब्ध हैं। उनमें से ई.स. 1976-1977 में हुए कुल 245 प्रवचनों को आठ भागों में प्रकाशित करने की भावना है। प्रवचनों को सर्व प्रथम सुनकर कम्प्यूटर में टाईप कर लिया जाता है। तत्पश्चात् उन्हें सुनकर वाक्य पूर्ण करने की आवश्यकता हो, वहाँ कोष्ठक भरा जाता है। इन प्रवचनों के प्रथम प्रूफ को जाँचते समय फिर से उन्हें सुनकर चैक किया जाता है। पूज्य गुरुदेवश्री के भाव यथावत् बने रहें, इसकी विशेष सावधानी रखने का प्रयत्न किया है तथापि प्रमादवश कहीं चूक रह गयी हो तो वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र के प्रति शुद्ध अन्त:करण से क्षमायाचना करते हैं। पाठकवर्ग से भी अनुरोध है कि यदि कहीं कोई क्षति दृष्टिगोचर हो तो हमें सूचित करें, जिससे अपेक्षित संशोधन किया जा सके।

परमात्मप्रकाश के इस छठवें भाग के प्रवचनों का गुजराती में कम्प्यूटराईज्ड करने का कार्य श्री निलेशभाई जैन, भावनगर द्वारा तथा प्रत्येक प्रवचनों को सुनकर-पढ़कर चैक करने का कार्य आत्मार्थी स्व० श्री चेतनभाई मेहता राजकोट द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत भावना प्रधान अध्यात्मरस भरपूर प्रवचनों का लाभ हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी प्राप्त करे, इस भावना से इन प्रवचनों का हिन्दी रूपान्तरण कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। साथ ही सी.डी. से मिलानकर प्रत्येक प्रवचन की यथासम्भव शुद्धता का ध्यान रखा गया है। हम अपने सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में जिनेन्द्र परमात्मा, सर्व आचार्य भगवन्तों, ज्ञानी सद्गुरु परमपुरुष के उपकार को हृदयगत करके, उनके चरणों में बारम्बार वन्दना करके नतमस्तक होते हैं। सभी जीव पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी को पढ़कर, सुनकर आत्मकल्याण के मार्ग में अनुगमन कर शाश्वत् सादि-अनन्त समाधिसुख को प्राप्त करें, यही भावना है।

यह पुस्तक vitragvani.com में शास्त्रभण्डार के अन्तर्गत पूज्य गुरुदेवश्री के शब्दश: प्रवचन और vitragvani app पर भी उपलब्ध है।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विलेपार्ला, मुम्बई

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्लार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने

से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन–उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्‌भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते–करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह–समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से

मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश–टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश–विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर–घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल–वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन–ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश–विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश–विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 – फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में

कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार–पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी–कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय–व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र–गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग–मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर–कमलों से हुई।

जन्म–मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म–जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा

पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं – यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖❖❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	गाथा	दिनांक	पृष्ठ क्रमांक
१५५	८०, ८१	१०-१२-१९७६	००१
१५६	८२, ८३	११-१२-१९७६	०२०
१५७	८३, ८४	१२-१२-१९७६	०४०
१५८	८४, ८५	१३-१२-१९७६	०५८
१५९	८६	१४-१२-१९७६	०७३
१६०	८७, ८८	१६-१२-१९७६	०९०
१६१	८८, ८९	१७-१२-१९७६	१०८
१६२	९०, ९१	१८-१२-१९७६	१२७
१६३	९१, ९२	१९-१२-१९७६	१४६
१६४	९२, ९३	२०-१२-१९७६	१६४
१६५	९४ से ९६	२२-१२-१९७६	१७९
१६६	९७, ९८	२३-१२-१९७६	१९८
१६७	९८, ९९	२४-१२-१९७६	२१३
१६८	९९, १००	२५-१२-१९७६	२३०
१६९	१००, १०१	२६-१२-१९७६	२४७
१७०	१०१ से १०३	२७-१२-१९७६	२६३
१७१	१०३, १०४	२९-१२-१९७६	२८१
१७२	१०५	३०-१२-१९७६	२९७
१७३	१०६	३१-१२-१९७६	३१५
१७४	१०६, १०७	०१-०१-१९७७	३३१
१७५	१०७, १०८	०२-०१-१९७७	३५०
१७६	१०८, १०९	०३-०१-१९७७	३६८
१७७	११०, १११	०४-०१-१९७७	३८४
१७८	१११ (१-२)	०६-०१-१९७७	४०२
१७९	१११ (२-४)	०७-०१-१९७७	४२०
१८०	११२	०८-०१-१९७७	४४०
१८१	११२ से ११४	०९-०१-१९७७	४५७
१८२	११५ से ११७	१०-०१-१९७७	४७६
१८३	११६ से ११९	११-०१-१९७७	४९५
१८४	११९, १२०	१२-०१-१९७७	५१३

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

श्रीमद्योगीन्दुदेवविरचितः

परमात्मप्रकाश प्रवचन

(भाग - 6)

गाथा - ८०

अथ उदयागतेकर्मोनुभवे योऽसौ रागद्वेषौ न करोति स कर्म न बध्नातीति कथयति-

२०३) भुंजंतु वि णिय-कम्म-फलु जो तहिँ राउ ण जाइ।
सो णवि बंधइ कम्मु पुणु संचिउ जेण विलाइ।।८०।।

भुञ्जानोऽपि निजकर्मफलं यः तत्र रागं न याति।
स नैव बध्नाति कर्म पुनः संचितं येन विलीयते।।८०।।

भुंजंतु वि इत्यादि। भुंजंतु वि भुञ्जानोऽपि। किम्। णिय-कम्म-फलु निजकर्मफलं निजशुद्धात्मोपलम्भाभावेनोपार्जितं पूर्वं यत् शुभाशुभं कर्म तस्य फलं जो यो जीवः तहिँ तत्र कर्मानुभवप्रस्तावे राउ ण जाइ रागं न गच्छति वीतरागचिदानन्दैकस्वभाव-शुद्धात्मतत्त्व-भावनोत्पन्नसुखामृततृप्तः सन् रागद्वेषौ न करोति सो स जीवः णवि बंधइ नैव बध्नाति। किं न बध्नाति। कम्मु ज्ञानावरणादि कर्म पुणु पुनरपि। येन कर्मबन्धाभावपरिणामेन किं भवति। संचिउ जेण विलाइ पूर्वसंचितं कर्म येन वीतरागपरिणामेन विलयं विनाशं गच्छतीति। अत्राह प्रभाकरभट्टः। कर्मोदयफलं भुञ्जानोऽपि ज्ञानी कर्मणापि न बध्यते इति सांख्यादयोऽपि वदन्ति तेषां किमिति दूषणं दीयते भवद्भिरिति। भगवानाह। ते निजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणं वीतरागचारित्र-निरपेक्षा वदन्ति तेन कारणेन तेषां दूषणमिति तात्पर्यम्।।८०।।

आगे जो उदय प्राप्त कर्मों में राग-द्वेष नहीं करता, वह कर्मों को भी नहीं बाँधता, ऐसा कहते हैं -

अपने कर्म फलों को भोगे किन्तु न उनमें राग करे।
पुनः कर्म नहिं बँधते उसको पूर्व कर्म भी सभी खिरें।।८०।।

अन्वयार्थ :- [निजकर्मफलं] अपने बाँधे हुए कर्मों के फल को [भुंजानोऽपि] भोगता हुआ भी [तत्र] उस फल के भोगने में [यः] जो जीव [रागं] राग-द्वेष को [न याति] नहीं प्राप्त होता [सः] वह [पुनः कर्म] फिर कर्म को [नैव] नहीं [बध्नाति] बाँधता, [येन] जिस कर्मबंधाभाव परिणाम से [संचितं] पहले बाँधे हुए कर्म भी [विलीयते] नाश हो जाते हैं।

भावार्थ :- निज शुद्धात्मा के ज्ञान के अभाव से उपार्जन किये जो शुभ-अशुभ कर्म उनके फल को भोगता हुआ भी वीतराग चिदानंद परमस्वभावरूप शुद्धात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न अतीन्द्रियसुखरूप अमृत से तृप्त हुआ जो रागी-द्वेषी नहीं होता, वह जीव फिर ज्ञानावरणादि कर्मों को नहीं बाँधता है, और नये कर्मों का बंध का अभाव होने से प्राचीन कर्मों की निर्जरा ही होती है। यह संवरपूर्वक निर्जरा ही मोक्ष का मूल है? ऐसा कथन सुनकर प्रभाकरभट्ट ने प्रश्न किया कि हे प्रभो, 'कर्म के फल को भोगता हुआ भी ज्ञान से नहीं बँधता' ऐसा सांख्य आदिक भी कहते हैं, उनको तुम दोष क्यों देते हो? उसका समाधान श्रीगुरु करते हैं - हम तो आत्मज्ञान संयुक्त ज्ञानी जीवों की अपेक्षा से कहते हैं, वे ज्ञान के प्रभाव से कर्म-फल भोगते हुए भी राग-द्वेष भाव नहीं करते। इसलिये उनके नये बंध का अभाव है, और जो मिथ्यादृष्टि ज्ञानभाव से बाह्य पूर्वोपार्जितकर्म-फल को भोगते हुए रागी द्वेषी होते हैं, उनके अवश्य बंध होता है। इस तरह सांख्या नहीं कहता, वह वीतरागचारित्र से रहित कथन करता है। इसलिये उन साख्यादिकों को दूषण दिया जाता है। यह तात्पर्य जानना।।८०।।

वीर संवत् २५०२, मागसर कृष्ण ४, शुक्रवार
दिनांक-१०-१२-१९७६, गाथा-८० - ८१, प्रवचन-१५५

परमात्मप्रकाश ८० गाथा। **आगे जो उदय प्राप्त कर्मों में राग-द्वेष नहीं करता, वह कर्मों को भी नहीं बाँधता, (ऐसा कहते हैं)—**

२०३) भुंजंतु वि णिय-कम्म-फलु जो तहिँ राउ ण जाइ।
सो णवि बंधइ कम्मु पुणु संचिउ जेण विलाइ।।८०।।

अन्वयार्थ :- अपने बाँधे हुए कर्मों के फल को भोगता हुआ... भोगता हुआ... भोगता हुआ का अर्थ कि संयोग प्रतिकूल-अनुकूल हो, उसमें जरा रागादि सहज हो जाते हैं, तथापि उनका स्वामी नहीं होता और उनमें राग-द्वेष नहीं करता। निर्जरा अधिकार में आता है न? सुख-दुःख का वेदन तो होता है, परन्तु उसमें राग-द्वेष नहीं करता। निर्जरा अधिकार में आता है, दूसरी गाथा। पहली गाथा कर्म की निर्जरा जड़ की और दूसरी गाथा अशुद्धता की निर्जरा। अन्दर जरा रागादि सहज हों, तथापि उनका कर्ता नहीं होता। उनका भोक्ता नहीं होता; इसलिए वह ज्ञाता-दृष्टा रहता है, इससे उसे कर्मबन्धन नहीं होता। आहाहा!

कर्मों के फल को भोगता हुआ भी उस फल के भोगने में जो जीव राग-द्वेष को नहीं प्राप्त होता... यह बात है। आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसका जिसे अन्तर्वेदन और सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, उसे आनन्द के वेदन के समक्ष जरा कर्म का भाव हो, उसका उसे वेदन नहीं है। आहाहा! उसमें वह राग-द्वेष (नहीं) करता। आत्मा के आनन्द की जहाँ दृष्टि है, उसे पर में राग-द्वेष करना, यह रहता नहीं। आहाहा!

वह फिर कर्म को नहीं बाँधता, जिस कर्मबन्धाभाव परिणाम से... कर्म के बन्ध के अभाव परिणाम से, आहाहा! अबन्धस्वरूपी भगवान के अबन्धपरिणाम से, आहाहा! भगवान आत्मा अबन्धस्वरूप, उसके अबन्ध परिणाम से अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम से। आहाहा! **कर्मबन्धाभाव परिणाम से पहले बाँधे हुए कर्म भी नाश हो जाते हैं।** आहाहा! उसे निर्जरा हो जाती है, ऐसा कहते हैं। जिसे आत्मा के आनन्द का वेदन है, सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान, उसे कर्म के फल जहर जैसे दिखते हैं, इसलिए उन्हें वह भोगता नहीं। राग-द्वेष करके भोगता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भावार्थ :- निज शुद्धात्मा के ज्ञान के अभाव से... देखा! पहले जो कर्म बाँधे थे, वे कब? कि **निज शुद्धात्मा के ज्ञान के अभाव से...** आहाहा! भगवान निजस्वरूप का जो आत्मज्ञान, उसके ज्ञान के अभाव में **उपार्जन किये जो शुभ-अशुभ कर्म...** आहाहा! **उनके फल को भोगता हुआ भी...** धर्मी जीव। आहाहा! वीतराग चिदानन्द एक स्वभावभावरूप। एक शब्द पड़ा रहा वहाँ। **वीतराग चिदानन्द एक परमस्वभाव भावरूप...**

आहाहा! रागरहित वीतराग ज्ञानानन्द परम एक स्वभाव अपना। उसरूप **शुद्धात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न....** आहाहा! बहुत संक्षिप्त और बहुत ऊँचा। वीतराग चिदानन्द एक परमस्वभाव आत्मा। है? **शुद्धात्मतत्त्व की भावना...** ऐसे शुद्धात्मतत्त्व में एकाग्रता **से उत्पन्न अतीन्द्रिय सुखरूप अमृत से तृप्त हुआ...** आहाहा! अपना जो अतीन्द्रिय सुखरूप अमृत, पर्याय में उससे तृप्त हुआ। आहाहा! गजब! यह धर्म! अतीन्द्रिय अमृतस्वरूप भगवान आत्मा का आश्रय लेकर दृष्टि-ज्ञान करके जो अमृत प्रगट हुआ। आहाहा! ऐसी व्याख्या। यह निश्चय... निश्चय... निश्चय। यह सत्य है। आहाहा!

वीतराग चिदानन्द एक परमस्वभाव भावरूप शुद्धात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न अतीन्द्रिय सुखरूप अमृत से तृप्त हुआ... आहाहा! धर्मी, राग से भिन्न तत्त्व भगवान, वीतराग परमस्वभाव एकरूप चैतन्य की एकाग्रता से सुखरूप अमृत से पर्याय में तृप्त है। आहाहा! ऐसी बातें! अब वे कहते हैं कि इससे प्रगटे कैसे परन्तु यह सब? व्यवहार करे तो प्रगटे, यह बात ही झूठी है। आहाहा! वीतराग सहजानन्द प्रभु में एकाग्रता, यह इसे करने का है। उससे आनन्द प्रगट होता है। व्यवहार करने से आनन्द प्रगट होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! यह क्या होगा?

आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र है। आहाहा! ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द है, उसकी जब दृष्टि में स्वीकृति आवे, तब दृष्टि में अमृत का स्वाद आवे। उस अमृत के स्वाद से तृप्त हुआ... आहाहा! **जो रागी-द्वेषी नहीं होता,...** आहाहा! इसलिए वह पर में राग-द्वेष नहीं करता। यह तो सूक्ष्म बात है, भाई! ओहोहो! पहली तो भाषा क्या ली? कि **वीतराग चिदानन्द एक परमस्वभावरूप शुद्धात्मतत्त्व...** शुद्धात्मतत्त्व की व्याख्या की पहले की कि शुद्ध आत्मतत्त्व वस्तु कैसी है? शुद्ध आत्मतत्त्व वस्तु कैसी है? कि **वीतराग चिदानन्द एक परमस्वभावरूप...** ऐसी चीज़ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा **वीतराग चिदानन्द एक परमस्वभावरूप शुद्धात्मतत्त्व...** यह त्रिकाली की बात की। उसकी भावना, यह वर्तमान की बात हुई। आहाहा! 'है'—ऐसी स्वीकृति कब आवे? कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान और आनन्द का स्वाद आवे एकाग्रता में, तब वह 'है', ऐसी प्रतीति आवे। आहाहा! लोगों को यह बहुत सूक्ष्म (पड़ता है), इसलिए लोग बेचारे (ऐसा कहते हैं) व्यवहार का लोप करते हैं। बापू! व्यवहार का लोप किये बिना

निश्चय प्रगट नहीं होता। व्यवहार का अभाव करने से ही निश्चय प्रगट होता है। व्यवहार से निश्चय (प्रगट नहीं होता)।

ऐसा अमृत सागर भगवान **वीतराग परमानन्द एक परमस्वभावरूप शुद्धात्मतत्त्व...** उसकी भावना—उसमें एकाग्रता। उसे राग की एकाग्रता हो तो इसकी एकाग्रता हो—यह विवाद है सब। आहाहा! भाई! परमात्मा तो आनन्दस्वरूप है न, प्रभु! तुझे खबर नहीं। वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का सागर रसकन्द बर्फी है। आहाहा! जैसे मैसूर का थाल भरा हो, फिर टुकड़े करते हैं न? यह मैसूर, बर्फी एक-एक टुकड़ा उठावे फिर। उसी प्रकार भगवान आत्मा **वीतराग चिदानन्द एक परमस्वभावरूप...** थाल पड़ा है अन्दर बड़ा। उसकी भावना—एकाग्रता वह। वह बर्फी करते हैं। आहाहा! **वीतराग चिदानन्द एक परमस्वभावरूप शुद्धात्मतत्त्व...** उसकी एकाग्रता, वह वर्तमान पर्याय में बर्फी-टुकड़ा—आनन्द का भाग आता है। आहाहा! समझ में आया? लड़के को भाग (हिस्सा) देते हैं, भाग-भाग? उसी प्रकार यहाँ आनन्द का भाग आता है, कहते हैं। पर्याय को। प्रजा है न वह? प्रजा है, पुत्र है। आहाहा! परमानन्दस्वरूप भगवान आत्मा वह तो चीज़-वस्तु हुई। अब उसमें एकाग्र होकर भाग करता है। तब उसमें अतीन्द्रिय आनन्द का वहाँ अमृत का (भोग करके) तृप्त-तृप्त होता है। यह पैसे से, धूल से, इज्जत से तृप्त नहीं होता। वह तो उसे कषाय होती है। आहाहा! समझ में आया? तथा दया, दान, व्रत, भक्ति से कोई तृप्त नहीं होता, वह तो कषाय की अग्नि है। आहाहा! भारी कठिन बातें।

मुमुक्षु : आपको तो सरल हो गया, दूसरे को तो मुश्किल लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुश्किल कुछ (नहीं) अन्दर है, वहाँ जाये तो सरल है। इसकी नजर बदलना चाहिए। आहाहा! इसके लिये पूरा सिद्धान्त है यह। आहाहा!

जिसे अनादि से राग की मिठास आती है, उसे आत्मा के आनन्द की मिठास नहीं है, ऐसा कहते हैं। और जिसे राग की मिठास छूट गयी है, व्यवहार की भी। उसे जहाँ आत्मा के स्वभाव में एकाग्र होता है। आहाहा! कितना शब्द प्रयोग किया है! अतीन्द्रिय सुखरूप। उसमें कहा था न? परमस्वभावरूप शुद्धात्मतत्त्व की एकाग्रता से उत्पन्न हुआ

अतीन्द्रिय सुखरूप अमृत। आहाहा! ऐसी बात है। उसका पहले निर्णय तो करे। ज्ञान में निर्णय तो करे कि वस्तु तो अन्तर पूर्णानन्द का नाथ है, उसमें एकाग्र होने से ही आनन्द आयेगा। इसके अतिरिक्त आनन्द कहीं आवे, ऐसा नहीं है। और वह आनन्द आता है, वह धर्म है। आहाहा! चौरासी के अवतार में दुःखी होकर मर गया है। आहाहा!

देखो न! यह कमाने के लिये कितने घण्टे देता है संसार में। आठ-दस-दस घण्टे दुकान में बैठे और ध्यान रखे और बहियाँ... ओहोहो! अकेली पाप की पिंजण है। कहते हैं कि एक बार भगवान! तेरी दुकान तो माँड अन्दर। तेरी दुकान में माल भरा है। आहाहा! कैसा माल? कि वीतरागी चिदानन्द एक परमस्वभावरूप माल पड़ा है। आहाहा! उस दुकान में बैठ। एकाग्रता का अर्थ वहाँ जा। आहाहा! बड़ा हाट माँडा है। हाट... हाट कहते हैं न दुकान को? आहाहा! तेरा व्यापार वहाँ दुकान में जा और कर। आहाहा! वह तुझे आनन्द देगा। ऐसी बातें अब। यह लोगों को व्यवहारवालों को (ऐसा लगता है), व्यवहार का लोप करते हैं। प्रभु! परन्तु सुन न, भाई! व्यवहार है, वह शुभराग है। उसकी रुचि छूटे बिना अमृतसागर की रुचि नहीं आती। आहाहा! और उसके बिना इसे वीतरागी परमानन्दस्वरूप में एकाग्रता नहीं होती। आहाहा! और एकाग्रता के बिना अमृत के सुख की तृप्ति इसे नहीं होती। आहाहा! ऐसी बात है। किसी प्रकार का धर्म परन्तु! आहाहा!

यह शास्त्र तो ऐसा कहते हैं। अब इसे शास्त्र में कहा है, उसे भी मानना नहीं? समझ में आया? आहा! भाई! यह तो... आहाहा! इस मार्ग के अर्थी ही थोड़े होते हैं। समझ में आया? ओहोहो! दो लाईन में तो वस्तु और वस्तु की एकाग्रता और एकाग्रता से होता अमृतरूप तृप्त भाव। आहाहा! गजब है न! कैसी संक्षिप्त भाषा और कितना परम आल्हाद! आहाहा! क्योंकि तेरा तत्त्व ही इतना है और ऐसा है। आहाहा! वीतराग चिदानन्द एक परमस्वभावरूप ही तेरा तत्त्व है। आहाहा! लो, वहाँ से वीतराग आनन्द से ही शुरु किया है। आहाहा! इसमें उसकी भावना से उत्पन्न या व्यवहार के राग से उत्पन्न? यह सर्राफ की दुकान है। आहाहा!

वीतराग चिदानन्द एक परमस्वभावरूप... तेरा तत्त्व है। आहाहा! ऐसा जो तत्त्व, उसके सन्मुख होने से और रागादि भाव हैं, उनसे विमुख होने से... प्रभु! मार्ग

ऐसा है, हों! आहाहा! भले दुनिया दूसरे प्रकार से ऐसा कहे कि बेचारा क्या करे? उसे हाथ आया नहीं न। उसे दृष्टि में वह आया नहीं, इसलिए ऐसा कहे, अरे! व्यवहार का लोप करते हैं। जिसमें व्यवहार का लोप करके व्यवहार से नहीं होता, (ऐसा कहे), वे शास्त्र नहीं। आहाहा! भगवान! वे कुशास्त्र हैं। आहाहा!

तू जहाँ है, वहाँ देख और उसके सन्मुख हो। वह राग और पुण्य की क्रिया में कहीं आत्मा नहीं है। आहाहा! वह तो अनात्मा है। अनात्मा में आत्मा नहीं। आहाहा! होता है व्यवहार। निश्चयसहित में जब तक अपूर्णता है, (तब तक) राग आता है, शुभराग होता है, भक्ति होती है, पूजा होती है। आहाहा! परन्तु वह चीज़ है, वह हो तो उसको व्यवहार कहने में आता है। समझ में आया? आहाहा!

अमृत से तृप्त हुआ जो रागी-द्वेषी नहीं होता... आहाहा! **वह जीव फिर ज्ञानावरणादि कर्मों को नहीं बाँधता है,...** आहाहा! अपने अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद से तृप्त पर्याय में हुआ जीव राग-द्वेष करता नहीं तो कर्म बाँधता नहीं। आहाहा! ऐसा है। आहाहा! **और नये कर्मों का बन्ध का अभाव होने से प्राचीन कर्मों की निर्जरा ही होती है।** पूर्व के कर्म खिर जाते हैं। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा आनन्द के फल में वेदन में है, उसे कर्म का फल जहर—राग, वह तो छूट जाता है। आहाहा!

वह संवरपूर्वक निर्जरा ही मोक्ष का मूल (कारण) है। देखो भाषा! क्या कहा यह? **संवरपूर्वक निर्जरा ही मोक्ष का मूल (कारण) है।** अर्थात्? कि नये कर्म आये नहीं, इसलिए संवर हुआ। अतीन्द्रिय आनन्द की एकाग्रता के समक्ष नये कर्म आये नहीं, इसलिए संवर हुआ और उसमें रहते हुए पुराने कर्म खिर जाये, वह निर्जरा हुई। आहाहा! यह संवर और निर्जरा है। अर्थात् क्या कहा? कि पूर्व के कर्म हैं, वे आकर खिर तो जाते हैं। उदय आवे वह तो खिर ही जाये न? परन्तु जिसे अन्तर रुचि में—पर में राग-द्वेष है, उसमें वह खिरने पर भी उस राग-द्वेष से नये कर्म बँधते हैं। आहाहा! और जिसे अन्दर आत्मा के परमानन्द के ओर की परिणति शुद्ध है, आनन्द का स्वाद (आया है), उसे नये कर्म बाँधने का तो है नहीं। क्योंकि राग-द्वेष है नहीं। और इसलिए पुराने कर्म आकर खिर जाते हैं। आहाहा! आदर रहता नहीं। आदर यहाँ है। अपने स्वभाव सन्मुख आदर है। इसलिए उदय आकर खिर जाते हैं। आहाहा! आहाहा! मार्ग,

वह भी मार्ग वीतराग का है, आहाहा! उसे अभी हाँ पाड़ने में पसीना उतरता है। मार्ग तो यह है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार करते-करते होगा....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही विवाद, इसलिए तो यह... व्यवहार राग है। राग करते-करते अराग होगा? आहाहा! बड़ा सवाल है। निमित्त से होता है और व्यवहार से होता है, दोनों एक ही प्रकार है। आहाहा! हो, व्यवहार होता है। कब? निश्चय हो तब। स्वभाव के सुख का वेदन हो, तब उसे अभी पूर्ण वेदन नहीं, इसलिए व्यवहार राग उसे होता है। उसे व्यवहारनय का विषय सत्ता में अस्ति धराता है।

मुमुक्षु : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय का भान हुआ तब। समझ में आया? तथापि वह व्यवहार की अस्ति, वह निश्चय की अस्ति को सहायता करती है, ऐसा नहीं है। यह विवाद इतना है। समझ में आया? आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द की बर्फी भगवान। उसे आत्मा ही ऐसा वर्णन किया। अकेला ज्ञान है, ऐसा नहीं कहा। वीतरागी चिदानन्द एक परमस्वभावस्वरूप, ऐसी ली भाषा। आहाहा! फिर चिदानन्द लिया साथ में। **वीतरागी...** चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द। वीतरागी ज्ञान और वीतरागी आनन्दरूप एक परमस्वभावरूप वह आत्मा। आहाहा! दुनिया में तो पैसा कमावे, वह चतुर कहलाये। पागल है, पागल है, पागल। जीव को कहीं उल्टे रास्ते डाल देते हैं। आहाहा! यह राग-द्वेष की क्रीड़ा में कहीं आत्मा को उल्टे रास्ते नरक-निगोद में ले जाते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जिसे आत्मा के परमानन्द सुखरूप प्रभु की एकाग्रता हुई। आहाहा! उस राम के साथ जिसने रमणता की, ऐसा कहते हैं। आतमराम। ऐसा मार्ग लोगों को तो अभी सुनने को मिलता नहीं। बाहर से यह करो, सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो। किसका धूल? तेरी सामायिक कहीं थी? सम्यग्दर्शन बिना सामायिक कैसी? आहाहा!

मुमुक्षु : जैन है, उसे सम्यग्दर्शन तो जन्म से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जन्म से होता है मूढ़। वह कहता था इन्द्रलाल। इन्द्रलाल कहता था जयपुर में। वह पण्डित गुजर गया बेचारा। अरे रे! क्या हो? ऐसा कहे, दिगम्बर में जन्मे हैं, वे तो सब भेदज्ञानी ही है, समकिती ही है। अब उसे व्रत लेना और संयम लेना, बस हो गया, जाओ। क्योंकि दूसरी गति में संयम नहीं और इस गति में संयम है। परन्तु कौन सा संयम? जिसे आत्मा के आनन्द का वेदन प्रगट हुआ है, उसे आनन्द में विशेष रमणता करना, वह संयम है। सं शब्द है न? सं—सम्यग्दर्शनसहित यम। सम-यम है। आहाहा! ऐसा मार्ग! कितने ही कहे कि नया निकाला। बापू! यह तो अनादि का है, भाई! तू भी अनादि का ऐसा ही है। कैसा? वीतरागी चिदानन्द एक परमस्वभावरूप अनादि का ऐसा ही है। आहाहा! उसका आदर होने से और राग को हेयबुद्धि करने से... आहाहा! यह उपादेय करने से ही इसे अमृत का रस का तृप्त-तृप्त रस आता है। आहाहा!

यह संवरपूर्वक निर्जरा ही मोक्ष का मूल है? जिसे अभी सम्यग्दर्शन नहीं, परमानन्द का स्वाद नहीं, संवर हुआ नहीं, उसे निर्जरा कहाँ से आवे? अपवास करो, यह करो, निर्जरा हो। भाई! वह तो निर्जरा नहीं। आहाहा! अपवास में तो राग है, विकल्प है और विकल्प में लाभ मानने से मिथ्यात्व की पुष्टि होती है। अब ऐसी बात बहुत अन्तर, बहुत फेरफार। आहाहा! **ऐसा कथन सुनकर प्रभाकर भट्ट (शिष्य) ने प्रश्न किया कि हे प्रभो! कर्म के फल को भोगता हुआ भी ज्ञान से नहीं बँधता ऐसा सांख्य आदिक भी कहते हैं,...** आहाहा! सांख्य भी ऐसा कहते हैं कि ज्ञान से मोक्ष होता है। **उनको तुम दोष क्यों देते हो?**

उसका समाधान श्रीगुरु करते हैं—हम तो आत्मज्ञान संयुक्त ज्ञानी जीवों की अपेक्षा से कहते हैं... आहाहा! मात्र जानपने के नाम से स्वसन्मुख झुके नहीं, आत्मज्ञान करे नहीं और वीतरागीदशा करे नहीं, उसका जो ज्ञान है, वह तो एकान्त बन्ध का कारण है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। वह तो वापस जानपने के नाम से, ज्ञान के नाम से मोक्ष हो। परन्तु कौन सा ज्ञान? आहाहा! आत्मज्ञान। मात्र पर का ज्ञान, वह ज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शास्त्रज्ञान, वह ज्ञान नहीं। आहाहा! जो ज्ञानमय वस्तु है, उसका ज्ञान। शास्त्र में ज्ञानमय वस्तु है शास्त्र? आहाहा! ज्ञानमय।

शास्त्र का ज्ञान, वह शब्द का ज्ञान है, ऐसा कहा। बन्ध अधिकार में, भाई! बन्ध शब्दज्ञान है। आहाहा! नौ तत्त्व श्रद्धारूप है, ऐसा कहा वहाँ श्रद्धा में। छह काय की दया वहछह काय के जीव, वह चारित्र है अज्ञानी को। आहाहा! इसलिए बन्ध के अधिकार में तो यह लिया वहाँ। शास्त्र का ज्ञान, वह शब्द का ज्ञान है, ऐसा कहा। नौ तत्त्व की श्रद्धा, वह नौ तत्त्व है पर। वह श्रद्धा। और छह काय के जीव की दया, वह चारित्र, छह कायरूप है अज्ञानी को। आहाहा! क्योंकि उसका लक्ष्य छहकाय के ऊपर जाता है न? छह काय है, वह कहीं आत्मा नहीं, ज्ञान नहीं। आहाहा! छहकाय में रहा हुआ आत्मा वह तो ज्ञानस्वरूप है। पंचास्किाय में आया है न? छहकाय है, वह जीव नहीं। वह तो काया के शरीर की बात है। अन्दर ज्ञानस्वरूप है, वह जीव है। आहाहा! यह कैसी शैली लेते हैं! ओहोहो! परसन्मुख छहकाय की दया पालते हैं, वह चारित्र, वह तो कहते हैं, छहकाय में गया, वह तो पर में गया, तेरे व्रत का विकल्प। आहाहा!

यहाँ तो ज्ञानमय वस्तु है। स्वयं वीतरागी विज्ञानघन आत्मा है। ज्ञानमय का ज्ञान। आहाहा! ज्ञानमय की श्रद्धा, ज्ञानमय में रमणता, वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! तब कहे, ऐसा न हो सके तो कुछ दूसरा तो करे। दूसरा तो करते हैं, होता है। उसमें क्या है? उसमें कुछ धर्म नहीं। आहाहा! और वह भी शुभभाव छोड़कर अशुभ में आना, ऐसा नहीं यहाँ। शुभभाव की रुचि छोड़कर स्वभाव की रुचि करना, ऐसा है। शुभभाव छोड़कर अशुभ करना, ऐसा है? आहाहा! शुभभाव छोड़कर रुचि छोड़कर स्वभाव की रुचि करना। छोड़कर यह रुचि करना। शुभभाव छोड़कर अशुभ करना और अशुभ की रुचि करना, ऐसा नहीं वहाँ। आहाहा! समझ में आया? मार्ग, बापू! आहाहा!

अनन्त-अनन्त जन्म-जरा-मरण से यह दुःखी-दुःखी पीड़ित हो रहा है। आहाहा! घर में एक लड़का बीमार पड़े छह महीने, वहाँ खाट उठावे, वहाँ दूसरा बीमार पड़े, उसका उठावे, वहाँ स्त्री बीमार पड़े, उसका उठावे, वहाँ लड़के की बहू बीमार पड़े। दो वर्ष से खाट खाली होती नहीं, ऐसा कहे। वह बेचारे देखो न अभी भाई नहीं? बारह महीने कुछ (हुआ था)। परमेष्ठीदास बारह महीने से खाट पर है। मुझे यह विचार बहुत आया था। कहा, ऐसी परिषद भरी शास्त्र की, यह परमेष्ठीदास का क्या हुआ? वह खाट

पर है बेचारा, क्या करे ? वह यदि बाहर होता तो जरा... खलबलाहट मचावे। परन्तु वह बेचारे खाट पर पड़े हैं। अब अभी खबर पड़ी। कहा, क्या हुआ यह ? कुछ परमेष्ठीदास का आया नहीं कुछ। वह तो खाट पर है। आहाहा! कुछ हार्ट का है। हार्ट का है न मगनलालजी ? हार्ट... हार्ट का है ? आहाहा! हृदय का। आहाहा! ऐसा है। नहीं तो वह इसमें कुछ किये बिना रहे नहीं। अरे! बापू! यह तो मार्ग है न, भाई!

यह तो प्रभु! हित का मार्ग है, उसका तू नकार करे। आहाहा! तो हित के रास्ते कब जायेगा ? अरे! ऐसा मनुष्यपना मिला, जैनधर्म में जन्म हुआ, सत्य बात सुनने को मिले। आहाहा! ऐसी दुर्लभता में यह दुर्लभ चीज़ यदि नहीं प्राप्त की... आहाहा! यह सब चला जायेगा, बिखर जायेगा। दुनिया माने, न माने, उसके साथ कुछ नहीं। दुःख वेदने के अवसर में दुनिया साथ आती है ? मिथ्यात्व के भाव और उसमें दुःखफल आवे निगोद और नरक, वहाँ दुनिया साथ देती है ? आहाहा! हमने तुमको प्रसन्न रखा था, शुभभाव में धर्म होता है, ऐसा मानकर। उसके फल में तो हमको दुःख आयेगा। उसके तो माने नहीं परन्तु शास्त्र के हिसाब से तो दुःख में भाग लेने आवे ? दुःख में भाग लेने आवे या नहीं ? स्त्री-पुत्र कोई ? सुमनभाई आकर पैर दबाते हैं न! वे कहते हैं सुमनभाई। आहाहा! पैर तो जड़ हैं, उन्हें दबावे तो क्या हो गया ? वह तो जड़ है।

उसमें आता है या नहीं ? मोक्षमार्गप्रकाशक में। शरीर को ऐसे करने से आत्मा पकड़ में आता है साथ में। आता है, भाई! मोक्षमार्गप्रकाशक में। ऐसा कि ऐसा करे न शरीर को, वहाँ आत्मा पकड़ में आता है क्योंकि वहाँ इकट्ठा साथ में है न! मोक्षमार्गप्रकाशक में है। दूसरे भाग में—तीसरे भाग में है। उन्होंने बहुत बात की है मोक्षमार्गप्रकाशक में तो सब प्रकार की परीक्षा करके। ऐसा कि ऐसा करने से वह आत्मा इकट्ठा हो जाये। ऐसा कि चिवटी भरे लो न ऐसे। इसे करने से वह आत्मा इकट्ठा... ऐसा लिखा है, हों! मोक्षमार्गप्रकाशक में है। इस प्रकार एक क्षेत्र में एकमेक है और वहाँ ऐसा हो जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है तो भिन्न। शरीर की क्रिया का वह कर्ता नहीं, आत्मा की परिणति का शरीर क्रिया कर्ता नहीं। आहाहा! भिन्न-भिन्न हैं। आहाहा! परन्तु एक क्षेत्र में, इकट्ठे हैं, इसलिए ऐसा करने से वह साथ में आता है। आहाहा! है, उसमें लिखा है। यह बात है उसमें। अधिकार में है। आहाहा!

यहाँ तो आत्मज्ञानसंयुक्त। अकेले ज्ञान की बात हम नहीं करते, कहते हैं। यह तो आत्मभगवान जो परमानन्द कहा ऊपर **वीतराग चिदानन्द एक परमस्वभावरूप शुद्धात्मतत्त्व...** उसका ज्ञान, ऐसा हम कहते हैं। वीतराग परमानन्द एकस्वभाव का ज्ञान। आहाहा! अकेला शास्त्र का ज्ञान और बोलने का उसे कुछ ज्ञान हम नहीं कहते। आहाहा! क्या शैली! क्या शैली!! आहाहा! दिगम्बर सन्तों की शैली केवली की पथानुगामी..!! ओहोहो!

हम तो आत्मज्ञान संयुक्त ज्ञानी जीवों की अपेक्षा से कहते हैं,... आहाहा! **वे ज्ञान के प्रभाव से कर्म-फल भोगते हुए भी...** धर्मी आत्मज्ञान के प्रभाव से... आहाहा! **कर्म-फल भोगते हुए भी राग-द्वेष भाव नहीं करते।** आत्मज्ञान है। भगवान परमानन्द स्वभाव का ज्ञान है। आहाहा! यह शास्त्र का ज्ञान, पृष्ठ का ज्ञान, शब्दज्ञान नहीं। आहाहा! देखो न! यहाँ शास्त्र के ज्ञान को शब्द का ज्ञान कहा है। वह तो शब्द का ज्ञान है। आहाहा! बन्ध अधिकार में यह कहा। आहाहा! शैली, यह शैली है सन्तों की!

हम तो आत्मज्ञानसंयुक्त ज्ञानी जीवों की अपेक्षा से कहते हैं,... आहाहा! **वे ज्ञान के प्रभाव से कर्म-फल भोगते हुए भी राग-द्वेष भाव नहीं करते।** आहाहा! **इसलिए उनके नये बन्ध का अभाव है,...** आहाहा! **और जो मिथ्यादृष्टि ज्ञानभाव से बाह्य पूर्वोपार्जित कर्म-फल को भोगते हुए...** आहाहा! जिसकी दृष्टि अभी सम्यग्ज्ञान है ही नहीं, आत्मज्ञान है ही नहीं। राग का ज्ञान और बाह्य का ज्ञान, ऐसा मिथ्यादृष्टि **ज्ञानभाव से बाह्य पूर्वोपार्जित कर्म-फल को भोगते हुए रागी-द्वेषी होते हैं,...** उसे राग-द्वेष करने से मिठास, उसमें आती है। आहाहा! ज्ञानी को आत्मा की मिठास के समक्ष राग की मिठास उड़ गयी है। और अज्ञानी को राग की मिठास आती है, तो कर्मबन्धन करता है। आहाहा! समझ में आया? गाथा ऐसी है। यह वह आता है न प्रवचनसार में? सर्व आगम धरोही। सर्व आगम धरोही परन्तु राग के कण को भी अपना मानता है, वह अज्ञानी है। यह मान्यता की अपेक्षा से है। अस्थिरता का राग, उसे ज्ञानी अपना नहीं मानता। सर्व आगम धरोही परन्तु राग के कण को अपना माने तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अणुमात्र भी रागादि का सद्भाव वर्तता है जिसे....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह राग की रुचि की बात है। '**राग मेरा है**', यह बात है। अस्थिरता का राग है, उसे ज्ञानी अपना कहाँ मानता है ? वह तो उपाधि आयी है, ऐसा मानता है। और यह तो मेरा है, यह (ऐसा मानता है)। आहाहा!

यह शैली है शब्द की। देखो न! ८० की यह है। जैसी सर्व आगम धरोही है न ? वैसी यह शैली है। देखो! '**भुंजंतु वि णिय-कम्म-फलु जो तहिँ राउ ण जाइ।**' है न ? राग को करता नहीं अर्थात् अस्थिरता की बात नहीं है, रुचि से करता नहीं। '**सो णवि बंधइ कम्मु पुणु संचिउ जेण विलाइ**' लो! आहाहा! यह तो शान्ति का मार्ग है, भाई! यह तो शान्ति से समझे उसकी बात है। आग्रह करके ऐसा का ऐसा शास्त्र के वाद-विवाद करे और... आहाहा!

शास्त्र में तो ऐसा भी आवे, पुरुषार्थसिद्धि उपाय में, दो मार्ग से मोक्ष होता है। निश्चय और व्यवहार दोनों से मोक्ष होता है, ऐसा आता है। साथ में है न, इसलिए आरोप करके कथन किया है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में। ऐसे तो मोक्षमार्ग दो प्रकार से कहे, तब दूसरा आया न साथ में। परन्तु वह दूसरा तो व्यवहार है, राग है। उसे उपचार से निमित्त होता है तो कहा है। व्यवहार मोक्ष का मार्ग व्यवहारमोक्ष होगा ? निश्चयमोक्ष का मार्ग निश्चयमोक्ष, ऐसे दो मोक्ष होंगे ? अरे..! बात बहुत मुश्किल, बापू!

मुमुक्षु : एक रास्ता छह महीने का और एक....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बन्धमार्ग है, उसे आरोप से मोक्षमार्ग कहा है। व्यवहारमार्ग है, वह तो बन्धमार्ग है। परन्तु यहाँ निश्चय है, उसका आरोप से निमित्त देखकर, सहचर देखकर आरोप से कथन किया है। मोक्षमार्गप्रकाशक सातवाँ अध्याय। आहाहा!

मुमुक्षु : पण्डित तो ऐसा ही कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डित कौन है परन्तु वह पण्डित? आहाहा! पंडिया... पंडिया... पंडिया... छिलके कूट रहा है। नहीं आता मोक्षमार्गप्रकाशक में ? दर्शन में छिलके कूटे, ज्ञान में और चारित्र में, ऐसे तीनों में छिलके कूटे। आहाहा! दर्शन में पर की श्रद्धा, वह तो छिलका है। ज्ञान में पर का ज्ञान, वह छिलका है, चारित्र में रागक्रिया, वह छिलका। वह छिलका है। आहाहा! टोडरमलजी भी... उन्हें यह लोग ऐसा कहे,

लो! भांग पी है उन्होंने। अरे! प्रभु! ऐसा नहीं कहलाता, भाई! तुझे शोभा नहीं देता। भगवान! अपने मान के पोषण के लिये, ऐसा शोभा नहीं देता, भाई! आहाहा! इसका फल बापू! कठोर आयेगा। वर्तमान दुनिया मानेगी, व्यवहार के रसिक। बापू! इसका फल कठोर है, भाई! आहाहा! इसका फल... आहाहा!

कहते हैं कि ज्ञानी पूर्व के कर्म को भोगता हुआ भी रागी-द्वेषी नहीं होता। आहाहा! और यह भोगते हुए रागी होता है। आहाहा! वह सांख्य तो ज्ञान में राग-द्वेष करता है, उसे ज्ञान मानता है। आहाहा! यह तो वीतरागी ज्ञान है। अर्थात् आत्मा का ज्ञान, वह वीतरागी ज्ञान है। समझ में आया? आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा वीतरागी परमानन्द सहज स्वरूप का ज्ञान, वह वीतरागी ज्ञान है। भले थोड़ा ज्ञान हो। स्वसंवेदन वीतरागी ज्ञान है। उसे छोड़कर पर का ज्ञान चाहे जितना हो, परन्तु वह सब रागवाला ज्ञान है। आहाहा! गजब बात है न! अरे! निवृत्ति कहाँ है? यह क्या चीज़ है, उसे समझने के लिये भी समय ले नहीं और यह दुनिया के प्रपंच में पूरी जिन्दगी जाती है। अरेरे! आहाहा!

बहुत गाथा परमात्मप्रकाश। **इस तरह सांख्य नहीं कहता,...** है न? राग बिना का ज्ञान आत्मा का, ऐसा नहीं कहता, वीतरागी ज्ञान नहीं कहता। वह तो ज्ञानमात्र से मोक्ष होता है, ऐसी अकेले ज्ञान की बातें करता है। आहाहा! वीतरागी ज्ञान—राग बिना का ज्ञान, ऐसा वह कहता नहीं। तब तो ज्ञान के साथ वीतरागता आती है। आत्मज्ञान के साथ वीतरागता आती है। बाहर के ज्ञान में तो अकेला राग है। आहाहा! यह तो आ गया नहीं अपने? शास्त्रज्ञान, वह दु:खरूप है। उस क्षण में दु:खरूप है। आहाहा! गजब बातें हैं!

श्रीमद् कहते हैं दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य कुछ समझा जा सकता है कि यह क्या कहना चाहते हैं और क्या है। श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण रस शिथिल होता गया। शिथिलता के कारण रस विपरीत होता गया। आहाहा! विपरीत दृष्टि है। अब जरा कठिन लगे बेचारे को, क्या हो? अरे! आहाहा!

इसलिए उन सांख्यादिकों को दूषण दिया जाता है। यह तात्पर्य जानना। लो!

गाथा - ८१

अथ यावत्कालमणुमात्रमपि रागं न मुञ्चति तावत्कालं कर्मणा न मुच्यते इति प्रतिपादयति-

२०४) जो अणु-मेत्तु वि राउ मणि जाम ण मिल्लइ एत्थु।
सो णवि मुच्चइ ताम जिय जाणंतु वि परमत्थु।।८१।।

यः अणुमात्रमपि रागं मनसि यावत् न मुञ्चति अत्र।
स नैव मुच्यते तावत् जीव जानन्नपि परमार्थम्।।८१।।

जो इत्यादि। जो यः कर्ता अणु-मेत्तु वि अणुमात्रमपि सूक्ष्ममपि राउ रागं वीतरागसदानन्दैकशुद्धात्मनो विलक्षणं पञ्चेन्द्रियविषयसुखाभिलाषरागं मणि मनसि जाम ण मिल्लइ यावन्तं कालं न मुञ्चति एत्थु अत्र जगति सो णवि मुच्चइ स जीवो नैव मुच्यते ज्ञानावरणादिकर्मणा ताम तावन्तं कालं जिय हे जीव। किं कुर्वन्नपि। जाणंतु वि वीतरागानुष्ठानरहितः सन् शब्दमात्रेण जानन्नपि। कं जानन्। परमत्थु परमार्थशब्दवाच्य-निजशुद्धात्मतत्त्वमिति। अयमत्र भावार्थः। निजशुद्धात्मस्वभावज्ञानेऽपि शुद्धात्मोपलब्धि-लक्षणवीतरागचारित्रभावनां विना मोक्षं न लभत इति।।८१।।

आगे जबतक परमाणुमात्र भी (सूक्ष्म भी) राग को नहीं छोड़ता - धारण करता है, तबतक कर्मों से नहीं छूटता, ऐसा कथन करते हैं -

जो मन से नहिं छोड़े जब तक अणू मात्र रागादिक भाव।
यद्यपि परम अर्थ को जाने किन्तु न हो शिव सुख का लाभ।।८१।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो जीव [अणुमात्रं अपि] थोड़ा भी [रागं] राग [मनसि] मन में से [यावत्] जबतक [अत्र] इस संसार में [न मुंचति] नहीं छोड़ देता है, [तावत्] तबतक [जीव] हे जीव, [परमार्थं] निज शुद्धात्मतत्त्व को [जानन्नपि] शब्द से केवल जानता हुआ भी [नैव] नहीं [मुच्यते] मुक्त होता।

भावार्थ :- जो वीतराग सदा आनंदरूप शुद्धात्मभाव से रहित पंचेन्द्रियों के विषयों की इच्छा रखता है, मन में थोड़ा सा भी राग रखता है, वह आगमज्ञान से आत्मा को शब्दमात्र जानता हुआ भी वीतरागचारित्र की भावना के बिना मोक्ष को नहीं पाता।।८१।।

गाथा-८१ पर प्रवचन

आगे जबतक परमाणुमात्र भी (सूक्ष्म भी) राग को नहीं छोड़ता- ४७ इसमें आया, हों! अब। यह ८१ में आया, हों! यह ८१ आया। वह परमागम का। है? **जबतक परमाणुमात्र भी (सूक्ष्म भी) राग को नहीं छोड़ता-** है? यह किस अपेक्षा से? 'राग मेरा है' इस अपेक्षा से। जहरा भी राग (हो), चाहे वह दया, दान, व्रत, भक्ति का कण राग, उसे मेरा मानता है, तब तक मिथ्यादृष्टि है। भले बहुत आगम जानता हो। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **जबतक परमाणुमात्र भी...** यह शब्द है वहाँ भी। **राग को नहीं छोड़ता-धारण करता है,...** राग को रखता है। राग रखने योग्य है, ऐसा मानता है। आहाहा! **तबतक कर्मों से नहीं छूटता, ऐसा कथन करते हैं**—लो! यहाँ इसमें आया यह, हों! उस परम आगम की जो गाथा है न? वह यहाँ है। है न? ८१।

२०४) **जो अणु-मेत्तु वि राउ मणि जाम ण मिल्लइ एत्थु।**
सो णवि मुच्चइ ताम जिय जाणंतु वि परमत्थु।।८१।।

राग अणुमात्र भी। आहाहा! सन्तों ने रेलमछेल कर दी है। संस्कृत है न?

यः अणुमात्रमपि रागं मनसि यावत् न मुञ्चति अत्र।
स नैव मुच्यते तावत् जीव जानन्नपि परमार्थम्।।८१।।

अन्वयार्थ :- जो जीव थोड़ा भी राग मन में से जबतक इस संसार में नहीं छोड़ देता है,... राग का कण भी अंश में शुभराग भी मेरा है, ऐसा माननेवाला चाहे जो आगम के पूरे पढ़नेवाले हों, परन्तु राग से मुझे लाभ होता है, इसका अर्थ कि राग मेरा है। आहाहा! ओहोहो! **जो जीव थोड़ा भी राग मन में से जबतक इस संसार में नहीं छोड़ देता है,...** आहाहा! **तबतक हे जीव! निज शुद्धात्मतत्त्व को शब्द से केवल जानता हुआ भी...** शब्दज्ञान कहा था न वह वहाँ, यह कहा। आहाहा! **शब्द से केवल जानता हुआ भी नहीं मुक्त होता।** आहाहा! ऐसी बात तो सुनने का भी भाग्य हो उसे मिलती है, बापू! ऐसी बात है। अरे! क्या हो, भाई!

मुमुक्षु : ....अनन्तानुबन्धी का राग नहीं छोड़ता?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग मेरा है। यह राग मेरा है, इसका अर्थ मिथ्यात्व है और यह अनन्तानुबन्धी है। उस समयसार में यह कहा है, वहाँ प्रवचनसार में।

भावार्थ :- जो वीतराग सदा आनन्दरूप एक शुद्धात्मभाव से रहित... आहाहा! भगवान आत्मा प्रभु कैसा है अन्दर? सर्वज्ञ परमेश्वर जिनवरदेव ने ऐसा देखा और कहा है कि... आहाहा! **वीतराग सदा आनन्दरूप एक शुद्धात्मभाव से...** आहाहा! शुद्धात्म भगवान आत्मा तो वीतरागी आनन्दरूप है। आहाहा! वीतराग सदानन्दरूप—सदानन्दरूप। आहाहा! वह तो त्रिकाल आनन्दरूप है भगवान आत्मा। आहाहा! समझ में आया? आत्मा वीतरागी सदानन्दरूप। आहाहा! एक शुद्धात्म। यहाँ 'एक' (शब्द) पड़ा रहा है। **एक शुद्धात्मभाव से...** आहाहा! देखो! आत्मा ऐसा। **वीतराग सदा आनन्दरूप एक शुद्धात्मभाव...** आहाहा! अब यह तो आत्मा क्या? कि दया पाले, वह आत्मा और हिले-चले, वह आत्मा। भक्ति करे, वह आत्मा। अरे!

वीतराग सदा आनन्दरूप... आहाहा! आत्मा को.... **वीतराग सदा आनन्दरूप एक शुद्धात्मभाव...** एक शुद्धात्मभाव, शुद्धात्मभाव। उससे रहित। उसकी जिसे दृष्टि नहीं। आहाहा! **पंचेन्द्रियों के विषयों की इच्छा रखता है,...** वह पाँच इन्द्रियों के विषय की अभिलाषा, वह उसे होती है। आहाहा! क्योंकि भगवान आनन्दरूप का भाव तो है नहीं। वह तो रहित है। आहाहा! आनन्द के भावरहित है, विषय के भाववाला है वह। विषय की अभिलाषावाला है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! विषय की अभिलाषावाला है, वह परमानन्दरहित है। आहाहा! कहो, ऐसी बातें एकदम रूखी लगे। यह तो वीतराग रस है। आहाहा! निर्विकल्प आनन्द के रस से भरपूर प्रभु। आहाहा! एक बार वह कृपाशंकर था न भाई तुम्हारा? राजकोट नहीं?

मुमुक्षु : बोधाणी-बोधाणी।

पूज्य गुरुदेवश्री : कैसा? बोधाणी। प्रभाशंकर और कृपाशंकर। प्रभाशंकर छोटा और यह बड़ा। प्रभाशंकर आस्थावाला, भले उस जाति की। और यह जरा नास्तिक। फिर व्याख्यान में आवे कृपाशंकर। बड़ा था। डेला के सामने रहता था। उस डेला के ऊपर वह फोटो रखता प्रभाशंकर। एक बार आकर कहे, महाराज! ऐसे धीरे-धीरे क्या

बोलते हो ? ऐसा खींचकर बोलो। था पतला शरीर उसका—कृपाशंकर का। ऐसा बोलो कि भगवान ऐसा कहते हैं। ऐसा करो। ऐसा करके स्वयं खींचकर बोले। था तो नास्तिक, लोग कहते। छोटा आस्तिक कहते। एक बार राजकोट व्याख्यान सुना। ऐसा क्या धीरे-धीरे बोलते हो ? ऐसा बोलो। और एक बार दामनगर में एक था। वह व्यक्ति एक दामनगर का था। कौन ? दामनगर में एक था मोहन त्रिकम। आहाहा! वीतराग सदा... उसे बेचारे को दर्शना करना हो। सुनना और समझना कहाँ है ? यह संसार ऐसा भटकता है अनादि से ऐसा का ऐसा। क्या कहते हैं ? गाथा आती है, आती अवश्य है। प्रवचनसार में नहीं ? प्रवचनसार में।

वीतराग सदा आनन्दरूप एक शुद्धात्मभाव... देखो! वापस आत्मा कैसा है ? आहाहा! कि **वीतराग सदा आनन्दरूप एक शुद्धात्मभाव से रहित...** है। आहाहा! जिसकी दृष्टि में शुद्धात्मस्वभाव आनन्दरूप नहीं आता, उस अज्ञानी को राग की अभिलाषा होती है। आहाहा! समझ में आया ? **पंचेन्द्रियों के विषयों की इच्छा रखता है,...** वह पाँच इन्द्रिय के विषयों की इच्छा रखता है—राग। आहाहा! जिसे अणीन्द्रिय सदा आनन्दरूप प्रभु दृष्टि में नहीं, श्रद्धा में नहीं, ज्ञान में आया नहीं... आहाहा! वह पाँच इन्द्रिय के विषयों की इच्छा रखता है। आहाहा! **मन में थोड़ा सा भी राग रखता है,...** आहाहा! मन में परपदार्थ में थोड़ा भी राग रखता है। आहाहा! **वह आगमज्ञान से आत्मा को शब्दमात्र जानता हुआ...** देखो! आगम का ज्ञान हो, उसे करोड़ों श्लोकों का, अरबों श्लोकों का, परन्तु वह सब अज्ञानी है। आहाहा!

जिसे आत्मज्ञान वीतरागी मूर्ति प्रभु आत्मा की श्रद्धा और ज्ञान नहीं हो, उसे राग की इच्छा होती है। फिर शुभराग का प्रेम हो या अशुभ का, परन्तु राग की अभिलाषा है। आहाहा! गजब बात है! देव-गुरु-शास्त्र के प्रति राग, परन्तु उस राग की जिसे अभिलाषा है... आहाहा! वह तत्त्वज्ञान से रहित है। सदा आनन्दरूप भगवान आत्मा की दृष्टि-रहित है। आहाहा! चाहे जो फिर भक्ति करता हो, व्रत पालता हो, परन्तु आगमज्ञान, शब्द का ज्ञान है, वस्तु नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

वह आगमज्ञान से आत्मा को शब्दमात्र जानता हुआ भी वीतरागचारित्र की

भावना के बिना... देखो! अर्थात् कि रागरहित स्वरूप की स्थिरता बिना। सम्यग्दर्शन में भी स्थिरता तो है न? स्वरूपाचरण है, अनन्तानुबन्धी का अभाव, ऐसा वीतरागी चारित्र है वह। वीतरागी स्वरूपाचरणचारित्र वीतरागी चारित्र है। आहाहा! जैसे सम्यग्दर्शन वीतरागी दर्शन है, ज्ञान वीतरागी है, वैसे स्वरूपाचरण वीतरागी चारित्र है। अन्दर की स्थिरता नहीं उसे। आहाहा! **भावना के बिना मोक्ष को नहीं पाता।** लो! वह मोक्ष को प्राप्त नहीं करता। राग की रुचिवाला जीव स्वभाव की रुचि से रहित शब्दज्ञान से मोक्ष नहीं पाता। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ८२

अथ निर्विकल्पात्मभावनाशून्यः शास्त्रं पठन्नपि तपश्चरणं कुर्वन्नपि परमार्थं न वेत्तीति कथयति-

२०५) बुज्झइ सत्थइँ तउ चरइ पर परमत्थु ण वेइ।
ताव ण मुंचइ जाम णवि इहु परमत्थु मुणेइ।।८२।।

बुध्यते शास्त्राणि तपः चरति परं परमार्थं न वेत्ति।
तावत् न मुच्यते यावत् नैव एनं परमार्थं मनुते।।८२।।

बुज्झइ इत्यादि। बुज्झइ बुध्यते। कानि सत्थइँ शास्त्राणि न केवलं शास्त्राणि बुध्यते तउ चरइ तपश्चरति पर परं किंतु परमत्थु ण वेइ परमार्थं न वेत्ति न जानाति। कस्मान्न वेत्ति। यद्यपि व्यवहारेण परमात्मप्रतिपादकशास्त्रेण ज्ञायते तथापि निश्चयेन वीतरागस्वसंवेदनज्ञानेन परिच्छिद्यते। यद्यप्यनशनादिद्वादशविधतपश्चरणेन बहिरङ्ग-सहकारिकारणभूतेन साध्यते तथापि निश्चयेन निर्विकल्पशुद्धात्माविश्रान्तिलक्षण-वीतरागचारित्रसाध्यो योऽसौ परमार्थशब्दवाच्यो निज-शुद्धात्मा तत्र निरन्तरानुष्ठानाभावात् ताव ण मुंचइ तावन्तं कालं न मुच्यते। केन। कर्मणा जाम णवि इहु परमत्थु मुणेइ यावन्तं कालं नैवैनं पूर्वोक्तलक्षणं परमार्थं मनुते जानाति श्रद्धत्ते सम्यगनुभवतीति। इदमत्र तात्पर्यम्। यथा प्रदीपेन विवक्षितं वस्तु निरीक्ष्य गृहीत्वा च प्रदीपस्त्यज्यते तथा शुद्धात्मतत्त्वप्रतिपादकशास्त्रेण शुद्धात्मतत्त्वं ज्ञात्वा गृहीत्वा च प्रदीपस्थानीयः शास्त्रविकल्पस्त्यज्यत इति।।८२।।

आगे जो निर्विकल्प आत्म-भावना से शून्य है, वह शास्त्र को पढ़ता हुआ भी तथा तपश्चरण करता हुआ भी परमार्थ को नहीं जानता है, ऐसा कहते हैं -

शास्त्र पढ़े तप करे किन्तु जो जब तक नहिं जाने परमार्थ।
तब तक उसकी मुक्ति नहीं हो सकती यह जानो सत्यार्थ।।८२।।

अन्वयार्थ :- [शास्त्राणि] शास्त्रों को [बुध्यते] जानता है, [तपः चरति] और तपस्या करता है, [परं] लेकिन [परमार्थं] परमात्मा को [न वेत्ति] नहीं जानता है, [यावत्] और जबतक [एवं] पूर्व कहे हुए [परमार्थं] परमात्मा को [नैव मनुते] नहीं जानता, या अच्छी तरह अनुभव नहीं करता है, [तावत्] तबतक [न मुच्यते] नहीं छूटता।

भावार्थ :– यद्यपि व्यवहारनय से आत्मा अध्यात्मशास्त्रों से जाना जाता है, तो भी निश्चयनय से वीतरागस्वसंवेदनज्ञान से ही जानने योग्य है, यद्यपि बाह्य सहकारीकारण अनशनादि बारह प्रकार के तप से साधा जाता है, तो भी निश्चयनय से निर्विकल्प–वीतरागचारित्र से ही आत्मा की सिद्धि है। जिस वीतरागचारित्र का शुद्धात्मा में विश्राम होना ही लक्षण है। सो वीतरागचारित्र के बिना आगमज्ञान से तथा बाह्य तप से आत्मज्ञान की सिद्धि नहीं है। जबतक निज शुद्धात्मतत्त्व के स्वरूप का आचरण नहीं है, तबतक कर्मों से नहीं छूट सकता। यह निःसंदेह जानना, जबतक परमतत्त्व को न जाने, न श्रद्धा करे, न अनुभवे, तबतक कर्मबंध से नहीं छूटता। इससे यह निश्चिय हुआ कि कर्मबंध से छूटने का कारण एक आत्मज्ञान ही है, और शास्त्र का ज्ञान भी आत्मज्ञान के लिए ही किया जाता है, जैसे दीपक से वस्तु को देखकर वस्तु को उठा लेते हैं, और दीपक को छोड़ देते हैं, उसी तरह शुद्धात्मतत्त्व के उपदेश करनेवाले जो अध्यात्मशास्त्र उनसे शुद्धात्मतत्त्व को जानकर उस शुद्धात्मतत्त्व का अनुभव करना चाहिए, और शास्त्र का विकल्प छोड़ना चाहिए। शास्त्र तो दीपक के समान हैं, तथा आत्मवस्तु रत्न के समान है।।८२।।

वीर संवत् २५०२, मागसर कृष्ण ५, शनिवार
दिनांक-११-१२-१९७६, गाथा-८२ - ८३, प्रवचन-१५६

परमात्मप्रकाश, ८२ गाथा। **आगे जो निर्विकल्प आत्म–भावना शून्य है, वह शास्त्र को पढ़ता हुआ भी तथा तपश्चरण करता हुआ भी परमार्थ को नहीं जानता है, (ऐसा कहते हैंः—)** पुण्य–पाप के अधिकार में आता है न, परमट्ठ बहिरा। सब वह शैली है। आहाहा!

२०५) **बुज्झइ सत्थइँ तउ चरइ पर परमत्थु ण वेइ।**
ताव ण मुंचइ जाम णवि इहु परमत्थु मुणेइ।।८२।।

अकेला पाप करता है, उसकी तो यहाँ बात ही नहीं, परन्तु भक्ति, पूजा आदि करे, उसका भाव शुभ, उसकी यहाँ बात नहीं, परन्तु यह तो शास्त्र पढ़ता है, शास्त्र पढ़ता है, पढ़ता है, वाँचता है। है? **शास्त्र को जानता है,...** ऐसा। आहाहा! जानने पर

भी **तपस्या करता है,...** तपस्या भी करता है। महीने-महीने के अपवास या मुनिपना पंच महाव्रत आदि पाले, बारह प्रकार के तप करे। **लेकिन...** लो! लेकिन आया वापस। ऐसा होने पर भी... आहाहा! **परमात्मा को नहीं जानता है,...** लो! परमात्मा परमस्वरूप ज्ञानमय वस्तु स्वरूप का निर्विकल्प ज्ञान नहीं करता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्योंकि शास्त्र पढ़ने का गुण तो यह है। बन्ध अधिकार में आता है न? २७४। वस्तुभूत ज्ञानमय आत्मा का ज्ञान। वस्तुभूत ज्ञानमय आत्मा का ज्ञान (होना), वह शास्त्र पठन का गुण है। २७४ है। और परमट्ठ बहिरा, यह भी है पुण्य-पाप अधिकार में। आत्मा परमानन्द मूर्ति ज्ञानवस्तु, उस ज्ञान का ज्ञान अनुभव निर्विकल्प करता नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! वस्तु है, वह ज्ञानमय आनन्दमय, उसे निर्विकल्परूप से शास्त्र के पढ़ने के विकल्प को भी छोड़कर... आहाहा! अन्तर चैतन्यमूर्ति ज्ञानमय वस्तु, वस्तुभूत ज्ञानमयवस्तु का जो ज्ञान निर्विकल्परूप से करता नहीं। आहाहा!

और जब तक... तपस्या भी करता हो। आहाहा! यह बात है। **जब तक पूर्व कहे हुए परमात्मा को नहीं जानता, या अच्छी तरह अनुभव नहीं करता है,...** आहाहा! आत्मा ज्ञानमय, आनन्दमय वस्तु, उस ज्ञान का अनुभव नहीं, ज्ञान का ज्ञान करता नहीं, ज्ञान का अनुभव करता नहीं। समझ में आया? आहाहा! **तब तक नहीं छूटता।** क्या कहते हैं? **या अच्छी तरह अनुभव नहीं करता है,...** तब तक मिथ्यात्व से और विकल्प से नहीं छूटता, कर्म से नहीं छूटता। आहाहा!

भावार्थ :- यद्यपि व्यवहारनय से आत्मा अध्यात्मशास्त्रों से जाना जाता है,... है? पाठ में यह है '**परमात्मप्रतिपादकशास्त्रेण**' पाठ यह है। परमात्म अर्थात् आत्मा के कहनेवाले शास्त्र। अर्थात् अध्यात्म शास्त्र लिये अर्थ में। संस्कृत में यह है। '**व्यवहारेण परमात्मप्रतिपादकशास्त्रेण ज्ञायते**' आहाहा! दूसरे शास्त्र तो एक ओर रहे परन्तु परमात्मा के कहनेवाले अध्यात्म शास्त्र। आहाहा! लो! यहाँ तो यह बात ली है। चरणानुयोग और करणानुयोग नहीं। परमात्मा के कहनेवाले अध्यात्म शास्त्रों को जानने पर भी... आहाहा! **निश्चयनय से वीतरागस्वसंवेदनज्ञान से ही जानने योग्य है,...** आत्मा तो विकल्परहित वीतराग निर्विकल्प दृष्टि से और ज्ञान से जाननेयोग्य है। आहाहा! लोगों को यह ऐसी बात निश्चय की लगे। परन्तु यह सब प्राप्त हो व्यवहार से न? ऐसा कहते हैं। यहाँ तो

यह कहते हैं, व्यवहार क्रिया तो एक ओर रही, पाप के परिणाम तो एक ओर रहे, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम एक ओर रहे, शास्त्र को पढ़ने का जो विकल्प है, (उसे भी यहाँ निकाल डाला)। आहाहा! शास्त्र को पढ़ने का जो फल है, वह तो ज्ञानमय आत्मा परमात्मस्वरूप का ज्ञान करना, उसका वेदन करना, निर्विकल्परूप से उसका ज्ञान करना, वह शास्त्र का फल है। वह तो आया नहीं। आहाहा! समझ में आया?

निश्चयनय से वीतरागस्वसंवेदनज्ञान से ही... अध्यात्म शास्त्र से व्यवहार से जानने में आवे, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा! परन्तु वस्तुभूत पदार्थ ज्ञानमय वस्तु का निर्विकल्परूप से ज्ञान न करे... आहाहा! तब तक उसे धर्म नहीं होता। तब तक वह कर्म छूटता नहीं। लाख अपवास करे, और करोड़ करे। आहाहा!

मुमुक्षु : धर्म के सन्मुख तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उस ओर का प्रयत्न करता हो तो सन्मुख है। शास्त्र का ज्ञान करके वहाँ ही रुक गया है, तो वह सन्मुख नहीं। आहाहा! शास्त्र का ज्ञान करके वहाँ ही रुक गया, परन्तु अन्दर में जाने का प्रयत्न करता ही नहीं, अन्तर्मुख होने का। वह तो निर्विकल्प अनुभव नहीं होता, इसलिए वह...

मुमुक्षु : अन्दर जाने का प्रयास नहीं करे तो सन्मुख कैसे हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : सन्मुख किस प्रकार हो? जो शास्त्र पढ़ना है, पढ़ने का फल क्या? अन्तर चैतन्यमुख होने का उसका साधन, उसमें जाता नहीं और निर्विकल्प अनुभव करता नहीं। आहाहा! और शास्त्र पढ़-पढ़कर शास्त्र में ही रुक गया है पूरा। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो जिसे आगमज्ञान नहीं, उसे ऐसा कहते हैं। यह आता है न कि तुम शास्त्र का निषेध करते हो? भाई! जिसे आगम का अभ्यास नहीं, उसे तो अभ्यास करना। परन्तु आगम का अभ्यास है, और निर्विकल्प में जाता नहीं, तो उसका वह अभ्यास भी झूठा है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र, वह विकल्पजाल है। शास्त्र में बुद्धि को रोकना, वह व्यभिचार है।

मुमुक्षु : न पढ़े उसे....

पूज्य गुरुदेवश्री : न पढ़े, उसे पढ़ने का कहे; पढ़ा हो, उसे अन्दर में जाने का कहे। आहाहा! २७४ में नहीं आता वहाँ? २७४ में आता है, नहीं? शास्त्र पढ़ने का गुण। २७४ (गाथा) समयसार, हों! लो! २७४।

मोक्खं असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधिएज्जो।
पाठो ण करेदि गुणं असदद्दहंतस्स णाणं तु॥२७४॥

यह शैली है सब। दिगम्बर आचार्यों की शैली एक ही पद्धति की है। भिन्न-भिन्न प्रकार से बात करते हैं परन्तु बहुत गम्भीर और बहुत गूढ़ है। देखो! **प्रथम तो मोक्ष को ही अभव्य जीव...** अभव्य का दृष्टान्त है। **जीव, (स्वयं) शुद्धज्ञानमय आत्मा के ज्ञान से शून्य...** शुद्धज्ञानमय आत्मा के ज्ञान से शून्य। शुद्धज्ञानमय आत्मज्ञान से शून्य। आहाहा! **शून्य होने से, श्रद्धा नहीं करता, इसलिए ज्ञान को भी वह नहीं श्रद्धता। और ज्ञान को नहीं श्रद्धता वह आचारांग आदि ग्यारह अंगरूप श्रुत को (शास्त्र को) पढ़ता होने पर भी....** आहाहा! भाषा देखो! आचारांग आदि यहाँ कहा न? अध्यात्म शास्त्र। अभी अध्यात्म है। **ग्यारह अंगरूप श्रुत को (शास्त्र को) पढ़ता होने पर भी, शास्त्र पढ़ने का जो गुण, उसके अभाव के कारण ज्ञानी नहीं है।** आहाहा! गजब!

मुमुक्षु : पढ़-पढ़कर....

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़-पढ़कर जो करने का है, वह किया नहीं, ऐसा कहते हैं। यह कहते हैं, देखो!

भिन्नवस्तुभूत ज्ञानमय आत्मा का ज्ञान, वह शास्त्र पढ़ने का गुण है... २७४ है? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! जन्म-मरण रहित होने की रीति। आहाहा! अकेले पाप में पड़े हैं, संसार के धन्धे में, उनकी तो बात भी क्या करना? यह तो पूरे दिन पाप, कमाना, कमाना, पैसे होना, भोग और प्रतिष्ठा और कीर्ति... वह तो मर गया बेचारा पाप में। आहाहा! परन्तु यहाँ तो भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि करे

तो भी वह पुण्य है। आहाहा! इससे आगे जाकर शास्त्र का पठन करे, वह भी अध्यात्म शास्त्र का पठन करे। आहाहा! सेठ! ऐसी बात है, बापू! आहाहा! अरे रे! चौरासी के अवतार में जन्म-मरण करके वह दुःखी है, दुःखी है। समझ में आया?

जिसे आत्मा के आनन्द का भान नहीं, आत्मा आनन्दमय, ज्ञानमयमूर्ति प्रभु परमात्मस्वरूप अन्दर विराजता है। आहाहा! कहाँ तक कहा? कि इस संसार में तो पूरे दिन बाईस-बीस घण्टे यह धन्धा, स्त्री, पुत्र, कमाना, अकेला पाप है। धर्म तो नहीं, परन्तु पुण्य भी नहीं वहाँ तो। आहाहा! और जो कुछ पुण्य करता है, कहते हैं, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि का, उससे भी उसे क्या? आत्मा ज्ञानमय का आनन्दमय का भान नहीं, इससे अटक गया। वहाँ भी नहीं। यहाँ तो अध्यात्म शास्त्र सुनता है, वाँचन करता है, अभ्यास करता है। आहाहा! समझ में आया? बापू! मार्ग अलग, भाई! जन्म-मरण से रहित होने की रीति वीतराग परमेश्वर जिनवरदेव अलौकिक रीति से कहते हैं, भाई! आहाहा! अरे! दुनिया को कहाँ पड़ी है? पूरे दिन यह कमाना, यह पैसा, यह धूल और पानी... आहाहा! अकेला पाप का पोटला।

यहाँ तो उसे तो निषेध किया, परन्तु पुण्य के करनेवाले देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, वन्दन, श्रवण का भी निषेध किया। परन्तु शास्त्र के पठन में आया अध्यात्मशास्त्र के, ऐसा कहते हैं। दूसरे शास्त्र वाँचे करणानुयोग, वह तो एक ओर रहे। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! बापू! तेरा मार्ग ऐसा अलग है। आहाहा! कहते हैं कि शास्त्र भी पढ़ा। आचारांग आदि पढ़ा, ऐसा कहा यहाँ तो। यहाँ अध्यात्म शास्त्र कहे हैं। अभी यह है नहीं न। अभी आचारांग आदि मूल जो शास्त्र हैं, वे अभी हैं नहीं। अभी अध्यात्मशास्त्र हैं। इसलिए अध्यात्मशास्त्र लिये और उसमें तो है नहीं तो भी ग्यारह अंग का ज्ञान किया अनन्त बार, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शास्त्र को पढ़ा, वाँचन किया, कण्ठस्थ किया, मुख से जवाब एकदम-एकदम दे। परन्तु उससे क्या? कहते हैं।

मुमुक्षु : पहले से कहना चाहिए न कि आत्मस्वभाव वह आत्मा का ज्ञान...

पूज्य गुरुदेवश्री : पहला अभ्यास तो करावे। जो अध्यात्म शास्त्र का अभ्यास तो करे, तथापि करे तो भी जिसे भिन्न वस्तुभूत भगवान अन्दर चिदानन्द प्रभु देहदेवल में राग से भिन्न भगवान विराजता है अन्दर। कहाँ खबर है इसे? आहाहा! भाषा तो देखो!

भिन्न वस्तुभूत... वस्तुभूत। **ज्ञानमय आत्मा...** वह तो ज्ञान का पिण्ड प्रभु है। आहाहा! जैसे सूर्य, प्रकाश का पुंज है, उसी प्रकार यह भगवान आत्मा ज्ञान का पुंज है। ज्ञान कैसा? यह वाँचने का, वह नहीं। ज्ञान का गुण का पिण्ड है। आहाहा! अरे रे! कहाँ... **शास्त्र पढ़ने का जो गुण, उसके अभाव के कारण ज्ञानी नहीं।** क्यों? **भिन्न वस्तुभूत ज्ञानमय आत्मा का ज्ञान, वह शास्त्र पढ़ने का गुण है...** आहाहा! यह यहाँ कहते हैं। आहाहा! अरे! अनादि से भटकता, रुलता दुःखी, बेचारे पैसेवाले भिखारी दुःखी। देव दुःखी। आहाहा!

मुमुक्षु : इसलिए ऐसा आता है कि सुखी एक मुनिराज हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक सुखी मुनि धर्मी। 'नहीं सुखी देवता देवलोक, वह नहीं सुखी सेठ सेनापति।' अरबोंपति बेचारे भिखारी दुःखी हैं। लाओ... लाओ... लाओ... लाओ पैसा लाओ। अन्तर की लक्ष्मी की खबर नहीं। समझ में आया? देखो न वह ईरानवाला। देश छोटा परन्तु एक घण्टे के दो करोड़ की आमदनी अभी है। ईरान का बादशाह। देश छोटा है। परन्तु पेट्रोल के कुँए इतने निकले कि एक घण्टे की दो करोड़ की आमदनी है। वह कहाँ तक? ३० वर्ष तक निकले इतना तेल है। आहाहा! भिखारी है बेचारे रंक। मर जायेंगे। आहाहा! वह तो मुसलमान है, इसलिए माँस और शराब खाये (पीये), मरकर नीचे नरक में पोढ़ेगा। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि यह वस्तु लक्ष्मी तो एक ओर रही, उसके लिये कमाने के पाप के भाव, वे भी एक ओर रहे, परन्तु भक्ति आदि के पुण्य के परिणाम जो रहे, वे एक ओर रहे, परन्तु शास्त्र पढ़ने का शुभभाव है। आहाहा! यह अध्यात्मशास्त्र पढ़ने का, आचारांग आदि का पढ़ने का। आचार्य महाराज ने तो यह लिया है यहाँ। है न? आचारांग आदि है न यह? इसलिए यह लिखा है। पहले आचारांग आदि है न? आहाहा! कितने में आता है? बाद में आता है, नहीं? २७६। '**आयारादी**' कुन्दकुन्दाचार्य ने आचारांग आदि शास्त्र रखे हैं, वे भगवान के कहे हुए। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर वीतराग जिन्हें सौ इन्द्र पूजें, उनकी दिव्यध्वनि में आये हुए शास्त्र, उनका ज्ञान करने पर भी... आहाहा! है? २७४ में आया न? **आत्मा का ज्ञान शास्त्र पढ़ने का गुण है; जो भिन्न वस्तुभूत...** राग से भिन्न, देह मिट्टी। यह तो मिट्टी जड़ धूल है। इससे प्रभु भिन्न है।

कर्म जड़ है मिट्टी अन्दर, उससे प्रभु—आत्मा भिन्न है। और दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम पुण्य के, उनसे भी अन्दर भगवान भिन्न है। आहाहा! और यहाँ तो शास्त्र पढ़ने के विकल्प से भी भगवान भिन्न हैं। इसे कहाँ (पड़ी है) ? भगवान कौन हैं... भगवान तो भगवान हो गये। परन्तु तू भगवान है अन्दर। आहाहा! बापू! तुझे खबर नहीं। आहाहा! यह निधान है। अनन्त आनन्द और गुण का निधान प्रभु है। ऐसी वस्तु ज्ञानमय आत्मा का ज्ञान। आहाहा! शास्त्र का ज्ञान नहीं। शास्त्र के ज्ञान का पढ़ने का गुण तो यह है। समझ में आया ? आहाहा!

शास्त्र पढ़ने का जो गुण, उसके अभाव के कारण... वह शास्त्र पढ़ने का गुण इसे हुआ नहीं—ज्ञानमय आत्मा का ज्ञान। आहाहा! और भिन्न वस्तुभूत ज्ञान। चैतन्यबिम्ब सूर्य, चैतन्य ज्ञानसूर्य, वह राग से भिन्न वस्तु का ज्ञान नहीं होने से, उसकी श्रद्धा भी नहीं करता। ज्ञान में वह वस्तु नहीं आयी, श्रद्धा कहाँ से करे ? आहाहा! समझ में आया ? अन्दर देह में विराजमान भगवान, यह (शरीर) तो मिट्टी जड़ धूल है। यह तो श्मशान की राख होगी। अन्दर कर्म है, वह जड़ अजीव है और यह पुण्य-पाप के भाव हिंसा, कमाना, खाना, विषयभोग वासना, व्यापार-धन्धा वह अकेला पाप है। आहाहा! और यह भक्ति देव-गुरु-शास्त्र, पूजा आदि का भाव, व्रत का भाव, अपवास का भाव, वह पुण्य है। परन्तु शास्त्र पढ़ने का भाव, वह भी विकल्प और पुण्य है, शुभ है। आहाहा! काम बहुत कठिन, बापू! तेरा भटकना चौरासी के अवतार में... आहाहा! वह यहाँ नहीं हुआ, कहते हैं। **ऐसे अभव्य को शास्त्र-पठन द्वारा नहीं किया जा सकता।** ज्ञान। ऐसा कहते हैं। २७४ (गाथा)। वह अपने यहाँ। है यहाँ ?

वीतरागस्वसंवेदनज्ञान से ही जानने योग्य है,... आहाहा! अन्दर भगवान आत्मा, परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ जिनवरदेव कहते हैं कि इस आत्मा को जानने की रीति क्या है ? कि निर्विकल्प **वीतरागस्वसंवेदनज्ञान से ही जानने योग्य है,...** आहाहा! वह तो रागरहित, शास्त्र पढ़ने का विकल्प है, उससे रहित स्वसंवेदन—उस ज्ञान का स्व—अपना सं—प्रत्यक्ष वेदन, उससे जाननेयोग्य है। आहाहा! अरे! ऐसी बातें कहाँ अब। कहाँ बेचारे पड़े हों भटकते हुए। अब यह बात सुने तो क्या हो उसे। आहाहा! कहो, सेठ! सत्य तो यह है, बापू! आहाहा! अरे! ऐसे अनन्त अवतार कर-करके (मर गया)।

एक पिल्ला भाई! बारम्बार यहाँ चढ़ता है। एक काला है छोटा। सीढ़ी पर कैसे वहाँ आकर खड़ा रहता है? कौन जाने क्या होगा? मनुष्य मरकर पिल्ला हो।

मुमुक्षु : मनुष्य मरकर सर्प भी हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्प भी हो। कहा नहीं?

अभी वह साढ़े तीन वर्ष का लड़का है न एक? तीन भव का ज्ञान हुआ है। समाचारपत्र में आया है। साढ़े तीन वर्ष का लड़का है। वह तीन भव की बात करता है। कि मैं एक चाण्डाल का पुत्र था चौथे भव में। चाण्डाल-चाण्डाल, चमार। चमार में मैं चमड़ी उतारकर चमड़ा कहाँ रखता था, वह सब बताया। ४०-४५ वर्ष पहले की बात। फिर वहाँ से मरकर मैं सर्प हुआ था। अभी साढ़े तीन वर्ष का लड़का है। अखबार में आया है। वहाँ से मरकर मैं सर्प हुआ था। किसी के पैसे थे, उसकी रक्षा के लिये वहाँ मैं ऊपर रहा। उसमें मुझे किसी ने मार डाला। मार डाला तो अब मैं यहाँ... कैसा कहा? तेली के घर में लड़का हुआ। पन्द्रह वर्ष की उम्र। तेली-तेली। वहाँ मुझे रोग आया और मैं मर गया। मरकर मैं यहाँ आया हूँ। कैसे कहे वे? कारीगर। कारीगर के घर में। साढ़े तीन वर्ष हुए हैं। अनादि का है, वह कहाँ (नया है)। अनन्त भव कर-करके मर गया है। यह तो यह भव किये परन्तु बैल के, नरक के, चींटी के, कौवे के, कुत्ते के, ऐसे अनन्त-अनन्त भव (किये हैं)। अनादि का है, वह कहीं नया आत्मा है? आहाहा! लो, यह कहते हैं। वह लड़का है।

इसलिए जातिस्मरण होता है। हजारों केस हैं अभी। पूर्व भव के जाननेवाले के केस यहाँ हजारों हैं। यहाँ अपने पास आया था न? वजुभाई की पुत्री की पुत्री। वजुभाई की राजुल। उसे पूर्व का था न यहाँ? जूनागढ़ में लुहार की पुत्री थी, लुहार की। वह मरकर अपने यहाँ आयी है, इन वजुभाई के पुत्र की पुत्री। आयी थी न अभी। वह सब बात करती थी। वहाँ जाकर उसकी माँ को पहिचाना, बाप को, मकान को, यह सब था। वह तो पाँच वर्ष की उम्र, हों! अभी सोलह वर्ष हो गये।

मुमुक्षु : अभी याद है या भूल गयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कुछ बहुत पूछा नहीं। परन्तु वह कहती थी कि पहले जो

याद आता था, वह अभी याद आता है। परन्तु वह याद आता था, वह सीधे याद आता, ऐसा नहीं आता। ऐसा कुछ कहती थी, नहीं? ऐसा कहती थी। आहाहा! वह तो पहले का जो याद किया था न? उस याद का याद आता है अभी। परन्तु पूर्व का जो है... यह वजुभाई के पुत्र की पुत्री। आहाहा! ऐसा तो हजार केस हैं। उस राजुल के लिये एक अमेरिका का आया था, रिपोर्ट लेने यहाँ आया था न वह? वह मेरे पास बैठा था। वह कहे कि मेरे पास ऐसे हजार केस हैं। पूरे देश के, हों! यूरोप। पूरी दुनिया के एक हजार केस। मुसलमान तक को जातिस्मरण हुआ है, ऐसे केस मेरे पास हैं। वह राजुल की रिपोर्ट लेने यहाँ आया था। लड़की यहाँ थी तब। आहाहा! ऐसे भव तो बापू! अनन्त किये हैं, भाई! भूल गया। बाहर आया और कुछ ठीक हुआ शरीर ठीक और कुछ पैसा दो-पाँच-दस लाख हों और धूल और लड़के अच्छे हों, वह मूढ़ होकर मर गया। आहाहा! मैं कहाँ से आया और कहाँ जाऊँगा? मेरा क्या होगा? यह बात ही भूल गया।

यहाँ कहते हैं कि शास्त्र पढ़ने पर भी आत्मा का ज्ञान तो व्यवहार से अध्यात्म शास्त्र का कहलाता है। **निश्चयनय से वीतरागस्वसंवेदनज्ञान से ही...** भाषा देखो! **वीतरागस्वसंवेदनज्ञान से ही...** अर्थात्? आहाहा! राग का विकल्प जो, उससे नहीं। राग से भिन्न पड़कर वीतरागी ज्ञान हो, उससे वह ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! चौथे गुणस्थान में, हों! यह अभी तो समकित में, श्रावक तो कहीं रहे सच्चे। यह तो सब वाडा के हैं। और सच्चे साधु की दशा कोई दूसरी, बापू! वह तो कहीं अभी नमूना मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा वीतरागी दशा से स्वसंवेदनज्ञान से ज्ञात हो, ऐसा है, शास्त्रज्ञान से नहीं। आहाहा! वह भगवान ही स्वयं वीतरागमूर्ति प्रभु अन्दर है। आहाहा! वह अरागी वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान से जानने में आवे, ऐसा है। बाकी किसी प्रकार से शास्त्र से या उसके जानने में आवे, ऐसा है नहीं। आहाहा! परन्तु अब यह कहाँ निवृत्ति? दुनिया के पाप के कारण निवृत्त कब है यह? कि यह और शास्त्र पढ़े और सुने। शास्त्र पढ़े और सुने, वह शुभभाव है, पुण्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इतना भी कहाँ है! चौबीस घण्टे में चार घण्टे निकालना।

भगवान के कहे हुए शास्त्र वाँचन (करना), उन्हें सुनना, सत्समागम (करना), ऐसा चौबीस घण्टे में चार घण्टे भी कहाँ है? बीस घण्टे तो पाप में जाते हैं सब पूरे।

मुमुक्षु : काल रात्रि में तो आपने ऐसा कहा, वाँचने से कुछ लाभ नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यहाँ तो अभी इतना पुण्य भी नहीं, वहाँ धर्म का ठिकाना कहाँ है? ऐसा कहते हैं। अभी पुण्य का ठिकाना भी नहीं। शास्त्र वाँचना, पढ़ना, कहना, अभ्यास करना, सुनना, सत्समागम करना, यह सब शुभभाव है। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि इस भाव से भी आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ जिनवरदेव परमेश्वर की दिव्यध्वनि, इन्द्र और गणधर सुनते हैं, उसमें से यह वाणी आयी है। समझ में आया? भगवान तो विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र में साक्षात् सीमन्धर भगवान त्रिलोकनाथ केवली मनुष्यरूप से विराजते हैं। सीमन्धर भगवान साक्षात् विहरमान तीर्थंकरदेव केवली, सौ इन्द्रों के पूजनीय, इन्द्र एकावतारी वहाँ सुनने जाते हैं। महाविदेह में अभी मनुष्यदेह में विराजते हैं। करोड़ पूर्व का आयुष्य है। एक पूर्व में सत्तर लाख छप्पन हजार करोड़ वर्ष होते हैं। ऐसे करोड़ पूर्व का भगवान का आयुष्य है। महाविदेह में विराजते हैं। पाँच सौ धनुष का देह है। दो हजार हाथ ऊँचे हैं। यह भी कहाँ खबर है? आहाहा! घर की स्त्री, पुत्र कितने लम्बे-ऊँचे और कितने मकान, उसकी सब खबरें। जादवजीभाई! नळिया कितने चढ़ाये हैं, यह खबर। पुराने इतने और नये इतने लाये थे। फूट गये थे। आहाहा! मार डाला है न!

यहाँ कहते हैं, यह तो वीतरागी विज्ञान से ज्ञात हो, ऐसा है। एक बात। **यद्यपि बाह्य सहकारीकारण अनशनादि बारह प्रकार के तप (से साधा जाता है,)...** बारह प्रकार के तप हैं न? अनशन, ऊनोदर, रसपरित्याग, वह बाह्य सहकारी (कारण) है, वह मूल वस्तु नहीं है। उन **तप से साधा जाता है,...** निमित्त से ऐसा कहते हैं। **तो भी निश्चयनय से निर्विकल्पवीतरागीचारित्र से ही आत्मा की सिद्धि है।** आहाहा! वह बारह प्रकार के तप से भी आत्मा की सिद्धि नहीं है, आत्मा को मोक्ष नहीं है। आहाहा! तब...?

मुमुक्षु : ग्यारह अंग में तो यह सब बात आ जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आ जाती है।

मुमुक्षु : तो क्यों नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो जानता है, वाँचन किया है इतना। बारह प्रकार के तप का निमित्त होता है। परन्तु उससे भिन्न पड़कर चारित्र वीतराग चाहिए, वह नहीं। है?

वीतरागचारित्र का शुद्धात्मा में विश्राम होना ही लक्षण है। आहाहा! क्या कहा यह? **निश्चयनय से निर्विकल्पवीतरागचारित्र से ही आत्मा की सिद्धि है।** आहाहा! यह बारह प्रकार के तप से नहीं। वह तो विकल्प है, निमित्त है। उससे भिन्न आत्मा रागरहित वीतरागी रमणता आनन्द में चारित्र, उससे सिद्धि है। आहाहा! ऐसी भारी बातें, बापू! समझ में आया? **निश्चयनय से निर्विकल्पवीतरागचारित्र से ही आत्मा की सिद्धि है।** देखो! बारह प्रकार के तप से नहीं, ऐसा कहते हैं। वे तो निमित्त हैं। आहाहा! वीतरागचारित्र से ही... आहाहा! आत्मा की मुक्ति है। पंच महाव्रत के विकल्प, वे भी चारित्र नहीं। आहाहा! वह तो आस्रव है। बहुत सूक्ष्म, भाई!

वीतरागमार्ग जिनेश्वर का मार्ग बहुत सूक्ष्म है, बापू! कहीं ऐसा दूसरा (नहीं है)। वीतराग के अतिरिक्त कहीं है नहीं। आहाहा! और यह मार्ग बहुत सूक्ष्म और अपूर्व है। आहाहा! आत्मा जानने में आवे, वह वीतराग संवेदनज्ञान से जानने में (आवे), ऐसा कहा और मुक्ति हो वह वीतरागचारित्र से होती है। आहाहा! यह लोगों को कठिन लगता है। यह व्यवहार करते हैं, चारित्र पालते हैं। कहाँ था—चारित्र था बापू तुमको? आहाहा! अन्तर वीतरागचारित्र हो, उसे पंच महाव्रतादि के विकल्प हों, उन्हें व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! बहुत अन्तर! लो!

जिस वीतरागचारित्र का शुद्धात्मा में विश्राम होना ही लक्षण है। आहाहा! क्या कहते हैं? यह पुण्य-पाप के विकल्प, पुण्य के विकल्प, वे भी थकान है, दुःख है। आहाहा! पाप के भाव तो दुःख के दुःख ही हैं; परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम शुभ हैं, वे भी दुःख हैं। उसमें से जिसे विश्राम लेना हो, दुःख में से निकलकर। आहाहा! उस दुःख में श्रम है, थकान है, कहते हैं। आहाहा! उसमें से जिसे विश्राम लेना हो, वह **शुद्धात्मा में विश्राम होना ही लक्षण है।** आहाहा! उस वीतरागचारित्र का लक्षण यह।

आहाहा! बात ही मानो किसी दिन सुनी न हो, ऐसा लगे। कब किया है कुछ? ढोंग अकेले पाप के किये मरकर। मरकर जाये फिर कहीं चला जाये। नहीं सगे, नहीं प्रिय, नहीं द्रव्य, नहीं क्षेत्र, नहीं काल, भाव सब बदल जाये। कहीं चले जाकर ढोर में, नरक में। आहाहा! बहुत भारी व्याख्या है, हों!

वीतरागचारित्र का... स्वरूप में रागरहित स्थिरता चारित्र का लक्षण क्या? कि **शुद्धात्मा में विश्राम होना ही लक्षण है।** भगवान वीतराग परमशुद्ध चैतन्य भगवान में विश्राम लेना—स्थिर होना, इसका नाम चारित्र है और उस चारित्र से मुक्ति है। आहाहा! कठिन बात, भाई! परमात्मप्रकाश में तो खुल्ला करके रखा है। दुनिया को जँचे, न जँचे, उसके घर में रहा। मार्ग यह है, बापू! सुख के पंथ में जाना हो तो। दु:ख के पंथ में तो दौड़ ही रहा है अनादि से। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो!

उसमें क्या कहा था? **वीतरागस्वसंवेदनज्ञान से ही जानने योग्य है...** और इस वीतरागचारित्र से आत्मा की सिद्धि है। तो वीतरागचारित्र का लक्षण क्या? यह शुद्धात्मा पवित्र अनन्त गुण का धाम भगवान, शुद्ध पवित्र आत्मा है, उसमें विश्राम लेना, उसमें स्थिर होना... आहाहा! उसमें चरना, उसमें रमना, उसमें आनन्द की मौज करके आनन्द का अनुभव करना, वह चारित्र है। आहाहा! यह तो वस्त्र छोड़े और कहीं पंच महाव्रत के परिणाम का भी ठिकाना न हो और हो गया चारित्र। बापू! यह मार्ग अलग, नाथ! तेरी मोक्ष की रीति के रास्ते प्रभु... आहाहा!

सो वीतरागचारित्र के (बिना) आगमज्ञान से तथा बाह्य तप से आत्मज्ञान की सिद्धि नहीं है। क्या कहा? इस **वीतरागचारित्र के (बिना) आगमज्ञान से तथा बाह्य तप से आत्मज्ञान की सिद्धि नहीं है।** वीतरागचारित्र की आगम ज्ञान से और बाह्य... कहा न?

मुमुक्षु : 'बिना शब्द रह गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिना रह गया है। हाँ, यह तो ठीक परन्तु वीतरागचारित्र का ऐसा कि... वीतरागचारित्र की आगम ज्ञान से और उससे प्राप्ति नहीं, ऐसा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो हुआ न अर्थ? परन्तु इसके बिना हो गया न अर्थ। वीतरागचारित्र की प्राप्ति, ऐसा इसका अर्थ हुआ न? **आगमज्ञान से तथा बाह्य तप से आत्मज्ञान की सिद्धि नहीं है।** यह शब्द पड़ा रहा है अन्दर। अन्दर है। '**निर्विकल्प-शुद्धात्मविश्रान्तिलक्षणवीतरागचारित्रसाध्यो योऽसौ परमार्थशब्द-वाच्यो निजशुद्धात्मा तत्र निरन्तरानुष्ठानाभावात् ताव ण मुंचइ तावन्तं**' बस, इसमें विशेष नहीं। यह तो फिर इन्होंने अर्थ किया है विशेष। टीका नहीं।

मूल तो वीतरागचारित्र रागरहित स्वरूप में स्थिरता बिना अकेले शास्त्रज्ञान से और बाह्य व्रतादि से या अपवास से आत्मज्ञान की सिद्धि नहीं है। ऐसा हो गया न यह तो? **वीतरागचारित्र के...** अर्थात् वीतरागचारित्र बिना, ऐसा। **आगमज्ञान से तथा बाह्य तप से आत्मज्ञान की सिद्धि नहीं है।** यह तो कहा। आहाहा! चारित्र में वीतरागचारित्र और राग। आहाहा! पंच महाव्रतादि, वह राग है; वह कहीं चारित्र नहीं। विकल्प है। उसे तो इसने—अज्ञानी ने चारित्र माना है। यहाँ तो वीतरागचारित्र का प्राप्त होना, वह आत्मज्ञान और बाह्यतप से सिद्धि नहीं है। उसके बिना अर्थात् आगमज्ञान से और बाह्य तप से कुछ मुक्ति नहीं होती। आहाहा!

जब तक निज शुद्धात्मतत्त्व के स्वरूप का आचरण नहीं है,... आहाहा! चैतन्य सूर्य प्रकाश भगवान आनन्द का नाथ, जिसके आनन्द की किरणें प्रगट हुए बिना... आहाहा! सूर्य की किरणें जैसे सफेद है, वैसे भगवान की परिणति आनन्द की शुद्ध और सफेद है—निर्मल है। आहाहा! ऐसे स्वरूप का आचरण नहीं, ऐसे निज शुद्धात्मतत्त्व के स्वरूप का, शुद्धतत्त्व का अन्तर आचरण नहीं। आहाहा! **तब तक कर्मों से नहीं छूट सकता।** वह बन्धन से नहीं छूट सकता। आहाहा! भाषा सब मानो कहीं की। आहाहा! जिनवरमार्ग सूक्ष्म है, भाई! अनन्त काल में इसने एक क्षण भी आत्मा क्या है, उसका ज्ञान किया नहीं। एक क्षण भी स्वरूप में स्थिर होना, ऐसा चारित्र किया नहीं। आहाहा!

यह निःसन्देह जानना... क्या कहा? वीतरागचारित्र से ही मुक्ति है। आगम ज्ञान और यह सब बाह्य चारित्र से कहीं मुक्ति है नहीं। आहाहा! **निःसन्देह जानना, जब तक परमतत्त्व को न जाने,...** जब तक चैतन्यमूर्ति भगवान निर्मलानन्द प्रभु अन्दर, उसे न जाने। आहाहा! उसकी **न श्रद्धा करे, न अनुभवे,...** आहाहा! **तब तक कर्मबन्ध**

से नहीं छूटता। वहाँ तक कर्म के बन्धन से छूटता नहीं, भटकना मिटता नहीं। आहाहा! भटकाव हो गया है अनन्त काल से। चार गति में भटकाव। आहाहा! लड़का भटकाऊ हो तो नहीं कहते? क्या भटकाव हो गया है यह? उसका पिता कहे न भटकाव पूरे दिन बाहर ही घूमा करता है। यहाँ भगवान तीन लोक के नाथ पिता—धर्मपिता (कहते हैं कि) अरे... भटकाऊ! चौरासी के अवतार में भटकते हुए तू कभी आत्मा में आया नहीं। आहाहा!

एक बार वे यहाँ आये थे न? मंगलभाई आये थे, जयसिंगभाई के पुत्र। जयसिंग उजमसिंह, अहमदाबादवाले। पैसेवाले। तब ६० लाख, ७० लाख थे। फिर अभी तो ८-१० करोड़ हैं। यहाँ आते। यहाँ आवे न जब। उन्हें मिल है न भावनगर में, इसलिए आवे। दर्शन करने आवे सब सेठिया-बेठिया। फिर उसमें एक बात निकली। कहा, भाई! कुछ निवृत्ति से वाँचन-बाँचन कोई है? उसने ऐसा जवाब दिया। महाराज! हमारे स्थान में हों तो आपको खबर पड़े कि निवृत्ति लेना या नहीं। आहाहा! पावर फट गया बेचारे को। तब ६०-७० लाख थे। पहले यहाँ आते (संवत्) १९९४ में। कहा, कुछ निवृत्ति और वाँचन कुछ शास्त्र का? महाराज! क्या करें? हमको ऐसी स्थिति खड़ी है कि ऐसी यदि आपको हो तो आप निवृत्ति नहीं ले सको। ऐई! सेठ! नहीं समझे? भाषा तो सादी है इसमें कुछ....

एक सेठ थे जयसिंगभाई मिलवाले। मिल है न यहाँ भावनगर? वहाँ आवे तो यहाँ आ जाये। दर्शन कर जाये। सेठिया सब करोड़पति आ जाये यहाँ। उसमें एक बार मुझसे सहज इतना कहा गया। कहा, मंगलभाई! कुछ वाँचन है निवृत्ति लेकर? हमारे स्थान में हों तो महाराज खबर पड़े कि निवृत्ति ली जा सकती है या नहीं? मार डाला, कहा यह। आहाहा! यह किसके पास बोलता है, इसकी खबर नहीं होती। पैसे की खुमारी चढ़ गयी। किसके पास बोलता है यह? किसे मैं कहता हूँ, इसकी खबर नहीं होती बेचारे को। मूढ़ जीव मूढ़। आहाहा! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : घर में समय नहीं मिलता? सोने के लिये समय नहीं मिलता? बीमार हो तो खाट पर पड़ने में समय नहीं मिलता?

मुमुक्षु : काम हो तो बाहर नहीं जाता?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! बाहर जाता है पन्द्रह दिन तक, महीने तक। परदेश में स्त्री, पुत्र, परिवार छोड़कर कमाने के लिये अफ्रीका में जाता है। निवृत्ति नहीं ले सकता? आहाहा! एक व्यक्ति ने ऐसा कहा, महाराज! यहाँ तो मरने का भी समय नहीं। अरे! मरेगा तब तो खड़ा रहेगा अन्दर। सुन न अब। पावर फट गया है उल्टा (अभिमान चढ़ गया है)। मरने का समय नहीं। बहुत अच्छी बात है, बापू! यह वहाँ पड़ा रहा है खाट में बारह-बारह महीने तक। आहाहा! देखो न! यह हार्ट का होता है न? डॉक्टर कहे, निकलना नहीं बाहर, खड़े होओगे खाट से। वहीं के वहीं करना सब। हाय... हाय... आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! ऐसे आत्मज्ञान बिना और आत्मा के अनुभव बिना कर्म से नहीं छूट सकता। आहाहा! **इससे यह निश्चय हुआ कि कर्मबन्ध से छूटने का कारण एक आत्मज्ञान ही है,...** आहाहा! देखा! भगवान चिदानन्द प्रभु 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' मेरा स्वरूप ही सिद्ध समान है। सिद्ध समान न हो तो सिद्ध होगा कहाँ से? सिद्धपना कहीं बाहर से आवे, ऐसा है? वह अन्दर का स्वभाव है, उसका ऐनलार्ज होता है सिद्ध। आहाहा! इसकी कहाँ खबर है? यहाँ कहते हैं, **कर्मबन्ध से छूटने का कारण एक आत्मज्ञान ही है,...** कहो, है? **और शास्त्र का ज्ञान भी आत्मज्ञान के लिये ही किया जाता है,...** देखो! इस आत्मज्ञान के लिये शास्त्रज्ञान किया जाता है कि उससे आत्मा क्या है, उसे जानने में आता है। आहाहा!

जैसे दीपक से वस्तु को देखकर... दीपक-दीपक। वस्तु को देखकर दीपक छोड़ दे। **दीपक से वस्तु को देखकर वस्तु को उठा लेते हैं, और दीपक को छोड़ देते हैं,...** आहाहा! दीपक से यह वस्तु दिखाई दी। ले ली। यह तुम्हारे क्या कहलाता है यह? बैटरी। ऐसे पड़ी हो वस्तु, ऐसा जरा करके ले लेवे, फिर बैटरी छोड़ दे। आहाहा! कठिन, भाई! ऐसी बातें! कैसी बातें होंगी ऐसी? पागल जैसी बात लगे पागलों को। आहाहा! तीन लोक का नाथ सर्वज्ञ वीतराग अकषाय करुणा से यह वाणी है। आहाहा!

उसी तरह शुद्धात्मतत्त्व के उपदेश करनेवाले... भाषा है न? **'शुद्धात्मतत्त्वप्रति-**

पादकशास्त्रेण' ऐसा है। **शुद्धात्मतत्त्व के उपदेश करनेवाले...** देखा! अध्यात्मशास्त्र। भाषा यहाँ ली है। देखा! समयसार, प्रवचनसार, यह परमात्मप्रकाश सब अध्यात्मशास्त्र हैं। आहाहा! ऐसे अध्यात्मशास्त्र, **उनसे शुद्धात्मतत्त्व को जानकर उस शुद्धात्मतत्त्व का अनुभव करना चाहिए...** आहाहा! समझ में आया? **और शास्त्र का विकल्प छोड़ना चाहिए।** आहाहा! वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान। वीतरागी विश्राम—चारित्र, यह करना चाहिए। सब कर-करके करने का तो यह है, कहते हैं। यह नहीं किया तो कुछ नहीं किया इसने। आहाहा! जन्म-मरण का चक्र... आहाहा!

श्रीमद् नहीं कहते?

'बहु पुण्य पुंज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला,
तो भी अरे भवचक्र का फेरा न कभी एक टला?

भव का चक्र नहीं टाला, क्या किया तूने, भाई! आहाहा! तेली का बैल ऐसा का ऐसा घूमा करे, चौबीस घण्टे। शाम को वह का वह घर और वह का वह तेली। आहाहा! चौरासी के अवतार में फिरा ही करता है। वह का वह अवतार और वह की वह देह, उस जाति की मिला ही करती है। अर र! आहाहा!

शास्त्र का विकल्प छोड़ना चाहिए। शास्त्र तो दीपक के समान हैं, तथा आत्मवस्तु रत्न के समान है। दीपक करके रत्न उठा ले। अच्छा कपड़ा हो कि... आहाहा! चारों ओर अग्नि लगी हो और अच्छा कपड़ा हो रेशमी या ऐसा, ऐसे करके उठा ले। इसी प्रकार भगवान दीपक-शास्त्र से आत्मा का रत्न देख ले, जान ले। जानना तो यह है। चैतन्यरत्न दीपक। उसमें अनन्त-अनन्त गुण के पासा पड़े हैं। आहाहा! भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है। सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का निधान है। ऐसे आत्मा को जान लेना। शास्त्र का विकल्प छोड़ देना। यह ८२ (गाथा) कही।

गाथा - ८३

अथ योऽसौ शास्त्रं पठन्नपि विकल्पं च मुञ्चति निश्चयेन देहस्थं शुद्धात्मानं न मन्यते स जडो भवतीति प्रतिपादयति –

२०६) सत्थु पढंतु वि होइ जडु जो ण हणेइ वियप्पु।
देहि वसंतु वि णिम्मलउ णवि मण्णइ परमप्पु।।८३।।

शास्त्रं पठन्नपि भवति जडः यः न हन्ति विकल्पम्।
देहे वसन्तमपि निर्मलं नैव मन्यते परमात्मानम्।।८३।।

सत्थु इत्यादि। सत्थु पढंतु वि शास्त्रं पठन्नपि होइ जडु स जडो भवति यः किं करोति। जो ण हणेइ वियप्पु यः कर्ता शास्त्राभ्यासफलभूतस्य रागादिविकल्परहितस्य निजशुद्धात्म-स्वभावस्य प्रतिपक्षभूतं मिथ्यात्वरागादिविकल्पं न हन्ति। न केवलं विकल्पं न हन्ति। देहि वसंतु वि देहे वसन्तमपि णिम्मलउ निर्मलं कर्ममलरहितं णवि मण्णइ नैव मन्यते न श्रद्धत्ते। कम्। परमप्पु निजपरमात्मानमिति। अत्रेदं व्याख्यानं ज्ञात्वा त्रिगुप्तसमाधिं कृत्वा च स्वयं भावनीयम्। यदा तु त्रिगुप्तिगुप्तसमाधिं कर्तुं नायाति तदा विषयकषायवञ्चनार्थं शुद्धात्मभावना-स्मरणदृढीकरणार्थं च बहिर्विषये व्यवहारज्ञानवृद्ध्यर्थं च परेषां कथनीयं किंतु तथापि परप्रतिपादनव्याजेन मुख्यवृत्त्या स्वकीयजीव एव संबोधनीयः। कथमिति चेत्। इदमनुपपन्नमिदं व्याख्यानं न भवति मदीयमनसि यदि समीचीनं न प्रतिभाति तर्हि त्वमेव स्वयं किं न भावयतीति तात्पर्यम्।।८३।।

आगे जो शास्त्र को पढ़ करके भी विकल्प को नहीं छोड़ता, और निश्चय से शुद्धात्मा को नहीं मानता जो कि शुद्धात्मदेव देहरूपी देवालय में मौजूद है, उसे न ध्यावता है, वह मूर्ख है, ऐसा कहते हैं –

शास्त्र पढ़े पर निर्विकल्प नहिं हो तो वह जड़ ही रहता।
क्योंकि देह में रहने वाले परमात्मा को नहिं जाना।।८३/२०६।।

अन्वयार्थ :– [यः] जो जीव [शास्त्रं] शास्त्र को [पढन्नपि] पढ़ता हुआ भी [विकल्पम्] विकल्प को न [हंति] नहीं दूर करता, (मेंटता) वह [जडो भवति] मूर्ख है, जो विकल्प नहीं मेंटता, वह [देहे] शरीर में [वसंतमपि] रहते हुए भी [निर्मलं परमात्मानम्] निर्मल परमात्मा को [नैव मन्यते] नहीं श्रद्धान में लाता।

भावार्थ :– शास्त्र के अभ्यास का तो फल यह है, कि रागादि विकल्पों को दूर करना, और निज शुद्धात्मा को ध्यावना। इसलिए इस व्याख्यान को जानकर तीन गुप्ति में अचल हो परमसमाधि में आरूढ़ होके निजस्वरूप का ध्यान करना। लेकिन जबतक तीन गुप्तियाँ न हों, परमसमाधि न आवे, (हो सके) तबतक विषय कषायों के हटाने के लिये शुद्धात्मस्मरण भावना के दृढीकरण हेतु परजीवों को धर्मोपदेश देना, उसमें भी पर के उपदेश के बहाने से मुख्यताकर अपना जीव ही को संबोधना। वह इस तरह है, कि पर को उपदेश देते अपने को समझावे। जो मार्ग दूसरों को छुड़ावे, वह आप कैसे करे। इससे मुख्य संबोधन अपना ही है। परजीवों को ऐसा ही उपदेश है, जो यह बात मेरे मन में अच्छी नहीं लगती, तो तुम को भी भली नहीं लगती होगी, तुम भी अपने मन में विचार करो।।८३।।

गाथा-८३ पर प्रवचन

आगे जो शास्त्र को पढ़ करके भी विकल्प को नहीं छोड़ता... आहाहा! पढ़-पढ़कर पढ़े परन्तु विकल्प छोड़कर अन्तर्मुख में प्रयत्न नहीं करता। समझ में आया? **और निश्चय से शुद्धात्मा को नहीं मानता...** ऐसा। शुद्ध पवित्र विकल्प राग से रहित भगवान आत्मा को वह जानता नहीं, मानता नहीं और शास्त्र के विकल्प छोड़ता नहीं। आहाहा! **जो कि शुद्धात्मदेव देहरूपी देवालय में मौजूद है,...** आहाहा! इस देहरूपी देवालय में भगवान अन्दर चिदानन्द प्रभु, सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग ने कहा, वह आत्मा... आहाहा! कैसा है वह आत्मा? **शुद्धात्मदेव...** आहाहा! **देहरूपी देवालय में मौजूद है,...** देहरूपी देवालय में मौजूद भगवान विराजमान साक्षात् चैतन्य शुद्धात्मा है। आहाहा! अरे! उसे ध्याता नहीं। आहाहा! उसका ध्यान करता नहीं और बाहर में और बाहर में रुककर घूमा करता है शास्त्र में, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **वह मूर्ख है,...** है? जड़ है, ऐसा है न पाठ में, पाठ में ऐसा है। **'जडु' 'जडु'** जड़ है। आहाहा! शास्त्र पढ़कर भी विकल्प छोड़ता नहीं, राग की वृत्ति छोड़ता नहीं, अन्तर्मुख जाता नहीं तो वह जड़ है। आहाहा! **वह मूर्ख है, ऐसा कहते हैं—**

२०६) सत्थु पढंतु वि होइ जडु जो ण हणेइ वियप्पु।
देहि वसंतु वि णिम्मलउ णवि मण्णइ परमप्पु।।८३।।

आहाहा! **अन्वयार्थः—जो जीव शास्त्र को पढ़ता हुआ भी विकल्प को नहीं दूर करता,...** आहाहा! करना तो यह है। राग से भिन्न पड़कर चैतन्य को जानना, यही करना है। वह करता नहीं। आहाहा! और शास्त्र पढ़कर बड़ी-बड़ी पण्डिताई की बातें करे। आहाहा! **नहीं दूर करता,... विकल्प को नहीं दूर करता,... 'जडो भवति' मूर्ख है, जो विकल्प नहीं मेंटता,...** आहाहा! क्यों? **वह शरीर में रहते हुए भी...** भगवान विराजता है परमात्मस्वरूप। आहाहा! करोड़पति या अरबोंपति कोई सेठ मिलने आया हो, उस समय आठ वर्ष का पुत्र आया हो तो उसके साथ खेल में चढ़ गया हो। वह उठकर चला गया। लड़का आया दो-चार वर्ष का। बहुत प्रिय इसलिए उसके सन्मुख देखकर समय व्यतीत किया। तो वह उठकर चला गया। इसी प्रकार भगवान अन्दर परमात्मस्वरूप महापुरुष विराजता है। आहाहा! उसके सन्मुख देखा नहीं और विकल्प और राग के सन्मुख देखकर, स्त्री-पुत्र के सन्मुख देखकर मर गया। वह पड़ा रहा अन्दर। समझ में आया? यह विशेष बात करेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, मागसर कृष्ण ६, रविवार
दिनांक-१२-१२-१९७६, गाथा - ८३ - ८४, प्रवचन-१५७

परमात्मप्रकाश। इस शास्त्र का नाम परमात्मप्रकाश है। इसकी ८३ गाथा, फिर से शब्दार्थ।

अन्वयार्थः—जो जीव शास्त्र को पढ़ता हुआ भी विकल्प को नहीं दूर करता, वह मूर्ख है, जो विकल्प नहीं मेंटता,... सूक्ष्म बात है, भगवान! धर्म चीज़ ऐसी है, अनन्त काल से उसने किया नहीं। संसार का रळवा, कमाना, विषय, स्त्री, परिवार में रहना, वह सब पापभाव है, अधोगति का कारण है।

मुमुक्षु : धन्धा-व्यापार पापभाव?

पूज्य गुरुदेवश्री : धन्धा-व्यापार का भाव पापभाव है।

मुमुक्षु : लड़के पलते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़के धूल पलते हैं। अनादि से यह भाव तो करता आया है। उसके अतिरिक्त अब यहाँ तो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति में आया, शास्त्र के श्रवण-वाँचन में आया तो वह भी पुण्यभाव है। वह भी परिभ्रमण के कारण में जाता है। आहाहा! चौरासी के अवतार। अनन्त अवतार किये चौरासी के। उस पुण्य के भाव से भी परिभ्रमण है। आहाहा! कठिन बात है।

तीसरी बात। अब शास्त्र पढ़ता है, शास्त्र। धीरुभाई! सूक्ष्म बात है, भगवान! मार्ग धर्म वीतराग का, जिनवर त्रिलोकनाथ जिनवरदेव कहते हैं, वह धर्म अलौकिक है। वह धर्म इसने एक सेकेण्ड भी कभी नहीं किया। आहाहा! यहाँ कहते हैं परमात्मा, कि संसार के पाप के परिणाम जो करता है २० से २२ घण्टे उसमें रुका है। एकाध घण्टा मिले कदाचित् सुनने का, तो वह पुण्य-शुभभाव हो कदाचित्।

यहाँ तो इससे विशेष कहते हैं कि शास्त्र पढ़े, वह तो कहाँ निवृत्ति है इसे बेचारे को। इसकी संसार की बहियों के कारण। परन्तु शास्त्र पढ़े, वीतराग के कहे हुए। सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग त्रिलोकनाथ के कहे हुए शास्त्र पढ़े, तो भी वह राग है। धीरुभाई!

सूक्ष्म बात है। आहाहा! इसने धर्म किया (तो) नहीं, परन्तु सुना (भी) नहीं। धर्म कैसे होता है, ऐसा का ऐसा दुनिया के मिथ्या बड़प्पन में। उसमें कुछ पाँच-पच्चीस लाख धूल मिले तो मानो हम बड़े हो गये और कुछ सफल हुए। ऐसा का ऐसा मर गया है अनादि काल से। समझ में आया?

यहाँ तो शास्त्र भगवान त्रिलोकनाथ जिनवरदेव ऐसा कहते हैं कि कदाचित् दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव में भी आया, व्रत, तप आदि, वह भी एक शुभभाव है, पुण्य है। वह भी संसार में प्रवेश होने का भाव है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! इस जगत की हूंफ बाहर की कुछ... आहाहा! सेठ! लो! आहाहा! यहाँ तो वहाँ तक कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही, प्रभु! कहते हैं कि पुण्य के, पाप के परिणाम कदाचित् घटाये। पुण्य के परिणाम भी कम किये और शास्त्र के पठन में आया तो भी वह विकल्प है, एक राग है। आहाहा! यह कहते हैं, देखो!

शास्त्र को पढ़ता हुआ भी विकल्प को नहीं दूर करता,... आहाहा! सूक्ष्म बात, भगवान! यह शास्त्र पढ़ने का जो विकल्प—राग है, उसे छोड़ता नहीं और अन्तर आत्मा के ध्यान में आता नहीं, वे सब मूर्ख हैं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! जड़ है, जड़। धीरुभाई! दो-पाँच करोड़ रुपये मिले हों, स्त्री, पुत्र कुछ ठीक हो, व्यापार ठीक चलता हो, लड़के सात-आठ हों, एक-एक, दो-दो लाख, पाँच-पाँच लाख कमाते हों तो मानो हम... दुःख के पर्वत में सिर फोड़ा है। आहाहा! अरेरे! इसे खबर नहीं होती। चौरासी के अवतार करते-करते ऐसे भाव पाप के (किये)। अरे! उसे छोड़कर कदाचित् पुण्य के किये, कहते हैं। आहाहा! वह भी संसार में भव में अवतार में प्रवेश करे, वह है।

यहाँ तो अब यह बात ली है। यहाँ तो उत्कृष्ट बात (की है) कि कदाचित् शास्त्र भगवान ने कहे हुए पढ़ने में आये इसे। आहाहा! यह तो निवृत्ति भी कहाँ है? आहाहा! परन्तु वह वहाँ आया शास्त्र पढ़ने में, तथापि अन्दर आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु है, उसे विकल्परहित करके आनन्द का अनुभव न करे, तब तक शास्त्र का पठन करनेवाला भी मूर्ख है, ऐसा कहते हैं। ऐई! धीरुभाई! यहाँ तो ऐसी बात है, बापू! यह तो वीतरागमार्ग है। जिसे सौ इन्द्र पूजे, तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव महाविदेह में विराजते हैं। अभी

विराजते हैं सीमन्धर (परमात्मा)। महावीर भगवान आदि तो मोक्ष पधारे, वे तो णमो सिद्धाणं में गये। परन्तु महाविदेह में भगवान अभी विराजते हैं। णमो अरिहंताणं साक्षात् प्रभु विराजते हैं। आहाहा! करोड़ पूर्व का आयुष्य है, पाँच सौ धनुष का देह, दो हजार हाथ ऊँचे हैं भगवान। महाविदेह में विराजते हैं। वहाँ पहले यह कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में गये थे। आहाहा! वहाँ आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर सब शास्त्र बनाये। समयसार (आदि)। उसकी यह सब छाप है परमात्मप्रकाश में। आहाहा! यह कहते हैं, देखो! आहाहा! जिसे धर्म हो तब उसे जन्म-मरण मिटे। चौरासी के अवतार में फेरा कर-करके मर गया है यह। मानता है कि हम सुखी हैं। समझ में आया?

यहाँ तो परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ऐसा कहते हैं कि शास्त्र पढ़ने तक आया परन्तु वह विकल्प छोड़ता नहीं, उस ओर का राग और स्वरूप की अन्दर में दृष्टि करता नहीं। आहाहा! ऐसी बातें कठिन, भाई! अभी तो बेचारे को सुनने को मिलती नहीं। वे सब बेचारे हैं, हों! भिखारी। आहाहा! अरे रे! प्रभु! तू सुन तो सही एक बार।

कहते हैं, **नहीं दूर करता,...** राग को छोड़ता नहीं। अन्दर विकल्प छोड़कर अन्तर आत्मा के स्वरूप का ध्यान (करता नहीं)। अतीन्द्रिय आनन्द भगवान है, सर्वज्ञ परमेश्वर ने प्रगट किया है और यह शक्तिरूप से अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ भगवान आत्मा है। आहाहा! उस अतीन्द्रिय आनन्द को स्पर्शकर विकल्प छोड़ता नहीं। आहाहा! कहो, देवीलालजी! ऐसी बातें हैं, बापू! जगत से अलग है। आहाहा! मार्ग अलग, बापू! प्रभु! जन्म-मरण रहित होने का मार्ग। जन्म-मरण तो करके मर गया है। आहाहा! अनन्त काल में।

यहाँ यह कहते हैं कि **विकल्प को नहीं दूर करता,...** आत्मा आनन्द और ज्ञान का पुंज है। वह क्या होगा? आत्मा को भगवान जिनवरदेव ने ऐसा देखा और कहा कि वह तो असंख्य प्रदेशी का पुंज है और अनन्तगुण का पिण्ड है। कहाँ होगा किसे खबर? आहाहा! समझ में आया? यह देह मिट्टी है, यह तो धूल है। यह तो पुद्गल है, अजीव है, मिट्टी। ऐसा नहीं कहते? लोक में बोलते हैं परन्तु भान कहाँ है? कुछ कील-कील लगे। लोहा लगे तो कहे मेरी मिट्टी पकाऊ है। पानी छूने देना नहीं। कहते हैं धीरुभाई?

मेरी मिट्टी पकाऊ है। लोहा लगा हो न? पानी नहीं छूने देना। मेरी मिट्टी। मिट्टी है यह। बोले सही। भान कुछ नहीं होता। यह पकाऊ है, इसलिए पानी नहीं छूने देना। आहाहा! अरे! प्रभु! यह क्या है वह यह? यह तो मिट्टी है, धूल है, श्मशान की राख है। उससे तो भिन्न परन्तु अन्दर कर्म हैं आठ जड़, उससे भी भिन्न। उसके पाप के परिणाम होते हैं, उनसे भिन्न। इसे दया, दान के, व्रत के, तप के परिणाम—शुभ विकल्प होते हैं, उनसे भिन्न। आहाहा! यहाँ तो शास्त्र के पठन से उठता जो विकल्प—राग, उससे भगवान आत्मा अन्दर भिन्न है। आहाहा! कैसे माने? दो बीड़ी-सिगरेट ठीक से पीवे, तब पाखाने में दस्त उतरे, ऐसे तो भाईसाहेब के लक्षण। उसे ऐसा कहना कि आत्मा ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : कब ऐसा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी ऐसा है। यह कहते हैं, देखो न! '**जडो भवंति**' आहाहा! क्या परन्तु वीतराग की वाणी! शास्त्र पढ़ता है निवृत्ति लेकर परन्तु उसमें भी वह विकल्प है, उस ओर का, राग है, उसे छोड़कर अन्दर आत्मा आनन्दस्वरूप है। आहाहा! उसकी दृष्टि करता नहीं। वह शुद्ध चैतन्यघन भगवान है, उसका सत्कार-स्वीकार करता नहीं। आनन्दभाई! यह ऐसी बातें हैं। पैसा-बैसा तो कहीं रह गयी धूल। आहाहा!

यहाँ तो शास्त्र के पढ़ने का राग भी दुःखरूप है। आहाहा! उसे भगवान कहते हैं, अन्दर विकल्प-राग छोड़ता नहीं और स्व शुद्ध चैतन्यघन की ओर आता नहीं। ऐसी बात है। आहाहा! त्रिलोकनाथ जिनवदेव को एक भवतारी इन्द्र और गणधर सुनते हैं। वर्तमान भगवान विराजते हैं वहाँ। यहाँ थे भगवान, तब भी इन्द्र जो स्वर्ग के ३२ लाख विमान का स्वामी इन्द्र एक भव में मोक्ष जानेवाला है, वह भी जिनकी वाणी सुनते थे। वह वाणी कैसी होगी! लो, यह दया पालन करो, यह तो कुम्हार भी कहता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! तेरी दया पालन कर अब। आहाहा! कब तेरी दया पले? कि तू आनन्द का नाथ पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन है, उसका जीवत्व... आहाहा! वह जीवत्व का आया—जीवत्वशक्ति। सवेरे आया था। आत्मा में जीवत्व नाम की एक शक्ति—गुण है। ४७ शक्ति है न? पहली शक्ति है। क्योंकि वहाँ '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**' (समयसार) दूसरी गाथा शुरु की न? तो वहाँ से जीवशक्ति

निकाली। आहाहा! इस छाल में रहा हुआ शकरकन्द, उसे बाफकर खाता है। वह क्या कहलाता है शिवरात्रि में? यह लोग करते हैं न अन्यमति? माघ कृष्ण की आती है न शिवरात्रि? फराळ-फराळ खाते हैं। आहाहा! यह फराळ तो यहाँ है, कहते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु। आहाहा! उसे शास्त्र के पठन का विकल्प—राग भी छोड़ दे। आहाहा! ऐसी बातें हैं। कहीं सुनने को मिले ऐसी नहीं अभी तो। आहाहा! यहाँ तो हम जाने हुए, ८७ वर्ष हुए। ८० और ७। और यहाँ तो दुकान के ऊपर भी...

मुमुक्षु : आप सुनाने....

पूज्य गुरुदेवश्री : ओण तो अब सब रखा। पोर की बात पोर रखो। यह जन्मजयन्ति का ८८वाँ यहाँ हुआ न, जामनगर होनेवाला है। ८८वाँ लगता है न? वैशाख शुक्ल २। इस मिट्टी को, शरीर को। आत्मा तो अनादि-अनन्त है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं... आहाहा! भगवान विराजते हैं अन्दर में, उसे तूने स्पर्शा नहीं, प्रभु! ऐसा स्थित है नजदीक अन्दर। आहाहा! और तू शास्त्र के पठन के विकल्प में रुक गया परन्तु यह अन्दर है, उसे तो देखा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

कल दृष्टान्त नहीं दिया था? बड़ा व्यक्ति कोई आया हो करोड़पति, अरबपति मिलने (आया हो) अब वह मिलने के मौके से बैठा और उसमें दो-चार वर्ष का लड़का छोटी उम्र का आया, अब उसके साथ बातों में लग गया पन्द्रह मिनिट। वह बड़ा व्यक्ति उठकर चला गया। वह लड़का आया दो-तीन वर्ष का रूपवान हो और दो-चार वर्ष का हो। उसके साथ बातें करे। परन्तु वह आया है, उसके सन्मुख तो देख। इसी प्रकार यहाँ परमात्मा ऐसा कहते हैं, जिनवरदेव त्रिलोकनाथ इन्द्र और गणधरों की सभा के बीच ऐसा कहते थे। आहाहा!

मुमुक्षु : क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह। कि अन्दर आनन्द का नाथ भगवान है, उसके सन्मुख तूने देखा नहीं। तू रुक गया राग और विकल्प में। लड़के के खेल में रुक गया, बापू! आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! हीराभाई नहीं आये? नहीं आये होंगे। मुम्बई गये हैं। आहाहा!

क्या कहा? **वह शरीर में रहते हुए भी...** आहाहा! अतीन्द्रिय अमृत का सागर भगवान अन्दर विराजता है। अरे! किसे खबर कहाँ होगा? एक-दो-पाँच-दस लाख मिले जहाँ, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। लापसी का आंधण रखो, आज पैदा हुए हैं पचास हजार, लाख। धूल भी नहीं। जहर है। उसकी मिठास, वह जहर है। बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! तू मनुष्य हुआ, परन्तु तुझे मनुष्य में क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **शरीर में रहते हुए भी निर्मल परमात्मा को नहीं श्रद्धान में लाता।** आहाहा! उसका इसे विश्वास नहीं आता। क्योंकि वस्तु है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! और इस जगत के पदार्थों का विश्वास। आहाहा! यह बुखार का क्या कहलाता है वह? कुनेन-कुनेन लेगा तो मिट जायेगा, ऐसा विश्वास है। यह रोटी खायेगा तो क्षुधा मिट जायेगी, ऐसा विश्वास, दवा लेगा तो रोग मिटेगा। आहाहा! अरे! भगवान! वहाँ इसे विश्वास। परन्तु यहाँ अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ अन्दर विराजता है, प्रभु! आत्मतत्त्व है वह वस्तु है। आहाहा! अरे! इसे कहाँ... एक समय की वर्तमान दशा की क्रीड़ा में यह वर्तमान पर्याय और वर्तमान क्षेत्र जितने में से पर्याय उठे, उसमें इसकी सब रमण अनादि की। परन्तु इस **शरीर में रहते हुए भी निर्मल परमात्मा को नहीं श्रद्धान में लाता।** आहाहा!

भावार्थ :— शास्त्र के अभ्यास का तो फल यह है,... भाषा देखो! आहाहा! यह सूक्ष्म बात भगवान! मार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! अभी तो कहीं सुनने को मिले, ऐसा नहीं। दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, यह बातें वहाँ सब। अकेली राग की बातें और उसमें धर्म माने। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि शास्त्र को पढ़ने का, अभ्यास का फल **रागादि विकल्पों को दूर करना,...** आहाहा! नारियल है न, नारियल? उसके ऊपर की छाल, वह कहीं नारियल नहीं। तथा काचली है, वह कहीं नारियल नहीं। तथा काँचली की ओर की लाल छाल जो महिलाओं खोपरापाक बनावे तब घिसकर निकाल देती हैं न लाल छाल? लाल छाल, वह कहीं खोपरा नहीं है। उस लाल छाल के पीछे सफेद मीठा पिण्ड पड़ा है, सेर-डेढ़ सेर का, वह नारियल है, वह श्रीफल है। आहाहा!

इसी प्रकार यह शरीर है वह छाल है। नारियल में जैसे ऊपर की छाल होती है न? पहले होती है। अब तो वह हो गयी मशीन। नहीं तो चक्की में करते और छाल से निकालते आटा। ऐसा था पहले। अब तो मशीन हो गयी जहाँ-तहाँ। नहीं तो आटा दले और फिर निकाले छाल हो वह। वह यह छाल है। अन्दर जैसे काँचली है, वैसे अन्दर आठ कर्म, वह काँचली जड़ अन्दर धूल है। जैसे वह लाल छाल है, वैसे यह पुण्य-पाप के शुभ-अशुभ के भाव, वह लाल छाल है। उस लाल छाल के पीछे श्वेत / सफेद गोला है वह नारियल है। इसी प्रकार यहाँ पुण्य-पाप की छाल के पीछे भगवान है, वह आनन्द का कन्द गोला है। यह तो दृष्टान्त में तो बैठे ऐसा है या नहीं? अरे रे! अरे! इसकी जाति को जाना नहीं। यहाँ तो शास्त्र पठन तक आया तो भी कहते हैं, वह विकल्प है, राग है, बापू! आहाहा!

कहते हैं, **शास्त्र के अभ्यास का तो फल यह है कि रागादि विकल्प को दूर करना और निज शुद्धात्मा को ध्यावना।** आहाहा! यह राग है, उसे छोड़ना और शुद्ध आत्मा का ध्यान करना। आहाहा! ध्यान क्या और शुद्धात्मा क्या? कभी ... आहाहा! भटक मरा है अनादि काल से चौरासी के अवतार। आहाहा! कौवे के, कुत्त के, नरक के अनन्त-अनन्त भव (किये)। अनादि का है न, यह कहाँ नया है? आदि-आदि है कहीं? भूतकाल में कभी नहीं था यह? सदा है। कहाँ था? भवभ्रमण में। आहाहा! एक भव छोड़कर दूसरा, दूसरा छोड़कर तीसरा, तीसरा छोड़कर... आहाहा! ऐसे अनन्त भवभ्रमण छेदने का उपाय... आहाहा! **रागादि विकल्प को दूर करना और निज शुद्धात्मा को ध्यावना।** अस्ति-नास्ति की है। आहाहा! सूक्ष्म पड़े, भाई! यह चलता नहीं न! एक तो निवृत्त नहीं जगत के धन्धे के पाप के कारण। पैसा, स्त्री और पुत्र सम्हालना और प्रसन्न रखना। उसमें से निवृत्त होता नहीं। उससे निवृत्त हो तो सुनने का मिले, वह सच्चा मिलता नहीं। यह करो और यह करो और यह करो। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन न! आहाहा! यहाँ तो जन्म-मरण रहित की बातें हैं, बापू! यह देव का भव भी दुःख का है। यह सेठिया करोड़पति, अरबोंपति दुखियाँ हैं सब बेचारे। भिखारी माँगते हैं कि लाओ, पैसा लाओ, स्त्री लाओ, यह

लाओ... यह लाओ। अन्तर आत्मा में आनन्द-लक्ष्मी पड़ी है, उसे तो देखता नहीं। आहाहा! उसे लेना चाहता नहीं, वह सब भिखारी हैं, अरबोंपति रंक हैं। आहाहा! शास्त्र में उसे भगवान ने वरांका कहा है। वरांका अर्थात् भिखारी। गरीब मनुष्य है। धीरुभाई! लो, इन सब पैसेवालों को यहाँ गरीब कहते हैं। धूल। आत्मा के आनन्द का भान नहीं। कहो, समझ में आया? अनन्त आनन्द-लक्ष्मी पड़ी है अन्दर, ध्रुवतत्त्व है। एक समय की दशा पलटती के पीछे पूरा ध्रुवतत्त्व है... आहाहा! वस्तु आत्मतत्त्व। ऐसा देह में रहा होने पर भी सन्मुख देखता नहीं, कहते हैं। आहाहा! यह भगवान से मिलने जाता नहीं। वस्तु पड़ी है अन्दर। आहाहा! ऐसी बातें करे।

निज शुद्धात्मा को ध्यावना। आहाहा! इसका नाम धर्म। निज शुद्धात्मा को अन्दर ध्यान में विषय बनाना। आहाहा! निर्मल वीतरागी पर्याय में नित्य आनन्द के नाथ को विषय में लेना, इसका नाम धर्म है, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। अभी तो सम्यग्दर्शन— धर्म की पहली सीढ़ी। आहाहा! समझ में आया? उसका ज्ञान तो करे। आहाहा! अरे! अनन्त काल में भटकते हुए... आहाहा! दुःखी... दुःखी... दुःखी। यह सेठिया दुःखी। 'नवी सो हि देवता देवलो....' यह नहीं आता? 'नवी सो हि सेठ सेनापति' वे सब दुःखी हैं बेचारे। आत्मा के आनन्द के स्वाद बिना, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद बिना (दुःखी है)। उसका स्वाद। आहाहा! यह दाल, भात, सब्जी, मैसूर या उसका स्वाद जीव को नहीं है। वह तो जड़ है। इसी प्रकार स्त्री का शरीर है, उसका भोग आत्मा को नहीं है। वह तो मिट्टी है। परन्तु उस पर लक्ष्य जाकर राग करता है कि 'ठीक है', उस राग का अनुभव है अज्ञानी को। आहाहा! उसे उस राग का स्वाद है। अब उसे छोड़कर यहाँ कहते हैं, राग का स्वाद छोड़कर अरागी भगवान है न अन्दर? अरे! ऐसी बातें अब। सुनने को घर से न आये हों और कहे, क्या सुना? कुछ कहते थे ऐसा है और वैसा है और वैसा है। आत्मा ऐसा है, ऐसा कहते थे। आहाहा! भगवान! तूने जिनवरदेव की वार्ता सुनी नहीं। समझ में आया? आहाहा!

शुद्धात्मा को ध्यावना। चैतन्यप्रभु अन्दर आनन्द का नाथ सच्चिदानन्दस्वरूप। सत् अर्थात् है, चिद् अर्थात् ज्ञान अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है प्रभु। आहाहा! उसे तेरे

वर्तमान ज्ञान की पर्याय का विषय बिना। जिस पर्याय को तूने राग और पर का विषय बनाया है, वह तो मिथ्या विषय है। आहाहा! ध्येय-ध्येय। आहाहा! अन्तर आत्मा आनन्दस्वरूप को सुनकर उसे ध्येय बना। करने का यह है। बाकी सब बातें हैं।

मुमुक्षु : बाबा हो तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाबा ही है यह। यह तो नहीं कहा था? वह अपना भाई नहीं अमृतलालभाई, धनबाद। वह कहे, बाबा होवे तो हो। मैंने कहा, बाबा ही है। कब तुम पर में गये हो किसी दिन? शरीर में गया है आत्मा कभी? शरीरवाला हुआ है? माना है कि शरीरवाला, स्त्रीवाला, पुत्रवाला, पैसावाला। कितने वाळा! एक वाळा निकले तो मर जाता है और यह तो कितने वाळा लगे हैं इसे। आहाहा!

एक वाळा निकलता था वह? खराब पानी हो और पैर में निकलता है। शोर मचाये शोर। इस बेचारे को कितने वाळा चिपके हैं। स्त्रीवाला, पुत्रवाला, इज्जतवाला, लड़केवाला, पठनवाला और पण्डित हूँ। जानपनेवाला बाहर का। आहाहा! भगवान! जन्म-मरण रहित का मार्ग बहुत कठिन है, भाई! यह तूने सुना नहीं और तूने गरज नहीं की। दुनिया के पाप के कारण पुण्य करने को भी निवृत्त नहीं है। वहाँ और यह सुनने को निवृत्त हो, तब इसे सुनने का मिले, वह भी किस प्रकार का मिला था। ऐसा सुनने को मिले, तब ऐसा कहे कि सूक्ष्म-सूक्ष्म, यह निश्चय की बातें। ऐसा कहकर बेचारे ने निकाल डाला। आहाहा!

यहाँ तो यह कहते हैं, **इसलिए इस व्याख्यान को जानकर तीन गुप्ति में अचल हो परमसमाधि में आरूढ़ होके...** आहाहा! **निजस्वरूप का ध्यान करना।** आहाहा! निजस्वरूप। भगवान नहीं, भगवान तो भगवान में रहे। भगवान का ध्यान करने जायेगा तो राग होगा। आहाहा! पूर्ण वीतराग न हो, तब तक भाव आवे, परन्तु वह भाव है, वह राग है। आहाहा! भगवान की भक्ति आदि का भाव राग-पुण्य है। यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! एक बार तू, अन्दर आत्मा जो रागरहित है, वह भव और भव के भाव बिना की चीज़ अन्दर है। आहाहा! परन्तु यह बाहर की चमक ऐसी लगे न! वह श्मशान में हड्डियाँ होती हैं न, उनमें फासफूस (चमक) होती है हड्डियों में, ऐसी चकचकाहट

होती है। लड़के देखने जाते थे। लोग कहे, वह भूत है, वहाँ जाना नहीं, ऐसा कहे। श्मशाम में जले हुए की हड्डियाँ पड़ी हों न, उसमें फासफूस होती है। क्या कहलाती है वह? फोसफरस। अर्थात् ऐसे चक-चक हो। इसलिए लड़के छोटी उम्र के देखते जाते थे न हम छोटी दस वर्ष की उम्र की बात है। वह वहाँ वह भूतड़ा है। वह चकचक हो न। भूत कुछ नहीं, हड्डियों में वह फोसफरस है। यह सब हड्डियों की फोसफरस है सब। शरीर, वाणी, पैसा, बँगला और मकान... आहाहा! आहाहा!

यहाँ भगवान विराजता है न अन्दर, प्रभु! तू है या नहीं? है तो कितने काल का है? कितना काल रहे ऐसा है? वह तो त्रिकाल है। एक समयमात्र रहे, ऐसा है वह? आहाहा! वह तो त्रिकाल वस्तु है भगवान आत्मा तो अनादि है। नया हुआ नहीं। उसकी आदि नहीं। अनादि है, अनन्त काल रहेगा। भटकता अज्ञान में भटकता रहेगा। और भान करेगा तो परिभ्रमण मिटकर मोक्ष में जायेगा। वहाँ भी रहेगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं।

निजस्वरूप का ध्यान करना। देखा! धीरुभाई! यहाँ तो यह बात है, बापू! दुनिया को तो जानते हैं न हम सबको। नहीं जानी पूरी दुनिया को? यहाँ तो दुकान पर भी मैं तो शास्त्र पढ़ता था छोटी उम्र से। (संवत्) १९६५ के वर्ष की बात है। ६५ के वर्ष। कितने वर्ष? ७० में तो दीक्षा ली है। यह ६४वाँ दीक्षा का चलता है शरीर को। और उससे पहले दुकान, है न पालेज में दुकान है न? भरूच और वड़ोदरा के बीच पालेज है, वहाँ पिताजी की दुकान। वहाँ नौ वर्ष रहा। दुकान चलायी थी मैंने पाँच वर्ष। १७ से २२ वर्ष। १७ वर्ष की उम्र से २२ वर्ष की उम्र तक पाँच वर्ष। पालेज में दुकान है। अभी बड़ी दुकान है। तीन लाख की आमदनी है। एक वर्ष की तीन लाख की आमदनी है अभी। वह दुकान पिताजी की थी। वहाँ नौ वर्ष रहा। वहाँ मैं तो शास्त्र पढ़ता था। पूर्व के संस्कार थे न! दुकान का धन्धा चले थोड़ा, फिर निवृत्त होकर शास्त्र (पढ़ूँ)। स्थानकवासी में थे न तब। पिताजी स्थानकवासी थे। वहाँ जन्म हो गया। वह शास्त्र पढ़ते सब। उत्तराध्ययन, आचारांग, दुकान पर पढ़े हुए छोटी उम्र में। परन्तु यह चीज़ दूसरी। आहाहा!

(संवत्) १९७८ में समयसार हाथ आया। ७८। आया न अन्दर से... ओहोहो! मैंने तो सेठिया को कहा। सेठिया था दामनगर, दामोदर सेठ थे। तब दस लाख रुपये। ६० वर्ष पहले, हों! दस लाख! अभी तो पच्चीस गुणा हो गया। उसे कहा, सेठ! इस शरीर रहित होना हो और भवभ्रमण रहित होना हो तो यह शास्त्र है। धीरुभाई! मोक्ष के लिये शरीररहित होना हो तो यह समयसार है। तब तो हाँ करते थे। उसमें (स्थानकवासी में) थे न! वह जहाँ छूटा, वहाँ भड़क गये। आहाहा! यह मार्ग अलग, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा!

यहाँ तो वहाँ तक कहा कि तेरा आत्मा विराजता है न, प्रभु! यहाँ है या नहीं? वस्तु है या नहीं? वह तत्त्व है या नहीं? वह पदार्थ है या नहीं? तो वस्तु है तो अनन्तगुण बसे हुए हैं अन्दर। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द ज्ञानादि अनन्तगुण का वास उसमें है, इसलिए उसे वस्तु कहते हैं। उस वस्तु में बस। यह वास्तु करते हैं या नहीं? धूल का, पाँच-पचास लाख का मकान हो। बँगले में आज वास्तु किया है और दो हजार खर्च किये, पाँच हजार खर्च किये। अमलदार अधिकारियों को बुलाया हो सबको प्रसन्न करने, सबको जिमाने। अब वह वास्तु तो पाप का है। यहाँ वस्तु भगवान आनन्द का नाथ प्रभु है, वहाँ जा न! वहाँ वास्तु कर न! वहाँ बस न! ध्यान करने का अर्थ यह, वहाँ बस। अरे! ऐसी बातें। बात-बात में अन्तर। आहाहा!

निजस्वरूप का ध्यान करना। लेकिन जबतक तीन गुप्तियाँ न हो, परमसमाधि न आवे,... आहाहा! अन्दर में मन से, वचन से, विकल्प से छूटकर स्थिरता का ध्यान न हो... आहाहा! **तबतक विषय कषायों के हटाने के लिये...** परसन्मुख के झुकाव को, विषय और कषाय के भावों को छोड़ने के लिये... आहाहा! **परजीवों को धर्मोपदेश देना,...** वह मार्ग यह है, ऐसा (धर्मोपदेश) देना, वह अपने को सम्बोधन करे और पर को सम्बोधन करे। आहाहा! ऐसे शास्त्र रखे हैं, उन्हें पढ़ने का समय नहीं मिलता। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पहले पढ़े तो खबर पड़े न? हमारे मास्टर ऐसे थे, धीरुभाई! परन्तु वे हमारे मास्टर थे विद्यालय में तब। १२-१३ वर्ष की उम्र की बात है,

यह तो ७४ वर्ष पहले की बात है। वह मास्टर ऐसे थे हमारे (वे कहे), वाँचकर आना तुम। प्रायः उन्हें स्त्री नहीं थी, इसलिए हम जो लड़के होशियार हों न, क्या कहलाता है वह क्लास में? मुख्य दो-चार लड़कों को घर में बुलावे और स्वयं पकावे। और उसके साथ बातें करते जाये। स्त्री नहीं थी, कणबीवाड में घर था। यह तो ७४ वर्ष पहले की बात है। (हमारी) १३ वर्ष की उम्र की (बात है)। इसलिए कहे, वाँचकर आये हो? हाँ, भाई वाँचकर आये हैं मास्टर। अब सुनो हमारी बात। तुम वाँचकर समझे क्या और हम क्या कहते हैं, इसका मिलान करो। धीरुभाई! प्रायः नरोत्तम मास्टर थे। वे पकाते हों और पकाते-पकाते लड़के होशियार हो न, दो-चार को बुलावे। पढ़कर आये हो? तो कहे, हाँ। तो सुनो अब। अब इस पाठ का अर्थ सुनो। ओय.. बापू! यह तो अपने कुछ अर्थ करते थे और यह अर्थ कुछ दूसरा है। ऐसा एक बार वाँचा हो, सुना हो तो फिर दूसरा क्या कहते हैं, उसकी तुलना करे। उसमें बेचारे को समय भी कहाँ है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जब तक ध्यान में स्थिर न हो सके, **तबतक विषय कषायों के हटाने के लिये शुद्धात्मस्मरण भावना के दृढ़ीकरण हेतु परजीवों को धर्मोपदेश देना,...** धर्म उपदेश यह देना ऐसा। आहाहा! **उसमें भी पर के उपदेश के बहाने से मुख्यताकर अपना जीव ही को सम्बोधना।** आहाहा! बापू! यह वस्तु मुझे ठीक लगती है। तुमको ठीक लगती है? ऐसा कहे। यह कहते हैं, देखो! **अपना जीव ही को सम्बोधना। वह इस तरह है, कि पर को उपदेश देते अपने को समझावे। जो मार्ग दूसरों को छुड़ावे, वह आप कैसे करे।** दूसरे को ऐसा कहे कि बापू! राग छोड़नेयोग्य है। वह स्वयं भी कैसे राग को न छोड़े? आहाहा! समझ में आया? है? है न इसमें लिखा हुआ अन्दर, देखो न!

पर को उपदेश देते अपने को समझावे। जो मार्ग दूसरों को छुड़ावे, वह आप कैसे करे। इससे मुख्य सम्बोधन अपना ही है। आहाहा! यह आत्मा का अपना पुकार है, कहते हैं। दूसरे को कहते हैं कि रागरहित हो... रागरहित हो। ऐसा स्वयं के लिये कहते हैं, तू राग रहित हो अन्दर। आहाहा! समझ में आया? **इससे मुख्य सम्बोधन अपना ही है। परजीवों को ऐसा ही उपदेश है, जो यह बात मेरे मन में अच्छी नहीं लगती, तो तुमको भी भली नहीं लगती होगी,...** ऐसा। राग है, वह मुझे प्रेम में

अच्छा—ठीक नहीं लगता, तो तुमको भी राग ठीक नहीं लगना चाहिए। आहाहा! भाई! जन्म-मरण रहित होने का मार्ग / रास्ता सम्यग्दर्शन... सम्यग्दर्शन अभी, हों! चारित्र तो कहीं रहा। किसे कहा जाता है, इसकी खबर कहाँ है दुनिया को? आहाहा! स्त्री, पुत्र छोड़े और दुकान छोड़ी तो हो गया चारित्र। धूल भी चारित्र नहीं। अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं, वहाँ चारित्र कहाँ से आया? आहाहा! सम्यग्दर्शन में तो विकल्परहित स्वरूप की अनुभव में प्रतीति होना। आहाहा! उसे तो अभी सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म का पहला सोपान (कहते हैं)। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं। रागादि मुझे ठीक नहीं लगते, तुम्हें भी ठीक नहीं लगना चाहिए। **तुम भी अपने मन में विचार करो।** आहाहा! यह ८३ हुई।

यहाँ तो मक्खन की बात है, बापू! सम्यग्दर्शन कैसे हो, उसकी बात है। सम्यग्दर्शन, हों! चारित्र तो कहीं रहा। आहाहा! कहते हैं कि इस पुण्य परिणाम से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। पाप के परिणाम की तो बात क्या करना? परन्तु शास्त्र के पठन के विकल्प से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। क्योंकि पठन है, वह तो परलक्ष्यी है और यहाँ स्वआश्रय लेना है। भगवान पूर्णानन्द का नाथ अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दस्वरूप का आश्रय लेना तो दिशा बदल जाती है। आहाहा! परसन्मुख जो दिशा है, जो दशा की। जो दशा अर्थात् राग-द्वेष की दशा की परसन्मुख दिशा है। आहाहा! यह क्या है परन्तु यह? यह पुण्य-पापरहित के शुद्ध परिणाम की दशा की स्व के ऊपर दिशा है। स्व के ऊपर दिशा है। समझ में आया इसमें?

जो पुण्य-पाप के विकार-राग है, वह दशा, उसकी पर के ऊपर दिशा है। और आत्मा में सन्मुख होने में वीतरागी परिणाम की दशा, उसकी दिशा द्रव्य के ऊपर है। लॉजिक से तो कहा जाता है परन्तु अब किसी को समझना नहीं इसे... ऐसे का ऐसा ढोर जैसी जिन्दगी बितावे। ढोर मजदूरी करके खाये, यह कमाकर खाये। आहाहा! क्या है, बापू! यह जीवन नहीं। आहाहा!

गाथा - ८४

अथ बोधार्थं शास्त्रं पठन्नपि यस्य विशुद्धात्मप्रतीतिलक्षणो बोधो नास्ति स मूढो भवतीति प्रतिपादयति –

२०७) बोह–णिमित्तें सत्थु किल लोइ पढिज्जइ इत्थु।
तेण वि बोहु ण जासु वरु सो किं मूढु ण तत्थु।।८४।।

बोधनिमित्तेन शास्त्रं किल लोके पठयते अत्र।
तेनापि बोधो न यस्य वरः स किं मूढो न तथ्यम्।।८४।।

बोह इत्यादि। बोधनिमित्तेन किल शास्त्रं लोके पठयते अत्र तेनैव कारणेन बोधो न यस्य कथंभूतः। वरो विशिष्टः स किं मूढो न भवति किंतु भवत्येव तथ्यमिति। तद्यथा। अत्र यद्यपि लोकव्यवहारेण कविगमकवादित्ववाग्मित्वादिलक्षणशास्त्रजनितो बोधो भण्यते तथापि निश्चयेन परमात्मप्रकाशकाध्यात्मशास्त्रोत्पन्नो वीतरागस्वसंवेदनरूपः स एव बोधो ग्राह्यो न चान्यः। तेनानुबोधेन विना शास्त्रे पठितेऽपि मूढो भवतीति। अत्र यः कोऽपि परमात्मबोधजन–कमल्पशास्त्रं ज्ञात्वापि वीतरागभावनां करोति स सिद्ध्यतीति। तथा चोक्तम् – 'वीरा वेरग्गपरा थोवं पि हु सिक्खिऊण सिज्झंति। ण हु सिज्झंति विरागेण विणा पढिदेसु वि सव्वसत्थेसु।।' परं किन्तु – 'अक्खरडा जोयंतु ठिउ अप्पि ण दिण्णउ चित्तु। कणविरउ पलालु जिमु पर संगहिउ बहुत्तु।।' इत्यादि पाठमात्रं गृहीत्वा परेषां बहुशास्त्रज्ञानिनां दूषणा न कर्तव्या। तैर्बहुश्रुतैरप्यन्येषामल्प–श्रुततपोधनानां दूषणा न कर्तव्या। कस्मादिति चेत्। दूषणे कृते सति परस्परं रागद्वेषोत्पत्तिर्भवति तेन ज्ञानतपश्चरणादिकं नश्यतीति भावार्थः।।८४।।

आगे ज्ञान के लिए शास्त्र को पढ़ते हुए भी जिसके आत्म–ज्ञान नहीं, वह मूर्ख है, ऐसा कथन करते हैं –

ज्ञानार्जन के हेतु मात्र ही जग में शास्त्र पढ़े जाते।
किन्तु बोध की प्राप्ति न हो तो वही मूर्ख हैं कहलाते।।८४।।

अन्वयार्थ :– [अत्र लोके] इस लोक में [किल] नियम से [बोधनिमित्तेन] ज्ञान के निमित्त [शास्त्रं] शास्त्र [पठ्यते] पढ़े जाते हैं, [तेनापि] परंतु शास्त्र के पढ़ने से भी [यस्य] जिसको [वरः बोधः न] उत्तम ज्ञान नहीं हुआ, [स] वह [किं] क्या [मूढः न] मूर्ख नहीं है? [तथ्यम्] मूर्ख ही है, इसमें संदेह नहीं।

भावार्थ :- इस लोक में यद्यपि लोक व्यवहार से नवीन कविता का कर्ता कवि, प्राचीन काव्यों की टीका के कर्ता को गमक, जिससे वाद में कोई न जीत सके ऐसा वादित्व, और श्रोताओं के मन को अनुरागी करनेवाला शास्त्र का वक्ता होनेरूप वाग्मित्व, इत्यादि लक्षणोंवाला शास्त्रजनित ज्ञान होता है, तो भी निश्चयनय से वीतरागस्वसंवेदनरूप ही ज्ञान की अध्यात्म-शास्त्रों में प्रशंसा की गयी है। इसलिये स्वसंवेदन ज्ञान के बिना शास्त्रों के पढ़े हुए भी मूर्ख हैं। और जो कोई परमात्मज्ञान के उत्पन्न करनेवाले (छोटे) थोड़े शास्त्रों को भी जानकर वीतराग स्वसंवेदनज्ञान की भावना करते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं। ऐसा ही कथन ग्रन्थों में हरएक जगह कहा है, कि वैराग्य में लगे हुए जो मोहशत्रु को जीतनेवाले हैं, वे थोड़े शास्त्रों को ही पढ़कर सुधर जाते हैं - मुक्त हो जाते हैं, और वैराग्य के बिना सब शास्त्रों को पढ़ते हुए भी मुक्त नहीं होते। यह निश्चय जानना परंतु यह कथन अपेक्षा से है। इस बहाने से शास्त्र पढ़ने का अभ्यास नहीं छोड़ना, और जो विशेष शास्त्र के पाठी हैं, उनको दूषण न देना। जो शास्त्र के अक्षर बता रहा है, और आत्मा में चित्त नहीं लगाया वह ऐसे जानना कि जैसे किसी ने कण रहित बहुत भूसे का ढेर कर लिया हो, वह किसी काम का नहीं है। इत्यादि पीठिका मात्र सुनकर जो विशेष शास्त्रज्ञ हैं, उनकी निंदा नहीं करनी, और जो बहुश्रुत हैं, उनको भी अल्प शास्त्रज्ञों की निंदा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि पर के दोष ग्रहण करने से राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है, उससे ज्ञान और तप का नाश होता है, यह निश्चय से जानना।।८४।।

गाथा-८४ पर प्रवचन

यहाँ तो कहते हैं, **ज्ञान के लिये शास्त्र को पढ़ते हुए भी जिसके आत्म-ज्ञान नहीं,...** दूसरी बात तो कहीं रह गयी। आहाहा! अभी तो सच्चे शास्त्र मिलना मुश्किल है। और यह सच्चा मिले और उसे **पढ़ते हुए भी जिसके आत्म-ज्ञान नहीं,...** आहाहा! जिसे आत्मज्ञान कहते हैं, वह नहीं। आत्मा का ज्ञान, शास्त्रज्ञान नहीं। आहाहा! देह छूटकर चला जायेगा और जितने क्षण जाते हैं, वे सब मरण की तिथि निश्चित है, उसके समीप जाते हैं। जितने महीने, वर्ष, दिन जाते हैं, वह मृत्यु का समय निश्चित है कि इस समय देह छूटने का, वह निश्चित है। उसके समीप जाते हैं। मृत्यु के समीप जाते हैं

और यह तो कहता है कि मैं बड़ा हुआ और कुछ बढ़ा। ऐसे मृत्यु के समीप में जाते काल में आत्मा की मृत्यु न हो, यह कर ले न।

'क्षण क्षण भयंकर भावमरण...' श्रीमद् कहते हैं न। 'क्षण क्षण भयंकर...' राग और पुण्य के-पाप के भाव मेरे मानकर प्रसन्न होता है, वहाँ तेरा मरण होता है, भाई! 'क्षण क्षण भयंकर भावमरण...' १६ वर्ष में कहते हैं, श्रीमद् राजचन्द्र। १६ वर्ष की उम्र देह की। आत्मा को कहाँ उम्र है? वह तो अनादि है। १६ वर्ष में ऐसा कहते हैं कि हे जीव! क्षण क्षण में तेरा भयंकर भावमरण होता है। यह पुण्य-पाप के भाव में रुक गया, वहाँ तेरी शान्ति का मरण होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मज्ञान होने से पहले....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले पुकार तो अन्दर का था न। पूर्व के संस्कार थे न!

उसमें आगे अन्त में कहा है कि 'रे आत्म तारो आत्म तारो शीघ्र इसे पहिचानो।' १६ वर्ष की उम्र में। बाद में विवाह किया था तो बाद में। आहाहा! 'रे आत्म तारो आत्म तारो शीघ्र इसे पहिचानो। सर्वात्म में समदृष्टि दो, इस वचन को हृदये लखो।' आहाहा! १६ वर्ष की उम्र में श्रीमद् राजचन्द्र (कहते हैं) 'बहु पुण्यपुंज प्रसंग' (अमूल्य तत्त्वविचार काव्य में)। आहाहा! 'लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये?' पैसे बढ़े, पाँच-पचास लाख हुए। स्त्री-पुत्र, आठ-आठ पुत्र हुए। एक-एक पुत्र कमाऊ जगा। क्या अभी तुम्हारे होते हैं न सब? क्या कहते हैं? मशीन—फैक्ट्री-फैक्ट्री। क्या कहते हैं? इसने फैक्ट्री की। अमुक के लड़के ने मुम्बई में फैक्ट्री की। आहाहा! मशीन। यह अभी बहुत चला है। कुछ दस-पचास हजार-लाख हो कि... बढ़ा उद्योग।

लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये?
परिवार और कुटुम्ब है क्या वृद्धिनय पर तौलिये?
संसार का बढ़ना अरे नरदेह की यह हार है।
नहीं एक क्षण तुझको अरे इसका विवेक विचार है।

आहाहा! नरदेह को हार जाना। एक पल भी विचार किया है इसने? आहाहा! समझ में आया? इस अन्दर की स्थिति को देखने के लिये निवृत्त कहाँ है यह? आहाहा!

कहते हैं, **ज्ञान के लिये शास्त्र को पढ़ते हुए भी जिसके आत्म-ज्ञान नहीं,...** आहाहा! **वह मूख है, ऐसा कथन करते हैंः**—८४, हों!

२०७) बोह-णिमित्तें सत्थु किल लोइ पढिज्जइ इत्थु।
तेण वि बोहु ण जासु वरु सो किं मूढु ण तत्थु।।८४।।

आहाहा! **अन्वयार्थः—इस लोक में नियम से ज्ञान के निमित्त शास्त्र पढ़े जाते हैं,...** आहाहा! यह तो यहाँ तक आया तो भी... **परन्तु शास्त्र के पढ़ने से भी जिसको उत्तम ज्ञान नहीं हुआ,... 'वरः बोधः'** आत्मज्ञान। आहाहा! देखा! शास्त्रज्ञान, वह **'वरः बोधः'** नहीं। आहाहा! प्रधान ज्ञान नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप का ज्ञान वह **'वरः बोधः'** है। आहाहा! **शास्त्र पढ़े जाते हैं, परन्तु शास्त्र के पढ़ने से भी जिसको उत्तम ज्ञान नहीं हुआ,...** उत्तम ज्ञान का अर्थ यह आत्मज्ञान। आहाहा! **वह क्या मूर्ख नहीं है?** शास्त्र तो दया से बात करे न? आहाहा! बापू! शास्त्र पढ़ा, परन्तु यदि आत्मज्ञान नहीं किया तो वह तेरी मूर्खता नहीं गयी। आहाहा! दुनिया के चतुर की तो बात कहाँ करना? परन्तु शास्त्र के पठन के चतुर भी आत्मज्ञान नहीं करे तो वह भी मूर्ख है, कहते हैं। आहाहा! है? **इसमें सन्देह नहीं। 'तथ्यम्' है न 'तथ्यम्'? मूर्ख नहीं है? क्या मूर्ख नहीं है? मूर्ख ही है,...** ऐसा। **'तथ्यम्'** मूर्ख है, यह सत्य है, ऐसा कहते हैं। कहो, पण्डितजी! यह तो संस्कृत के बड़े प्रोफेसर हैं।

मुमुक्षु : पाप का धन्धा....

पूज्य गुरुदेवश्री : धन्धा। आहाहा!

भावार्थ :— इस लोक में यद्यपि लोक व्यवहार से नवीन कविता का कर्ता कवि,... कवि बनाते हैं न नयी-नयी कवितायें। आहाहा! उससे क्या हुआ? वह कहाँ ज्ञान है? आहाहा! कवि होते हैं न? आशु कवि। एकदम आशु कवि। ऐसे तुरन्त बना दे कवि। उससे क्या? वह वस्तु है कुछ? आत्मज्ञान बिना की वह चीज़ सब मूर्खता से भरपूर है, कहते हैं। आहाहा! अभी पत्र नहीं आया था? भव्यसागर। कर्नाटक में दिगम्बर साधु है एक भव्यसागर। धीरुभाई! उनके दस-पाँच पत्र आये। कर्नाटक में है। आशु कवि। १८ वर्ष की दीक्षा। दिगम्बर नग्नमुनि। यहाँ उनके दस पत्र आये। यहाँ

का आत्मधर्म पढ़ा। वहाँ एक सेठिया कोई है बड़ा गृहस्थ। गाँव कुछ कहा। कैसा गाँव कहा?

मुमुक्षु : झालना महाराष्ट्र में....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वहाँ। वे माणेकचन्दभाई आते हैं न, वे वाँचते हैं। वहाँ सुनने गया। साधु दिगम्बर। १८ वर्ष की दीक्षा। १७ की थी। और आशू कवि। गायन बनावे ऐसे। यहाँ का सुनकर पत्र आया। स्वामीजी! यह क्या किया तुमने यह? लाखों लोगों के जन्म-मरण के उद्धार का रास्ता (आपने खोल दिया)। हम साधु नहीं। ऐसा कहा। दिगम्बर है, नग्न मुनि, १८ वर्ष की दीक्षा, आशू कवि। हम साधु नहीं, हम मुनि नहीं। आप कहते हो वह वस्तु ही हमारे पास नहीं। आहाहा! दिगम्बर साधु! दस पत्र आये दस। आपके आत्मधर्म के दो सौ ग्राहक मैंने बनाये हैं। पाँच सौ ग्राहक बनाकर वहाँ आनेवाला हूँ। लिखा है। आहाहा! ऐसी बात है। बेचारा दिगम्बर है। शीघ्र कवि। गायन जोड़कर कवितायें बहुत आती हैं। बाहर में नहीं डालते। क्या चीज़ है बाहर की? अन्तर के आत्मज्ञान बिना का यह बाहर का नग्नपना वह सब थोथा है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं, हों! वह ऐसे कवि हो तो भी क्या? कहते हैं। वह कहीं आत्मज्ञान नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, मागसर कृष्ण ७, सोमवार
दिनांक-१३-१२-१९७६, गाथा - ८४ - ८५, प्रवचन-१५८

हिन्दी है न आज, हिन्दी चलेगा। परमात्मप्रकाश, ८४ गाथा चलती है। क्या कहते हैं? **इस लोक में यद्यपि लोक व्यवहार से नवीन कविता का कर्ता कवि,...** कहलाता है। नवीन कर्ता है न! नवीन रचना करे काव्य की। लोक व्यवहार में वह कर्ता कहलाता है, कवि। परन्तु वह कुछ विशेष नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। अन्दर आत्मज्ञान बिना उस कवि की कीमत कुछ नहीं, कुछ कीमत है नहीं। आहाहा! जिसमें आत्मज्ञान नहीं, वह कवि कैसा? और **प्राचीन काव्यों की टीका के कर्ता को गमक,...** कहते हैं। पुरानी टीका हो शास्त्र की, उसकी टीका करनेवाले को गमक कहते हैं। उससे क्या? कहते हैं। अन्तर आत्मज्ञान, राग से भिन्न पड़कर जिसमें सम्यग्दर्शन प्राप्त हो और स्व-आत्मा का वेदन हो, उस ज्ञान को ज्ञान कहा जाता है कि जिस ज्ञान में जन्म-मरण का अन्त है। यह तो है, वह शुभभाव है और उस प्रकार का क्षयोपशम हो (तो करे)। आहाहा!

जिससे वाद में कोई न जीत सके ऐसा वादित्व... हो। ऐसा वाद करे। ऐसे तो ज्ञानी भी वाद करते हैं, शास्त्र में आता है। परन्तु यहाँ कहते हैं कि उस वादित्व की भी आत्मज्ञान बिना उसकी कोई कीमत नहीं। आहाहा! जिसमें आत्मा के आनन्द का ज्ञान न हो, उसकी कोई कीमत नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम की भी, आत्मज्ञान के समक्ष कीमत नहीं। वह कोई वस्तु नहीं, पुण्यबन्ध का कारण है। यहाँ तो शास्त्र का ज्ञान है, वह भी आत्मज्ञान बिना कोई कार्यकारी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बातें!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, होता है। आत्मज्ञानी है, वह वादित्व हो तो वह शोभा आत्मज्ञान की है। वादित्व है, शास्त्र में आता है। अमुक मुनि वाद करे। यह समन्तभद्राचार्य। ... मेरे इतना पुण्य है और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ऐसा देखते हैं, भगवान के शासन की शोभा होगी, व्यवहार से। आहाहा!

श्रोताओं के मन को अनुरागी करनेवाला शास्त्र का वक्ता... शास्त्र का वक्ता

हो, समाज को अनुराग से प्रसन्न कर दे कि आहा! गजब व्याख्यान भाई! इससे क्या? जिसमें भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसका ज्ञान न हो, तो उस चीज़ की कोई कीमत नहीं। प्रशंसनीय तो आत्मज्ञान है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **इत्यादि लक्षणोंवाला शास्त्रजनित ज्ञान होता है,...** है? **इत्यादि लक्षणोंवाला शास्त्रजनित ज्ञान होता है,...** आहाहा! **तो भी निश्चयनय से वीतरागस्वसंवेदनरूप ज्ञान ही...** आहाहा! अपना स्वरूप वीतराग निर्विकल्प है, उसका वीतरागी ज्ञान। आहाहा! भले थोड़ा हो। शास्त्र का जानपना थोड़ा हो, परन्तु यह आत्मज्ञान है, वही प्रशंसा के योग्य है, कहते हैं। आहाहा! है? **निश्चयनय से वीतरागस्वसंवेदनरूप ज्ञान की ही अध्यात्म-शास्त्रों में प्रशंसा की गयी है।** आहाहा! जिसमें जन्म-मरण का अन्त आवे और मोक्ष के मार्ग की शुरुआत हो, उस आत्मज्ञान की अध्यात्मशास्त्र में तो प्रशंसा की है। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए स्वसंवेदन ज्ञान के बिना शास्त्रों के पढ़े हुए भी मूर्ख हैं। आहाहा! धीरुभाई! ऐसी बातें हैं यह। संसार के ज्ञानवाले और बुद्धिवाले तो मूर्ख है, कहते हैं। आहाहा! परन्तु अपना जो अन्तर आत्मस्वरूप शुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मा, उसका सन्मुख होकर अन्तर के ज्ञान को स्पर्श होकर जो ज्ञान आवे, उसका नाम सम्यग्ज्ञान और उसकी प्रशंसा अध्यात्मशास्त्र में है। आहाहा! अध्यात्मशास्त्र में उसकी प्रशंसा की है। आहाहा! समझ में आया? परमात्मप्रकाश है। आहाहा! **इसलिए स्वसंवेदन ज्ञान के बिना...** आहाहा! ज्ञानस्वरूप प्रभु आत्मा का स्वसंवेदन। स्व—अपना, प्रत्यक्ष ज्ञान का वेदन। ऐसे ज्ञान के बिना... आहाहा! अध्यात्मशास्त्रों में प्रशंसा तो उसकी की है। उसके बिना शास्त्र के पढ़े हुए (भी) मूर्ख हैं। आहाहा! पाठ है न? **'मूढ ण वत्थु'** है न? **'तेण वि बोहु ण जासु वरु'** प्रधान आत्मज्ञान नहीं। **'सो किं मूढ ण वत्थु'।** वह मूढ नहीं है, यथार्थ सत्य है। आहाहा! सत्य है, कहते हैं। आहाहा!

और जो कोई परमात्मज्ञान के उत्पन्न करनेवाले... परमात्मज्ञान को उत्पन्न करनेवाले। आहाहा! **(छोटे) थोड़े शास्त्रों को भी जानकर...** आहाहा! छोटे और थोड़े ऐसे शास्त्रों को जानकर। आहाहा! **वीतराग स्वसंवेदनज्ञान की भावना करते हैं,...** अपना ज्ञान और आनन्दस्वरूप, उसका ज्ञान करके उसकी भावना करते हैं (अर्थात्) एकाग्र होते हैं। आहाहा! **वे मुक्त हो ही जाते हैं।** वे मुक्त हो ही जाते हैं, वे मुक्त हो जाते

हैं। आहाहा! छोटे और थोड़े शास्त्रों को पढ़कर भी जिसे आत्मज्ञान हुआ, (वे मुक्त हो जाते हैं)।

प्रवचनसार में अमृतचन्द्राचार्य ने कहा है न? हम तो आत्मा हैं। उसमें दृष्टि लगाकर हम तो अन्दर स्थिर होते हैं। विशेष ज्ञान के क्षयोपशम से बस होओ। आहाहा! चैतन्यबिम्ब प्रभु अन्दर, उसका ज्ञान करके, दृष्टि करके स्थिरता करना। बस! विशेष क्षयोपशम से बस होओ। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रशंसा योग्य है। आहाहा! नौ पूर्व पढ़ा, ग्यारह अंग पढ़ा, परन्तु आत्मज्ञान बिना क्या? आहाहा! प्रयोजनभूत तो यह है। आत्मा के ज्ञान में वीतरागता का अंश प्रगट होता है, वह प्रयोजन है। समझ में आया? ऐसी बातें अब।...

ऐसा ही कथन ग्रन्थों में हरएक जगह कहा है,... दोहापाहुड़ है। **वैराग्य में लगे हुए जो....** आहाहा! अन्तर आत्मज्ञान करके वैराग्य में लगे हैं। पर से रहित, राग से रहित। सम्यग्ज्ञानसहित, राग से रहित वैराग्य में लगे हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : समयसार छोटा शास्त्र कहलाये या बड़ा?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह छोटा भी कहलाये।... इसलिए बड़ा है। समयसार में तो ४१५ श्लोक (गाथायें) हैं, साधारण है। ग्यारह अंग में तो अठारह हजार पद और एक-एक पद में इक्यावन करोड़ श्लोक, वह कहाँ है अभी। एक आचारांग में अठारह हजार पद और एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक। इस हिसाब से तो बहुत छोटा है। परन्तु इसे वाँचकर भी आत्मज्ञान करे। आहाहा! यह बात है, बापू! लो, यह प्रोफेसर तुम्हारे संस्कृत में पढ़े हुए की भी यहाँ कोई कीमत नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसमें जन्म-मरण का अन्त न आवे, वह चीज़ क्या? सिर पर अनन्त जन्म-मरण खड़े हैं। वह चीज़ क्या? यहाँ तो जन्म-मरण का अन्त आया है। आत्मा का ज्ञान हुआ, वहाँ भव का अन्त (हुआ), भवसिन्धु तिर गया। आहाहा! ऐसी बात लोगों को बाहर में ऐसा लगे... यह कहेंगे, मुनि की बात करेंगे।

लगे हुए भी मोहशत्रु को जीतनेवाले हैं,... आहाहा! रागरूपी शत्रु जो मोह पर में

था, उसे तो जीतनेवाले हैं। भले शास्त्र का ज्ञान थोड़ा हो, उससे क्या? आहाहा! ज्ञान और वैराग्य शक्ति, दो अन्दर है। निर्जरा (अधिकार) में आया न? ज्ञानी को ज्ञान—वास्तविक तत्त्व का ज्ञान और वैराग्य—राग से, पर से भिन्न वैराग्य—यह दो शक्ति मूल है। आहाहा! **वे थोड़े शास्त्रों को ही पढ़कर सुधर जाते हैं...** आहाहा! **मुक्त हो जाते हैं...** आहाहा! **और वैराग्य के बिना...** परपदार्थ से राग को हटाना। वह वैराग्य, हों! वैराग्य अर्थात् यह स्त्री-पुत्र छोड़े, परिवार छोड़े, इसलिए वैराग्य है, ऐसा नहीं है। अपने स्वरूप का ज्ञान और परपदार्थ से हटकर वैराग्य करना। आहाहा! आत्मज्ञान बिना यथार्थ वैराग्य होता ही नहीं। आहाहा! अपना अस्तित्व महासत्ता प्रभु, उसका ज्ञान और पर से उदास होकर राग से रहित हो, वह वैराग्य है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा लगे रूखा। आहाहा! **मुक्त हो जाते हैं,...**

और वैराग्य के बिना सब शास्त्रों को पढ़ते हुए भी... आहाहा! **मुक्त नहीं होते।** पर से वैराग्य नहीं, पर में प्रेम है। आहाहा! तो उसे आत्मज्ञान भी नहीं और वैराग्य भी नहीं। आहाहा! **यह निश्चय जानना...** वैराग्य बिना। पर से वैराग्य, उदास। चाहे जितना पुण्य का वैभव हो, इज्जत हो, शरीरादि हो, सबसे वैराग्य... वैराग्य... वैराग्य... **वैराग्य के बिना सब शास्त्रों को पढ़ते हुए भी मुक्त नहीं होते। यह निश्चय जानना, परन्तु यह कथन अपेक्षा से है।** अब जरा स्पष्टीकरण करते हैं। **इस बहाने से शास्त्र पढ़ने का अभ्यास नहीं छोड़ना,...** आगम का अभ्यास है अपने हित के लिये। समझ में आया? दिखाव करने के लिये, दुनिया को पसन्द करने के लिये, मुझे आता है—ऐसा बतलाने के लिये नहीं। उसके लिये अभ्यास करना नहीं। **इस बहाने से शास्त्र पढ़ने का अभ्यास नहीं छोड़ना,...**

और जो विशेष शास्त्र के पाठी हैं, उनको दूषण न देना। सम्यग्ज्ञानसहित, आत्मज्ञानसहित शास्त्र के विशेष पाठी हैं... समझ में आया? आत्मज्ञानसहित शास्त्रपाठी हैं, उन्हें दूषण नहीं देना। आहाहा! **जो शास्त्र के अक्षर बता रहे हैं, और आत्मा में चित्त नहीं लगाया,...** यहाँ तो यह बात है। आहाहा! इस शास्त्र में ऐसा कहा है, इस शास्त्र में ऐसा कहा है, सब है। आहाहा! परन्तु **आत्मा में चित्त नहीं लगाया...** अन्तर चैतन्यसिन्धु। आहाहा! भवसिन्धु को पार करनेवाला भगवान। उस चैतन्यसिन्धु के ज्ञानसहित उसमें चित्त लगाया नहीं और मात्र शास्त्र पढ़ा। **शास्त्र के अक्षर बता रहे हैं,...** देखो! यह रहा

शास्त्र में, इस जगह कहा है। परन्तु उसमें क्या है ? आहाहा! परमात्मप्रकाश किया है न! हें!

भाई कैसे ? शिवभूति। तुष-माष भी आता नहीं था। ... वह शब्द याद नहीं थे। गुरु कहते हैं मा रुष—मा तुष। वैराग्य... वैराग्य। आहाहा! सम्यग्ज्ञानसहित की बात है। मा रुष। प्रतिकूलता में द्वेष न कर, अनुकूलता में राग न कर। राग-द्वेष नहीं करना, वैराग्य करना। आहाहा! इतने शब्द भी याद नहीं थे, परन्तु आत्मज्ञान था। पर से उदास थे, वैराग्य था। एक क्षण में... उड़द... उड़द... उड़द और तुष, एक महिला अलग करती थी। उड़द और तुष—छिलका। एक महिला (अलग करती थी)। एक महिला कहे, बहिन! क्या करती हो ? यह तुष-माष भिन्न करती हूँ। छिलका और... फोतरा को क्या कहते हैं ? छिलका और (दाल)। इतना सुनकर... ओहो! भान तो था। हें! आहाहा! एकदम राग से हटकर अन्दर घुस गये।

मुमुक्षु : निमित्त का बहुत प्रभाव!

पूज्य गुरुदेवश्री : किया तो निमित्त कहा न, नहीं तो न किया हो तो निमित्त किसे ? ऐसे तो सब देखते हैं। हें! उड़द की दाल और छिलका भिन्न करते हुए तो बहुत देखते हैं।

मुमुक्षु : जब तक वह नहीं था, तब तक कहाँ हुआ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं से हुआ, तब उसे निमित्त कहा गया है। आहाहा! समझ में आया ? निमित्त ने कुछ किया नहीं, वरना निमित्त नहीं कहलाता। आहाहा! किया तो स्वयं से किया है। निमित्त है नहीं ? निमित्त है, मानते हैं, निमित्त से हुआ नहीं, कर्ता नहीं। बड़ा झगड़ा है न।....

मुमुक्षु : दृष्टान्त गुजराती में कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुजराती में कहा न!

मुमुक्षु : हिन्दी में कहा न, इसलिए गुजराती में कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : उड़द की दाल सफेद होती है, तब करते हैं न, छिलका निकालकर, फटककर। ऐसे जो मुनि थे आत्मज्ञानी, ऐसा जहाँ देखते हैं... माँ! क्या

करती हो? तुष—फोतरा—छिलका और उड़द की दाल भिन्न करती हूँ। ऐसा सुनकर एकदम अन्दर में राग का छिलका है, मेरी वस्तु अन्दर आनन्दकन्द है। श्वेत सफेद। शुद्ध, सफेद अर्थात् शुद्ध। और आनन्द, मीठा गोला आनन्द है, उसमें घुस गये, केवलज्ञान प्रगट हुआ। आहाहा! अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान! शिवभूति (मुनि)। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसी बात आपके बिना कौन सुनावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! जो करने का था, वह किया। अन्तर्दृष्टि और लीनता करने की थी। भले शास्त्र का ज्ञान कम हो, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं। आहाहा! आत्मज्ञान बिना तो शास्त्र का अभिमान भी हो जाये। समझ में आया? मुझे आता है, उसे बोलना नहीं आता, समझाना नहीं आता। आहाहा!

जो विशेष शास्त्र के पाठी हैं, उनको दूषण न देना। जो शास्त्र के अक्षर बता रहा है और आत्मा में चित्त नहीं लगाया, वह ऐसे जानना कि जैसे किसी ने कणरहित बहुत भूसे का ढ़ेर कर लिया हो,... छिलका—छिलके का ढ़ेर। कण नहीं होता, दाना नहीं, दाना नहीं, अकेले छिलका-छिलका। **किसी ने कणरहित बहुत भूसे का ढ़ेर कर लिया हो,...** आहाहा! **वह किसी काम का नहीं है। इत्यादि पीठिकामात्र सुनकर जो विशेष शास्त्रज्ञ हैं, उनकी निन्दा नहीं करनी,...** आत्मज्ञानसहित जिसका शास्त्रज्ञान बहुत है, उसकी निन्दा नहीं करना। समझ में आया? है? **विशेष शास्त्रज्ञ हैं, उनकी निन्दा नहीं करनी, और जो बहुश्रुत हैं, उनको भी अल्प शास्त्रों की निन्दा नहीं करनी चाहिए।** सम्यग्ज्ञानी है, अनुभवी है, शास्त्रज्ञान थोड़ा हो। आहाहा! समझ में आया? **अल्प शास्त्रों की निन्दा नहीं करनी चाहिए।** समझाना भी नहीं आता तुमको, बोलना भी नहीं आता और हो गये ज्ञानी। ऐसा करके निन्दा करे। अरे! सुन न, बापू! शान्तिभाई!

क्योंकि पर के दोष ग्रहण करने से राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है,... आहाहा! **उससे ज्ञान और तप का नाश होता है,...** उससे तो सम्यग्ज्ञान और इच्छानिरोधरूपी शान्ति का नाश होता है। आहाहा! आगे ८५। एक-एक बात की सम्हाल ली है। पहले शास्त्रज्ञान को आत्मज्ञान बिना निरर्थक सिद्ध किया। यात्रा करने निकले बड़े पाँच-पाँच लाख खर्च करके, दस-दस लाख खर्च करके बड़ी यात्रायें (निकाली)। सम्मेदशिखर और गिरनार और... आहाहा!

गाथा - ८५

अथ वीतरागस्वसंवेदनज्ञानरहितानां तीर्थभ्रमणेन मोक्षो न भवतीति कथयति-

२०८) तित्थइँ तित्थु भमंताहँ मूढहँ मोक्खु ण होइ।
णाण-विवज्जिउ जेण जिय मुणिवरु होइ ण सोइ।।८५।।

तीर्थ तीर्थ भ्रमतां मूढानां मोक्षो न भवति।
ज्ञानविवर्जितो येन जीव मुनिवरो भवति न स एव।।८५।।

तीर्थं तीर्थं प्रति भ्रमतां मूढात्मनां मोक्षो न भवति। कस्मादिति चेत्। भानविवर्जितो येन कारणेन हे जीव मुनिवरो न भवति स एवेति। तथाहि। निर्दोषिपरमात्मभावनोत्पन्नवीतराग-परमाह्लादस्यन्दिसुन्दरानन्दरूपनिर्मलनीरपूरप्रवाहनिर्झरज्ञानदर्शनादि-गुणसमूहचन्दादिद्रुमवन-राजितंदेवेन्द्रचक्रव्रतिगणधरादिभव्यजीवतीर्थयात्रिकसमूहश्रवणसुखकर-दिव्यध्वनिरूप-राजहंसप्रभृतिविविधपक्षिकोलाहलमनोहरं यदर्हद्वीतरागसर्वज्ञस्वरूपं तदेव निश्चयेन गङ्गातीर्थं न लोकव्यवहारप्रसिद्धं गङ्गादिकम्। परमनिश्चयेन तु जिनेश्वरपरमतीर्थसदृशं संसारतरणोपायकारण-भूतत्वाद्वीतरागनिर्विकल्पपरमसमाधिरतानां निजशुद्धात्मतत्त्वस्मरणमेव तीर्थ, व्यवहारेण तु तीर्थंकरपरमदेवादिगुणस्मरणहेतुभूतं मुख्यवृत्त्या पुण्यबन्धकारणं तन्निर्वाण-स्थानकादिकं च तीर्थमिति। अयमत्र भावार्थः। पूर्वोक्तं निश्चयतीर्थ श्रद्धानपरिज्ञानानुष्ठान-रहितानामज्ञानिनां शेषतीर्थं मुक्तिकारणं न भवतीति।।८५।।

आगे वीतरागस्वसंवेदनज्ञान से रहित जीवों को तीर्थ-भ्रमण करने से भी मोक्ष नहीं है, ऐसा कहते हैं-

तीर्थ तीर्थ में भ्रमण करे पर मूढ़ न पावे मुक्ति कभी।
क्योंकि ज्ञान बिन जीव कभी वह मुनिवर हो ही सके नहीं।।८५।।

अन्वयार्थ :- [तीर्थं तीर्थं] तीर्थ तीर्थ प्रति [भ्रमतां] भ्रमण करनेवाले [मूढानां] मूर्खों को [मोक्षः] मुक्ति [न भवति] नहीं होती, [जीव] हे जीव, [येन] क्योंकि जो [ज्ञानविवर्जितः] ज्ञानरहित हैं, [स एव] वह [मुनिवरः न भवति] मुनीश्वर नहीं है, संसारी हैं। मुनिश्वर तो वे ही हैं, जो समस्त विकल्पजालों से रहित होके अपने स्वरूप में रमें, वे ही मोक्ष पाते हैं।

भावार्थ :- निर्दोष परमात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ जो वीतराग परम आनंदरूप निर्मल जल उसके धारण करनेवाले और ज्ञान-दर्शनादि गुणों के समूहरूपी चंदनादि वृक्षों के वनों से शोभित तथा देवेन्द्र चक्रवर्ती गणधरादि भव्यजीवरूपी तीर्थ-यात्रियों के कानों को सुखकारी ऐसी दिव्यध्वनि से शोभायमान और अनेक मुनिजनरूपी राजहंसों को आदि लेकर नाना तरह के पक्षियों के शब्दों से महामनोहर जो अरंहत वीतराग सर्वज्ञ वे ही निश्चय से महातीर्थ हैं, उनके समान अन्य तीर्थ नहीं हैं। वे ही संसार के तरने के कारण परमतीर्थ हैं। जो परम समाधि में लीन महामुनि हैं, उनके वे ही तीर्थ हैं, निश्चय से निज शुद्धात्मतत्त्व के ध्यान के समान दूसरा कोई तीर्थ नहीं है, और व्यवहारनय से तीर्थंकर परमदेवादि के गुणस्मरण के कारण मुख्यता से शुभ बंध के कारण ऐसे जो कैलास, सम्मेदशिखर आदि निर्वाणस्थान हैं, वे भी व्यवहारमात्र तीर्थ कहे हैं। जो तीर्थ-तीर्थ प्रतिभ्रमण करे, और निज तीर्थ का जिसके श्रद्धान परिज्ञान आचरण नहीं हो, वह अज्ञानी है। उसके तीर्थ भ्रमने से मोक्ष नहीं हो सकता।।८५।।

गाथा-८५ पर प्रवचन

आगे वीतरागस्वसंवेदनज्ञान से रहित... आहाहा! जिसे आत्मज्ञान नहीं, रागरहित भगवान का—आत्मा का ज्ञान नहीं, वह तीर्थ में भ्रमण करते-करते, वह मूढ कुछ आत्मज्ञान नहीं प्राप्त करता। वह तो शुभभाव है। उससे आत्मज्ञान होगा, सम्यग्ज्ञान होगा—ऐसा नहीं है। आहाहा! है? **तीर्थ-भ्रमण करने से भी मोक्ष नहीं है, ऐसा कहते हैं—**ओहोहो! नाड़ी पकड़ी है न सबकी। ८५

२०८) **तित्थइँ तित्थु भमंताहँ मूढहँ मोक्खु ण होइ।**
णाण-विवज्जिउ जेण जिय मुणिवरु होइ ण सोइ।।८५।।

आहाहा! **अन्वयार्थः—तीर्थ तीर्थ प्रति भ्रमण करनेवाला...** सम्मेशिखर और गिरनार को यात्रा निकले अमुक की, ओहो! मानो क्या होगा उसमें धर्म वहाँ। अपने आत्मज्ञान बिना वह तीर्थ-भ्रमण करने से भी कोई मोक्ष नहीं होता, धर्म नहीं होता। कहो। **भ्रमण करनेवाले मूर्खों को मुक्ति नहीं होती,...** आहाहा! बेचारे ऐसी यात्रा करे...

परन्तु कहते हैं, जहाँ आत्मज्ञान नहीं, स्व का ज्ञान नहीं, अपना ज्ञान नहीं... आहाहा! उस मूढ़ को तीर्थं का भ्रमण करने से धर्म नहीं होता, मुक्ति नहीं होती। आहाहा! यह सब लोप करते हैं परमात्मप्रकाश। व्यवहार का लोप करते हैं। आहाहा!

क्योंकि जो ज्ञानरहित हैं,... किसके ज्ञानरहित? अपने। स्वसंवेदन अपना ज्ञान। उस अपने स्वसंवेदन से रहित है। आहाहा! **वह मुनिवर नहीं है, संसारी है।** आहाहा! वह '**मुनिवरः न भवति**'। ऐसा तो कहते हैं, भाई! जिसे रागरहित अपना चैतन्यस्वरूप का ज्ञान नहीं, वह मुनि नहीं है। भले तीर्थयात्रा करे और चारों ओर यहाँ से यहाँ जाना ओर यहाँ से यहाँ जाना, गिरनार जाना है, सम्मेदशिखर जाना है। वह मानो... ओहोहो! आत्मा के रागरहित भिन्न चैतन्य के ज्ञान बिना, वे सब तीर्थ-भ्रमण मूढ़ को क्या लाभ करेंगे? कहते हैं। जिन्हें आत्मज्ञान नहीं, उन मूढ़ों को तीर्थ का परिभ्रमण क्या करेगा? आहाहा! भगवान आत्मा, जिसमें वर नहीं मुख्य और फिर बारात जोड़ दी, जान—बारात। दूल्हा नहीं और बारात जोड़ दी। स्वयं आत्मा क्या है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? भाई! मार्ग दुनिया से अलग है। आहाहा! '**मुनिवर नहीं है,...**' है? '**मुनिवरः न भवति**'। आहाहा! वह तो संसारी है। आहाहा! अरे! परन्तु आत्मज्ञान नहीं, वहाँ वह संसारी अकेला? स्त्री, पुत्र, परिवार, दुकान, धन्धा छोड़ा हो, छोड़कर बैठे जंगल में रहे। तो कहते हैं कि जहाँ आत्मज्ञान वस्तु स्वरूप नहीं, वहाँ वह संसारी है। आहाहा!

मुनिश्वर तो वे ही हैं,... आहाहा! मुनि तो उसे कहते हैं, मुनिश्वर। आहाहा! **समस्त विकल्पजालों से रहित होके...** आहाहा! व्यवहार के विकल्प से रहित होकर। आहाहा! **अपने स्वरूप में रमें,...** अपना स्वरूप आनन्दकन्द प्रभु में जो रमे। आतमराम। 'निजपद रमे सो राम कहिये।' आहाहा! अपना शुद्ध (स्वरूप)। बात पूरी दुनिया से अलग है। धीरुभाई! कहीं मिले ऐसा नहीं अभी तो। वह तो भाई को खबर है न। यह बात सुनने को मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें बापू यह तो! ओहोहो! सन्तों ने भी... यह योगन्द्रदेव है, इस शास्त्र के कर्ता। १३०० वर्ष पहले।

कहते हैं कि जिसे आत्मज्ञान नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं, निश्चय सम्यग्दर्शन। भाई ने

लिखा है न अभी, कैलाशचन्द्रजी ने नहीं? अभी कोई ऐसी प्ररूपणा करते हैं कि निश्चय सम्यग्दर्शन बिना व्रत, तप निरर्थक है, ऐसा कहीं चलता है? कैलाशचन्द्रजी ने लिखा है। अब जरा थोड़ा ठीक है। आहा! यह तो व्रत करो और अपवास करो और तप करो, संयम लो, यह बाहर का अज्ञान का। आहाहा! निश्चय आत्मज्ञान बिना, निश्चय सम्यग्दर्शन बिना यह सब व्रत, तप सब निरर्थक व्यर्थ है। आत्मा को कुछ लाभ करनेवाले नहीं हैं। आहाहा! यहाँ तो यह माने कि यह व्रत और तप हम करते हैं, उनसे सम्यग्दर्शन प्राप्त होगा। निश्चय का साधन है। आहाहा! यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है।

समस्त विकल्पजालों से रहित... आहाहा! मुनिपना तो उसे कहते हैं न! शास्त्र में अलिंगग्रहण में तो ऐसा चला है कि यति की बाह्य क्रिया का जिसमें अभाव है। पंच महाव्रत के परिणाम आदि जो हैं, उनका जिसमें अभाव है, उसे आत्मा कहते हैं। अलिंग्रग्रहण है। समझ में आया? सत्रहवाँ बोल, सत्रह, सत्रह। बीस बोल हैं न, जिसमें यति के बाह्याचार पंच महाव्रत विकल्प, तपादि का विकल्प राग, वह मुनिपने का व्यवहार आत्मा में नहीं है। आहाहा! आत्मा को ज्ञान और आनन्दस्वरूप है प्रभु, तो उसमें विकल्प कहाँ है? आहाहा! उसे यहाँ मुनि कहते हैं। समस्त विकल्प से रहित होकर अन्दर रमे। आहाहा! स्वरूप आनन्द का नाथ भगवान, उसमें रमे, वह मुनि। आहाहा! पंच महाव्रत पालन करे, वह मुनि—ऐसा यहाँ नहीं कहा। हें! नग्न हो जाये। लो, नग्नपना मोक्ष का मार्ग है। नग्नपना मोक्ष का मार्ग है? नग्नपना तो अनन्त बार लिया। आहाहा! निज स्वरूप में रमे, वह मोक्ष का मार्ग है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र वह निज स्वरूप में रमणता है। आहाहा!

समस्त विकल्पजालों से रहित होके अपने स्वरूप में रमें, वे ही मोक्ष पाते हैं। आहाहा! यहाँ तो स्वआश्रय बिना धर्म नहीं होता और स्वआश्रय बिना मुक्ति नहीं होती। पराश्रय लाख, करोड़ हो चाहे जो यात्रा, व्रत, तप और शास्त्र का ज्ञान, वह कोई मोक्ष का कारण नहीं है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय है, वह भी राग है, वह मोक्ष का कारण नहीं। यहाँ तो यह कहा न? विकल्प से रहित होकर। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का घन प्रभु, उसमें रमता रमे, चित्त लगाकर स्थिर हो जाये... आहाहा! उसका नाम मुनिपना है। ऐसा कहा? **स्वरूप में रमें, वे ही मोक्ष पाते हैं।** मुनिवर। आहाहा!

विकल्पजालों से रहित होके अपने स्वरूप में रमें, वे ही मोक्ष पाते हैं। व्यवहार में है और व्यवहार मोक्ष का कारण है, ऐसा नहीं। वह तो आरोप से कथन किया है। आहाहा! निश्चय निज स्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और रमणता हो, वहाँ आगे ऐसा विकल्प होता है, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत आदि, व्यवहार से मोक्ष के मार्ग का आरोप किया है। है बन्ध का कारण। आहाहा! यह वाद-विवाद से कुछ पार पड़े, ऐसा नहीं है।

भावार्थः—निर्दोष परमात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ... परमात्मा परमस्वरूप भगवान आनन्द परम स्वभावभाव, ज्ञायकभाव, परम ज्ञायकस्वभाव पारिणामिकभाव। आहाहा! ज्ञायक और पारिणामिकभाव क्या है ? पारिणामिकभाव का अर्थ सहज स्वरूप त्रिकाल अस्तित्व अपना पूर्ण। वह निर्दोष परमात्मा अपनी चीज़, उसकी भावना—उसमें एकाग्रता। उससे **उत्पन्न हुआ जो वीतराग परम आनन्दरूप...** वीतराग परम आनन्दरूप **निर्मल जल...** दो शब्द पड़े रहे। '**निर्मलनीरपूरप्रवाह**' यह शब्द है। पूर प्रवाह शब्द है। पूर प्रवाह शब्द पड़ा रहा। वीतराग परम आनन्दरूप निर्मल जल के पूर का प्रवाह। आहाहा! ओहोहो! भाषा!

निर्दोष परमात्मा अपना त्रिकाली स्वरूप, उसकी भावना से उत्पन्न हुआ। व्यवहार से उत्पन्न हुआ है, ऐसा नहीं कहा यहाँ। आहाहा! भगवान आत्मा... आहाहा! निज परमात्मा, निर्दोष परमात्मा। आहाहा! देखो! आत्मा ऐसा है। उसकी एकाग्रता से उत्पन्न हुआ वीतराग परमानन्दरूप, वीतरागी परमानन्दरूप निर्मल जल, प्रगट, हों! जल पूर प्रवाह **उसके धारण करनेवाले...** आहाहा! आनन्द जल के प्रवाह के पूर को धारण करनेवाला। आहाहा! क्या भाषा! **और ज्ञान-दर्शनादि गुणों के समूहरूपी चन्दनादि वृक्षों के वनों से शोभित...** आहाहा! दिव्यध्वनि की, बाह्य तीर्थों की बात की। भगवान, आहाहा! **ज्ञान-दर्शनादि गुणों के समूहरूपी चन्दनादि वृक्षों के वनों से शोभित...** वनों से। ज्ञान-दर्शनादि गुणोंरूपी समूह, वह चन्दनवृक्ष ऐसा। उसके वन से शोभित भगवान अरिहन्तदेव, वह तीर्थ है। सब तीर्थ में अरिहन्तदेव व्यवहार से तीर्थ है, ऐसा कहते हैं। परमार्थ से तीर्थ तो भगवान आत्मा है। परन्तु बाह्य में साक्षात् अरिहन्त, वे सब तीर्थों में तीर्थ व्यवहार से उत्कृष्ट वे हैं। ओहोहो!

वीतराग परमानन्दरूप जल के पूर का प्रवाह, उसके धारण करनेवाले अरिहन्त भगवान, ज्ञान-दर्शन आदि गुणों के समूहरूपी चन्दनवृक्ष, ऐसा। चन्दनवृक्ष की उपमा दी है। **वृक्षों के वनों से शोभित तथा देवेन्द्र चक्रवर्ती गणधरादि भव्यजीवरूपी तीर्थ-यात्रियों के कानों को सुखकारी ऐसी दिव्यध्वनि....** आहाहा! देवेन्द्र—देव के इन्द्र, चक्रवर्ती, मनुष्य के इन्द्र—नरेन्द्र, गणधर—सन्त के नायक बड़े, गुण के धारक—ऐसे **भव्यजीवरूपी तीर्थ-यात्रियों के...** ऐसे तीर्थयात्री। ऐसे ये तीर्थयात्री। आहाहा! उनके **कानों को सुखकारी ऐसी दिव्यध्वनि से शोभायमान....** भगवान हैं। दिव्यध्वनि से शोभायमान। जो ऐसे देवेन्द्र, चक्रवर्ती आदि तीर्थयात्रियों को सुनने में आती दिव्यध्वनि। आहाहा! **कानों को सुखकारी ऐसी दिव्यध्वनि....** भगवान की वाणी, उससे भगवान शोभायमान है। आहाहा! ॐध्वनि। 'ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे, ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' भगवान की ओम् ध्वनि सुनकर गणधर शास्त्र रचे, ऐसी दिव्यध्वनि से शोभायमान... आहाहा! भगवान।

और अनेक मुनिजनरूपी राजहंसों को आदि लेकर नाना तरह के पक्षियों के शब्दों से महामनोहर.... मुनिजनरूपी राजहंस की आवाज। आहाहा! **आदि लेकर नाना तरह के पक्षियों के शब्दों से महामनोहर जो अरहन्त वीतराग सर्वज्ञ....** लो, आहाहा! अर्हत, अर्हंत शब्द है, हों! संस्कृत में अर्हंत है। '**यदर्हद्वीतरागसर्वज्ञस्वरूपं**' यहाँ तो अरिहन्त कहते हैं न। अर्हंत वीतराग सर्वज्ञ ही निश्चय से महातीर्थ देवेन्द्रों... आहाहा! चक्रवर्तियों, गणधरादि **भव्यजीवरूपी तीर्थ-यात्रियों के...** वे भगवान तीर्थ हैं। आहाहा! वे अभी व्यवहार हों! व्यवहारतीर्थ में ऊँचे तीर्थ वे है, व्यवहार। आहाहा! उनकी तो उपस्थिति नहीं। परन्तु कहते हैं, उत्कृष्ट तीर्थ वे हैं। आहाहा! जहाँ देवेन्द्र, चक्रवर्ती, सन्त यात्री जो हैं, उन यात्रियों के झुण्ड हैं, उन्हें उपकारी भगवान की दिव्यध्वनि है। आहाहा! मुनि भी अन्दर चर्चा करते हों, शब्द-आवाज... आहाहा!

अरहन्त वीतराग सर्वज्ञ वे ही निश्चय से महातीर्थ हैं, उनके समान अन्य तीर्थ नहीं हैं। बाह्य के तीर्थ भी तीर्थंकर के सिवाय दूसरा तीर्थ उत्कृष्ट नहीं। आहाहा! समझ में आया? **वे ही संसार तरने के कारण परमतीर्थ हैं।** आहाहा! **जो परम समाधि में लीन महामुनि हैं, उनके वे ही तीर्थ हैं,...** वास्तव में तीर्थ स्वयं है, अपना स्वरूप। **निश्चयनय**

से निज शुद्धात्म... देखो! **शुद्धात्मतत्त्व के ध्यान के समान दूसरा कोई तीर्थ नहीं है,...** आहाहा! वह तो व्यवहारतीर्थ कहा। निश्चयनय से... वह व्यवहारतीर्थ, हों! महामुनि को भी वह तीर्थ है। निश्चय से **निज शुद्धात्मतत्त्व के ध्यान के समान...** निज शुद्धात्मतत्त्व के ध्यान समान, आहाहा! **दूसरा कोई तीर्थ नहीं है,...** भगवान अभी नहीं और तुम यह बात अभी करते हो। कोई टीका करता है। अरिहन्त भगवान तो है नहीं अभी और ऐसी बड़ी-बड़ी बातें! सुन तो सही। साक्षात् भगवान हों, वे महातीर्थ हैं। वह तीर्थ फिर साधारण है। व्यवहारतीर्थ में, हों! पुण्यबन्ध के कारण में तीर्थ। आहाहा! वे अरिहन्त भी तीर्थ हैं और सब कारण में महातीर्थ है। आहाहा! जहाँ दिव्यध्वनि निकले... आहाहा! यात्री... आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य भी सदेह यात्रा करने गये थे न भगवान की। भगवान की यात्रा करने गये थे। आहाहा! आठ दिन रहे थे। साक्षात् सदेह। यहाँ सब तीर्थ तो बहुत थे। गिरनार आदि। साक्षात् तीर्थ वे हैं, तो वहाँ गये थे। व्यवहार, हों! आहाहा! निश्चय में तो भगवान आत्मा ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का पूर। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के जल के प्रवाह का पूर, उसमें लीन होना। आहाहा! अरे! व्यवहार की तो गिनती भी करते नहीं। व्यवहार होता है, ऐसा कहा, होता है; परन्तु उससे निश्चयतीर्थ होता है— ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार हो, निमित्त हो, है, दो नय का विषय नहीं? व्यवहार और निमित्त कार्यकर नहीं। आहाहा! कार्यकर नहीं तो फिर व्यवहार किसलिए? परन्तु व्यवहार आता है। जब तक वीतरागता न हो, पूर्ण सर्वज्ञ न हो, तब तक बीच में स्व का आश्रय है, अपूर्ण है, पूर्ण आश्रय बिना पर के आश्रय से राग आये बिना नहीं रहता, परन्तु है वह बन्ध का कारण। निश्चय मोक्ष को सहायक है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

और व्यवहारनय से तीर्थंकर परमदेवादि के गुणस्मरण के कारण मुख्यता से शुभ बन्ध के कारण... आहाहा! व्यवहार से तीर्थंकर परम देवाधिदेव के गुणस्मरण का कारण। ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं? यह तीर्थ है, वे तो तीर्थंकरादि के गुणस्मरण का कारण है। जहाँ से मोक्ष पधारे होते हैं। आहाहा! ... गुणस्मरण है, शुभभाव है। आहाहा! समझ में आया? **परमदेवादि के गुणस्मरण के कारण मुख्यता से शुभ बन्ध के कारण**

ऐसे जो कैलाश, सम्मेदशिखर... लो। **आदि निर्वाणस्थान हैं...** वे निर्वाणस्थान, वह शुभभाव का कारण है, गुण का स्मरण होता है। आहाहा! वह गुणस्मरण होता है, वह शुभ विकल्प-राग है। आहाहा! (वन्दे) तद्‌गुण लब्धये, आता है न?

मुमुक्षु : मोक्षमार्गस्य नेत्तारं भेत्तारं....

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारे गुण की प्राप्ति के लिये वन्दन करता हूँ। वन्दन है, वह विकल्प है। परन्तु मेरे गुण के स्मरण में वह निमित्त आता है, इसलिए ऐसा कहने में आता है कि तुम्हारे गुण की प्राप्ति के लिये तुम्हे वन्दन करता हूँ। उनके गुण तो यहाँ आत्मा में हैं। उनकी प्राप्ति के लिए वन्दन का तो विकल्प है, उससे कुछ वन्दन नहीं होता। बहुत से ऐसा कहते हैं इसके अर्थ में, देखो! (वन्दे) तद्‌गुण लब्धये—उनके गुण की प्राप्ति के लिये उन्हें वन्दन करता हूँ।

मुमुक्षु : शब्दार्थ तो ऐसा होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शब्दार्थ तो ऐसा होता है, परन्तु भावार्थ समझना चाहिए न! इसका तात्पर्य समझे बिना ऐसा कि....

कैलाश, सम्मेदशिखर आदि निर्वाणस्थान हैं, वे ही व्यवहारमात्र तीर्थ कहे हैं। व्यवहारमात्र तीर्थ कहे हैं। **जो तीर्थ-तीर्थ परिभ्रमण करे, और निज तीर्थ का जिसके श्रद्धान परिज्ञान आचरण नहीं हो,...** आहाहा! वह तीर्थ करने निकलता है, यह सुनने में भी निवृत्त न हो। गिरनार की यात्रा और यहाँ से यहाँ... यहाँ से यहाँ। आहाहा! सच्चा सुनने का भाव है, वह शुभ नहीं? उसकी अपेक्षा शुभ विशेष है। आहाहा! बहुत... जाते हों न, यहाँ जाये और यहाँ जाये... दौड़ादौड़, पाव घण्टे आ जाये, आधे घण्टे देख जाये और भागे। अब तो उस तीर्थ में डाला है न, उसमें डाला है यह, सोनगढ़ को भी तीर्थ में डाला है। तीर्थ की है न? पुस्तक प्रकाशित होनेवाली है। शाहूजी की ओर से लेख आया है। सोनगढ़ को तीर्थ स्थापित किया है। यहाँ कोई अतिशय क्षेत्र नहीं, यहाँ कोई निर्वाणक्षेत्र नहीं परन्तु धर्मात्मा ज्ञानी के पास जाने का केन्द्रस्थान है, ऐसा लिखा है। सोनगढ़ भी एक तीर्थ है। बड़ा लेख आया है। छापनेवाले हैं। आहाहा! यह भी व्यवहारतीर्थ है। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : सोनगढ़ तीर्थाधिराज है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शाहूजी ने डाला है, मूल तो भगतराम ने डाला लगता है। भगतराम है न? दिल्ली। उसे प्रेम है। वह यहाँ आये थे। कोटा, कोटा। कोटा में आये थे और व्याख्यान सुने। उन्हें प्रेम था। सुनकर कहे, ओहो! ऐसी बात तो कहीं है नहीं। सामाजिक में है। सामाजिक में बहुत भाग लेता है भगतराम। समाज इकट्ठी हो उसमें। तब ऐसा बोला था। कोटा में व्याख्यान सुना। आहाहा! कहीं है नहीं। बात सच्ची। बेचारे को रस पड़ा परन्तु सामाजिक में जहाँ-तहाँ।

मुमुक्षु : एक बार बात सुने....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक बार सुने, दो-चार दिन, आठ दिन कि यह क्या है? यह तत्त्व कहाँ है? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... आहाहा!

और निज तीर्थ का जिसके श्रद्धान परिज्ञान... तीन लिया है। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन, वह निजतीर्थ है। उसका जिसे श्रद्धान नहीं—समकित नहीं, उसका परिज्ञान। देखो, परिज्ञान। आहाहा! है पाठ में, '**श्रद्धानपरिज्ञानानुष्ठान।**' उसका आत्मज्ञान, आहाहा! **आचरण नहीं हो...** आत्मा में रमना, वह आचरण नहीं। **वह अज्ञानी है।** आहाहा! निज स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और आचरण नहीं, वहाँ ऐसे तीर्थ में भ्रमे, तथापि मूढ़ और अज्ञानी है। **उसके तीर्थ भ्रमने से मोक्ष नहीं हो सकता।** ऐसी तीर्थ की भ्रमणा करे, लाख-करोड़ उड़ावे। आहाहा! निज तीर्थ बिना परतीर्थ से कभी मुक्ति नहीं होती। बहुत सरस बात। स्व का आश्रय करके... आहाहा! श्रद्धा, ज्ञान और रमणता हो, वह मोक्ष का मार्ग है। वह तीर्थ यथार्थ है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ८६

अथ ज्ञानिनां तथैवाज्ञानिनां च यतीनामन्तरं दर्शयति--

२०९) णाणिहिँ मूढहँ मुणिवरुहँ अंतरु होइ महंतु।
देहु वि मिल्लइ णाणियउ जीवइँ भिण्णु मुणंतु।।८६।।

ज्ञानिनां मूढानां मुनिवराणां अन्तरं भवति महत्।
देहमपि मुञ्चति ज्ञानी जीवाद्भिन्नं मन्यमानः।।८६।।

ज्ञानिनां मूढानां च मुनिवराणां अन्तरं विशेषो भवति। कथंभूतम्। महत्। कस्मादिति चेत्। देहमपि मुञ्चति। कोऽसौ। ज्ञानी। किं कुर्वन् सन्। जीवात्सकाशाद्भिन्नं मन्यमानो जानन् इति। तथा च। वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी पुत्रकलत्रादिबहिर्दव्यं तावद्दूरे तिष्ठतु शुद्धबुद्धैकस्वभावात् स्वशुद्धात्मस्वरूपात्सकाशात् पृथग्भूतं जानन् स्वकीयदेहमपि त्यजति। मूढात्मा पुनः स्वीकारोति इति तात्पर्यम्।।८६।। एकमेकचत्वारिंशत्सूत्रप्रमितमहास्थलमध्ये पञ्चदशसूत्रैर्वीतरागस्वसंवेदन-ज्ञानमुख्यत्वेन द्वितीयमन्तरस्थलं समाप्तम्। तदनन्तर तत्रैव महास्थलमध्ये सूत्राष्टकपर्यन्तं परिग्रहत्यागव्याख्यानमुख्यत्वेन तृतीयमन्तरस्थलं प्रारभ्यते।

आगे ज्ञानी और अज्ञानी यतियों में बहुत बड़ा भेद दिखलाते हैं–

ज्ञानी जन अरु मूढ़ मुनि में यह महान अन्तर जानो।
तन से निज को भिन्न जानकर ज्ञानी तन को भी छोड़े।।८६।।

अन्वयार्थ :– [ज्ञानिनां] सम्यग्दृष्टि भावलिंगी [मूढ़ानां] मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी [मुनिवराणां] मुनियों में [महत् अंतरं] बड़ा भारी भेद [भवति] है। [ज्ञानी] क्योंकि ज्ञानी मुनि तो [देहम् अपि] शरीर को भी [जीवाद्भिन्नं] जीव से जुदा [मन्यमानः] जानकर [मुचंति] छोड़ देते हैं, अर्थात् शरीर का भी ममत्व छोड़ देते हैं, तो फिर पुत्र, स्त्री आदि का क्या कहना है? ये तो प्रत्यक्ष से जुदे हैं, और द्रव्यलिंगीमुनि लिंग (भेष) में आत्म-बुद्धि को रखता है।

भावार्थ :– वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी महामुनि मन–वचन–काय इन तीनों से अपने को भिन्न जानता है, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मादि से जिसको ममता नहीं है, पिता, माता, पुत्र, कलत्रादि की तो बात अलग रहे जो अपने आत्म–स्वभाव से निज देह को

ही जुदा जानता है। जिसके परवस्तु में आत्मभाव नहीं है। और मूढ़ात्मा परभावों को अपने जानता है। यही ज्ञानी और अज्ञानी में अन्तर है। पर को अपना मानें वह बँधता है, और न मानें वह मुक्त होता है। यह निश्चय से जानना।।८६।। इस प्रकार इकतालीस दोहों के महास्थल के मध्य में पन्द्रह दोहों में वीतरागस्वसंवेदनज्ञान की मुख्यता से दूसरा अंतस्थल समाप्त हुआ।

वीर संवत् २५०२, मागसर कृष्ण ८, मंगलवार
दिनांक-१४-१२-१९७६, गाथा - ८६, प्रवचन-१५९

परमात्मप्रकाश है। ८५ गाथा हुई न? आज कुन्दकुन्दाचार्य महाराज का दिवस है। आये नहीं वे? वे हिन्दी अभी तक आये नहीं। गये थे न? आये?

आज कुन्दकुन्दाचार्य का आचार्य पदारोहण दिवस है। पौष कृष्ण ८, सिद्धान्त की—आगम की पौष कृष्ण ८ है, लौकिक में मागसर कृष्ण ८ है। आज आचार्यपद मिला था। छोटी उम्र में मिला था। अन्दर लेख होगा कहीं। फिर आचार्यपद जिनचन्द्र, उनके गुरु थे, उनके पास इन्होंने दीक्षा ली थी और आत्मवैभव प्रगट किया। यह पाँचवीं गाथा में आता है न? पाँचवी गाथा, समयसार। मुझे निजवैभव कैसे प्राप्त हुआ? आत्मवैभव, हों! यह धूल-वैभव नहीं। यह पैसा और राजपाट यह तो धूल का वैभव है। अपना निजवैभव... उसमें पाँचवीं गाथा में तो ऐसा लिखा है कि महावीरस्वामी भगवान त्रिलोकनाथ निर्मल विज्ञानघन में लीन थे। निकला? नहीं दिखा। दूसरा है, उसमें है। इसमें पूरा नहीं, दूसरा है, पुस्तक होगी। यह पुस्तक बराबर नहीं। साधारण बात है सब। दूसरी पुस्तक है।

मुमुक्षु : जिनचन्द्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : जिनचन्द्र इनके गुरु थे। वे ऐसा लिखते हैं कि हमारे आत्मवैभव कैसे प्रगट हुआ? कि निर्मल विज्ञानघन जो भगवान महावीर उसमें निमग्न थे। पाँचवीं गाथा में है और फिर गणधर भी अपने निर्मल विज्ञानघन में निमग्न थे। प्रत्येक के शब्द यही प्रयोग किया है। और हमारे गुरुपर्यन्त, मुनि, हमारे गुरु निर्मल विज्ञानघन में निमग्न

थे। यह व्याख्या की है। पंच महाव्रत पालते थे, नग्न थे, यह बात नहीं ली। वह तो बाह्य चीज़ है। आहाहा!

अपना स्वरूप जो आत्मा निर्मल विज्ञानघन है। आहाहा! उसमें विकल्प का प्रवेश नहीं। संसार के विकल्प जो हैं, उनका प्रवेश नहीं। ऐसी चीज़ में हमारे गुरु पर्यन्त, भगवान से लेकर यहाँ तक, आहाहा! सबको एक में डाला है। केवली, मुनि सबको एक में डाला है। केवली भी निर्मल विज्ञानघन में निमग्न हैं और फिर गणधर से लेकर हमारे गुरुपर्यन्त निर्मल विज्ञानघन जो आत्मस्वभाव, उसमें मग्न तो समकिती भी है, परन्तु यह तो निमग्न (थे)। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि भी सम्यग्दर्शन में अपने निर्मल विज्ञानघन की रुचि में मग्न है। राग में मग्न नहीं। आहाहा! और मुनि जो है... आहाहा! मुनि किसे कहते हैं, वे तो निर्मल विज्ञानघन चैतन्यप्रभु, अनन्त चैतन्यप्रकाश का पूर, नूर—तेज ऐसे निर्मल विज्ञानघन में मग्न नहीं, परन्तु निमग्न थे। आहाहा! समझ में आया? यह गुरु ने ऐसा उपदेश हमको मेहरबानी करके दिया। शुद्धात्मा का उपदेश, ऐसा पाठ है। आहाहा! दूसरी बात की ही नहीं? हमको हमारे गुरु ने, ठेठ भगवान महावीर से लेकर हमको यह उपदेश दिया, शुद्धात्मा। उससे हमारा निज वैभव, आनन्द का वेदन और आनन्द का अनुभव, यही हमारा वैभव है। आहाहा!

इस वैभव की छाप क्या? पोस्ट में छाप लगाते हैं या नहीं? तो कहते हैं कि हमारे निज वैभव में आनन्द की मोहरछाप है। उसमें है, पाँचवीं गाथा (में)। आहाहा! अपना स्वरूप आनन्दघन और निर्मल विज्ञानघन का अनुभव, उसकी मोहरछाप क्या? ट्रेडमार्क क्या? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द झरता है। हमारी पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द आता है, यह उसकी मोहरछाप—ट्रेडमार्क है। आहाहा! ऐसे आचार्य देखो तो बात-बात में अन्तर है। निर्मल विज्ञानघन भगवान से लेकर अपने गुरुपर्यन्त लिये। पंच महाव्रत पालते थे, नग्न रहते थे, यह बात नहीं की। वह तो बाह्य चीज़ है, वह कहीं मुनिपना नहीं है। आहाहा! ऐसे आचार्य, उनके गुरु ने आज आचार्यपद दिया। समझ में आया? उनकी योग्यता देखकर, आज पौष कृष्ण ८ है। वह आचार्यपद सहज ऐसी योग्यता से मिलता है, जबरदस्ती दे, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा! इससे तीन पद में आया न? मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो। तीसरे नम्बर में

कुन्दकुन्दाचार्य आये। बीच में साधु-बाधु सब छोड़ दिये। उनका अनादर नहीं, हों! मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी। सनातन दिगम्बर धर्म में, जैनधर्म में तीसरे नम्बर में कुन्दकुन्दाचार्य आये। समझ में आया? उन कुन्दकुन्दाचार्य का आज आचार्य पदारोहण दिवस है। पौष कृष्ण ८। बाद में तो बहुत चर्चा चली है। गिरनार में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। वहाँ श्वेताम्बर संघ भी आया था। उसमें है यह। बराबर विस्तार नहीं, वह पुस्तक दूसरी है। उसमें उसकी तिथि और वार और आचार्यपद, यह लिखा है। वह पुस्तक निकालना। यह पुस्तक नहीं। उसमें है सही थोड़ा-थोड़ा परन्तु मुख्य नहीं। दूसरी पुस्तक हैं।

उन जिनचन्द्राचार्य ने इन्हें आचार्यपद दिया और आचार्यपद में गिरनार यात्रा करने गये थे। यात्रा। वहाँ श्वेताम्बर संघ आया था। दोनों के बीच वाद हुआ। वाद करते-करते बहुत वाद हुआ। अन्त में कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा कि यह एक अम्बादेवी है पत्थर की, वह बोलेगी कि क्या है। इतना तो है।

मुमुक्षु : ३८ है यह।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, है न। ३८ है न, खबर है। होने के बाद उसने उत्तम रीति से... यह वाँचा है, खबर है। यहाँ १८ लिखा गया है, वह झूठा है। ३८ चाहिए। जैनधर्म का प्रचार किया और यह सब है। विशेष बात है... इससे यह है, उसके कितने वर्ष में आचार्यपद, कितने वर्ष में दीक्षा और कितने वर्ष में देह छूटकर स्वर्ग में गये, यह सब है। समझ में आया? सब देखा है न! यहाँ तो अनेक शास्त्र (देखे हैं)। चिह्न किया हो वहाँ। यह नहीं, मूल शास्त्र दूसरा है। इसमें चिह्न नहीं है।

ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य तीसरे नम्बर में आये, देखो! मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो, भगवान के पास गये थे। ध्यान में बैठे थे, वहाँ आगे आश्रम है न? पौन्नूरहिल। वहाँ गये थे हम, संघ साथ में था, बहुत लोग थे, हजार लोग थे, मोटर थी। वहाँ आगे कुन्दकुन्दाचार्य ध्यान में थे, उसमें सीमन्धर भगवान का विरह लगा। अरे! भगवान का विरह है, भगवान नहीं। तो अन्दर में भगवान को नमस्कार किया। वहाँ आगे सीमन्धर भगवान तो अभी विराजते हैं तीर्थंकरदेव केवली परमेश्वर

हैं महाविदेहक्षेत्र में। उनकी दिव्यध्वनि में ऐसा (आया कि) सद्धर्म वृद्धिरस्तु (आया)। उसमें है, उसमें लिखा है। सद्धर्म वृद्धिरस्तु ऐसी आवाज आयी। लोग आश्चर्य को प्राप्त हुए कि यह क्या? किसकी आवाज आयी? वहाँ मुनि आये। कुन्दकुन्दाचार्य नग्न दिगम्बर मुनि, भगवान के पास। और ऊँचा शरीर। कहाँ बैठना? वहाँ तो पाँच सौ धनुष का देह। भगवान के पास... भगवान का पाँच सौ धनुष का—दो हजार हाथ ऊँचा (देह) है। भगवान अभी विराजते हैं।

दूसरे देव ने उनको, भगवान विराजते थे, वहाँ नजदीक बिठलाये। क्योंकि चार हाथ है, और भगवान तो दो हजार हाथ। पद्मनन्दि वहाँ के चक्रवर्ती थे, हाथ में लेकर पूछते हैं, महाराज! यह कौन है? कुन्दकुन्दाचार्य को हाथ में लिया। दो हजार हाथ ऊँचा और इनका चार हाथ। पतंगिया जैसा दिखाई दे। कौन है यह महाराज? भगवान के श्रीमुख से निकला कि भरतक्षेत्र के चारित्र, अध्यक्ष चारित्र के आचार्य हैं। आहाहा! समझ में आया?

फिर वहाँ आठ दिन रहे, भगवान की साक्षात् वाणी आठ दिन सुनी और कितनी ही चर्चा श्रुतकेवली मुनियों के साथ की। वहाँ से आकर फिर यह सब शास्त्र बनाये समयसार आदि। साक्षात् दिव्यध्वनि का सार है। धीरुभाई! यह मार्ग है, भाई! सूक्ष्म मार्ग बहुत। यह समयसार में जो अधिकार है... ओहोहो! अलौकिक अधिकार है। मुनिपना किसे (कहते हैं)? निर्मल विज्ञानघन में लीन होना, वह मुनिपना है। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं, यह व्याख्या ग्यारहवीं गाथा में शुरु की। भूतार्थ भगवान त्रिकाल चिदानन्द प्रभु है। कहाँ, खबर नहीं क्या चीज़ है। सत्यार्थ भूतार्थ भगवान आत्मा है त्रिकाल त्रिकाल। उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म की प्रथम शुरुआत। भूतार्थ भगवान त्रिकाल स्वरूप शुद्ध चैतन्यघन के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? और उसके उग्र आश्रय से मुनिपना होता है। आहाहा! यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त और कुन्दकुन्दाचार्य के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं है नहीं। समझ में आया? अलौकिक बात है। यह बात यहाँ करते हैं। ८६ (गाथा)।

आगे ज्ञानी और अज्ञानी यतियों में बहुत बड़ा भेद दिखलाते हैं:—है? ज्ञानी और अज्ञानी मुनियों में बहुत भेद है। आहाहा! बहुत अन्तर है। शास्त्र-सिद्धान्त पुकार करता है। ८६।

२०९) णाणिहिँ मूढहँ मुणिवरुहँ अंतरु होइ महंतु।
देहु वि मिल्लइ णाणियउ जीवइँ भिण्णु मुणंतु।।८६।।

अन्वयाथ:—सम्यग्दृष्टि भावलिंगी... लो, यह शास्त्र के शब्द हैं। जिसे आत्मज्ञान हुआ है। राग की क्रिया से भिन्न भगवान आत्मा, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव, वह सब राग है। आहाहा! उस राग से भिन्न आत्मा शुद्ध चैतन्यघन का अनुभव वह सम्यग्दृष्टि है। वह सम्यग्दृष्टि भावलिंगी, ऐसा शब्द लिया है। जिसे अन्तर निश्चय सम्यग्दर्शन हुआ, उस सहित मुनिपना, वह भावलिंगी है। जिसे भावलिंग प्रगट हुआ है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी... 'मूढ़ानां' और जिसकी दृष्टि, 'राग से लाभ होता है, व्यवहार करते-करते निश्चय होता है', ऐसी दृष्टि है मूढ... आहाहा! वह द्रव्यलिंगी है। यह शास्त्र के शब्द हैं, हों! शास्त्र तो बात स्पष्ट करे। पाठ है न, पाठ है। अन्तर विशेष कहते हैं न। क्यों? कि **मुनियों में बड़ा भारी भेद है।** सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि में बड़ा भेद है। द्रव्यलिंगी और भावलिंगी में बहुत अन्तर है। आहाहा! **क्योंकि ज्ञानी मुनि तो शरीर को भी जीव से जुदा जानकर...** आहाहा! शरीर जो नजदीक में नजदीक चीज़ है, एक क्षेत्र में रहनेवाली, उसे भी अन्दर भिन्न जानते हैं। शरीर की क्रिया चलती है, वह भी आत्मा से भिन्न है। आहाहा! वह तो जड़ की क्रिया है। सूक्ष्म बात, बापू! और शरीर के अंग—वाणी, मन और श्वास, वे शरीर के अंग हैं, वे भी आत्मा से भिन्न हैं। समझ में आया? यह श्वास चलता है न, श्वास? और मन है यहाँ, अनन्त परमाणु का पिण्ड, विचार करने में निमित्त और यह वाणी है। श्वास और शरीर। यह सब शरीर के अंग हैं। इनसे भी आत्मा को भिन्न जानते हैं। वाणी से, मन से, श्वसोच्छ्वास से। आहाहा! वह क्रिया मेरी नहीं। श्वास चलती है, देह चलती है, वह क्रिया मेरी नहीं, वह तो जड़ की क्रिया है। आहाहा! समझ में आया?

मुनियों में बड़ा भारी भेद है। क्योंकि ज्ञानी मुनि तो शरीर को भी... ऐसा। दूसरी वस्तु का तो क्या कहना, स्त्री-पुत्र, मकान और शिष्य तो दूसरी चीज़ भिन्न है, परन्तु देह को भी अपना नहीं मानते। आहा! वाणी को भी अपनी नहीं मानते, श्वास को अपनी नहीं मानते, मन को अपना नहीं मानते। आहाहा! यह योगीन्द्रदेव १३०० वर्ष पहले हुए हैं। परमात्मप्रकाश (बनाया है)। सबमें समयसार की छाप है। आहाहा! यह **'देहम् अपि'** ऐसा कहा न? **'देहम् अपि'** अर्थात्? दूसरी चीज़ का तो क्या कहना, कहते हैं। यह मेरा क्षेत्र है और मेरा मन्दिर है और मेरे शिष्य हैं, यह तो कहीं दूर रह गयी बात। आहाहा! देह यह जड़ मिट्टी धूल है, पुद्गल जड़ अजीव है और उसका श्वास भी अजीव है, मन अजीव है, वाणी अजीव है। आहाहा!

उसे **जीव से जुदा जानकर छोड़ देते हैं,...** छोड़ देते हैं, इसका अर्थ (कि) शरीर तो (भिन्न ही) पड़ा है, उसकी ममता छोड़ देते हैं। यह मेरा है, ऐसा छोड़ देते हैं। पाठ तो ऐसा है। **'मन्यमानः मुचंति' छोड़ देते हैं,...** इसका अर्थ क्या? शरीर का ममत्व भी छोड़ देते हैं। शरीर मेरा है, ऐसा ममत्व छोड़ देते हैं। मेरी चीज़ नहीं। वह तो जड़ है, मिट्टी है। जगत की चीज़ अजीव पुद्गल है। आहाहा! मैं तो उससे भिन्न चैतन्यचमत्कार आनन्दकन्द प्रभु मैं हूँ, ऐसा ज्ञानी मुनि भावलिंगी यथार्थ मानते हैं, अनुभव करते हैं। आहाहा! कठिन बात है।

तो फिर पुत्र, स्त्री आदि का क्या कहना है? 'देहम् अपि' शब्द है न? देह भी अर्थात् दूसरी चीज़ को डाला वापस। आहा! पुत्र, स्त्री आदि, शिष्य आदि, वे तो प्रत्यक्ष भिन्न हैं। उन्हें तो ज्ञानी अपने मानता नहीं, उसे अपनी क्रिया मानता नहीं। देह की क्रिया, वाणी की क्रिया, श्वास की क्रिया, मन की क्रिया जड़, उसे अपनी मानता नहीं, वह तो जड़ की क्रिया है। आहाहा! **और द्रव्यलिंगीमुनि लिंग (भेष) में आत्मबुद्धि को रखता है।** आहाहा! शरीर का वेश—मैं नग्न हूँ, पंच महाव्रत के परिणाम मेरे हैं। पंच महाव्रत के परिणाम तो राग हैं। उस वेश को अपना मानता है। वह सब वेश है। आहाहा! समझ में आया? ओहो!

भावार्थः—वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी महामुनि... पाठ में **'देहम् अपि'** कहा था

इसलिए स्पष्टीकरण किया। **मन-वचन-काया...** तीनों ले लिये। देह के अर्थ में मन, वचन और देह सब तीनों देह हैं। आहाहा! है? मन है, वह देह का अंग है, वाणी भी देह का अंग है और देह तो देह है ही। आहाहा! यहाँ मन है हृदय में। अनन्त परमाणु का बना हुआ खिले हुए कमल के आकार जड़ है। आत्मा विचार करने में वह निमित्त है। वह भी जड़ है, यह वाणी जड़ है, आवाज निकलती है, वह जड़ है, अजीव है, पुद्गल है, मिट्टी है। आहाहा! मन, वचन, काय। स्पष्टीकरण किया। पाठ में इतना था न? **'देहम् अपि'।** देह भी। अर्थात् उसके साथ मन और वाणी देह में डाल दिये। आहाहा! ( ) !

अपने को भिन्न जानता है,... आहाहा! धर्मात्मा सन्त मुनि उसे कहते हैं कि अपना रागरहित वीतराग स्वसंवेदनज्ञान और मन, वचन, और काया को अपने से भिन्न जानता है। समझ में आया? अपने से भिन्न जानता है। **द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मादि से जिसको ममता नहीं है,...** आहाहा! धर्मात्मा महामुनि... समकिती को भी नहीं परन्तु वह तो उत्कृष्ट मुनिपना लेना है न। आहाहा! द्रव्यकर्म—जड़ कर्म है आठ कर्म, मिट्टी-जड़। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि आठ कर्म है न अन्दर, वे जड़ हैं। जैसे यह जड़ है, यह शरीर जड़ है, वैसे कर्म जड़ हैं। आहाहा! उस जड़ से भगवान भिन्न हैं। जड़ में अपनी ममता नहीं करता कि कर्म मेरे हैं।

भावकर्म—पुण्य-पाप के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वे भावकर्म हैं। उसे मुनि अपने नहीं मानते। आहाहा! मेरा है, ऐसी ममता नहीं करते। आहाहा! गजब बात है। पाप के परिणाम तो भिन्न रहो, परन्तु पुण्यपरिणाम में ममता नहीं करते कि यह मेरी चीज़ है। आहाहा! अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प हैं, वे भावकर्म हैं। पंच महाव्रत के परिणाम हैं, वे भावकर्म है। उसमें ममता नहीं करते कि वे मेरे हैं और उनसे मुझे लाभ होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि करते हैं, हमारे तो करना पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दृष्टि भी पर को अपना नहीं मानते। यह तो वीतरागी विशेष ज्ञान की बात चलती है। आहाहा!

भावकर्म अर्थात् दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा, यात्रा के भाव हैं, वे भावकर्म विकार परिणाम हैं। आहाहा! उसे सम्यग्दृष्टि भी अपने नहीं मानता। मुनि तो विशेष स्थिरता में लीन है। तो यह मेरे हैं, ऐसा उन्हें नहीं है। आहाहा! समझ में आया? बापू! मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा! टीकाकार विशेष स्पष्टीकरण करते हैं। जड़कर्म जो अजीव है, वे तो मेरे हैं ही नहीं, तो मुझे नुकसान करते हैं, ऐसा भी नहीं है और कर्म जरा मार्ग करे तो मुझे लाभ होता है, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? कर्म पर है, उसमें घटे तो लाभ होता है और बढ़े तो नुकसान होता है, ऐसी चीज़ है ही नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा!

और भावकर्म। शुभ-अशुभभाव जो होते हैं, उन भावकर्म में भी ममता नहीं अर्थात् मेरे हैं, ऐसा है नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प मेरा है, ऐसी ममता नहीं—ऐसा कहते हैं। गजब बात है! आहाहा! यह धर्मानुराग शुभराग... आहाहा! पंच महाव्रत के भाव, व्यवहारसमिति, गुप्ति के भाव, वह भावकर्म है, राग है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि और मुनि को 'वह राग मेरा है', ऐसी ममता है नहीं। आहाहा! मम—मेरी चीज़ तो आनन्दकन्द वीतरागी स्वभाव, वह मेरी चीज़ है। समझ में आया? यह तो जब रागरहित हो जाये, तब न? परन्तु रागरहित ही अभी है। अभी रागरहित ही भगवान है। चैतन्यदल सहजात्मस्वरूप, सहजात्मस्वरूप। सहज आत्मस्वरूप, अकृत्रिम आत्मस्वरूप, अकृत आत्मभाव। वह तो त्रिकाली आनन्दकन्द, उसमें राग का—विकल्प का भाव है नहीं। आहाहा! अभी कहते हैं न, पंच महाव्रत पालना। वह तो व्यवहार के कथन हैं। समझ में आया? भाई! बातें कठिन, बापू! ओहो!

इसे अनन्त काल में परिभ्रमण करते-करते अनन्त अवतार हो गये। यह चौरासी लाख योनि, एक-एक योनि में अनन्त अवतार किये, मिथ्यात्व के कारण से। क्योंकि मिथ्यात्व, वह संसार है। आहाहा! परन्तु कभी इसने सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है और किस प्रकार से प्राप्त होता है, और प्राप्त हो तो उसकी दशा कैसी (होती) है, इसकी खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? बाहर में जरा पाँच-पच्चीस लाख मिले... यह पैसा याद आवे, तब सेठ याद आवे। पाँच-पच्चीस लाख कहते हैं न, परन्तु सेठ तो करोड़ोंपति

है। इसलिए उसे पाँच-पच्चीस लाख की गिनती नहीं होती। परन्तु यहाँ तो करोड़ों क्या, अरबों रुपये होते हैं। अभी है न, बनिया के पास अरबों रुपये है। आहाहा! अरबों, अरबों, हों! सौ करोड़। तो क्या है धूल में? वह तो जड़ मिट्टी है। वह मेरी चीज़ है और मुझे लाभ करती है, वह तो मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : भले हो, परन्तु सुखी तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःखी है। लक्ष्मी मेरी है, यह मान्यता ही दुःखरूप है। आहाहा! जड़ चीज़ है, वह तो मिट्टी-धूल है। यहाँ तो देह का इन्कार किया। यहाँ तो मुनि की बात है न! इसलिए पैसे-फैसे की बात है ही कहाँ। यह तो देह में मन और वाणी और देह, वे मेरे हैं, ऐसी ममता समकिती को, मुनि को नहीं होती। आहाहा! ऐसा स्वरूप बहुत सूक्ष्म, भाई! यह वीतरागमार्ग है, यह तो वीतराग सर्वज्ञ जिनवरदेव, जिनेश्वरदेव परमात्मा साक्षात् मौजूद विराजते हैं महाविदेहक्षेत्र में, उनकी यह सब वाणी है। समझ में आया? आहाहा!

ममता नहीं है, पिता, माता, पुत्र, कलत्रादि की तो बात अलग रहे... कि हम राजा के पुत्र हैं और दीवान की बहिन के पुत्र हैं, यह तो कहीं रहा। आहाहा! वह तो कुछ है ही नहीं। धर्मी को कुल से पहिचानना, यह बात है ही नहीं। आहाहा! यह राग करता है, उससे पहिचानना, यह भी वस्तु नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय बराबर अच्छा करते हैं, वह आत्मा, ऐसी भी पहिचान करने की चीज़ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **पुत्र, कलत्रादि की तो बात अलग रही, जो अपने आत्म-स्वभाव से निज देह को ही जुदा जानता है।** आहाहा! शरीर की, वाणी की, मन की क्रिया अपने से भिन्न जानता है समकिती—धर्मी। आहाहा!

जिसके परवस्तु में आत्मभाव नहीं है। आहाहा! देखो! स्ववस्तु जो आनन्दकन्द ज्ञायकस्वरूप है, वह मेरी चीज़ है और मेरी चीज़ के अतिरिक्त दूसरी रागादि परवस्तु, उसमें मेरी चीज़ की मान्यता उसे नहीं है। आहाहा! परवस्तु में सब ले लिया। राग-विकल्प उठता है दया, दान, व्रत का, वह राग भी परवस्तु है। अरे! ऐसी बात। क्योंकि यदि अपनी हो तो निकल न जाये। भगवान सिद्ध होते हैं तो यह वस्तु निकल जाती है,

इसलिए वह अपनी नहीं है। आहाहा! ओहोहो! समझ में आया? **जिसके परवस्तु में आत्मभाव नहीं है।** आहाहा! बहुत संक्षिप्त। अपने से राग से लेकर सब वस्तु पर। स्व भगवान ज्ञानानन्द और राग से लेकर सब वस्तु पर। उसमें आत्मभाव नहीं। आहाहा! है? परवस्तु में आत्मभाव (अर्थात्) वह मैं आत्मा हूँ अथवा मेरी वस्तु है, ऐसा भाव नहीं है। आहाहा! जो मुझमें नहीं, वह मेरी चीज़ नहीं। रागादि मुझमें है ही नहीं। आहाहा! स्त्री, पुत्र, परिवार तो कहीं रह गये। वह तो बेचारे उनके कारण से आये और उनके कारण से टिकते हैं और उनके कारण से चले जायेंगे। समझ में आया? आहाहा! पुत्र आवे तो प्रसन्न हो जाये। पुत्र आया। पुत्री आवे तो... हाय... हाय... मुझे खर्च करना पड़ेगा और फिर वापस विवाह करना। पुत्री आवे तो विवाह करना पड़ेगा और पैसा देना पड़ेगा। पुत्र आवे तो अपना नाम भी रखेगा और कमायेगा। अरे... जगत! आहाहा! ठगाई में चला गया। आहाहा!

यहाँ तो वहाँ तक कहा न? परमात्मप्रकाश में कल आया था न! शास्त्रज्ञान जानता है... दूसरी चीज़ तो एक ओर रहो, परन्तु शास्त्रज्ञान जानता है, वह भी वास्तव में तो परवस्तु है। और वह शास्त्रज्ञान जानकर विकल्प तोड़कर निर्विकल्प दृष्टि नहीं करता है तो वह भी मूर्ख है, ऐसा कहा था। जड़... जड़, जड्ड। आहाहा! आया था न? देखो! ८४ (गाथा)।

बोह-णिमित्तैं सत्थु किल लोइ पढिज्जइ इत्थु।
तेण वि बोहु ण जासु वरु सो किं मूढु ण वत्थु ॥८४॥

वह कपटरूप से मूढ़ है, ऐसा कहते हैं। है?

मुमुक्षु : ८३ में भी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ८३ में भी है और यहाँ भी यह है। कहा न! यहाँ '**मूढु**' कहा न, '**मूढु**'। '**सत्थु पढंतु वि होइ जडु**' वहाँ जड़ आया ८३ में। सन्त तो बात स्पष्ट करते हैं। उन्हें कहाँ दुनिया की पड़ी है। दुनिया प्रसन्न हो, खुशी हो... '**सत्थु पढंतु वि होइ जडु**' यहाँ मूढ़ कहा था। ८४ में '**मुढु ण वत्थु**' —वह सत्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? '**जो ण हणेइ वियप्पु।**' पण्डितजी! '**जो ण हणेइ वियप्पु**' ८३। विकल्प है,

राग की वृत्ति छोड़ता नहीं और एकत्वबुद्धि करता है। आहाहा! शास्त्र पढ़कर भी उसका विकल्प अपना है, ऐसा मानता है। आहाहा! और विकल्प तोड़ता नहीं। आहाहा!

ज्ञानस्वभावी भगवान, उसमें जो शास्त्र पढ़ने का विकल्प है, उसे भी छोड़ता नहीं और आत्मज्ञान करता नहीं तो उसे भी यहाँ जड़ और मूर्ख कहा गया है। यह बड़े पैसेवाले करोड़ोंपति और अरबोंपति पर को अपना मानते हैं, वे मूढ़ हैं, जड़ हैं—ऐसा कहते हैं। कहो, दुनिया में बड़ी इज्जत हो, एल.एल.बी. के पूंछड़े लगाये हों, बड़े वकालत के, लो न! यह एम.ए. के, डॉक्टरों को। मूढ़ है।

मुमुक्षु : होशियार गिना जाता हो तो भी मूर्ख?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह होशियार मूर्ख होशियार कहते हैं उसे। मूर्ख लोग उसे होशियार कहते हैं। रामजीभाई को बहुत कहते पहले। एक व्यक्ति तो बहुत महिमा करता है, यहाँ आता है अहमदाबाद का। नहीं? नाम भूल गये। अहमदाबाद के वकील हैं। व्याख्यान में आवे। मंगलभाई? एक आता है, अहमदाबाद का आता है। रामजीभाई तो रामजीभाई के समय में थे। आहाहा! वह आता है। व्याख्यान सुनने आता है। इनके जैसा कोई वकील नहीं था ऐसा। मैंने कहा, उन्हें मैंने एक बार कहा था, यह सब तुम्हारा पठन कैसा वकालत का? मूर्खता से भरपूर कुज्ञान है, कहा। आहाहा! यह वकालत का पठन, डॉक्टर का पठन, सब मूर्खाई से भरपूर पठन है।

यहाँ तो शास्त्र का पठन भी, परन्तु विकल्प न तोड़े तो वह मूर्ख है, ऐसा कहते हैं। आगे बढ़कर, कहते हैं, भाई! आहाहा! बापू! तुझे, आत्मा कौन है? भाई! आहाहा! तू कहाँ गया? कहाँ गया? कहाँ तेरी चीज़ को तूने माना? यहाँ तो स्पष्ट बात है। आहाहा! है न? '**देहि वसंतु वि णिम्मलउ णवि मण्णइ परमप्पु**' क्या कहते हैं? ८३ में यह है। यह भगवान विराजते हैं न यहाँ अन्दर। देह में बसता परमात्मा, तू परमात्मा है। तुझे खबर नहीं। है? '**देहि वसंतु वि णिम्मलउ णवि मण्णइ परमप्पु**' आहाहा! परमात्मप्रकाश नाम है न इस ग्रन्थ का। यह परमात्मप्रकाश है। लो, तुम्हारा परमात्मप्रकाश नाम है न? पण्डितजी के पुत्र का नाम परमात्मप्रकाश है। परमात्मप्रकाश, एक अध्यात्मप्रकाश। परमात्मप्रकाश यह आत्मा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! '**णवि मण्णइ**

परमप्पु' '**देहि वसंतु वि णिम्मलउ।**' देह में रहा हुआ भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु सिद्धस्वरूपी आत्मा, ऐसे परमात्मा को तू नहीं मानता। आहाहा! और दूसरी वस्तु को तेरी मानता है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पुण्य, दया, दान, व्रत का राग। आहाहा! तेरी मान्यता कहाँ चली गयी? तेरी चीज़ से हटकर पर में मान्यता गयी। आहाहा! वीतरागमार्ग सूक्ष्म, बापू! जिनवर देव... परम सत्य है, ऐसी वस्तु कहीं है नहीं। सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर के अतिरिक्त ऐसा स्पष्ट कथन जगत को प्रसिद्ध करना भी कठिन पड़े दूसरे को। ओहोहो!

यहाँ यह कहा, **जिसके परवस्तु में आत्मभाव नहीं है।** बहुत संक्षिप्त शब्द। निज परमात्मा सहजानन्दस्वरूप प्रभु, वह अपनी चीज़। इसके अतिरिक्त रागादि विकल्प, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का भाव, वह सब परवस्तु, परभाव, परद्रव्य है। आहाहा! उसमें आत्मभाव नहीं करता। उसमें तो इतना आया कि व्यवहाररत्नत्रय से निश्चय होगा, उसका तो इसमें निषेध आया। हें! व्यवहाररत्नत्रय को अपना माने और अपना भाव माने तो मूढ़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अपना लाभ तो स्वभाव से अपना लाभ होता है या विभाव से अपना लाभ होता है? अपनी चीज़ में जो स्वभाव है, उसके परिणमन से अपने को लाभ होता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : सब व्यवहार समाप्त हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार-ब्यवहार सब उड़ गया फू होकर। ऐसी कठिन बात, बापू! होवे सही, परन्तु वह हेय है। अन्तर का भगवान का परमात्मस्वरूप का आश्रय परमात्मा अपना, परमात्मा कहा न? '**देहि वसंतु वि णिम्मलउ णवि मण्णइ परमप्पु।**' परमात्मस्वभाव भगवान परमस्वरूप परमानन्द भाव, ज्ञायकभाव चैतन्य अनन्त प्रकाश का पुंज प्रभु, आहाहा! वह तेरी चीज़ है न अन्दर। उसे नहीं जानकर पर को अपना मानता है, (तो तू) जड़ है। आहाहा! ग्यारह अंग और नौ पूर्व की लब्धि प्रगटे और माने कि मेरी है तो, जड़ है—ऐसा कहते हैं। नौ पूर्व की लब्धि (प्रगटे), उसमें क्या हुआ? आहाहा! अपना वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान नहीं हुआ। वहाँ तेरी नौ पूर्व की लब्धि किस काम की? वह नुकसानकारक है। आहाहा! गजब काम, भाई!

और मूढ़ात्मा परभावों को अपने जानता है। लो। आहाहा! मूढ़ जीव, जड़ जीव, मूर्ख जीव, जो अपनी चीज़ नहीं—राग दया, दान, व्रत के विकल्प, वह राग है, उन परभावों को अपने मानता है। आहाहा! कहो, इसमें तो पण्डितजी! स्पष्टीकरण यह है कि राग से लाभ नहीं होता। व्यवहार करते-करते निश्चय नहीं होता, यह नहीं आया?

मुमुक्षु : चौथे काल की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों काल की बात है। एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ। परमार्थ का पंथ तीनों काल एक प्रकार का है। आहाहा!

मूढात्मा। यह वस्तु आचार्य भी ऐसा पुकारते हैं, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! यहाँ तो मूढात्मा कहा, मूर्ख कहा, जड़ कहा। आहाहा! **मूढ़ात्मा परभावों को अपने जानता है। यही ज्ञानी और अज्ञानी में अन्तर है।** लो। यह दोनों में अन्तर। धर्मी अपने को आत्मा आनन्दस्वरूप जानता है और रागादि की क्रिया को अपनी नहीं मानता। आहाहा! अज्ञानी रागादि क्रिया मेरी है, ऐसा मानता है, यह ज्ञानी और अज्ञानी के बीच में अन्तर है। ज्ञानी, अज्ञानी में अन्तर क्या है? यह अन्तर है। आहाहा! बाहर में पुण्यशाली हो, लाखों लोग खम्मा-खम्मा करते हों, उसमें क्या हुआ? समझ में आया?

उस राग के भाव को अपना मानता है, वह मूढ़ात्मा है। आहाहा! और राग, मेरी वस्तु से राग भिन्न है, ऐसा जानता है, वह ज्ञानी है। राग को अपना मानता है, उससे लाभ मानता है, वह अज्ञानी है। ज्ञानी, अज्ञानी के बीच यह अन्तर है। यह अन्तर है, दूसरा कोई अन्तर नहीं। ज्ञानी के शरीर में कुछ रोग हो जाये, काला हो जाये, या इज्जत न हो, ऐसी कोई वस्तु नहीं। अज्ञानी की बड़ी इज्जत हो, शरीर सुन्दर हो, बड़ी प्रतिष्ठा हो, उसमें क्या हुआ?

मुमुक्षु : थोड़ा जाने वह अज्ञानी, बहुत जाने वह ज्ञानी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो राग को अपना जाने, वह अज्ञानी; राग को अपना न जाने, वह ज्ञानी। थोड़ा जाने, वह अज्ञानी और बहुत जाने, वह ज्ञानी—ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : आपने सब अर्थ बदल डाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी बात बदल गयी। यह क्या लिखा है? क्या कहते हैं, देखो न!

जिसके परवस्तु में आत्मभाव नहीं है। रागादि भाव परवस्तु है, उसे धर्मी अपना भाव नहीं मानता। आहाहा! **और मूढ़ात्मा परभावों को अपने जानता है।** आहाहा! **यही ज्ञानी और अज्ञानी में अन्तर है।** आहाहा! दूसरा कोई अन्तर नहीं है। क्रिया तो विशेष करता हो। दया, दान, व्रतादि बहुत करता हो। और ज्ञानी को दया, दान, व्रत न भी हो, अव्रती भी हो। आहाहा! परन्तु पर को अपना नहीं मानकर, अपने स्वरूप को अपना मानता है। अज्ञानी पर को अपना मानता है और अपने स्वरूप को जानता नहीं, बस। वह मूढ़ अज्ञानी और ज्ञानी में इतना अन्तर है। आहाहा! भारी कठिन लगे लोगों को। यह सब लोप हो जाता है, ऐसा लोग कहते हैं। यह तो लोप करते हैं। राग को अपना मानता है और राग से लाभ मानता है, वह व्यवहार का लोप करता है। आहाहा! भाई! ऐसा नहीं। वह तुझमें नहीं, भाई! वह दुःख तुझमें है? तू तो आनन्दस्वरूप है न, भगवान! वीतरागी स्वसंवेदन उस आनन्द का ज्ञान करनेवाला तू है न! आहाहा! आनन्द अर्थात् स्व का। और दुःख का अर्थ वह राग, वह तो दुःख है। परसन्मुख का झुकाव का भाव, वह दुःख है और स्वसन्मुख के झुकाव का परिणमन, वह आनन्द है।

मुमुक्षु : सुख आप किसे कहते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : अतीन्द्रिय आनन्द अन्दर है, उसका स्वाद आना, वह सुख। धूल में कहीं सुख नहीं। अरबोंपति सब भिखारी है, दुःखी... दुःखी।

मुमुक्षु : उसके कारण समझना।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न यह, पर को अपना माने, इस कारण से वह दुःखी है। आहाहा! श्रीमद् में नहीं कहा, श्रीमद् ने? 'लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये।' लक्ष्मी बढ़ी करोड़ों-अरबों रुपये (हुए)। कुटुम्ब बढ़ा।

परिवार और कुटुम्ब है क्या वृद्धि नय को तोलिये
संसार का बढ़ना अरे, नरदेह की यह हार है।

लक्ष्मी और अधिकार और इज्जत बढ़ी, परिवार बढ़ा, उसमें तुझे क्या बढ़ा?

आहाहा! देखो न, सोलह वर्ष की उम्र में, श्रीमद् यह सोलह वर्ष में कहते हैं। देह की उम्र सोलह वर्ष। अभी तो समकित प्राप्त नहीं हुए थे, उससे पहले यह पुकार है। आहाहा! लक्ष्मी और अधिकार, प्रतिष्ठा बढ़ी। लाख रुपये का महीने का वेतन, एक महीने के लाख। क्या हुआ? धूल? लक्ष्मी और अधिकार बढ़ने पर क्या बढ़ा? शुं बढ़ा अर्थात् क्या? क्या कुटुम्ब और परिवार, कुटुम्ब बढ़ा, परिवार बढ़ा। पुत्र के पुत्र, आठ पुत्र और उनके पुत्र और उनके पुत्र... पेढी में सौ मनुष्य, दो सौ मनुष्य। उसमें तुझे क्या बढ़ा?

'संसार का बढ़ना अरे नर देह की यह हार है।' वह तो संसार का बढ़ना है, नरदेह हार जायेगा। आहाहा! 'नहीं एक क्षण तुझको अरे इसका विवेक-विचार है।' ऐसा कहते हैं। आहाहा! 'नहीं एक क्षण तुझको अरे इसका विवेक-विचार है।' अरे... भगवान! तूने एक पल भी ऐसा विचार कभी नहीं किया कि यह बढ़ा उसमें तुझे आत्मा को क्या लाभ हुआ? आहाहा! पाँच सौ का वेतन हो और दो सौ बढ़े, बस! प्रसन्न... प्रसन्न हो जाये, आज लापसी का आंधण करो। लापसी को क्या कहते हैं? लापसी। और हजार वेतन हो और दो सौ घटे... दीन हो जाये। आहाहा! जाधवजीभाई! यह दृष्टान्त दिया था। मोक्षमार्गप्रकाशक।

जिसे दो सौ वेतन हो और पच्चीस बढ़े तो प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। और हजार वेतन हो और दो सौ घटे, उससे तो अधिक है आठ सौ, तो वह दु:ख मानता है। उस परचीज़ के कारण से नहीं है, अपनी मान्यता के कारण से वह दु:खी है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! बात तो कठिन है। वीतरागमार्ग वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग कोई दूसरा है। आहाहा!

पर को अपना मानें, वह बँधता है,... अब स्पष्टीकरण करते हैं। पर को अपना माने, उसे मिथ्यादृष्टि कहा था, अब पर को अपना माने, वह बँधता है। आहाहा! वह रागभाव जो शुभ है, उसे अपना माने तो बन्धन करता है। आहाहा! अब यहाँ यह कहते हैं, व्यवहार राग का बन्धन है, उससे अबन्धस्वरूप के अबन्ध परिणाम हों? क्योंकि आत्मा अबन्धस्वरूपी है न? आत्मा अबन्धस्वरूपी के अबन्ध परिणाम। मोक्ष के

कारणरूप अबन्धपरिणाम होते हैं। वह व्यवहार से राग से अबन्ध परिणाम होते हैं? बन्धनभाव से अबन्ध परिणाम होते हैं, (यह बात) झूठ है। आहाहा! अरे.. प्रभु! अनन्त अवतार हुए, बापू! दुनिया का करके कुछ पैसा मिले और हो... यह मकान बनाओ, गहने बनाओ। दागीना को क्या कहते हैं? जेवर। कपड़ा लाओ पाँच हजार, दस हजार का। आहाहा!

एक गाँव में गये थे न अभी? वहाँ मुम्बई। रसिकभाई के बहनोई नहीं? गये थे न शाम को वहाँ? मखमल बिछाया हुआ मकान में। पाँच-छह करोड़ रुपये हैं। शाम को आहार करने गये थे। वहाँ सर्वत्र चरण कराये। मखमल, मखमल। कितने पाँच लाख का तो फर्नीचर था। पाँच लाख का फर्नीचर। घरबखरो समझते हो? फर्नीचर। वे भाई नहीं अपने? रसिकभाई राजकोटवाले। बहिन के बहनोई। उनके बहनोई हैं वहाँ? शाम को भोजन का कहा था। गये, चरण सर्वत्र (कराये)। सर्वत्र मखमल बिछा हुआ मकान में। पाँच लाख का तो मात्र फर्नीचर होगा। धूल में भी है नहीं। आहाहा! उसमें बैठा हो तो मानो उसमें मानो सुखी हैं। दुःखी है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **पर को अपना मानें वह बँधता है,...** आहाहा! **और न मानें वह मुक्त होता है। यह निश्चय से जानना।** लो, यह अधिकार पूरा हुआ। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ८७

तद्यथा-

तदनन्तर तत्रैय महास्थलमध्ये सूत्राष्टकप्रयन्तं परिग्रहत्यागव्याख्यानमुख्यत्वेन तृतीय-मन्तरस्थलं प्रारभ्यते।

२१०) लेणहँ इच्छइ मूढु पर भुवणु वि एहु असेसु।
बहु विह-धम्म-मिसेण जिय दोहिँ वि एहु विसेसु।।८७।।

लातुं इच्छति मूढः परं भुवनमपि एतद् अशेषम्।
बहुविधर्ममिषेण जीव द्वयोः अपि एष विशेषः।।८७।।

लातुं ग्रहीतुं इच्छति। कोऽसौ। मूढो बहिरात्मा। परं कोऽर्थः, नियमेन। किम्। भुवनमप्येतत्तु अशेषं समस्तम्। केन कृत्वा। बहुविधधर्ममिषेण व्याजेन। हे जीव द्वयोरप्येष विशेषः। पूर्वोक्त-सूत्रकथितज्ञानिजीवस्यात्र पूर्वोक्त पुनरज्ञानिजीवस्य च। तथाहि। वीतरागसहजानन्दैक-सुखास्वादरूपः स्वशुद्धात्मैव उपादेय इति रुचिरूपं सम्यग्दर्शनं, तस्यैव परमात्मनः समस्त-मिथ्यात्वरागाद्यास्रवेभ्यः पृथग्रूपेण परिच्छित्तिरूपं सम्यग्ज्ञानं, तत्रैव रागादिपरिहाररूपेण निश्चलचित्तवृत्तिः सम्यक्चारित्रम् इत्येवं निश्चयरत्नत्रयस्वरूपं तत्त्रयात्मकमात्मानमरोच-मानस्तथैवाजानन्नभावयंश्च मूढात्मा। किं करोति। समस्तं जगद्धर्मव्याजेन ग्रहीतुमिच्छति, पूर्वोक्तज्ञानी तु त्यक्तुमिच्छतीति भावार्थः।।८७।।

अब परिग्रहत्याग के व्याख्यान को आठ दोहों में कहते हैं-

मूढ़ जीव सारा जग लेना चाहें विविध धर्म से ही।
किन्तु न ज्ञानी कुछ भी चाहें अन्तर इनमें इतना ही।।८७।।

अन्वयार्थ :- [द्वयोः अपिः] ज्ञानी और अज्ञानी इन दोनों में [एष विशेषः] इतना ही भेद है, कि [मूढोः] अज्ञानीजन [बहुविधधर्ममिषेण] अनेक तरह के धर्म के बहाने से [एतद् अशेषम्] इस समस्त [भुवनम् अपि] जगत् को ही [परं] नियम से [लातुं इच्छति] लेने की इच्छा करता है, अर्थात् सब संसार के भोगों की इच्छा करता है, तपश्चरणादि कायक्लेश से स्वर्गादि के सुखों को चाहता है, और ज्ञानीजन कर्मों के क्षय के लिये तपश्चरणादि करता है, भोगों का अभिलाषी नहीं है।

भावार्थ :- वीतराग सहजानंद अखंडसुख का आस्वादरूप जो शुद्धात्मा वही आराधने योग्य है, ऐसी जो रुचि वह सम्यग्दर्शन, समस्त मिथ्यात्व रागादि आस्रव से भिन्नरूप उसी परमात्मा का जो ज्ञान, वह सम्यक्ज्ञान और उसी में निश्चल चित्त की वृत्ति वह सम्यक्चारित्र, यह निश्चयरत्नत्रयरूप जो शुद्धात्मा की रुचि जिसके नहीं, ऐसा मूढ़जन आत्मा को नहीं जानता हुआ, और नहीं अनुभवता हुआ जगत् के समस्त भोगों को धर्म के बहाने से लेना चाहता है, तथा ज्ञानीनज समस्त भोगों से उदास है, जो विद्यमान भोग थे, वे सब छोड़ दिये और आगामी वाँछा नहीं है, ऐसा जानना।।८७।।

वीर संवत् २५०२, मागसर कृष्ण १०, गुरुवार
दिनांक-१६-१२-१९७६, गाथा - ८७, ८८, प्रवचन-१६०

.... (ज्ञानी) शुद्ध चैतनय स्वआश्रय, उसकी भावनावाला होता है। अज्ञानी धर्म के बहाने (अर्थात्) दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम के बहाने वह उसके राग को इच्छता है, तथा उसके फल को भी इच्छता है तो पूरे जगत को इच्छता है, ऐसा कहते हैं। एक ओर ज्ञानी को आत्मा रुचता है। अज्ञानी को राग से लेकर पूरी दुनिया रुचती है। आहाहा! ऐसी बात है।

अनेक तरह के धर्म के बहाने से इस समस्त... 'भुवनम्' जगत् को नियम से लेने की इच्छा करता है,... देखो! जिसे राग, पुण्य का राग है, उसकी भी जिसे अभिलाषा है, उसे पूरे जगत की अभिलाषा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जिसे पुण्य के परिणाम की रुचि और अभिलाषा है, उसके फलरूप से पूरी दुनिया की इच्छा है, उसे '**भुवनम्**' तीन भुवन की इच्छा है। आहाहा! ज्ञानी को एक आत्मा आनन्दस्वरूप (की रुचि है और) समझ में आया? शुभ की रुचि नहीं। और पुण्य परिणाम में जिसकी रुचि है, उसे पूरे जगत की रुचि है। एक ओर राम और एक ओर गाँव। सम्यग्दृष्टि को आत्मराम रुचि है। अज्ञानी आत्मा के अतिरिक्त पूरे जगत की रुचि करता है। समझ में आया?

धर्म के बहाने वह पुण्य की क्रिया करे, उसमें पुण्य की इच्छा है और पुण्य की इच्छा के कारण व्यवहार जितना है, उस सबकी उसे भावना है, ऐसा कहते हैं। समझ

में आया? जरा सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो एक-एक गाथा ऊँची चढ़ाते हैं। आहाहा! जहाँ अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है, ऐसे अनन्त गुण का निधान भगवान आत्मा है। आहाहा! उसकी जिसे रुचि है, जिसे उसकी रुचि है। अनन्त गुण के भण्डार की भावना उसे तो है। अनन्त गुण के भण्डार में से अनन्त गुण-पर्याय निकालना, ऐसी भावना है, आहाहा! और जिसे भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसकी रुचि नहीं, यह बात जिसे जँचती नहीं, इस बात का जिसने आश्रयभाव लिया नहीं... आहाहा! उसे पुण्यपरिणाम की इच्छा है, तो उसे पूरे जगत की इच्छा है, ऐसा कहते हैं। भटकने की इच्छा है। आहाहा! समझ में आया? स्वाश्रितो निश्चय, पराश्रितो व्यवहार, ऐसा कहते हैं न? स्व अर्थात् चिदानन्द भगवान आत्मा। परमात्मप्रकाश है न? तो परमात्मस्वरूप जो अपना त्रिकाली है, उसकी जिसे रुचि और उसकी रुचि में पोषाण हुआ, अब दूसरी बात उसे पोसाती नहीं। आता है, पुण्यादि भाव होता है, परन्तु उसको पोषाण—रुचि नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : परमात्मा अर्थात् अरिहन्त परमात्मा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परमात्मा। अरिहन्त परमात्मा तो उनके पास रहे। आहा! अरिहन्त परमात्मा कहाँ से हुए? परमात्मा थे, उसमें से हुए। अरिहन्त परमात्मा, पर्याय—दशा में हुए और वे दशा में कहाँ से हुए? उसका स्वरूप ही परमात्मा था। आहाहा! स्वरूप ही परमात्मस्वरूप ही आत्मा था तो उसमें से परमात्मा की पर्याय एन्लार्ज हुई। आहाहा! अरे! कुछ खबर नहीं होती। आत्मा अर्थात् क्या? कुछ नहीं। और यह सब धूल और धमाका, पुण्य और पुण्य के फल और यह बाहर की भभक, उसकी अज्ञानी को रुचि पूरे जगत की है। आहाहा! समझ में आया? वह चार गति का परिभ्रमण करे, ऐसी रुचि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है? देखो!

लेने की इच्छा करता है, अर्थात् सब संसार के भोगों की इच्छा करता है,... आहाहा! जिसे अपना आत्मा आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का निधान, उसकी जिसे रुचि नहीं, जिसे जिसकी भावना—अन्तर की एकाग्रता नहीं, उसे पुण्य की इच्छा होने से पूरे जगत की इच्छा और भोग की इच्छा चलती है। आहाहा! अपने आनन्द की

इच्छा नहीं, उसे पुण्य की इच्छा में सब भोग की, बाहर के भोग की इच्छा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! धर्म चीज़ ऐसी है, सूक्ष्म है। आहाहा!

स्वाश्रितो निश्चय सत्य। भगवान आत्मा शुद्ध परमात्मस्वरूप, सच्चिदानन्दस्वरूप। 'सिद्धस्वरूप सदा पद मेरो।' आता है? 'सिद्धसमान सदा पद मेरो।' आहाहा! 'चेतनरूप अनूप अमूरत', 'चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्धसमान सदा पद मेरो।' बनारसीदास कहते हैं। आहाहा! मेरा स्वरूप तो सदा सिद्धस्वरूप ही है, तथापि उसकी रुचि न करके 'मोह महातम आतम अंग' पर में मोह किया पुण्यादि भाव में। 'मोह महातम आतम अंग, कियौ परसंग महा तम घेरौ।' अज्ञान में राग का घेरा डाला। आहाहा! राग ठीक है, राग का फल अच्छा मिलेगा। धूल मिले संसार की, वह सब मिलने की इच्छा पाप की इच्छा है। आहाहा! समझ में आया? पूरे जगत की इच्छा करता है, कहते हैं। है?

संसार के भोगों की इच्छा करता है, तपश्चरणादि कायक्लेश से... साधु हुआ, दीक्षा ली, पंच महाव्रत लिये, मुनिदीक्षा के योग्य तपस्यायें कीं, परन्तु सम्यग्दर्शन नहीं और अपनी दृष्टि की रुचि नहीं और पुण्य की रुचि जिसे है, वह **तपश्चरणादि कायक्लेश से स्वर्गादि के सुखों को चाहता है,...** आहाहा! उसमें से पुण्य बँधेगा और उसमें स्वर्ग मिलेगा। मिथ्यादृष्टि को ऐसी आशा है। आहाहा! स्वर्ग में दुःख है, स्वर्ग में कहीं सुख नहीं।

मुमुक्षु : इसकी अपेक्षा तो वहाँ सुख होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वत्र दुःख है। सामग्री अनुकूल है, परन्तु उसकी इच्छा है, वह दुःख है। भोगने का भाव भी दुःख है। आहाहा! बहुत बात (सूक्ष्म) परिभ्रमण, जन्म-मरण में...

यहाँ तो दो ही बात करते हैं। जिसे परमात्मा आनन्दस्वरूप भगवान, अपना निजस्वरूप सच्चिदानन्द, उसकी जिसे रुचि है, तो उसकी भावना स्वरूप-सन्मुख की है, उसमें एकाग्र होने की भावना है। और जिसे वह रुचि नहीं और पुण्य परिणाम करता है, अपवास, व्रत, करे, नियम करे, कायक्लेश (करे), परन्तु उस पुण्य की इच्छा होने

से उसे भोग की इच्छा है। आत्मा के अनुभव की नहीं, यह बाहर की भोग की इच्छा है। आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरे जीवों की दया पाले, उसमें भोग की इच्छा?

पूज्य गुरुदेवश्री : दया पालने में भी राग है। राग में इच्छा है, वह भोग की इच्छा है। कठोर बात है, भाई! पर की दया पालने का भाव है, वह पुण्य है, राग है। निश्चय से तो स्वरूप की हिंसा है। सूक्ष्म बात, बापू! धर्म और धर्म का फल, वह अलौकिक है। पुण्य और पुण्य के फल लौकिक स्वर्ग आदि भोग की भावनावाले हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : इतनी कठोर बात किसलिए कहते हो। कोई सरल (बात) कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सरल में सरल यह है। हो सके, वह यह है। कठिन का अर्थ? इसने सुना नहीं और इसे जँचा नहीं, इसलिए कठिन कहता है। आहाहा! क्योंकि वर्तमान में संसार ही ऐसा चलता है कि बस! दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, मुनिपना ले लो, दीक्षा लो। वह सब क्रियायें तो राग की है। आहाहा! और जिसे राग की रुचि है, उसे पुण्य की रुचि है और पुण्य की रुचि है, उसे पूरे जगत की रुचि है। अपने है न? पुण्य की रुचि, उसे जड़ की रुचि है। स्वाध्याय मन्दिर में (लिखा) है। जिसे पुण्य की रुचि है, उसे जड़ की रुचि है। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! अनन्त काल से भटकता है, देखो न यह।

अभी तो देखो न, व्याधियाँ, केंसर की व्याधि, यह हार्टफेल की व्याधि, ऐसे जवान व्यक्ति हो, कुछ बैठा हो और कुछ (रोग न हो), फू होकर समाप्त। वे कहते थे मलकापुरवाले। दो मित्र थे। बैठे थे ऐसे। अट्ठाईस वर्ष की उम्र जवान। नख में रोग नहीं। बात करते थे। करते-करते वह ऐसा देखो वहाँ फू इतना हुआ, वहाँ देह छूट गयी। दूसरी कोई पीड़ा या कुछ रोग नहीं। स्थिति पूरी हुई, वहाँ पूरा। जवान व्यक्ति। मित्र थे। उसके साथ बात करते-करते फू। बस इतना। मुर्दा पड़ा। ओहो! जड़ की स्थिति पूरा होने का काल आया, उसे कौन रोक सकता है? उस स्थिति की अवधि इतनी ही है।

मुमुक्षु : डॉक्टर लोग तो उपाय करे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में... डॉक्टर मर गये सब। डॉक्टर—बड़ा सर्जन नहीं यहाँ? हेमन्तकुमार, भावनगर। बड़ा अस्पताल का सर्जन। यहाँ आ गये थे। दो-तीन बार आ गये। किसी का ऑपरेशन करते थे। मुझे कुछ होता है। कुर्सी पर बैठे। एकदम देह उड़ गयी। ऑपरेशन करते थे किसी का। वहाँ उसका ऑपरेशन रह गया। आहाहा! फू बस। कुर्सी पर बैठे और देह छूट गयी। प्रभाशंकर पाटनी के रिश्तेदार होते थे।

मुमुक्षु : ऐसी कोई बाहर की शक्ति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर की शक्ति क्या, वह पुण्य की स्थिति पूरी हुई और शरीर में रहने की स्थिति पूरी हुई तो देह छूट गयी। आयुष्य हो, तब तक स्थिति है। अपनी योग्यता भी उतना ही रहने की है। आयुष्य के कारण से नहीं। वह तो जड़ है, पर है। निमित्त से कथन किया जाता है। परन्तु उस शरीर में रहने की योग्यता ही इतनी थी, बस। एकदम देह छूटकर चला जाता है। ढोर में, पशु में चला जाये। आहाहा!

मुमुक्षु : चैतन्य में न चला जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : चेतन का भान कहाँ है? आहाहा!

अरे! प्रभु! चैतन्य-लक्ष्मी जिसमें, भगवान परमात्मा सर्वज्ञ जिनवरदेव ऐसा कहते हैं कि तेरे अन्दर में निधान इतना पड़ा है कि जिसमें से अनन्त आनन्द पर्याय में निकले तो भी आनन्द कभी कम नहीं हो। आहाहा! अखूट भण्डार। ऐसा भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का निधान, उसकी जिसे रुचि नहीं और पुण्य परिणाम हों, उनकी जिसे रुचि है, उसे पूरे जगत की रुचि है। ज्ञानी को आत्मा की रुचि है और पूरे जगत की रुचि नहीं। आहाहा! ऐसी बातें गजब! किया नहीं, अभ्यास नहीं और सुनने को मिलता नहीं। यह दुनिया की होली पूरे दिन, यह करना और यह करना और यह करना और यह करना। करना, वहाँ मरना। क्षण-क्षण में भावमरण होता है। आत्मा की शान्ति जलती है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, **ज्ञानीजन कर्मों के क्षय के लिये तपश्चरणादि करता है,...** यह अन्दर के शुद्धोपयोग की क्रीड़ा करने में यह तपस्या करता है, ऐसा कहते हैं। **भोगों**

की अभिलाषा नहीं है। ज्ञानी को संयम हो, चारित्र हो, उसकी रमणता है, उसे भोग की इच्छा है नहीं। पुण्य की इच्छा नहीं, फिर भोग की इच्छा कहाँ से आयी? बहुत कठिन। सूक्ष्म बात लगे लोगों को। पहले यह करो और यह करो। व्रत करो और अपवास करो, यात्रा करो, भक्ति करो तो कल्याण होगा। धूल में होगा नहीं। आहाहा! तेरी चीज़ अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, जिनवरदेव सर्वज्ञदेव ऐसा कहते हैं (कि) तेरे निधान पर तेरी नजर कभी गयी नहीं। आहाहा! और तेरी चीज़ नहीं, (ऐसे) पुण्यादि परिणाम, उसका फल, वह तेरी चीज़ नहीं, उसमें तेरी रुचि गयी। आहाहा! इस कारण चार गति में परिभ्रमण हुआ। आहाहा! देखा! **तपश्चरणादि करता है, भोगों का अभिलाषी नहीं है।** धर्मी को तो आनन्द की अभिलाषा है। अन्दर आनन्द में रमना। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान का जिसे सम्यक्त्व हुआ तो उसमें ही रमने की भावना है। आहाहा!

भावार्थ : — वीतराग सहजानन्द अखण्ड सुख का आस्वादरूप जो शुद्धात्मा... लो! यह व्याख्या आयी। अन्दर यह शुद्ध आत्मा कैसा है? ओहो! वीतराग सहजानन्द। रागरहित स्वाभाविक आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा है। आहाहा! वह सुख के लिये बाहर झपट्टे मारता है। पैसे में सुख और भोग में सुख और इज्जत में सुख। आहाहा! समझ में आया? **वीतराग सहजानन्द...** ऐसा। सहज आनन्द है परन्तु कैसा? कि वीतरागी सहजानन्द। आहाहा! **अखण्ड सुख का...** अखण्ड सुख आनन्द अपना। आहाहा! उसके **आस्वादरूप...** उसके अनुभवरूप **जो शुद्धात्मा... अखण्ड सुख का आस्वादरूप जो शुद्धात्मा...** आहाहा! यह शुद्धात्मा तो अखण्ड आनन्द का स्वाद आवे, वह आत्मा है। आहाहा! देखो! यह योगीन्द्रदेव मुनि हुए १३०० वर्ष पहले, उन्होंने यह बनाया है। टीका दूसरे ने की है।

वीतराग भगवान आत्मा अन्दर। राग अर्थात् पुण्य के विकल्प से भी रहित और वीतराग सहजानन्द प्रभु। अरे! कैसे बैठे? बाहर की जरा सी अनुकूलता-सुविधा देखकर प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। आहाहा! उसे आत्मा में आनन्द है, यह कैसे बैठे? आहाहा! मिथ्यादृष्टि अनादि से अपने आनन्द की रुचि नहीं करके, पुण्य की रुचि और पाप की रुचि में क्रिया करके परिभ्रमण चौरसी में अनन्त अवतार किये। आहाहा!

वीतराग सहजानन्द... स्वाभाविक आनन्द आत्मा में है। **अखण्ड सुख का...** अखण्ड सुख है, एकरूप सुख आत्मा। आहाहा! उसका **आस्वादरूप जो शुद्धात्मा...** देखा! उसके अनुभवरूप शुद्धात्मा। **वही आराधनेयोग्य है,...** आहाहा! धर्मी जीव को वह आत्मा आराधनेयोग्य है। पुण्य और पुण्य के फल और वे आराधनेयोग्य है नहीं। आहाहा! वे सेवन करनेयोग्य है नहीं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें। अमेरिका में तो अरबोंपति बहुत हैं। दु:खी हैं बेचारे। अरबोंपति बहुत हैं। फिर अब निकले हैं न कोई नाम कुछ? हरे कृष्ण... हरे कृष्ण... हरे कृष्ण... कपड़े पहनकर बाबा। उसमें क्या होगा? हरे कृष्ण किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा!

आत्मार्थी को क्या करनेयोग्य है? धर्मी को क्या करनेयोग्य है? आहाहा! कि वीतराग सहज आनन्दस्वरूप, वीतरागी स्वाभाविक आनन्दस्वरूप का अनुभव, वह शुद्धात्मा ही आराधनेयोग्य है। इस प्रकार **शुद्धात्मा वही आराधनेयोग्य है...** आहाहा! परन्तु अभी शुद्ध आत्मा कैसा है, इसकी खबर नहीं, आराधे कहाँ से? भगवान आत्मा में अनन्त आनन्द पड़ा है। वीतरागी अनन्त अपरिमित। जैसे ज्ञान का प्रकाश पड़ा है, वैसा अतीन्द्रिय अनन्त अपरिमित आनन्द पड़ा है। आहाहा! बाहर में तो धूल में भी कहीं आनन्द नहीं। आहाहा! अरबों रुपये हों तो भी दु:खी है बेचारा। आहाहा!

एक घण्टे की दो करोड़ की आमदनी। नहीं? इराक देश छोटा है, परन्तु पेट्रोल के कुँए निकले। देश छोटा। पेट्रोल के कुँए। एक घण्टे में दो करोड़ की आमदनी है। एक दिन की आधे अरब की आमदनी। आठ रुपये का डालर कहते हैं थे न? पौने नौ का कहा। इसलिए फिर अरब हो गये। चौबीस दूने अड़तालीस करोड़ एक दिन के। दो करोड़ बढ़ गये, वह पौण-पौण रुपया अधिक। आधे अरब। एक दिन का आधा अरब। पचास करोड़ की आमदनी एक दिन की। मरकर नरक में जानेवाले हैं, ढोर में नहीं। आहाहा! इतना अधिक पावर है उसे। इतने पैदा हुए। अरब में अभी आमदनी है, ऐसी आमदनी अन्यत्र कहीं नहीं। आहाहा! अखबार में आया था एक बार। उसके लड़के निकले मोटर में। बड़ी मोटरें दस-दस लाख, बीस-बीस लाख की मोटरें एक-एक। एक घण्टे के दो करोड़ की आमदनी, उसे क्या? पूँजी कितनी उसका कहाँ माप है।

लड़के निकले मोटर में। वह तो हाँक रखे। बीच में लड़का आवे, आदमी हो, ढ़ोर हो, मर जाये भले। तुमने क्यों ध्यान नहीं रखा। बादशाह निकले और बादशाह का लड़का निकला। इसलिए तुम गुनहगार हो। आहाहा! ऐसे पावर फट गये। आहाहा! अब वह तो नरक जानेवाले हैं, हों! नरक में पहले नरक में जाये थोड़ी उम्र। दस हजार वर्ष में न जाये। अधिक उम्र बड़ी उम्र में जाये। पल्योपम, सागरोपम में। आहाहा! ऐसी स्थिति अनन्त बार की है, भाई! परन्तु प्रभु आत्मा अन्तर (अतीन्द्रिय) आनन्द का नाथ भगवान सहजात्म वीतरागी स्वरूप, (उसे जाना नहीं)।

देखा, कितना रखा! वीतरागी सहजानन्द। क्यों ? कि पर्याय में वीतरागी अनन्त आनन्द जो प्रगट हुआ भगवान को, सर्वज्ञ परमेश्वर को पर्याय—दशा में वीतरागी सहज आनन्द कहाँ से प्रगट हुआ ? वह अन्दर खान में से आया है। वीतरागी सहजानन्द स्वरूप ही वह है। आहाहा! अरे! यह बात कैसे बैठे ? समझ में आया ? भगवान आत्मा वीतरागी सहजानन्द की मूर्ति है। उसका शक्ति और सामर्थ्य ही इतना है। आहाहा! ऐसा आत्मा धर्मी जीव को सेवनयोग्य है। लो, है न आराधना। आहाहा! आराधनेयोग्य है। उसकी सेवा। सेवा अर्थात् स्वरूप में एकाग्रता। आहाहा! यह बात पकड़ में नहीं आती और वह बाहर की पकड़ी हुई छोड़ी नहीं जाती, इसलिए फिर इसे रुचि आती नहीं। एक लाईन में... आहाहा! देखा!

ऐसी जो रुचि वह सम्यग्दर्शन,... वीतरागी सहजानन्द अखण्ड सुख ऐसा जो परमात्मा, उसका आस्वाद, उसकी रुचि, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। ऐसे नौ तत्त्व की रुचि और देव-गुरु-शास्त्र की रुचि, वह समकित नहीं है। आहाहा! अभी तो यह कहते हैं कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, (वह समकित)। परन्तु देव-गुरु-शास्त्र किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा!

जिनवरदेव त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमात्मा सौ इन्द्र के पूजनिक प्रभु जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं... आहाहा! प्रभु! तू कौन है ? आहाहा! शरीर नहीं, वाणी नहीं, मन नहीं, राग नहीं, अल्पज्ञपना नहीं। आहाहा! ऐसा जो भगवान सर्वज्ञस्वभावी, उसे ज्ञान में न लेकर आनन्द में लिया। क्योंकि सहजानन्द पूर्णानन्द का अनुभव (होने पर), उसे पुण्य और पुण्य की भावना, फल की इच्छा नहीं होती। और जिसे पुण्य के फल की

और पुण्य की इच्छा है, व्यवहाररत्नत्रय की इच्छा है, उसे आनन्द के नाथ का अनादर है, ऐसा कहते हैं। देवीलालजी! ऐसी बात है, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : रुचि अर्थात् परिणमन? रुचि शब्द से?

पूज्य गुरुदेवश्री : रुचि-रुचि परिणति। रुचि की परिणति है न रुचि की। सहजानन्द वीतराग परम अखण्ड सुख प्रभु, उसकी रुचि का परिणमन है। रुचा न? रुचा तब परिणमन हुआ न? आहाहा! धर्मी को राग रुचता नहीं। दया, दान, व्रत के परिणाम आवें सही, हों सही, परन्तु रुचते नहीं। आहाहा! उसे अल्पज्ञपना भी रुचता नहीं। वह तो पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण वीतराग सहजानन्द। आहाहा! कातली है। **ऐसी रुचि वह सम्यग्दर्शन,...** है। उसे धर्म की शुरुआत कहा जाता है। आहाहा! पूरी जिन्दगी निकाली हो ६०-६०, ७०-८० (वर्ष) परन्तु यह बात सुनी न हो इसने। आहाहा! उसे बेचारे को क्या? 'मनुष्य स्वरूपे मृगा चरंति' मनुष्य के रूप में ढ़ोर जैसा है वह तो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! बहुत सरस बात। एक-एक गाथा चढ़ती हुई है। हमारे चेतनजी कहते हैं कि एक के बाद एक गाथा चढ़ती हुई आती है। चेतनजी! नहीं? आहाहा!

बात कैसी की है! **वीतराग सहजानन्द अखण्डसुख...** इसका जो अनुभव—आस्वाद। वह शुद्धात्मा। आहाहा! शुद्धस्वरूप का आराधन, शुद्ध का आनन्द का आराधन—सेवन, वह आत्मा। बीच में रागभाव (आवे), वह आत्मा नहीं। चाहे तो दया, दान, व्रत, तप का भाव हो, वह राग, वह आत्मा नहीं। उसमें आकुलता का स्वाद है, ऐसा कहते हैं। और यहाँ आनन्द का स्वाद है। आहाहा! अरे! ऐसी बातें।

ऐसे आत्मा की रुचि... आहाहा! अखण्ड वीतरागी आनन्दसुख प्रभु का आनन्द का स्वाद आया, तब खबर पड़ी कि यह वह आनन्दरूप है, ऐसा कहते हैं। उसकी रुचि में आनन्द आया। अतीन्द्रिय आनन्द। जिसकी समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन के भोग सड़े हुए मींदडी—बिल्ली और कुत्ते जैसे लगते हैं। आहाहा। धर्मी को अपने आनन्द के स्वाद के समक्ष इन्द्र के हजारों करोड़ों इन्द्राणियों के भोग सड़े हुए बिल्ली और कुत्ते जैसे लगते हैं। आहाहा! अज्ञानी को उसमें मिठास लगती है। आहाहा! जिसे परभोग में मिठास लगे वह मिथ्यादृष्टि अधर्मी अज्ञानी है, ऐसा कहते हैं। भले वह व्रत पालता हो और मुनि

हुआ हो, साधु हुआ हो। आहाहा! परन्तु पुण्य परिणाम में जिसे मिठास लगती है, वह मूढ़ अज्ञानी है। समझ में आया?

भरत चक्रवर्ती को छह खण्ड का राज। छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें करोड़ सैनिक, छियानावें करोड़ गाँव। आत्मा के आनन्द की रुचि में पर की रुचि छूट गयी है। आहाहा! संयोग है। जितनी आसक्ति है, उतना पाप भी है, परन्तु रुचि छूट गयी। आहाहा! **ऐसी जो रुचि वह सम्यग्दर्शन...** भाषा देखो! सम्यग्दर्शन अर्थात् लोग कहे, यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, (वह सम्यग्दर्शन), बापू! ऐसा नहीं। यह तो अनन्त बार किया। आहाहा! परद्रव्य की श्रद्धा और परद्रव्य के आश्रय से हो वह तो सब राग है। स्वद्रव्य की श्रद्धा जैसा वीतराग आनन्दमूर्ति है... आहाहा! यह किस प्रकार की बात? यह जिनदेव की बात होगी? अपने वीतरागमार्ग में दया पालना, छहकाय के जीवों को घातना नहीं, रात्रि में चतुर्विध आहार त्याग करना, छह परबी पालना, ऐसा तो चलता है। धूल भी नहीं, सुन न। उसमें पुण्य भी ठीक सा नहीं। सम्यग्दृष्टि को जो पुण्य बँधता है, वैसा पुण्य भी उसे नहीं। आहाहा!

समस्त मिथ्यात्व रागादि आस्रव से भिन्नरूप उसी परमात्मा का जो ज्ञान,... अब ज्ञान किसे कहते हैं? मोक्षमार्ग का ज्ञान। **समस्त मिथ्यात्व (विपरीत अभिप्राय) रागादि आस्रव से भिन्न...** विपरीत अभिप्राय ऐसे आस्रव के बन्ध के कारणरूप दुःख ऐसे **भिन्नरूप उसी परमात्मा...** आहाहा! ऐसा परमात्मा, अपना परमात्मा। आहाहा! उस **परमात्मा का जो ज्ञान, वह सम्यग्ज्ञान...** आहाहा! यह बाहर के सब वकालत, डॉक्टर और सब पढ़े हुए-गुने हुए, वह सब कुज्ञान है, अज्ञान है। यहाँ तो शास्त्रज्ञान को ज्ञान कहा नहीं। परमात्मा का ज्ञान, वह ज्ञान। अपना परमात्मा, हों! पर परमात्मा का ज्ञान, वह भी विकल्प-राग है। अरे! ऐसी बात अब। अब इस दुनिया में व्यापार-धनधा करना या हमारे कहाँ जाना? ऐसा करने जाये तो चले नहीं। संसार नहीं चलता। संसार क्या तुझसे चलता है? वह तो उससे चलता है, उसके कारण से। तेरी दृष्टि में अन्तर है। मैं यह सब व्यवस्थित करूँ। कमाकर दूँ इसे। धूल भी नहीं। होशियार मैनेजर सब पाप के बाँधनेवाले हैं। आहाहा!

हमारे आणन्दजी था न, वह बहुत होशियार था दुकान के धन्धे में। पालेज।

पति-पत्नी दो ही थे। कोई कुछ था नहीं। बहुत आमदनी। बहुत बार कहा उसे, भाई! तू कुछ छोड़ और निवृत्ति ले। अन्त में शरीर शिथिल पड़ गया तो उठाकर बैठावे उसे। फिर अन्त में ऐसा कहे, अरे! मुझे किसी ने कहा नहीं। परन्तु... ! तुझे हम कहते थे न। वे किसलिए कहे ? तेरे सगे-सम्बन्धी किसलिए (कहे) ? मुफ्त का नौकर दुकान में बैठकर पाप तू कर, हमारे क्या है ? अन्त में ऐसा बोला था वह। बहुत व्यापार में वह... माल बहुत लावे। पालेज की दुकान। मुम्बई का पास लिया हुआ। प्रतिदिन टिकिट नहीं लेनी। महीने-महीने के पास। महीने में बहुत बार जाना-आना पड़े। आहाहा! बुद्धिवाला भटकने की, हों! वह अन्त में ऐसा बोला फिर जब शरीर उठाकर रखे, तब बैठे। फिर मरते हुए ऐसा कहे, अरे! मुझे किसी ने कहा नहीं। मैंने इस दुकान पर बैठकर अकेले पाप बाँधे। लाखों की आमदनी बाहर में। किसी ने कहा नहीं। भाई! तुझे कहा नहीं था हमने ? हम तो बहुत बार कहते थे। सब स्वार्थ के सगे हैं। मार डालेंगे तुझे। तेरा करने लग न।

मुमुक्षु : .... करने का कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसका कहे ? मुफ्त का नौकर दुकान में आकर बैठे, उसमें क्या दिक्कत है! पाप बाँधता है वह। और मर जाये तो वह कहाँ गया, उसके लिये कोई रोता है ? मर गया, उसका बाप या उसका पति मर जाये तो वह नरक में गया होगा या पशु में, उसके लिये रोता है ? हमारी वर्तमान सुविधा जाती है, उसे वह रोता है। तू भले नरक में गया हो, पशु में गया हो। हमारे यहाँ कहाँ नहाने जाना है। आहाहा! सच्ची बात है ? पति मर जाये तो पत्नी रोती है किसलिए ? उसकी सुविधा गयी। वह मरकर पशु में गया, उसे कुछ नहीं पड़ी। तुम चाहे जहाँ गये, हमारे क्या है ? आहाहा! ऐसा संसार है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। यह पर की रुचि बदल डाल। पुण्य के परिणाम की भी रुचि न कर। उसके फल की बात तो कहाँ करना ? आहाहा! यह डालते हैं इसमें तो। व्यवहाररत्नत्रय का जो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पंच महाव्रत के परिणाम, वह सब राग है, उसकी रुचि छोड़ दे। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका स्पष्टीकरण यह है। आहाहा!

भगवान एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। इस राम की रुचि, उसे गाँव की नहीं और गाँव की रुचि, उसे राम की नहीं। यह एक बात है। आहाहा! समझ में आया? भले छोड़ न सके बाहर से, आसक्ति रहे, परन्तु रुचि नहीं। आहाहा!

मिथ्यात्व रागादि आस्रव से भिन्नरूप उसी भगवान आत्मा का... मिथ्यात्व रागादिरहित आत्मा परमात्मस्वरूप अपना। उस परमात्मस्वरूप का ज्ञान। आस्रव और मिथ्यात्व रहित जो आत्मा, उसका ज्ञान। आहाहा! उसका नाम सम्यग्ज्ञान। वह मोक्ष का मार्ग। अपना दर्शन और अपना ज्ञान, वह मोक्ष का मार्ग। पर की श्रद्धा और पर का रागभाव, वह बन्ध का मार्ग। आहाहा!

अब सम्यक्चारित्र। सम्यग्दर्शन कहा, सम्यग्ज्ञान कहा, सम्यक्चारित्र। **उसी में...** अर्थात् आत्मा सहजानन्द वीतरागमूर्ति प्रभु। **उसी में...** रागादि परिहार करके। है अन्दर। '**रागादिपरिहाररूपेण**' इतना रह गया है। अन्दर है। '**रागादिपरिहाररूपेण निश्चल-चित्तवृत्तिः सम्यक्चारित्रम्**' आहाहा! यह दया, दान और व्रत के परिणाम से भी रहित। आहाहा! आत्मा में रागादिरहित **निश्चल चित्त की वृत्ति...** आनन्द से चलित नहीं, ऐसी स्थिरता... आहाहा! इसका नाम चारित्र है। चारित्र कोई नग्नपना और पंच महाव्रत के परिणाम, वे कहीं चारित्र नहीं। आहाहा! सब चलता है, उससे उल्टा आता है यह। आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई! क्या कहा? '**रागादिपरिहाररूपेण**' रागादि के त्यागरूप और '**निश्चल-चित्तवृत्तिः**' अन्दर स्थिरतारूप। रागादि का त्याग और स्वरूप में स्थिरता। आनन्द के नाथ में भगवान आत्मा में स्थिरता, चित्त की स्थिरता... आहाहा! इसका नाम सम्यक्चारित्र है। है? देखो!

निश्चल चित्त की वृत्ति... ज्ञान की परिणति निश्चल स्थिर, **वह सम्यक्चारित्र, यह निश्चयरत्नत्रयरूप जो शुद्धात्मा की रुचि जिसके नहीं,...** आहाहा! जिसे भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु वीतराग सहजानन्दस्वभाव, उसकी जिसे रुचि नहीं। है? **ऐसा मूढ़जन आत्मा को नहीं जानता हुआ,...** देखा! रुचि नहीं, उसे नहीं जानता हुआ, ऐसा। **ओर**

नहीं अनुभवता हुआ... तो विपरीत हुए तीनों। क्या कहा? **निश्चयरत्नत्रयरूप जो शुद्धात्मा की रुचि जिसके नहीं,...** आहाहा! **ऐसा मूढ़जन आत्मा को नहीं जानता हुआ,...** भगवान परमात्मा आनन्द की निधि, उसकी रुचि नहीं तो उसे **नहीं जानता हुआ,...** रुचि नहीं और नहीं जानता हुआ। आहाहा! **और नहीं अनुभवता हुआ।** चारित्र। दो लिये। आहाहा!

सहजानन्द वीतराग प्रभु आत्मा का स्वभाव, उसकी जिसे रुचि नहीं और पुण्य की रुचि है... आहाहा! उसे परमात्मा रागादिरहित है, उसका ज्ञान नहीं और उसके स्वरूप का अनुभव नहीं। आनन्द का अनुभव नहीं हुआ। **जगत के समस्त भोगों को धर्म के बहाने से लेना चाहते हैं,...** आहाहा! **जगत के समस्त भोगों को धर्म के बहाने से...** वह पुण्य की क्रिया के बहाने। हम धर्म करते हैं, पुण्य करते हैं, दया पालते हैं, व्रत करते हैं। ऐसे धर्म के बहाने स्वभाव की रुचि, ज्ञान को छोड़कर... आहाहा! **धर्म के बहाने से लेना चाहता है,...** पाठ में है यह, हों! **'बहु विह-धम्म-मिसेण'** है न? **'धम्म-मिसेण'** शब्द है मूल पाठ में। धर्म के बहाने। आहाहा!

एक ओर भगवान आत्मा सहजानन्द अखण्ड सुख का भण्डार प्रभु, ऐसे भगवान की जिसे रुचि नहीं, उसका जिसे ज्ञान नहीं, उसका अन्तर में अनुभव नहीं तो बाहर के पदार्थ की इच्छा पुण्य की करके जगत की इच्छा करता है। आहाहा! वह वस्तु में नहीं, वस्तु में नहीं, उस चीज़ की इच्छा करता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? निश्चयसम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान बिना जो कुछ व्रत और तप आदि करे, वह सब बाल-अज्ञान व्रत और अज्ञान तप है। उस बात की तो खबर नहीं होती और करो व्रत और करो ब्रह्मचर्य लो, यह करो, वह करो। वहाँ सब राग की होली है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बराबर है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है। वीतरागता चौथे गुणस्थान से प्रगट होती है। पूरे जगत की रुचि हट गयी और भगवान आनन्द के नाथ की रुचि हुई। वीतराग का अंश है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-स्वरूपाचरण चौथे में वीतराग का अंश है। आहाहा! बहुत अन्तर

है, भाई! क्या हो? मार्ग तो यह है। परिभ्रमण करके उसे थकान नहीं लगी। चौरासी के अवतार कर-करके मर गया है। आहाहा! अरेबोंपति अनन्त बार हुआ। सौ बार माँगे और एक बार ग्रास मिले, ऐसा भिखारी भी अनन्त बार हुआ। वह कोई नयी चीज़ नहीं।

अपने आनन्द का नाथ भगवान वीतरागी अनाकुल शान्तरस—उपशमरस, अकषाय—स्वभावरस, भगवान अकषायस्वभावरस की रुचि नहीं, उसका ज्ञान नहीं, उसमें लीनता—अनुभव नहीं। आहाहा! वह **जगत के समस्त भोगों को धर्म के बहाने से लेना चाहता है,...** आहाहा! यह पुण्य की क्रिया करके भोग की अभिलाषा में... पुण्य की इच्छा, वह भोग की अभिलाषा है, जड़ की अभिलाषा है। आहाहा! दया, दान, व्रत के व्यवहाररत्नत्रय का राग है, वह पुण्य है, पुण्य की रुचि, वह जड़ है। उसे तो भोग की इच्छा है। संसार के अनुकूल भोग जो पाप के कारण हैं, उन्हें वह चाहता है।

तथा ज्ञानीजन समस्त भोगों से उदास है,... देखो! आहाहा! धर्मी जीव तो राग से लेकर सब भोगों से उदास है। वह मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को भी राग की रुचि नहीं तो भोग की रुचि कहाँ से हो? आहाहा! आसक्ति का राग हो, परन्तु रुचि नहीं। उसे ज्ञेयरूप से, हेयरूप से जानता है। आहाहा! बातें कठिन, भाई! **उदास है, जो विद्यमान भोग थे, वे सब छोड़ दिये...** धर्मी को तो वर्तमान अनुकूलता अरबोंपति की हो तो दृष्टि में से छूट गयी है। वह मेरी सुविधा नहीं, मेरी लक्ष्मी नहीं। **सब छोड़ दिये और आगामी वांछा नहीं है,...** भोग की वांछा और भाव की वांछा है? आनन्दस्वरूप की भावना है या भोग की भावना है? आहाहा! **ऐसा जानना।** ओहोहो!

कितनी ज्ञानी-अज्ञानी की बात में दोनों में कितना बड़ा अन्तर निकाला। वह व्रत, तप और भक्ति का जो राग है, वह राग है, उस राग की रुचि है, उसे सब भोग की रुचि है, और जिसे आत्मा की रुचि है, उसे सर्व वर्तमान भोग की रुचि छूट गयी, भविष्य के भोग की भावना है नहीं। आहाहा! ऐसा उपदेश यह किस प्रकार का है! आहाहा! अरे रे! दुःखी प्राणी हैं बेचारे, दुःखी-दुःखी। यह अरबोंपति दुःखी, देव दुःखी, सेठिया दुःखी। दुःख में पड़े हैं पूरे। पच गये हैं... पच गये हैं। आनन्द के नाथ को जिसने रुचि में लिया नहीं, वे सब दुःख में पचे हैं। आहाहा! यह ८७ गाथा हुई।

गाथा - ८८

अथ शिष्यकरणाद्यनुष्ठानेन पुस्तकाद्युपकरणेनाज्ञानी तुष्यती, ज्ञानी पुनर्बन्धहेतुं जानन् सन् लज्जां करोतीति प्रकटयति-

२११) चेल्ला-चेल्ली-पुत्थियहिँ तूसइ मूढु णिभंतु।
एयहिँ लज्जइ णाणियउ बंधहँ हेउ मुणंतु।।८८।।

शिष्यार्जिकापुस्तकैः तुष्यति मूढो निर्भ्रान्तः।
एतैः लज्जते ज्ञानी बन्धस्य हेतुं जानन्।।८८।।

शिष्यार्जिकादीक्षादानेन पुस्तकप्रभृत्युपकरणैश्च तुष्यती संतोषं करोति। कोऽसौ। मूढः। कथंभूतः। निर्भान्तः एतैर्बहिर्द्रव्यैर्लज्जां करोति। कोऽसौ। ज्ञानी। किं कुर्वन्नपि। पुण्यबन्धहेतुं जानन्नपि। तथा च। पूर्वसूत्रोक्तसम्यग्दर्शनचारित्रलक्षणं निजशुद्धात्मस्वभावश्रद्धानो विशिष्टभेद-ज्ञानेनाजानंश्च तथैव वीतरागचारित्रेणाभावयंश्च मूढात्मा। किं करोति पुण्यबन्धकारणमपि जिनदीक्षादानादिशुभानुष्ठानं पुस्तकाद्युपकरणं वा मुक्तिकारणं मन्यते। ज्ञानी तु यद्यपि साक्षात्पुण्यबन्धकारणं मन्यते परंपरया मुक्तिकारणं च तथापि निश्चयेन मुक्तिकारणं न मन्यते इति तात्पर्यम्।।८८।।

चेला चेली अरु शास्त्रों में मूढ़ जीव सन्तुष्ट रहें।
ज्ञानी इन्हें बन्ध का कारण जानें अरु लज्जित होते।।८८।।

अन्वयार्थ :- [मूढः] अज्ञानीजन [शिष्यार्जिकापुस्तकैः] चेला चेली पुस्तकादिक से [तुष्यति] हर्षित होता है, [निर्भ्रान्तः] इसमें कुछ संदेह नहीं है, [ज्ञानी] और ज्ञानीजन [एतैः] इन बाह्य पदार्थों से [लज्जते] शरमाता है, क्योंकि इन सबों को [बंधस्य हेतुं] बंध का कारण [जानन्] जानता है।

भावार्थ :- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप जो निज शुद्धात्मा उसको न श्रद्धान करता, न जानता और न अनुभव करता जो मूढ़ात्मा वह पुण्यबंध के कारण जिनदीक्षा दानादि शुभ आचरण और पुस्तकादि उपकरण उनको मुक्ति के कारण मानता

है, और ज्ञानीजन इनको साक्षात् पुण्यबंधन के कारण जानता है, परम्पराय मुक्ति के कारण मानता है। यद्यपि व्यवहारनयकर बाह्य सामग्री को धर्म का साधन जानता है, तो भी ऐसा मानता है कि निश्चयनय से मुक्ति के कारण नहीं हैं।।८८।।

गाथा-८८ पर प्रवचन

८८। अब कहते हैं, **आगे शिष्यों का करना,...** दीक्षा-बीक्षा देना, वह तो शुभभाव है। **पुस्तकादि का संग्रह करना,...** पुस्तकें बनाना और संग्रह करना। आहाहा! **इन बातों से अज्ञानी प्रसन्न होता है,...** अज्ञानी इस बात में प्रसन्न होता है। शिष्य बनाना, पुस्तकादि का संग्रह करना, उसमें अज्ञानी प्रसन्न होता है। आहाहा! **ज्ञानीजन इनको बन्ध के कारण जानता हुआ...** दीक्षा देना, वह शुभभाव है, बन्ध का कारण है। अपना विकल्प है वह शुभ बन्ध का कारण है। आहाहा! पुस्तक का संग्रह करना, वह तो परद्रव्य है। आहाहा! कहाँ से कहाँ ले जाते हैं, देखो धीरे-धीरे। **ज्ञानीजन इनको बन्ध के कारण जानता हुआ...** अज्ञानी उसमें प्रसन्न होता है। हमारे पास लाखों पुस्तकें, सैकड़ों शिष्य हैं। आहाहा! अज्ञानी उसमें प्रसन्न होता है। ज्ञानी उसमें लज्जित होता है। पाठ यह है, हों! है न? ८८ है न? **'एयहिँ लज्जइ'** है दूसरा शब्द। **'लज्जइ'** वह (अज्ञानी) **'तूसइ'** वह (ज्ञानी) **'लज्जइ'** ऐसे दोनों लेना। आहाहा! सन्तों के शब्द दिगम्बर मुनियों के। दिगम्बर मुनि अर्थात्, आहाहा!

शिष्य करना। सैकड़ों शिष्य हुए हमारे तो। **पुस्तकादि संग्रह करना,...** गाँव-गाँव में अलमारियाँ भरी हैं हमारी पुस्तकों की। **इन बातों से अज्ञानी प्रसन्न होता है,...** आहाहा! **ज्ञानीजन इनको बन्ध के कारण जानता हुआ इनसे रागभाव नहीं करता, इनके संग्रह में लज्जावान होता है—** भाषा है। अरे! परद्रव्य हमारे कहाँ? शिष्य और पुस्तक तो परद्रव्य है। परद्रव्य से तो लज्जा करता है। हमारा परद्रव्य तो लज्जा है। आहाहा! अज्ञानी उसमें प्रसन्न होता है। हमारे इतने शिष्य, इतने हमको माननेवाले, हमने इतनी पुस्तकों का संग्रह किया। आहाहा! ऐसा है। एक-एक गाथा चढ़ती हुई है, चढ़ाते जाते हैं।

२११) **चेल्ला-चेल्ली-पुत्थियहिँ तूसइ मूढु णिभंतु।**
एयहिँ लज्जइ णाणियउ बंधहँ हेउ मुणंतु।।८८।।

आहाहा! दीक्षा देना और पुस्तक संग्रह, वह बन्ध का कारण। विकल्प है न?

मुमुक्षु : महोत्सव होता है। दीक्षा का तो महोत्सव करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : महोत्सव करे। वह तो शुभभाव है। दीक्षा देने का भाव, वह शुभ है, पुण्य है। दीक्षा उसे हो चारित्र, वह तो उसे होती है और देने का भाव परद्रव्य को, वह तो राग है। आहाहा! वीतरागमार्ग सूक्ष्म है। यह विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, मागसर कृष्ण ११, शुक्रवार
दिनांक-१७-१२-१९७६, गाथा - ८८, ८९, प्रवचन-१६१

परमात्मप्रकाश, ८८ गाथा चलती है न? फिर से। '**मूढः' अज्ञानीजन चेला चेली पुस्तकादिक से हर्षित होता है,...** आहाहा! चेला-चेली और पुस्तक, वह सब परद्रव्य है। परद्रव्य के कारण जो सन्तोष मानता है। आहाहा! अन्तिम में अन्तिम बात की। **अज्ञानीजन चेला चेली पुस्तकादिक से हर्षित...** सन्तोष मानता है कि हमारे बहुत शिष्य, बहुत पुस्तकें। आहाहा! वह तो परवस्तु है। उसकी प्राप्ति से जो सन्तोष मानता है, वह अज्ञानी मूढ़ है। आहाहा! संसारी जैसे पैसा, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार प्राप्त कर जैसे सन्तोष मानता है। समझ में आया? संसारी प्राणी जैसे स्त्री, शरीर, कुटुम्ब—परिवार, लक्ष्मी को पाकर ऐसा मानता है कि हमको कुछ मिला। वह मूढ़ जीव है—मिथ्यादृष्टि। परवस्तु की प्राप्ति में आत्मा को क्या है? आहाहा! इसी प्रकार यहाँ साधु होकर शिष्य बहुत बनाये और पुस्तकें बहुत बनायीं, उनसे अपने को सन्तोष होता है। वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! दूसरे को दीक्षा देना, वह भी पुण्यबन्ध का कारण है। और दीक्षा के पंच महाव्रत के भाव आदि, वह भी पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म।

मुमुक्षु : आपकी प्रभावना बहुत होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रभावना किसकी? बाहर में होती है या अन्दर में? आहाहा! परद्रव्य के कारण... भगवान आत्मा तो परद्रव्य से भिन्न चीज़ है। उसे तो शरीर का, वाणी का भी सम्बन्ध नहीं। अरे! उसमें पुण्य-पाप के परिणाम हों, उसका उसे सम्बन्ध नहीं। वह तो विकार है। भगवान आत्मा तो वीतरागी है। अरे! इसने कभी तत्त्व क्या है, इसकी दृष्टि नहीं की, उसका आश्रय नहीं लिया। भटक मरा ऐसा का ऐसा अनादि काल से चौरासी के अवतार में। आहाहा!

मुमुक्षु : आप द्वारा स्पष्ट हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तुस्थिति है।

चिदानन्द भगवान शुद्धात्मा आनन्दकन्द, वह इसका परिग्रह है। बाहर के परिग्रह वे मेरे,... साधु को ऐसा कहा है, देखो न! **अज्ञानीजन चेला चेली पुस्तकादिक से हर्षित होता है,...** चेले बढ़ाये, चेलियाँ बढ़ी और पुस्तकों की अलमारियाँ भरीं। आहाहा! वह तो परचीज़ है। उससे सन्तोष मानता है। आहाहा! **इसमें कुछ सन्देह नहीं है,...** अज्ञानी उसमें सन्तोष मानता है। आहाहा!

ज्ञानीजन इन बाह्य पदार्थों से शरमाता है,... आहाहा! उसे ऐसा कहते हैं कि यह तुम्हारे चेले, यह तुम्हारी पुस्तकें। अरे! पुस्तक, चेला आत्मा को कहाँ है? परवस्तु से उसकी शोभा बतलानेवाले से तो वह लज्जित है, लज्जा होती है। आहाहा! आत्मा अन्दर निराली चीज़ है भगवानस्वरूप आनन्दकन्द अन्दर के पुण्य, दया, दान, व्रत के परिणाम से भी भिन्न है। उसे व्रत के परिणाम का संग निश्चय से है ही नहीं। व्यवहार से उसकी पर्याय में है, निश्चय से उसके स्वभाव में वे हैं नहीं। आहाहा! अरे! जिसे धर्म करना और जन्म-मरण रहित होना हो, उसे तो यह बात है। बाकी तो सब भटक मरते हैं अनादि से। दीक्षा भी अनन्त बार ली, पंच महाव्रत भी अनन्त बार पालन किये, वह कोई चीज़ नहीं। आहाहा! यह दीक्षा के परिणाम, पंच महाव्रत के परिणाम राग के इनसे भिन्न भगवान है। आहाहा! उसकी जब तक दृष्टि और उसका आश्रय न करे, तब तक भटकने के सब रास्ते हैं। ऐसा है। है?

परवस्तु से ज्ञानी को शर्म आती है कि यह तेरी? अरे! हमारी वस्तु कहाँ से? हम तो आत्मा के आनन्द में हैं, वह आत्मा है। आहाहा! इतने चेले बनाये और इतनी चेलियाँ बनायीं। समझ में आया? आहाहा! इतनी पुस्तकें बनायीं, इतने मन्दिर बनाये। परवस्तु को और आत्मा को क्या सम्बन्ध है? भाई! आहा! उस परवस्तु से उसकी शोभा, प्रशंसा करनेवाले से तो वह लज्जित होता है, लज्जा होती है कि अरे! यह हमारी चीज़ नहीं और यह क्या कहता है? ऐसा सूक्ष्म मार्ग है।

'लज्जते' क्योंकि इन सबों को बन्ध का कारण जानता है। दीक्षा देना, दीक्षा का भाव पंच महाव्रतादि, वह सब बन्ध के कारण हैं। पुस्तकें लाखों, करोड़ों बनाना, उसमें उसका शुभभाव हो तो वह बन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : आचार्य तो निषेध करते हैं और शिष्य तो होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे स्वयं मानते नहीं। मैं तो आनन्द हूँ। विकल्प आता है, उसके वे जाननेवाले हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! वीतरागमार्ग जिनवरदेव केवली परमात्मा जिनवर का मार्ग अन्यत्र कहीं है नहीं। आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग है। जिसमें रागरहित वीतरागता उत्पन्न हो, उसका नाम धर्म है। आहाहा! यह पंच महाव्रत, दीक्षा और पुस्तकें, वे सब बन्ध के कारण हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : परवस्तु कहीं बन्ध का कारण होती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : बन्ध का निमित्त है न! वह बन्ध का निमित्त है। आहाहा! पुण्यबन्ध के कारण है न? पुण्यबन्ध के कारण हैं, उसमें वह निमित्त है। आहाहा!

भावार्थ :- सम्यग्दर्शन... आत्मा शुद्ध चिदानन्द भगवान जिनवर परमेश्वर तीर्थंकर ने कहा, वह आत्मा तो सम्यक् शुद्ध चैतन्यघन है। उसे राग का भी सम्बन्ध नहीं तो शरीर, वाणी, मन और जड़ तो परवस्तु है। आहाहा! ऐसा जो आत्मा शुद्ध चैतन्य निर्मलानन्द अनाकुल आनन्दकन्द, ऐसा आत्मा जिनवर ने कहा वह, परमेश्वर ने कहा वह; अज्ञानी आत्मा... आत्मा करे, वह नहीं। आत्मा तो सब बहुत कहते हैं, अन्यमति भी। परन्तु उन्होंने आत्मा कैसा है, यह देखा नहीं, जाना नहीं।

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने... आहाहा! देखा है, जाना है, अनुभव किया है और प्रगट किया है। ऐसा जो आत्मा, वह अनाकुल आनन्द अतीन्द्रिय ज्ञानमूर्ति, वह आत्मा है। आहाहा! उसकी प्रतीति अनुभव होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करे, वह सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा! वस्तु परमानन्द की मूर्ति प्रभु अनाकुल शान्तरस का कन्द आत्मा, उसके सन्मुख होकर उसका आश्रय लेकर, उसका ज्ञान करके, उसमें प्रतीति होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म का पहला सोपान। आहाहा! अरे! जगत को कहाँ पड़ी है, मेरा क्या होगा? मैं कहाँ जाऊँगा यहाँ से? वह तो अनादि-अनन्त है। वह कहीं आत्मा, शरीर के नाश से नाश हो—ऐसा नहीं है। तो जायेगा कहाँ? जिसे अपना माना है, उसे छोड़ेगा नहीं, इसलिए उसका संयोग होगा उसे। संयोग में भटकने जायेगा। आहाहा!

जिसने आत्मा पूर्ण निर्विकल्प अभेद चैतन्यघन, अनन्त चैतन्य के प्रकाश का पूर, चैतन्य के तेज का पूर प्रभु आत्मा... आहाहा! वह कैसे बैठे? कभी खबर नहीं होती। ऐसे आत्मा की अन्दर में स्वभाव के सन्मुख होकर, स्वभाव इतना है, ऐसा है, अनाकुल आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञानमय जिसका स्वभाव है (ऐसे) स्वभाव के सन्मुख होकर प्रतीति—सम्यग्दर्शन, उसका नाम कहा जाता है। आहाहा! संयोगों में से लक्ष्य छोड़कर, राग हो दया, दान का, उसका भी लक्ष्य छोड़कर, एक समय की पर्याय की अल्पज्ञता का भी लक्ष्य छोड़कर। आहाहा! अरे रे! इसने कभी अपनी दया पालन नहीं की। हें! पर की दया पालने निकल गया। कौन पाले पर की? पर का करे कौन?

यहाँ तो कहते हैं, सम्यग्दर्शन... आहाहा! शुद्ध चैतन्यघन भगवान, अल्पज्ञ भी नहीं, वहाँ राग और निमित्त तो कहाँ रहे? यह कहते हैं, देखो! **सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्ररूप जो निज शुद्धात्मा उसको न श्रद्धान करता,...** उसकी श्रद्धा तो करता नहीं। आहाहा! यह दीक्षा के भाव, महाव्रत के भाव पुण्य के, उनकी श्रद्धा करता है। वह तो मिथ्यात्व है। समझ में आया?

मुमुक्षु : शुद्धात्मा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्ररूप है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। चारित्ररूप जो निज शुद्धात्मा का श्रद्धान करता नहीं। त्रिकाली तो वह ही है वस्तु। परिणति में हो, वह वर्तमान है। आहाहा! वास्तव में तो भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन त्रिकाली स्वरूप ही है। तब उसकी सम्यग्दर्शन की पर्याय आती है न। सम्यग्दर्शन की पर्याय, वह सम्यग्दर्शन पूर्णस्वरूप भगवान आत्मा है। उसमें से सम्यग्दर्शन की पर्याय आती है। आहाहा! ऐसा भी कहाँ निवृत्त है? धन्धे के पाप के कारण फुरसत नहीं मिलती एक तो मानो। चौबीस घण्टे में बीस घण्टे तो वहाँ पाप में जाते हैं इसके। कमाना, भोग, विषय, इज्जत और कीर्ति। अब उसमें एकाध घण्टा मिले, सुनने जाये वहाँ मिले दूसरा। यह करो, दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, धर्म होगा। वह लुट गया बेचारा। कुगुरु ने लूट लिया। आहाहा! श्रीमद् यह कहते हैं, बहुत समय उसमें जाये, एकाध घण्टा सुनने को मिले, कुगुरु लूट ले इस बेचारे को। आहाहा! इसका काल मिला, वह चला जायेगा। आहाहा!

ज्ञानी तो उसे ऐसा कहे... आहाहा! भाई! पर के संग में तो तुझे जो रखने का भाव, पर की सेवा बाईस घण्टे करे, वह तो सब पाप है, परन्तु हमारी बात सुनते हुए जो तुझे लगता है, वह पुण्य है, धर्म नहीं। आहाहा! उसमें से सुनने का विकल्प है, उससे भिन्न पड़कर तेरा स्वभाव है, उसकी ओर देख। हमारे सन्मुख देखना छोड़ दे। आहाहा! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव जिनेश्वरदेव ऐसा कहे, हमारे सन्मुख देखना छोड़ दे। हमारे सामने देखने से, हम परद्रव्य हैं तो तुझे राग होगा। आहाहा! आता है? सोगानी में आता है। न्यालचन्दभाई में। सेठ! द्रव्यदृष्टिप्रकाश में यह आता है। भगवान आत्मा ऐसा कहे। वीरचन्दभाई! द्रव्यदृष्टिप्रकाश आया है या नहीं? है? वहाँ दिया है या नहीं? उसमें है यह बोल। भगवान ऐसा कहे।

सोगानी—न्यालचन्दभाई हुए। बहुत लाखोंपति। एक रात्रि में यहाँ समकित को प्राप्त हुए थे। एक रात्रि में! ध्यान में बैठे। यहाँ बात की, भाई! राग है, वह पर है। वह आत्मा का स्वरूप नहीं। उसमें चोट लगी। बहुत वाँचन, गृहस्थ बड़े, बहुत लाखोंपति। बहुत वाँचन किया हुआ। बाबा, योगी का बहुत संग किया। अपनी भोजनशाला का स्थान है न? क्या कहलाता है वह? समिति। उसमें रात्रि, शाम से वे सवेरे तक बैठे ध्यान में। यह क्या? राग आत्मा का नहीं, विकल्प उठे, वह आत्मा का नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प उठे, वह राग आत्मा में नहीं। एक ध्यान में शाम से सवेरे (बैठे)। सम्यग्दर्शन, राग से भिन्न करके उठ गये। एक रात्रि में! आत्मा के आनन्द का स्वाद... आहाहा! तथापि वह किसी को कुछ कहे नहीं। समझ में आया?

उन्होंने ऐसा कहा है कि भगवान ऐसा कहते हैं, हे जीव! तू मेरे सन्मुख देखना छोड़ दे, मेरे सामने देखने से तो तुझे राग होगा। पुण्य के परिणाम होंगे। वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा! तेरे स्वभाव-सन्मुख देख तो तुझे अबन्धपरिणाम होंगे, मोक्ष के कारण के परिणाम होंगे। अरे! यह क्या? समझ में आया? आहाहा!

सम्यक्‌चारित्ररूप जो निज शुद्धात्मा उसको न श्रद्धान करता,... आहाहा! उसकी श्रद्धा करता नहीं। भगवान आनन्द का नाथ, उसका ज्ञान करता नहीं, **न अनुभव करता...** उसका आचरण अन्दर में रमणता, वह करता नहीं। आहाहा! वह **जो मूढ़ात्मा वह**

पुण्यबन्ध के कारण जिनदीक्षा... गजब किया है न! जिनदीक्षा, वह पुण्यबन्ध का कारण। सेठ! ऐसी बात है। महाव्रतादि के परिणाम हैं न, दे न ऐसे? वह सब तो शुभभाव है। मुनि की जितनी क्रियायें अट्ठाईस मूलगुण की, वह सब शुभभाव है। आहाहा! अलिंगग्रहण में कहा है, यति के बाह्य आचार का जीव स्वभाव में अभाव है। पंच महाव्रत, पाँच समिति, गुप्ति आदि ऐसा जो विकल्प वह तो शुभराग है।

मुमुक्षु : आत्मा के स्वरूप में....

पूज्य गुरुदेवश्री : है यह, यति की क्रिया। आहाहा! १७वाँ बोल है, १७वाँ बोल है। बीस बोल हैं न? बीस। अलिंगग्रहण के बीस बोल हैं। १७२ गाथा, प्रवचनसार में बीस बोल हैं, एक अलिंगग्रहण में से बीस बोल निकाले हैं। उसमें एक १७वाँ बोल ऐसा लिया, यति की बाह्य क्रिया का जिसमें अभाव है, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! अलिंगग्रहण। महाव्रत के परिणाम और समिति, गुप्ति के परिणाम से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं, ऐसा वह अलिंगग्रहण है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : तो दीक्षा लेना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे, वह अलग बात है, परन्तु अन्दर चारित्र आये बिना सब थोथा है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र बिना की वह दीक्षा-बीक्षा सब व्यर्थ। कहा नहीं? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' मुनिव्रत लिया, नग्न दिगम्बर हुआ, पंच महाव्रत (लिये), हजारों रानियाँ छोड़ी परन्तु अन्दर में मिथ्यात्व को छोड़ा नहीं, आत्मज्ञान किया नहीं। आहाहा! शास्त्रज्ञान भी नहीं। अन्दर भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति चैतन्य के तेज का पूर, उसका अनुभव नहीं किया। आहाहा! व्यर्थ निकली इसकी दीक्षा भी। समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं, देखो न! **पुण्यबन्ध के कारण जिनदीक्षा,...** देनेवाले का भाव भी शुभ और पंच महाव्रत लेनेवाले के परिणाम भी शुभ। आहाहा! ऐसा मार्ग है। **दानादि...** लो, दान करना, दान। यह मुनियों को दान देना, धर्मदा में दान देना पाँच-पच्चीस हजार, पचास हजार, वह सब शुभभाव है, वह कहीं धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया? है? **पुण्यबन्ध के कारण जिनदीक्षा, पुण्यबन्ध के कारण दानादि...** वह

शुभ आचरण है। आहाहा! दान देने का भाव, वह शुभ आचरण है, पुण्य है। ऐसे शरीर से ब्रह्मचर्य पालने का भाव, वह शुभपुण्य है। ब्रह्मानन्द भगवान आनन्दकन्द के अन्दर रमना, उसका नाम ब्रह्मचर्य है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मचर्य सब शुभभाव का—बन्ध का कारण है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। नये लोगों को तो ऐसा लगे यह। अब यहाँ तो बहुत वर्ष हो गये, ४२ हुए। इस सोनगढ़ में ४२ (वर्ष) हुए। ४५ (वर्ष की उम्र में) आये थे, ४२ हुए, ८७ हुए। ४५ वर्ष की उम्र में यहाँ आये थे। (संवत्) १९९१, ९१। ४२ यह हुए, (इस प्रकार कुल) ८७ हुए। ८० और ७। ९० में ३ कम। आहाहा! इतने काल से तो यह बात कही जाती है, यहाँ आये तब से।

कहते हैं, **और पुस्तकादि उपकरण...** शिष्य, पुस्तक आदि उपकरण **उनको मुक्ति के कारण मानता है,...** अज्ञानी। आहाहा! लाख, दो लाख पुस्तकें बनायीं। यहाँ तो अपने बीस लाख पुस्तकें बनी हैं। सोनगढ़ से चौदह लाख, जयपुर से छह लाख। अपनी ओर का है न वह भी। बीस लाख पुस्तकें हुई, उसमें आत्मा को क्या? शुभभाव होवे तो पुण्यबन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : दूसरे को तो लाभ होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे को भी उससे लाभ नहीं। उसके आत्मा का आश्रय करे तो लाभ हो। कहो, सेठ! यह तुम्हारा चैत्यालय आया। सेठ का है न चैत्यालय? वहाँ सागर में नहीं? पुस्तकें और... क्या कहलाता है वह? मन्दिर में तुम्हारे... वेदी... वेदी। वेदी कहते हैं। वे सब पुस्तकें और वेदी, वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। यह सब मन्दिर भी पुण्यबन्ध के कारण हैं। शुभभाव हो, अशुभ से बचने के लिये, (परन्तु) है वह पुण्यबन्ध का कारण। आहाहा! लोगों को....

मुमुक्षु : हमारी सब आशाओं के ऊपर पानी फिरा डाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : पानी फिराया? धूल भी धर्म नहीं था वहाँ। धर्म तो आत्मा राग से भिन्न पड़कर आत्मा की दृष्टि करे, तब सम्यग्दर्शन का धर्म होता है। कहो, देवीलालजी! देवीलालजी कहे कि यह परमात्मप्रकाश घर-घर में जाना चाहिए। ऐसा खुल्ला किया है। आहाहा! प्रभु! यह तो वस्तु... आहाहा!

मुमुक्षु : परमात्मप्रकाश का गुजराती भावनगर से प्रकाशित होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रकाशित होता है ? गुजराती ? भले गुजराती। पहला-वहला है न गुजराती ? आहाहा!

पुस्तकादि उपकरण उनको मुक्ति के कारण मानता है,... अज्ञानी। **और ज्ञानीजन इनको साक्षात् पुण्यबन्ध के कारण जानता है,...** ज्ञानी, हों! सम्यग्दृष्टि है वह। जिसे सम्यग्दर्शन है, आत्मा का ज्ञान है, राग से भिन्न पड़कर अकेले चैतन्य की श्रद्धा और ज्ञान हुए हैं, उस ज्ञानी को ऐसे भाव वर्तमान साक्षात् पुण्यबन्ध का कारण है। है ? **परम्पराय मुक्ति के कारण मानता है।** फिर राग को टालकर मोक्ष में जायेगा।

मुमुक्षु : राग को टालकर इसमें नहीं कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : टालकर, इसका अर्थ यह हुआ। अभी दृष्टि मिथ्यात्वादि आली है, फिर रागादि टालकर वीतराग होगा। राग से वीतरागता होगी ? आहाहा! है, बड़ी गड़बड़ है बड़ी। वह भी पहली सम्यग्दृष्टि की तो बात न करे, उसके बाद, उसके बाद, उसकी बात है न। जिन्हें पुण्यबन्ध का कारण भी हेय है... आहाहा! इसका बड़ा विवाद। पुण्य को हेय न कहो। लो। कल आया है बड़ा। दसवें गुणस्थान तक राग है। राग है तो क्या है ? है तो हेय है। चौथे गुणस्थान से राग हेय है। अज्ञानी उसे उपादेय माने तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : हेय है, तब हेय का पुरुषार्थ वर्तता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हेय है, तब है न! न हो उसे... व्यवहारनय हेय है, इसका अर्थ व्यवहारनय है, उसका विषय है, वह सत् है। सत् अर्थात् नहीं, ऐसा नहीं। परन्तु वह हेय है। आत्मा का निश्चयनय स्वभाव, वह उपादेय है और राग, वह हेय है। अज्ञानी को राग उपादेय है, उसे आत्मा हेय है। यह इसमें आ गया है, ३६ गाथा, परमात्मप्रकाश। समझ में आया ? आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग है, बापू! यह तो जिनवर का मार्ग है केवली। बेचारे सम्प्रदाय में तो सुनने को मिला नहीं, सुनने को मिला नहीं। आहाहा!

कहते हैं, आहाहा! परम्परा का अर्थ यह—जिसे आत्मज्ञान हुआ है, आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी राग है और उससे भगवान भिन्न है। आहाहा!

और उस सम्यग्दृष्टि को ही ऐसा विकल्प होता है, तथापि वह हेय है। आहाहा! यह सब कल आया है, लो, तीर्थंकरप्रकृति बाँधे। परन्तु किसे होती है? पहले निर्णय तो कर। सम्यग्दर्शन बिना वह विकल्प भी होता नहीं। वह जानता है कि वह हेय है। वहाँ तो यहाँ तक लिखा, तीर्थंकरप्रकृति बाँधे, वह उपादेय है। प्रकृति उपादेय है! अरे... भगवान! लोगों को खलबलाहट हो गयी है।

मुमुक्षु : पुण्य का फल भोगते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य के फल भोगते हैं। यहाँ भी भोगते हैं, ऐसा कहते हैं। कितने पुण्य के यह देखो न बड़े २६-२६ लाख के मकान। यहाँ आये तब से ४२ वर्ष में एक करोड़ रुपये लग गये हैं, यहाँ सोनगढ़ में एक करोड़। मन्दिर, यह सब मकान सब हुए हैं। ऐसा कि पुण्य भोगते हैं और वापस नया पुण्य करते हैं। पूजा करे, भक्ति करे। भाई! यह भाव आता है, परन्तु हेय है। पूर्ण वीतराग न हो, तब तक यह भाव आवे, परन्तु वह हेयबुद्धि से आता है। हेयबुद्धि से ज्ञेय है। आदरणीयबुद्धि से ज्ञेय है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। ओहोहो!

मुमुक्षु : सोनगढ़ पेरिस है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पेरिस है। पैसा बहुत आवे न यहाँ। बड़े-बड़े करोड़पति पैसा (खर्च करे)। उसके साथ क्या सम्बन्ध है? वह तो परवस्तु है। और उसमें शुभभाव हो तो पुण्यबन्ध का कारण है। वह कहीं धर्म नहीं। आहाहा! है?

ज्ञानीजन इनको साक्षात् पुण्यबन्ध के कारण जानता है,... किसे? जिनदीक्षा, दानादि शुभाचरण, पुस्तक, उपकरणादि होने का भाव। परम्परा मुक्ति का कारण मानता है। अभी मुक्ति का कारण नहीं, बाद में राग छूटेगा तो मुक्ति का कारण कहा जायेगा उसे। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई!

मुमुक्षु : अब हमारी बात आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आयी नहीं जरा भी। सम्यग्दृष्टि, परन्तु उसकी पहली शर्त यह। सम्यग्दृष्टि तो कब हो? राग को हेय माने और स्वभाव को उपादेय माने तब। आहाहा! अरे! चौरासी के अवतार भाई... आहाहा!

अभी तो कितना सुनते हैं। हार्टफेल एक क्षण में हो गया, ढींकणा हो गया, फींकणा हो गया। आहाहा! यह कैंसर का रोग। कैंसर था न लड़की को? धनजीभाई! बहिन को—लड़की को क्या था? कैंसर? हें? कैंसर था न? हाँ, सुना था, सुना था। यह तो बहुत होता है अभी। कल दो व्यक्ति गुजर गये, परसों। एक अपने भोगीभाई, ९१ वर्ष। भोगीलाल मन्दिरमार्गी के प्रमुख। आते थे न, यहाँ आते थे बेचारे। ९१ वर्ष। और एक अपने यहाँ, बगसरा थे। क्या नाम? नरभेराम देवचन्द, ९७ वर्ष की उम्र, ९७ वर्ष। नरभेराम आते थे, यहाँ आते थे। परन्तु फिर वहाँ वडिया भी आये थे। परन्तु लोग आने न दे। सेठिया कहलाये न सामने, वहाँ जाये तो फिर... परन्तु उसे आने का प्रेम बेचारे को। परसों गुजर गये, दोनों परसों गुजर गये न? सेठी भोगीलाल भी परसों और यह भी परसों। बगसरा। स्थानकवासी। भोगीलाल श्वेताम्बर के प्रमुख। बीस हजार लोग वहाँ श्वेताम्बर के।

मुमुक्षु : नरभेरामभाई स्थानकवासी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो है, खबर है। तथापि उस आनेवाले का प्रेम इतना। वस्तु क्या है, वस्तु के निर्णय बिना... परसों उसका शव निकला, शव परसों, यहाँ भावनगर, भोगीभाई यहाँ आते थे कायम। दस हजार लोग श्मशान में साथ में। आठ से दस हजार कहते थे। रविवार को आये थे। इतने लोग। सबका रखा हुआ न, सर्वत्र जाये। परन्तु उसमें आत्मा को क्या? लाख लोग श्मशान में आये न... यह कहते हैं, बड़ा चन्दा हुआ वहाँ। श्मशान में चन्दा करते हैं न? खरडो समझते हो? चन्दा। श्मशान में चन्दा करे गाय के घास के लिये। पाँच हजार, दस हजार किया होगा। कल तो लोग बहुत थे। उसमें आत्मा को क्या? आहाहा! आत्मा राग के विकल्प से भी भिन्न है, ऐसी जब तक दृष्टि न करे, तब तक सब थोथा है। जन्म-मरण के चक्र में—फेरे में जायेगा। आहाहा!

यद्यपि व्यवहारनयकर बाह्य सामग्री को धर्म का साधन जानता है,... देखो! पंच महाव्रतादि को व्यवहार से साधन जाने। व्यवहार से, हों! हेय, हेय को व्यवहार से जाने। निमित्त है न। निमित्त कहो, व्यवहार कहो। **व्यवहारनयकर बाह्य सामग्री को धर्म**

का साधन जानता है, तो भी ऐसा मानता है... देखो! **निश्चयनय से मुक्ति के कारण नहीं है।** आहाहा!

मुमुक्षु : .... समाप्त कर डालेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु तो यह है न!

वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा अन्दर है, आत्मा ही वीतरागस्वरूप है अन्दर। उसका आश्रय लेकर वीतरागता होती है। पर का आश्रय लेकर पंच महाव्रत आदि परिणाम वह तो व्यवहारनय से साधन कहे जाते हैं, निश्चय से मुक्ति का कारण नहीं, बन्ध के कारण हैं। आहाहा! ऐसी बातें बहुत, भाई! अभी इसे खबर भी नहीं होती (कि) सच्ची चीज़ क्या है और कैसे होती है। लो, यह ८८ हुई।

गाथा - ८९

अथ चट्टपट्टकुण्डिकाधुपकरणैर्मोहमुत्पाध मुनिवराणां उत्पथे [1]पात्यते[?] इति प्रतिपादयति-

२१२) चट्टहिँ पट्टहिँ कुंडियहिँ चेल्ला-चेल्लियएहिँ।
मोहु जणेविणु मुणिवरहँ उप्पहि पाडिय तेहिँ।।८९।।

चट्टैः पट्टैः कुण्डिकाभिः शिष्यार्जिकाभिः।
मोहं जनयित्वा मुनिवराणां उत्पथे पातितास्तैः।।८९।।

चट्टपट्टकुणिडकाधुपकरणैः शिष्यार्जिकापरिवारैश्च कर्तृभूतैर्मोहं जनयित्वा। केषाम्। मुनिवराणां, पश्चादुन्मार्गे पातितास्ते तु तैः। तथाहि तथा कश्चिदजीर्णभयेन विशिष्टाहारं त्यक्त्वा लङ्घनं कुर्वन्नास्ते पश्चादजीर्णप्रतिपक्षभूतं किमपि मिष्टौषधं गृहीत्वा जिह्वालाम्पटयेनौषधेनापि अजीर्णं करोत्यज्ञानी इति, न च ज्ञानीति, तथा कोऽपि तपोधनो विनीतवनतादिकं मोहभयेन त्यक्तवा जिनदीक्षां गृहीत्वा च शुद्धबुद्धैकस्वभावनिजशुद्धात्म-तत्वसम्यक् श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरुपनीरोगत्वप्रतिपक्षभूतम-जीर्णरोगस्थानीयं मोहमुत्पाधात्मनः। किं कृत्वा। किमप्यौषधस्थानीयमुपकरणादिकं गृहीत्वा। कोऽसावज्ञानी न तु ज्ञानीति। इदमत्र तात्पर्यम्। परमोपेक्षासंयमधरेण शुद्धात्मानुभूतिप्रतिपक्षभूतः सर्वोऽपि तावत्परिग्रहस्त्याज्यः। परमोपेक्षासंयमा भावे तु वीतरागशुद्धात्मानुभूतिभावसंयमरक्षणार्थं विशिष्टसंहननादिशक्त्यभावे सति यधपि तपः-पर्यायशरीरसहकारिभूतमन्नपानसंयमशौचज्ञानोपकरणतृणमयप्रावरणादिकं किमपि गृह्णाति तथापि ममत्वं न करोतीति। तथा चोक्तम्-''सम्येषु वस्तुवनितादिषु वीतमोहो मुह्येद् वृथा किमिति संयमसाधनेषु। धीमान् किमामयभयात्परिहृत्य भुक्तिं पीत्वौषधं व्रजति जातुचिदप्यजीर्णम्।।''।।८९।।

आगे कमंडलु, पीछी, पुस्तकादि उपकरण और शिष्यादिका संघ ये मुनियोंको मोह उत्पन्न कराके खोटे मार्गमें पटक देते हैं-

शिष्य और शिष्यायें, पुस्तक पिछी कमण्डलादि साधन।
मोहोत्पन्न कराके मुनिवर को कुमार्ग में करें पतन।।८९।।

अन्वयार्थ :- [चट्टैः पट्टैः कुंडिकाभिः] पीछी, कमंडल, पुस्तक और [शिष्यार्जिकाभिः]

---

१. पाठान्तर - पात्यते=पात्यन्त

मुनि श्रावकरुप चेला, अर्जिका, श्राविका इत्यादि चेली-ये संघ [मुनिवराणां] मुनिवरों को [मोहं जनयित्वा] मोह उत्पन्न कराके [तैः] वे [उत्पथे] उन्मार्ग में (खौटे मार्ग में) [पातिताः] डाल देते हैं।

भावार्थ :- जैसे कोई अजीर्ण के भय से मनोज्ञ आहार को छोड़कर लंघन करता है; पीछे अजीर्ण की दूर करनेवाली कोई मीठी औषधि को लेकर जिह्वा का लंपटी होके मात्रा से अधिक लेके औषधि का ही अजीर्ण करता है, उसी तरह अज्ञानी कोई द्रव्यलिंगी यती विनयवान् पतिव्रता स्त्री आदि को मोह के डर से छोड़कर जिनदीक्षा लेके अजीर्ण समान मोह के दूर करने के लिये वैराग्य धारण करके औषधि समान जो उपकरणादि उनको ही ग्रहण करके उन्हीं का अनुरागी (प्रेमी) होता है, उनकी बुद्धि से सुख मानता है, वह औषधि का ही अजीर्ण करता है। मात्राप्रमाण औषधि लेवे, तो वह रोग को हर सके। यदि औषधि का ही अजीर्ण करे-मात्रा से अधिक लेवे, तो रोग नहीं जाता, उलटी रोग की वृद्धि ही होती है। यह निःसंदेह जानना। इससे यह निश्चय हुआ जो परमोपेक्षासंयम अर्थात् निर्विकल्प परमसमाधिरुप तीन गुप्तिमयी परम शुद्धोपयोगरुप संयम के धारक है, उनके शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत सब ही परिग्रह त्यागने योग्य है। शुद्धोपयोगी मुनियों के कुछ भी परिग्रह नहीं है, और जिनके परमोपेक्षा संयम नहीं लेकिन व्यवहार संयम है, उनके भावसंयम की रक्षणार्थ व्यवहार संयम है, उनके भावसंयम की रक्षा के निमित हीन संहनन के होने पर उत्कृष्ट शक्ति के अभाव से यधपि तप का साधन शरीर की रक्षा के निमित अन्न जल का ग्रहण होता है, उस अन्न जल के लेने से मल-मूत्रादि की बाधा भी होती है, इसलिये शौच का उपकरण कमंडलु, और संयमोपकरण पीछी, और ज्ञानोपकरण पुस्तक इनको ग्रहण करते हैं, तो भी इनमें ममता नहीं है, प्रयोजनमात्र प्रथम अवस्था में धारते हैं। ऐसा दूसरी जगह ''रम्येषु'' इत्यादि से कहा है, कि मनोज्ञ स्त्री आदिक वस्तुओं में जिसने मोह तोड़ दिया है, ऐसा महामुनि संयम के साधन पुस्तक, पीछी, कमंडलु आदि उपकरणों में वृथा मोह को कैसे कर सकता है? कभी नहीं कर सकता। जैसे कोई बुद्धिमान पुरुष रोग के भय से अजीर्ण को दूर करना चाहे और अजीर्ण के दूर करने के लिये औषधि का सेवन करे, तो क्या मात्रा से अधिक ले सकता है? ऐसा कभी नहीं करेगा, मात्राप्रमाण ही लेगा ।।८९।।

गाथा-८९ पर प्रवचन

८९। **आगे कमण्डलु...** मुनि... मुनि हों दिगम्बर, उन्हें कमण्डल होता है। **पिच्छी, पुस्तकादि उपकरण और शिष्यादि का संघ ये मुनियों को मोह उत्पन्न कराके खोटे मार्ग में पटक देते हैं**—अच्छा कमण्डल और अच्छी पिच्छी—मोरपिच्छी, मुनि को वह होती है न। कमण्डल पानी का, पिच्छी दया का, पुस्तक-शास्त्र का और शिष्य आदि का संघ। आर्यिक, साधु, आर्यिका साध्वी, श्रावक और श्राविका। **ये मुनियों को मोह उत्पन्न कराके....** यह मेरे शिष्य, हमने इतने किये। आहाहा! वह परपदार्थ का मोह उत्पन्न कराकर... आहाहा! **खोटे मार्ग में पटक देते हैं।** उल्टे मार्ग में चले जायेंगे। आहाहा! इतने शिष्य बनाये, इतनी पुस्तकें बनायीं, धर्मशासन की हमने इतनी प्रभावना की है। किसकी प्रभावना? बाहर होती होगी या अन्दर?

मुमुक्षु : पुस्तक आदि में चश्मा आता है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : शिष्यादि में सब (आता है)। चश्मा मुनि को नहीं होता। मुनि को चश्मा नहीं होता। वस्त्र का टुकड़ा नहीं हो तो फिर चश्मा कहाँ से लाये? चश्मा तो पच्चीस-पचास रुपये का होता होगा। मुनि को चश्मा होता नहीं।

मुमुक्षु : पुस्तक किससे पढ़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़े कहाँ से? कर ले संथारा। आँख से देख न सके तो ईर्यासमिति नहीं होती। संथारा कर दे, मुनि-सच्चे सन्त हों वे। समाधिमरण ले लेवे। खड़े-खड़े आहार लेने की शक्ति हो ऐसी... समझ में आया? वहाँ तक रहे। आँख में दिखता हो बराबर, ईर्यासमिति चलते-चलते तो छोड़ दे। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, संथारा कर डाले। आहाहा! मार्ग बापू! मुनि का मार्ग वह कहीं... यह तो नग्नमुनि की बात चलती है, हों! यह वस्त्रवाले, वे तो मुनि हैं ही नहीं। यह तो नग्नपना हो, पंच महाव्रत के परिणाम हों, वह व्यवहार से निमित्त साधन कहलाते हैं। आहाहा! निश्चयनय से तो वह बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में

आया ? यहाँ तो वस्त्र का एक टुकड़ा रखकर, हम मुनि हैं—ऐसा मनावे, वह मिथ्यादृष्टि घोर संसार में भटकेगा। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का है, भाई! आहाहा! ८९।

२१२) चट्टहिँ पट्टहिँ कुंडियहिँ चेल्ला-चेल्लियएहिँ।
मोहु जणेविणु मुणिवरहँ उप्पहि पाडिय तेहिँ।।८९।।

आहाहा! कहाँ जाकर पड़ता है, कहते हैं।

अन्वयार्थः—पिच्छी, कमण्डल, पुस्तक और मुनि श्रावकरूप चेला, अर्जिका, श्राविका इत्यादि चेली—ये संघ मुनिवरों को मोह उत्पन्न कराके... यह हमारे हैं, हमने किये हैं, इतने किये, देखो! हमारा सम्प्रदाय। आहाहा! मार डालेगा, कहते हैं। स्त्री, पुत्र, परिवार तो कहीं रह गये, वह तो उसमें था ही कहाँ और उसके है ही कहाँ, वे तो उनके कारण से आये और उनके कारण से जायें बेचारे।

मुमुक्षु : उसका भी ऐसा है, उसके कारण से आवे और उसके कारण से जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी उसके कारण से आवे और जावे, परन्तु मानता है कि मैंने सब किये। देखो! इतने समुदाय का मैं आचार्य हूँ। आहाहा!

मुनिवरों को... आहाहा! भाषा ली '**मुनिवराणां**'। हें! **मोह उत्पन्न कराके वे उन्मार्ग में (खोटे मार्ग में) डाल देते हैं।** आहाहा! वहाँ रुक जायेगा, अन्दर में जायेगा नहीं, अब वह, ऐसा कहते हैं। खोटा मार्ग। विकल्प का मार्ग। दीक्षा दी और यह किया और वह किया और बड़ी धमाल, हाथी के हौदे दीक्षायें, लो। आहाहा! उसमें हुआ क्या ? कहते हैं। अन्दर भगवान आत्मा राग से भिन्न को नहीं जाना, राग से भिन्न की दृष्टि, अनुभव किया नहीं। उसके बाहर के ठाठ-बाठ से तुझे क्या लाभ हुआ ? आहाहा!

मुमुक्षु : लौकिक सब मान्यता उल्टी लगती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब उल्टी मान्यता ही है। ऐसा है। स्त्री, पुत्र छोड़े, परिवार छोड़े, वापस यहाँ परिवार बनावे कि यह मेरा चेला है और यह मेरी चेलियाँ हैं।

मुमुक्षु : यह हमारा क्षेत्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षेत्र है, यह मेरा क्षेत्र है, इसलिए मुझे ध्यान रखने जाना

चाहिए। यह गोंडल का, यह बोटाद का। किसका क्षेत्र है? क्षेत्र क्षेत्र का है, तेरा कहाँ से आया? आहाहा! श्रीमद् में भी आता है। अपने क्षेत्र में अपना सम्प्रदाय हो, उसे बनाये रखने के लिये वहाँ चातुर्मास करना, वहाँ रहना। श्रीमद् में आता है। मार डालेगा, बापू! तेरी चीज़ तो भिन्न है। वहाँ यह चेला, चेली और क्षेत्र आया कहाँ से? वह तो परचीज़ है। आहाहा! ऐसा सुनने को मिलता नहीं बेचारे को, वह कहाँ जाये? आहाहा! **(खोटे मार्ग में) डाल देते हैं।** दृष्टान्त देते हैं।

भावार्थ :— जैसे... दृष्टान्त देते हैं। **कोई अजीर्ण के भय से...** लड्डू और चूरमा खाया हो और अजीर्ण हो गया हो। अजीर्ण के कारण से **मनोज्ञ आहार को छोड़कर...** यह मैसूर और बर्फी बहुत खाकर अजीर्ण हो गया हो तो उसे छोड़ दे। **लंघन करता है, पीछे अजीर्ण की दूर करनेवाली कोई मीठी औषधि...** आहाहा! उसमें मीठी औषधि उसे रोग की औषधरूप से मिली। उस मीठी औषधि की बहुत लेने लगा तो उसका अजीर्ण हुआ। अच्छी यह नहीं कोई कहते? यह दवा है न यह... बायोकेमिक सब मीठी दवा अकेली। होमियोपेथी गोली आते हैं न मीठी। परन्तु दूसरा उसमें बतावे कि तुम्हारे इसके ऊपर यह खाना। थोड़ा हलुवा खाना, अमुक खाना, ढींकणा खाना, मौसम्बी और आम खाना। आम खाकर अजीर्ण करे वापस, ऐसा कहते हैं। **मीठी औषधि को लेकर जिह्वा का लम्पटी होके...** आहाहा! **मात्रा से अधिक लेके...** मर्यादा से अधिक औषधि लेकर **अजीर्ण करता है,...** औषधि का अजीर्ण करे। यह दृष्टान्त देंगे .... ऊपर।

उसी तरह अज्ञानी कोई द्रव्यलिंगी... नग्नपना धारण किया है। **द्रव्यलिंगी यति विनयवान् पतिव्रता स्त्री आदि के मोह के डर से छोड़कर...** मोह के डर से पतिव्रता स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब छोड़ दिया। **जिनदीक्षा लेके अजीर्ण समान मोह के दूर करने के लिये वैराग्य धारण करके औषधि समान जो उपकरणादि उनको ही ग्रहण करके...** उपकरण विशेष लेने लगा तो उनका अजीर्ण हो गया इसे। आहाहा! है न? औषधि समान जो उपकरण... उपकरण बाहर के।

मुमुक्षु : वैराग्य धारण करना औषधि है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी औषधि है। वैराग्य धारण करे, वह नहीं परन्तु उपकरण

वह औषधि है। औषधि उपकरण है। वह मर्यादा बिना विशेष लेने लगा। पुस्तकें रेशम के उससे बाँधना, कमण्डल को श्रृंगारित करना, मोरपिच्छी को... यह रखते हैं न भट्टारक, चाँदी के और सोना के वह करे उसके। घड़ी रखे। आहाहा! उसका अजीर्ण हो गया। उपकरण का अजीर्ण हो गया। जैसे उसको औषध का अजीर्ण हो गया। मिठास के खाने से अजीर्ण हो गया, उस अजीर्ण के लिये मीठी औषधि ली। उस मीठी औषधि का अजीर्ण हुआ, बहुत ली इसलिए। आहाहा! ऐसी आती है कुछ दवा, खोपरापाक और ऐसा कुछ उसे दे। दो रुपयाभार लेना, ऐसा कहे। उसके बदले पाव सेर, पाव सेर उठाये खोपरापाक। फिर उसका अजीर्ण हो। आहाहा!

ग्रहण करके उन्हीं का अनुरागी (प्रेमी) होता है,... औषध का। इसी प्रकार उपकरण का प्रेमी होता है, **उनकी वृद्धि से सुख मानता है,...** उपकरणादि की वृद्धि से सुख मानता है। **वह औषधि का ही अजीर्ण करता है।** वह औषधि का अजीर्ण करता है। आहाहा! **मात्राप्रमाण औषधि लेवे, तो वह रोग को हर सके।** मर्यादा प्रमाण औषधि हो तो रोग को हरे। **यदि औषधि का ही अजीर्ण करे—मात्रा से अधिक लेवे, तो रोग नहीं जाता,...** मीठी औषधि ही अधिक खाये तो रोग नहीं जाता, उसका अजीर्ण हो, ऐसा कहते हैं। **उल्टी रोग की वृद्धि हो जाती है। यह निःसन्देह जानना।**

इससे यह निश्चय हुआ जो परमोपेक्षासंयम अर्थात् निर्विकल्प परमसमाधिरूप तीन गुप्तिमयी परम शुद्धोपयोगरूप संयम के धारक हैं,... अन्दर में शुद्धोपयोग में स्थित होते हैं, उन्हें वास्तविक मुनिपना होता है। निश्चय मुनिपना परमोपेक्षा संयम। आहा! **उनके शुद्धात्मानुभूति की अनुभूति से विपरीत...** आहाहा! आत्मा शुद्ध चैतन्य की अनुभूति, आनन्द का वेदन। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, उसकी अनुभूति अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन, उससे विपरीत। आहाहा! **विपरीत सब ही परिग्रह त्यागनेयोग्य है।** आहाहा! उसे तो उपकरण का निमित्तपना भी छोड़नेयोग्य है। जिसे अन्तर में शुद्धोपयोग में स्थिर होता है परमोपेक्षासंयम... आहाहा! उसने तो यह उपकरण भी छोड़े हैं। आहाहा! शुद्धोपयोगी। निर्वाणसागर का पत्र आया है। तुमको मिला है? उदयपुर। यहाँ पत्र आया है कल। वे यहाँ आनेवाले हैं दस-बारह दिन में। गिरनार गये हैं। आनेवाले हैं। कल पत्र था। निर्वाणसागर दिल्ली होंगे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सातवें में शुद्धोपयोग, चौथे में नहीं? वाह!

मुमुक्षु : चौथेवाले को शुद्ध परिणति नहीं रहती।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध परिणति चौथे में तो रहती है। वाह! तो भी कहे कि उद्देशिक आहार ले वह दोष है, ऐसा वे मानते हैं। ठीक, आयेंगे, यहाँ आनेवाले हैं। अरे! शुद्धोपयोग बिना सम्यग्दर्शन कहाँ से? शुद्धोपयोग में सम्यग्दर्शन होता है। सातवें में शुद्धोपयोग। कहो! मुनिपना शुद्धोपयोग को ग्रहण करने से होता है। पाठ तो यह है। मुनि शुद्धोपयोग को ग्रहण करते हैं। मोक्षमार्गप्रकाशक, प्रवचनसार की पाँच गाथायें। दया, दान, व्रत के परिणाम तो शुभराग है, वह कहीं मुनिपना नहीं। आहाहा! शुद्धोपयोग अन्दर में हुआ, उसका नाम मुनिपना है। छठवें में भी शुद्धोपयोग अर्थात् भले लीनता—एकाग्रता न हो, परन्तु शुद्ध परिणति है, वीतरागी परिणति जो है, वह मुनिपना है। महाव्रत का विकल्प आवे, वह राग है, अचारित्र है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक, ऐसी बात है। सुना नहीं न, सुना नहीं। आहाहा! द्रव्यसंग्रह की ४७ गाथा में तो ऐसा कहा, ध्यान में निश्चय और व्यवहारमोक्षमार्ग होते हैं। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।**' ध्यान में अन्दर शुद्धोपयोग में होते हैं, वहाँ इतनी निश्चय मोक्षमार्ग की शुद्ध परिणति; राग बाकी है, उतना व्यवहार का आरोप दिया जाता है। ऐसा आता है। एकसाथ होता है। व्यवहार पहला, निश्चय बाद में, यह भी कहाँ है? है सूक्ष्म बात, लोगों का... मुनिपना बाहर का क्रियाकाण्ड लेकर बैठे और वस्तु कुछ दूसरी आयी यहाँ से—सोनगढ़ से, इसलिए खलबलाहट हो गया है। आहाहा!

अब यहाँ कहते हैं, जिसे शुद्धोपयोग अन्दर स्थिर नहीं हुआ, **परमोपेक्षा संयम नहीं लेकिन व्यवहारसंयम है, उनके भावसंयम की रक्षणार्थ व्यवहारसंयम है, उनके भावसंयम की रक्षा के निमित्त हीन संहनन के होने पर उत्कृष्ट शक्ति के अभाव से...** भावसंयम की रक्षा के निमित्त से, ऐसा है। छठवें में भी भावसंयम है। उसकी रक्षा क निमित्त। आहाहा! **हीन संहनन के होने पर उत्कृष्ट शक्ति के अभाव से यद्यपि तप का**

साधन शरीर की रक्षा के निमित्त... तप का निमित्त साधन मुनिपने का। **अन्न जल का ग्रहण होता है,...** पानी, आहार ले, **उस अन्न जल के लेने से मल-मूत्रादि की बाधा भी होती है, इसलिए शौच का उपकरण कमण्डलु...** उन्हें कमण्डल रखना पड़ता है। **और संयमोपकरण पिच्छी,...** संयम का उपकरण दया का पिच्छी। **और ज्ञानोपकरण पुस्तक इनको ग्रहण करते हैं, तो भी इनमें ममता नहीं है,...** वह तो विकल्प है, परन्तु उसकी रुचि नहीं। वह मेरा है, ऐसी ममता नहीं, ऐसा। **प्रयोजनमात्र प्रथम अवस्था में धारते हैं।** छठवें गुणस्थान में प्रयोजनमात्र। छठवाँ गुणस्थान किसे कहते हैं? तीन कषाय का अभाव (हुआ है) इतनी परिणति तो सदा रहती है। समकिती को शुद्धपरिणति समकित की युद्ध में हो तो भी वह तो सदा रहती है। शुद्धपरिणति बिना समकित कैसा? आहाहा!

मुमुक्षु : मिथ्यात्व नहीं होता, व्यवहार समकित रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार रहता है, इसका अर्थ क्या? कहाँ है, कुछ खबर नहीं बेचारा क्या करे? आहाहा!

ऐसा दूसरी जगह 'रम्येषु' इत्यादि से कहा है कि मनोज्ञ स्त्री आदिक वस्तुओं में जिसने मोह तोड़ दिया है,... घर की स्त्री, परिवार का मोह तोड़ दिया **ऐसा महामुनि संयम के साधन पुस्तक, पिच्छी, कमण्डल आदि उपकरणों में वृथा मोह कैसे कर सकता है?** आहाहा! मुफ्त का मोह कैसे करे? **कभी नहीं कर सकता। जैसे कोई बुद्धिमान पुरुष रोग के भय से अजीर्ण को दूर करना चाहे और अजीर्ण के दूर करने के लिये औषधि का सेवन करे, तो क्या मात्रा से अधिक ले सकता है?** मार्याद से। उसे कहा हो कि इतना एक रुपयाभार खोपरापाक प्रतिदिन खाना। तो क्या वह पाव सेर खाये? अजीर्ण होगा। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात परन्तु। परमात्मप्रकाश में तो खुल्ला करके सब रखा है। आहा! **ऐसा कभी नहीं करेगा, मात्राप्रमाण ही लेगा।** मर्यादा कही हो न इतना दूध और इतना यह लेना। बस। दूध में मिठास हो, इसलिए अधिक लेना, ऐसा नहीं, मर्यादा में लेना। इस प्रकार उपकरण मर्यादा प्रमाण होते हैं। तथापि उनकी ममता नहीं होती। और अन्दर परिणति शुद्ध होती है। भावसंयमी की बात है न! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ९०

अथ केनापि जिनदीक्षां गृहीत्वा शिरोलुञ्चनं कृत्वापि सर्वसंगपरित्यागमकुर्वतात्मा वञ्चित इति निरुपयति–

२१३) केण वि अप्पउ वंचियउ सिरु लुंचिवि छारेण।
सयल वि संग ण परिहरिय जिणवर–लिंगधरेण।।९०।।

केनापि आत्मा वञ्चितः शिरो लुञ्चित्वा क्षारेण।
सकला अपि संगा न परिहृता जिनवरलिङ्गधरेण।।९०।।

केनाप्यात्मा वञ्चितः। किं कृत्वा। शिरोलुञ्चुनं कृत्वा। केन। भस्मना। कस्मादिति चेत्। यतः सर्वेऽपि संगा न परिहृताः कथंभूतेन भूत्वा। जिनवरलिङ्गधारकेणेति। तधथा। वीतरागनिर्विकल्पनिजानन्दैकरुपसुखरसास्वादपरिणतपरमात्मभावनास्वभावेन तीक्षण–शस्त्रोपकरणेन बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहकांक्षारुपप्रभृतिसमस्तमनोरथकल्लोलमालात्यागरुपं मनोमुण्डनं पूर्वमकृत्वा जिनदीक्षारुपं शिरोमुण्डनं कृत्वापि केनाप्यात्मा वञ्चितः। कस्मात् सर्वसंगपरित्यागा–भावादिति। अत्रेदं व्याख्यानं ज्ञात्वा स्वशुद्धात्मभावनोत्थवीतरागपरमानन्द–परिग्रहं कृत्वा तु जगत्त्रये कालत्रयेऽपि मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च दृष्टश्रुतानुभूतनिः–परिग्रहशुद्धात्मा–नुभूतिविपरीतपरिग्रहकाङ्क्षास्त्वं त्यजेतित्याभिप्रायः।।९०।।

आगे ऐसा कहते हैं, जिसने जिनदीक्षा धरके केशों का लोंच किया, और सकल परिग्रह का त्याग नहीं किया, उसने अपनी आत्मा ही को वंचित किया–

कोई जिन भेषी करता है सदा राख से लुञ्चन–केश।
सकल परिग्रह नहीं तजे तो अपने को ही वही ठगे।।९०।।

अन्वयार्थ :– [केनापि] जिस किसी ने [जिनवरलिंगणधरेण] जिनवर का भेष धारण करके [क्षारेण] भस्म से [शिरः] शिर के केश [लुंचित्वा] लौंच किये, (उखाड़े) लेकिन [सकला अपि संगाः] सब परिग्रह [न परिहृता] नहीं छोड़े, उसने [आत्मा] अपनी आत्मा को ही [वंचितः] ठग लिया।

भावार्थ :– वीतराग निर्विकल्पनिजानंद अखंडरुप सुखरस का जो आस्वाद उसरुप परिणामी जो परमात्मा की भावना वही हुआ, तीक्षण शस्त्र उससे बाहिर के और अंतर

के परिग्रहों की वाञ्छा आदि ले समस्त मनोरथ उनकी कल्लोल मालाओं का त्यागरुप मन का मुंडन वह तो नहीं किया, और जिनदीक्षारुप शिरोमुंडन कर भेष रखा, सब परिग्रह का त्याग नहीं किया, उसने अपनी आत्मा ठगी। ऐसा कथन समझकर निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न, वीतराग परम, आनंदस्वरुप को अंगीकार करके तीनों काल तीनों लोक में मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदनाकर देखे, सुने, अनुभवे जो परिग्रह उनकी वाँछा सर्वथा त्यागनी चाहिये। ये परिग्रह शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत हैं।।९०।।

वीर संवत् २५०२, मागसर कृष्ण १२, शनिवार
दिनांक-१८-१२-१९७६, गाथा - ९०, ९१ प्रवचन-१६२

---

९० गाथा है, ८९ हुई न। **आगे ऐसा कहते हैं, जिसने जिनदीक्षा धरके केशों का लोंच किया, और सकल परिग्रह का त्याग नहीं किया,...** जिनदीक्षा ली, लोंच किया परन्तु मिथ्यात्व और रागादि के परिग्रह का त्याग किया नहीं। **उसने अपनी आत्मा ही को वंचित किया—**आहाहा! बाहर में दीक्षा ली, बाहर में लोंच भी किया परन्तु अन्दर में राग और मिथ्यात्वभाव जो पर है, उसका परिग्रह नहीं छोड़ा और वीतरागी परमानन्दस्वरूप का परिग्रह नहीं पकड़ा, उसने आत्मा को ठगा है। आहाहा!

आत्मा परमानन्दस्वरूप अन्तर वस्तु, उसकी निज शुद्धात्मा परमात्मस्वरूप निज शुद्धात्मा है। है पीछे। निज शुद्धात्मा की भावना। अन्दर निज शुद्ध चैतन्य भगवान सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा, उसकी भावना अर्थात् एकाग्रता, उससे उत्पन्न परमानन्द वीतरागी परमानन्द का परिग्रह, उसे जिसने ग्रहण नहीं किया और मिथ्यात्व राग-द्वेष के परिग्रह को पकड़ा है, उसने आत्मा को ठगा है। समझ में आया? आहाहा! परिग्रह में मूल परिग्रह मिथ्यात्व है। पुण्य परिणाम जो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि, वे परिणाम हैं, वह राग है, राग। उससे धर्म होता है, ऐसा माने उसने मिथ्यात्व का परिग्रह पकड़ा है। समझ में आया? वह अभ्यन्तर मिथ्यात्व, विपरीत मान्यता। राग जो क्रिया है... ऐसा कहते हैं यहाँ तो, दीक्षा की और पंच महाव्रत की भी क्रिया हो, तथापि वह राग है और राग से मुझे लाभ होगा, ऐसी जिसने मिथ्यात्व की पकड़ की है, आहाहा! उसने आत्मा को ठगा है। है न? **आत्मा ही को वंचित किया—** गाथा।

२१३) **केण वि अप्पउ वंचियउ सिरु लुंचिवि छारेण।**
सयल वि संग ण परिहरिय जिणवर-लिंगधरेण।।९०।।

आहाहा! **अन्वयार्थ :- जिस किसी ने...** किसी प्राणी ने **'जिनवरलिंगणधरेण' जिनवर का भेष धारण...** किया, नग्नपना धारण किया। आहा! **भस्म से सिर के केश लौंच किये,...** राख-राख से। **लेकिन... 'सकला अपि संगाः' सब परिग्रह...** आहाहा! मिथ्यात्व का परिग्रह जिसने छोड़ा नहीं और राग का भाग है, उसे भी जिसने छोड़ा नहीं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है। बाह्य दीक्षा ली, मुनिपना नग्नपना दिगम्बरपना (धारण किया), परन्तु वह कोई चीज़ नहीं। मनमुण्डन बिना शरीरमुण्डन किया उसने। आहाहा! पाठ है? मनमुण्डन नहीं किया। पुण्य और पाप के भाव, वे राग हैं, विकार हैं, दुःखरूप हैं, उसे पकड़ा कि उससे मुझे लाभ होगा। आहाहा! उसने मिथ्यात्वरूपी परिग्रह को पकड़ा है। उसका सिरलुंचन आदि सब आत्मा को ठगने के लिये है, कहते हैं। आहाहा! यह तो अन्तर की बात है न अन्तिम। अन्तिम गाथायें। आहाहा!

आत्मा वीतरागी परम शुद्धात्मा कन्द, आत्मा वह निजानन्दस्वरूप है। आहाहा! सच्चिदानन्दस्वरूप। सत् चिदानन्द। सत् अर्थात् त्रिकाली ज्ञान और आनन्द का समुद्र ऐसा जो आत्मा, उसे एकाग्रता से वीतराग परमानन्द से अनुभव नहीं किया। आहाहा! वीतरागी परमानन्द की पर्याय से जिसने अनुभव नहीं किया और बाहर से लोंच क्रिया आदि की, यह तो उसने आत्मा को ठगा। समझ में आया? जिनवरलिंग धारण किया।

'सकला अपि' सब परिग्रह नहीं छोड़े,... अभ्यन्तर में मिथ्यात्व, राग—कषाय, बाह्य में वस्त्र-पात्र आदि वस्तु। दीक्षा धारण की, नग्नपना लिया परन्तु अन्दर का परिग्रह मिथ्यात्व—पुण्य से धर्म, राग की पकड़ हुई कि रागक्रिया है, वह मुझे कल्याण करेगी, ऐसा जो मिथ्यात्व का परिग्रह, उसने छोड़ा नहीं। उसने कुछ छोड़ा नहीं। आहाहा! भगवान आनन्द का सागर परमात्मा, यह आत्मा अमृत का सागर, सुखसागर। आहाहा! उसे पुण्य के रागभाव में से मुझे आनन्द होगा, ऐसा जिसका अभिप्राय है, उस मिथ्यादृष्टि ने आत्मा को ठगा है। समझ में आया? गृहस्थाश्रम में भी व्रत-बारह व्रतादि धारण करे और अन्दर में राग से लाभ होता है, ऐसा माने, उसने मिथ्यात्व का परिग्रह पकड़ा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

आत्मा तो... कहेंगे आगे यह, **निज शुद्धात्मा की भावना...** निज शुद्धात्मा पवित्र भगवान आत्मा। पर्याय में—अवस्था में पुण्य-पाप है, वह तो मलिनदशा है। वस्तु है, वह तो शुद्ध है। आहाहा! पवित्र आनन्दकन्द प्रभु... कहाँ लाना इसे? खोजे कहाँ? आहाहा! जैसे मृग की नाभि में कस्तूरी, वैसे भगवान आत्मा के अन्तर के स्वभाव में आनन्द। उस आनन्द का अनुभव किया नहीं। आहाहा! उस अतीन्द्रिय आनन्द का स्वभाव-सन्मुख होकर वेदन नहीं किया। आहाहा! उसने बाह्य से व्रत धारण किये, वेश धारण किया, वह सब निरर्थक चार गति में भटकने का है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' मुनि हुआ नग्नदिगम्बर, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये परन्तु वह तो सब राग है। आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' परन्तु आत्मा आनन्दमूर्ति के अनुभव बिना इसे जरा भी आनन्द नहीं मिला। वह पंच महाव्रत के परिणाम आदि तो दुःखरूप है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार करते-करते निश्चय होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी। इसी प्रकार व्यवहार करते-करते निश्चय होगा, यह (उसके) जैसा है। आहाहा! दृष्टि विपरीत है, मूल में भूल। आहाहा! राग से वीतरागता होगी। आहाहा! अनन्तकाल से मिथ्याभ्रम से चौरासी के अवतार में भटक रहा है। यह अरबोंपति, करोड़ोंपति सब दुःखी हैं बेचारे। आहाहा! जिसे आत्मा के आनन्द का स्वाद नहीं, जिसे आत्मा के आनन्द का अनुभव नहीं, आहाहा! वे सब राज लो, और पैसा लाओ और करोड़पति, अरबोंपति बेचारे भिखारी हैं। पर के याचक हैं। वे दुःखी हैं। इसे खबर कहाँ है, भान बिना के। आहाहा!

मुमुक्षु : सेठिया को भान नहीं, ऐसा कहा जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठिया को भान बिना का कहा जाये? (ऐसा कहते हैं)। आहाहा! कुछ भान नहीं होता। ईरान की बात नहीं की? ईराक की। वहाँ का बादशाह अभी है। एक घण्टे में दो करोड़ की आमदनी है। अभी बादशाह है। एक घण्टे में दो करोड़ की आमदनी। आमदनी, हों! पूँजी दूसरी। एक दिन में आधे अरब की आमदनी।

कितनी चले ? तीस वर्ष चले इतना काला सोना है। काला सोना अर्थात् ? पेट्रोल। कुँए में इतना पेट्रोल है कि तीस वर्ष चले। दु:खी है बेचारा। वापस मरकर नरक में जानेवाला। आहाहा! दुनिया को कहाँ खबर है, आत्मा क्या है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की गाँठ है। गन्ने में जैसे, गन्ने में जैसे रस है न, रस ? वह रस है, वह गन्ना है। छिलका नहीं। उसी प्रकार यह शरीर, वाणी, मन तो छिलका-जड़ है। अरे! इसमें पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वे छिलके-जड़ हैं। उसमें आत्मरस आनन्दरस है, वह आत्मा है। आहाहा!

मुमुक्षु : छिलके बिना रस रहे किसमें ?

पूज्य गुरुदेवश्री : छिलके बिना अकेला वह रस रहता है, देखो! गुड़ होता है, अकेला रस रहता है या नहीं ? आहाहा! रस, रस में नहीं ? इस गन्ने का रस करते हैं। गन्ने का रस और यह गुड़-गुड़ बनाते हैं। क्या कहते हैं ? गुड़। गुड़ बनाते हैं, वह अकेला रस रहता है या नहीं ? आहाहा! अरे! इसे कहाँ खबर है, अन्दर कौन है यह। देहदेवल में परमात्मा आनन्दस्वरूप विराजता है। आहाहा! उसमें शरीर की जवानी हो, पच्चीस, तीस, चालीस वर्ष की उम्र जवान, और उसमें दो-पाँच, दस लाख, पचास लाख पैसे हों, स्त्री कुछ रूपवान हो और लड़के कुछ कमाऊ जगे हों, देखो फिर यह तो। पागल देखो तुम्हारे। हम सुखी हैं, हम पैसेवाले हैं। अरे... प्रभु! सुन तो सही नाथ। तेरी चीज़ बिना तू पर की चीज़ से सुखी मानता है, वह तो पागलपना है। आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ यह कहते हैं, देखो! जिसने सकल परिग्रह नहीं छोड़ा, उसने **अपनी आत्मा को ही ठग लिया।** आहाहा! निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ वीतरागी परमानन्द, उसका परिग्रह—पकड़ करके जो नहीं रहा... आहाहा! और राग की पकड़ करके रहे हैं, वे सब ठग हैं, कहते हैं।

मुमुक्षु : अपने को ठगते हैं या दूसरे को ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने को ठगते हैं, दूसरे को कौन ठगता था ? आहाहा! समझ में आया ? मार्ग वीतराग का, जिनवरदेव परमेश्वर त्रिलोकनाथ, उन सर्वज्ञ प्रभु का मार्ग

कोई अलौकिक है। आहाहा! लोगों को बेचारों को सुनने को मिला नहीं, वह क्या चीज़ है। जिनवरदेव परमेश्वर त्रिलोकनाथ सौ इन्द्र के पूजनीक परमात्मा, यह कहते हैं, उन वीतराग की यह वाणी है। दिगम्बर सन्त कहते हैं, वह वीतराग के भाव से कहते हैं वे। आहाहा! भगवान! तूने यह सब बाहर का किया, कहते हैं। परन्तु आत्मा में मिथ्यात्व का परिग्रह और राग का परिग्रह छोड़ा नहीं और परमानन्द की भावना से परमानन्द का परिग्रह अर्थात् परिणति प्रगट की नहीं, ठग है। ऐसी बात है। दुनिया से उल्टी है, बापू! कहो, राजेन्द्रजी! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

भावार्थ :—वीतराग निर्विकल्पनिजानन्द अखण्डरूप सुखरस का जो आस्वाद... आहाहा! आत्मा वीतरागीस्वरूप ही है, आत्मा का स्वरूप ही वीतराग है। **निर्विकल्प-निजानन्द...** अभेद निज आत्मा का आनन्द **अखण्डरूप सुखरस का जो आस्वाद...** आहाहा! **वीतराग निर्विकल्पनिजानन्द अखण्डरूप सुखरस का जो आस्वाद...** अनुभव **उसरूप परिणामी जो परमात्मा की भावना...** आहाहा! सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी और सन्त सच्चे, उन्हें तो अखण्ड आनन्द की भावनारूप परिणति हो गयी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? है उसमें देखो न! **वीतराग निर्विकल्पनिजानन्द...** निज आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु **अखण्डरूप सुखरस का...** अखण्ड आनन्द के रस का जो आस्वाद। अखण्ड आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा का अनुभव। आहाहा! जिसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र कहते हैं, वह अखण्ड आनन्द के रस का अनुभव, उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र कहते हैं। आहाहा! बहुत अन्तर, बापू! मार्ग में अन्तर है।

अरे! चौरासी के अवतार में भटकता है, एक-एक योनि में। भवसिन्धु बड़ा समुद्र भवसिन्धु भटकने का। अनन्त बार अरबोंपति हुआ, अनन्त बार भिखारी हुआ, अनन्त बार देव हुआ, अनन्त बार नरक में गया। आहाहा! परन्तु इसने मिथ्यात्व का परिग्रह छोड़ा नहीं। समझ में आया? अर्थात्? राग और विपरीत अभिप्राय, वह मेरी चीज़ नहीं। मेरी चीज़ तो परम आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु वह मेरी चीज़ है, उसका अनुभव होना, वह आनन्द है। आहाहा! ऐसी **परिणामी जो परमात्मा की भावना...** आहाहा! क्या कहते हैं, बापू? सूक्ष्म बात है, भगवान! यह कहीं बाहर से मिले ऐसी चीज़ नहीं

है। बाहर में कहाँ है वह मिले? बाहर में तो यह सब धूल है। शरीर, पैसा, धूल और स्त्री, पुत्र, सब धूल-मिट्टी है। आहाहा! अन्दर में वीतरागी आनन्दस्वरूप प्रभु... आहाहा! उसकी परिणमित आनन्द से परिणमित परमात्मा की भावना। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की दशा होनेरूप आत्मा की भावना। आहाहा! सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी, सम्यक्चारित्रवन्त को तो कहते हैं कि अखण्डसुख प्रभु का—आत्मा का, उसके सन्मुख होकर परिणमित आनन्द की भावना... आहाहा! उसरूपी **तीक्षण शस्त्र...** समझ में आया? है?

भावना, वही हुआ तीक्ष्ण शस्त्र... आहाहा! अखण्डरूप सुखरस, उसका जो आस्वाद। अखण्ड सुखरस भगवान आत्मा। आहाहा! अरे! यह भी सुना न हो। अखण्ड सुखरस कहाँ होगा? आहाहा! पैसे में और राग में और सेठाई में मानो धूल में सुख होगा। आहाहा! कहते हैं, अखण्डरूप सुखरस का आस्वाद। आहाहा! अखण्ड जो त्रिकाली चिदानन्द प्रभु, उसके आस्वाद—स्वादरूपी परिणमित दशा, वह भावना, वह तीक्ष्ण शस्त्र। उससे जिसने मिथ्यात्व और राग के भाव को घात डाला है। आहाहा! समझ में आया? बाहर का परिग्रह छोड़ा, वह छोड़ा नहीं। ऐसा तो अनन्त बार नग्नदिगम्बर भी अनन्त बार जीव हुआ। आहाहा! परन्तु अभ्यन्तर में अखण्ड सुखरस का अनुभव पर्याय में, वस्तु तो अखण्ड सुखरस है, उसकी वर्तमान दशा में सुख का आस्वाद—अनुभव, उसरूपी परमात्मा की भावना। परमात्मा अर्थात् परमस्वरूप भगवान की एकाग्रता। आहाहा! उसरूपी तीक्ष्ण शस्त्र। ओहोहो! उसरूपी तीक्ष्ण शस्त्र। छुरा और तलवार हो तीक्ष्ण धारवाला, काट डाले। आहाहा! उसी प्रकार भगवान अखण्ड सुखरूप का आस्वाद, ऐसी परमात्म परमस्वरूप की एकाग्रता, वह मिथ्यात्व और राग-द्वेष को काट डालती है। इसके अतिरिक्त वह घात करने की दूसरी चीज़ नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मिथ्यात्व और राग-द्वेष को घातने की दूसरी कोई चीज़ नहीं है कि भाई, यह दया पालते हैं और व्रत पालते हैं, इसलिए राग का घात होता है। वह तो स्वयं राग है। आहाहा! समझ में आया? ओहो! क्या शब्द लिये हैं न!

उससे बाहिर के और अन्तर के परिग्रहों की वांछा आदि ले समस्त मनोरथ...

आहाहा! किस प्रकार से लिया? कि यह भगवान अखण्ड सुखरूप आत्मा है। ध्रुव, ध्रुव जो वस्तु आत्मा, वह अखण्ड आनन्द और अतीन्द्रिय सुखरूप वह वस्तु है। उसकी एकाग्रता होकर उत्पन्न हुआ अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद। वह अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद, वह परमात्मा की भावना। अर्थात् आत्मा की एकाग्रता। आहाहा! ऐसी बातें अब। वे बेचारे भक्ति करे, यात्रा करे, पूजा करे, व्रत, तप पाले। वह तो कहे धर्म नहीं। वह तो सब राग की क्रिया है। आहाहा! समझ में आया?

धर्म तो उसे कहते हैं, परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनवरदेव ऐसा फरमाते हैं कि परम सुखरूप अखण्ड सुखरूप जो आत्मा, उसकी एकाग्रता से आनन्द का स्वाद आवे, उसका नाम धर्म है। आहाहा! क्योंकि वीतराग परिणति, वह धर्म है। आहाहा! उस वीतराग परिणति द्वारा जिसने मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूपी परिग्रह छेद डाला है। आहाहा! उसे यहाँ धर्मी कहते हैं, उसे यहाँ उत्कृष्ट राग छेदा, उसे मुनि कहते हैं। आहाहा! प्रथम मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के राग-द्वेष को आत्मा के आनन्द से छेद डाला है, उसे समकिती गृहस्थी कहते हैं। आहाहा! जिसने उत्कृष्ट अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के प्रचुर वेदन द्वारा... आहाहा! यह विधि कैसी कठिन। अतीन्द्रिय आनन्द के प्रचुर वेदन द्वारा जिसने मिथ्यात्व को, राग को घात कर जिसने मुनिपना प्रगट किया है। आहाहा! है? उसने अज्ञान और राग-द्वेष को घात डाला है। आहाहा! ऐसी बातें अब।

यह वह कहीं वीतरागमार्ग होगा ऐसा? परमेश्वर जिनवर का मार्ग ऐसा होगा? भाई, हमने तो ऐसा सुना है कि छह काय की दया पालना, भक्ति करना, यात्रा करना, पूजा करना, मन्दिर बनाना। अरे... बापू! वह तो सब राग की क्रियायें हैं, भाई! तुझे खबर नहीं। यह तो वीतरागमार्ग का धर्म है। इस वीतराग परिणति से धर्म होता है। क्योंकि वीतराग ने वीतरागपना प्रगट किया और उपदेश में, 'तेरा स्वभाव ही वीतराग है'—ऐसा कहा, और वीतरागस्वभाव में एकाग्रता होने से जो वीतरागपरिणति होती है, उसे हम धर्म कहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बातें, भाई! यह सब व्यवहार करते हैं, उसमें से कुछ निश्चय होगा या नहीं? छिलके कूटने से कुछ चावल निकलेंगे या नहीं? तुष... तुष। तुष कहते हैं? छिलका, छिलका। छिलके कूटे लाख तो चावल

निकले या नहीं? कहाँ था चावल उसमें? तुष कूटे और चावल निकले तो मूर्ख माने। ऐसा यहाँ कहते हैं। पुण्यादि की क्रिया करे और उसमें से धर्म माने, इसी प्रकार यह आत्मा पवित्र है, वह उससे प्रगट होगा। मूर्ख है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें अब लो। तब करना क्या परन्तु अब हमारे? वह तो यहाँ कहते हैं। वीतराग परमानन्द अखण्ड सुखरूप प्रभु है, उसमें एकाग्र होना, वह करना है। आहाहा!

मुमुक्षु : दिखता नहीं, कहाँ होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : दिखता नहीं—ऐसा निर्णय किसने किया? वह आत्मा है या जड़ है? दिखता नहीं—ऐसा निर्णय किस भूमिका में किया? यहाँ कुछ चले ऐसा नहीं कोई। मैं ज्ञात नहीं होता। यही ज्ञात हुआ। मैं ज्ञात नहीं होता—ऐसा ज्ञान ही ज्ञात हुआ उसमें। आहाहा! समझ में आया? देखा! क्या भाषा ली है?

परमात्मा की भावना वही हुआ, तीक्ष्ण शस्त्र... भावना अर्थात् इस ओर भी एकाग्रता होती है और इस ओर **बाहिर के और अन्तर के परिग्रह की वांछा...** इच्छा **आदि से समस्त मनोरथ...** एक के बाद एक वृत्ति का उत्थान होता है। राग के मनोहर। आहाहा! इच्छा और इच्छा, इच्छा और इच्छा उत्पन्न हुआ करे, ऐसे जो मनोरथ। **उनकी कल्लोल मालाओं का...** उस मनोरथ की कल्लोल माला, कल्लोल माला। उसके **त्यागरूप मन का मुण्डन...** राग के त्यागरूप मन का मुण्डन जिसने किया नहीं। **नहीं किया,...** आहाहा! ऐसा है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेकर जिसने अन्तर में से राग के मनोरथ को छेदा नहीं। आहाहा! इस ओर मनोरथ चलता है न एकाग्रता का, उस द्वारा इस इच्छा के मनोरथ को जिसने छेदा नहीं। ऐसा कहते हैं। अरे! ऐसा धर्म कैसा यह? हें! जो कुछ करे, वह कहे राग और राग छोड़कर अन्दर स्थिर होना, उसका नाम धर्म।

आहाहा! बापू! मार्ग तो ऐसा है, भाई! अनन्त काल से दुःखी है, भटकता है, आहाहा! यहाँ बड़े अरबोंपति हों और देह छूटकर जाये ढोर में, पशु में जाये। आहाहा! ऐसे अवतार अनन्त किये हैं। समझ में आया? आहाहा! आया है न इसमें? आ गया है, ६०वीं गाथा। पूर्व के पुण्य के कारण यह धूल मिलती है वैभव, 'पुण्येण विभु'। गाथा आ गयी है इसमें। पूर्व के पुण्य के कारण वैभव (मिलता है), हों! पुरुषार्थ के कारण

नहीं। बहुत होशियार हैं, इसलिए हम पैसे करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ इकट्ठे हुए, उसमें कुछ माल नहीं जरा। बुद्धि के बारदान भी करोड़ोंपति होते हैं। बारदान समझते हो? खोखा। बुद्धि कुछ न हो, थोथा जैसी और अरबोंपति (होता है)। है, अभी है न अरबोंपति बनिया अपना है। अरबोंपति। आहाहा! कहाँ है? शान्तिलाल खुशाल, गोवा... गोवा। दो अरब चालीस करोड़। यहाँ जयपुर अपने दुर्लभजी झबेरी के पुत्र। जयपुर, जयपुर। छैलशंकर, छैलशंकर। साठ करोड़ और दूसरा बड़ा लड़का है, उसके पास एक अरब रुपये। जयपुर। वह अपने मोरबी के हैं। दुर्लभजी झबेरी। धूल में क्या हुआ? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि ऐसा जो मनोरथ परपदार्थ को प्राप्त करने का, इच्छा के ऊपर इच्छा जो होती है मनोरथ की, उसे आत्मा की एकाग्रता द्वारा छेद डाला। आहाहा! कठिन काम ऐसा। सूझ पड़े नहीं, सुनने को मिले नहीं। वह कब सुने और कब समझे और कब करे अन्दर? आहाहा! भगवान जिनवरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा विराजते हैं। महाविदेह में अभी विराजते हैं। भगवान महावीर आदि तो मोक्ष पधारे, वे तो सिद्धपद में हैं। सीमन्धर भगवान महाविदेह में विराजते हैं। साक्षात् तीर्थंकर केवली परमेश्वर महाविदेह में मौजूद हैं। इन्द्र वन्दन करने जाते हैं। उनकी यह वाणी है। आहाहा! समझ में आया? अनन्त केवली और अनन्त तीर्थंकर। अरे! सुनने को मिलता नहीं बेचारे को। सत्य क्या है, वह मिलता नहीं, वह सत्य में कब जाये? और असत्य कब टले? बहुत गाथा सरस!

ऐसा मन का मुण्डन जिसने किया नहीं। आहाहा! मिथ्यात्व और राग की इच्छा जो है, वह इच्छा दु:खरूप है। उस इच्छा को जिसने छेदा नहीं, अर्थात् कि मन-मुण्डन किया नहीं **और जिनदीक्षारूप शिरोमुण्डन कर भेष रखा,...** है। आहाहा! **जिनदीक्षारूप शिरोमुण्डन कर भेष रखा, सब परिग्रह का त्याग नहीं किया,...** आहाहा! बाहर का छोड़ा परन्तु अन्दर का मिथ्यात्व छोड़ा नहीं, अज्ञान, राग छोड़ा नहीं। आहाहा! मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। जवानी हो शरीर की, तीस-चालीस वर्ष की उम्र जवान, पुष्ट शरीर और पाँच-पच्चीस लाख रुपये हों, स्त्री-पुत्र ठीक हों, दुकान चलती हो दो-दो—पाँच-पाँच लाख की आमदनी (हो)। हो गया, कुछ सूझ पड़े नहीं, मर गया बेचारा उसमें। यह

जीवति ज्योति चैतन्य आनन्द का नाथ, उसे तो स्मरण किया नहीं। जिसमें अनन्त सुख और शान्ति पड़ी है, ऐसा प्रभु, उसे स्मरण करते हुए अन्दर ऋद्धि मिले ऐसी है। आहाहा! बाहर की वस्तु को सम्हालने में पाप मिले ऐसा है। समझ में आया? गजब गाथा। एक के बाद एक गाथा, हमारे चेतनजी कहते हैं, चढ़ती हुई गाथा है। बात सच्ची। आहाहा! योगीन्द्रदेव मुनि दिगम्बर १३०० वर्ष पहले हुए हैं। उनका यह परमात्मप्रकाश है। अभी तक तो हिन्दी में है, अब गुजराती होता है, प्रकाशित होता है। आहाहा! समयसार आदि तो गुजराती हो गये, यह होता है।

ऐसा कथन समझकर... कहते हैं, ऐसी बात सुनकर इसे करना क्या तब अब? आहाहा! **निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न...** देखो! है? अपने शुद्धात्मा की एकाग्रता। आहाहा! अनादि से जैसे पुण्य परिणाम में एकाग्रता है, पुण्य और पाप के भाव में, उसे चैतन्य के अन्दर में एकाग्रता उत्पन्न करना। आहाहा! आनन्द का नाथ भगवान, उसके सन्मुख होकर एकाग्रता करना। राग से विमुख होकर। अनादि से स्वभाव से विमुख होकर राग के सन्मुख होकर राग की क्रिया अनादि से की है। आहाहा! ऐसा है।

मुमुक्षु : आनन्द से भर दिया है।....

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! पुण्य-पाप के परिणाम का ध्यान करने से विकारी... क्या कहा तुमने? आनन्द की बाढ़। विकार की बाढ़ आवे। भगवान आत्मा आनन्द का नाथ, उसकी एकाग्रता होने पर आनन्द की बाढ़ आवे। समुद्र में बाढ़ आती है न? बाढ़-बाढ़। समुद्र में बाढ़ (ज्वार) आती है न? उसी प्रकार भगवान आत्मा में... आहाहा! अतीन्द्रिय सुखरूप में एकाग्र होने पर अतीन्द्रिय की बाढ़ आती है और राग में एकाग्र होने पर विकार की बाढ़ आती है। आहाहा! इन दो दशाओं की दो दिशा। आहाहा! अरे! यह वह क्या होगा? ऐसा मार्ग? मार्ग ऐसा है, बापू! बाकी सब दुःख के पंथ में भटककर मर गये हैं। आहाहा! देखो! क्या कहा?

निज शुद्धात्मा की भावना... भगवान निज अपना। परमेश्वर भी नहीं, परमेश्वर तो पर हैं। उनकी भक्ति आदि तो शुभराग है, वह धर्म नहीं। णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आईरियाणं... यह सब शुभराग है। इसलिए कहते हैं, निज शुद्धात्मा। अपना

जो त्रिकाली निज अपना शुद्ध आत्मा पवित्र त्रिकाल, उसकी एकाग्रता से उत्पन्न। आहाहा! **वीतराग परम, आनन्दस्वरूप को...** क्या कहा? **वीतराग परम, आनन्दस्वरूप को (परिग्रह) अंगीकार करके...** 'परिग्रह' शब्द उसमें पड़ा रहा है भाई! आनन्दस्वरूप परिग्रह चाहिए। ऐसे परिग्रह छोड़ते हैं न? तो ऐसा परिग्रह ग्रहण किया है, ऐसा। आहाहा! है न भाई उसमें? परिग्रह है। वाँचा है, तब लिखा है। है उसमें, देखो! '**वीतरागपरमानन्द-परिग्रहं कृत्वा**' '**स्वशुद्धात्मभावनोत्थवीतरागपरमानन्दपरिग्रहं**'। संस्कृत टीका है। आहाहा! क्या करना तब उसे, कहते हैं। आहाहा! निज शुद्धात्मा जो परमानन्द की मूर्ति प्रभु। आहाहा! अब ऐसा आत्मा इसे कैसे लगे? दो सिगरेट पीवे ठीक से, ऐसे-ऐसे करे, तब भाईसाहेब को पाखाने में दस्त उतरे। ऐसे तो अपलक्षण। अब उसे आत्मा आनन्दमूर्ति है, किस प्रकार? आहाहा! दो-पाँच-दस लाख रुपये पैदा हो जायें, वहाँ तो प्रसन्न... प्रसन्न, मानो ओहोहो! क्या हो गया! मूर्खाई है सब, कहते हैं। आहाहा!

इस भगवान आत्मा में एकाग्रता... यहाँ तो दूसरी बात कहते हैं, वस्तु को परिग्रह नहीं कहना। वस्तु की एकाग्रता का जो परम आनन्द का स्वाद आया, उसे यहाँ परिग्रह कहना है। आहाहा! समझ में आाय? कुछ समझ में आया अर्थात्? कुछ—क्या कहना चाहते हैं गन्ध भी, गन्ध आती है कुछ? आहाहा! तीन लोक के नाथ वीतराग जिनवरदेव परमेश्वर के यह सब फरमान, उसकी खबर नहीं होती। हम जैन हैं, जैन हैं। परन्तु जैन का तो भान भी नहीं होता। आहाहा!

ओहोहो! निज शुद्धात्मा त्रिकाली आनन्दस्वरूप प्रभु, अतीन्द्रिय ज्ञान की मूर्ति आत्मा। आहाहा! वस्तु, वह वस्तु है। वह ज्ञान की खान है, अतीन्द्रिय आनन्द का निधान है। आहाहा! ऐसा निजशुद्धात्मा, उसकी भावना। वह निज शुद्धात्मा, यह त्रिकाली हो गया। अब उसकी भावना, यह वर्तमान हुई। पर्याय हुई अन्दर निर्मल। आहाहा! उसकी भावना से उत्पन्न। क्या उत्पन्न? राग की भावना से उत्पन्न विकार और दु:ख। तब भगवान आत्मा की भावना से क्या उत्पन्न? **वीतराग परम, आनन्दस्वरूपपरिग्रह को अंगीकार करके,...** आहाहा! ऐसी बातें अब। परम सत्य तो यह है जिनवरदेव का। बाकी सब थोथा की बातें हैं। आहाहा! गाथा बहुत अच्छी आयी है। गाथा एक के बाद एक...

आहाहा! ९० है न? ९०, नवडा है न यह। वीतरागभाव का। आहाहा! नौ—अफर कहते हैं न? नौ एकम् नौ, नौ दूनी अठारह, आठ और एक = नौ, नौ तीया सत्ताईस, सात और दो = नौ; नौ चौके छत्तीस, छह और तीन = नौ; नौ पंजे पैतालीस, पाँच और चार = नौ; नौ छक्के चौवन, पाँच और चार = नौ; सब नौ। ठेठ पूरा पहाड़ा। नौ सत्ते त्रेसठ, छह और तीन = नौ; नौ अट्ठे बहत्तर, सात और दो = नौ; नौ नौवे इक्यासी, आठ और एक = नौ। आहाहा! यह नौ अफर मार्ग है। वीतरागमार्ग, वह अफर मार्ग है। आहाहा! अरेरे! इसने अनन्त भव के दुःख भोगे हैं। स्वर्ग में भी दुःख है, बापू! यह विषय की वासना कषाय, दुःख है। आहाहा!

भगवान अनन्त सुख का सागर प्रभु। आहाहा! अरे! परन्तु इसे सुनने को मिले नहीं। आहाहा! उसकी भावना से उत्पन्न हुआ वीतरागी परमानन्द की पकड़ कर, अनुभव कर, कहते हैं। वह तेरी परिणति, वह तेरी वस्तु है। राग भी तेरा नहीं और पुण्य के फल यह धूल-बूल मिले, वह तेरी नहीं, वह तो सब जगत की चीज़ें हैं। आहाहा! समझ में आया? गाथा बहुत अच्छी आयी। राजेन्द्रभाई! यह देखो तो सही। यह सब डॉक्टर-फॉक्टर में पैसे पैदा हों। दस हजार और पन्द्रह हजार और बीस हजार धूल। वह लड़का अच्छा कहलाये। कमाऊ, कमाऊ अर्थात् कर्मी—कर्म का करनेवाला। आहाहा! यहाँ तो धर्मी किसे कहना, उसकी बात है।

निज शुद्धात्मा परमानन्द का नाथ प्रभु... आहाहा! उसके सन्मुख होकर जो एकाग्रता होती है, उससे जो परम आनन्द का स्वाद आता है, उसरूपी परिग्रह, वह तेरी परिणति है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो। हें! आहाहा! सन्तों ने बात... दिगम्बर मुनि नागा बादशाह से आघा हैं वे। बादशाह की परवाह नहीं, समाज को बैठेगा या नहीं, इसकी उन्हें कुछ दरकार नहीं। समाज इसकी तुलना करेगी या नहीं, इसकी कोई दरकार नहीं। यह मार्ग है। मानना हो तो मान और न मानना हो तो भटक। आहाहा! पर से हट और आत्मा में बस, यह अति संक्षिप्त और इतना बस। यह ऐसा कहते हैं। आहाहा! इस राग के विकल्प से दया, दान, व्रत का भी राग है, उससे हट। आनन्द के नाथ में बस, इतना बस। यह अतिसंक्षिप्त। यह सब बाहर की भटकाभटक कर-करके मर गया। आहाहा!

परम आनन्दस्वरूप परिग्रह को अंगीकार करके तीनों काल—तीनों लोक में... आहाहा! तीन काल और तीन लोक में **मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदनाकर देखे, सुने, अनुभवे...** आहाहा! **जो परिग्रह, उसकी वांछा सर्वथा त्यागनी चाहिए।** लो। तीन लोक में तीन काल में मन, वचन और काया से कृत, कारित, अनुमोदना से सुना हुआ, देखा हुआ और अनुभव किया हुआ, उसकी वांछा सर्वथा त्यागनी चाहिए। आहाहा! सम्यग्दर्शन में धर्म की पहली सीढ़ी, उसमें भी परमानन्द के नाथ की एकाग्रता का आनन्द आवे, वह समकिती है। उसमें राग और पर की चीज़ का अत्यन्त अभाव स्वभाव में है। ऐसा जिसे अन्तर ज्ञान हो, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! अभी तो धर्म की पहली सीढ़ी। श्रावक जिसे कहें तो और कहीं रह गया, सच्चा। यह तो सब वाड़ा के हैं। समझ में आया? आहाहा! परम आनन्द से, कहा है न? कहा था, अखण्डरूप सुखरस आत्मा।

शकरकन्द का दृष्टान्त नहीं देते? शकरकन्द। शकरकन्द नहीं होता? ऊपर की लाल छाल है जरा, इसके अतिरिक्त पूरा शकरकन्द है। शक्कर अर्थात् चीनी की मिठास का पिण्ड।

मुमुक्षु : शकरकन्द अलग, गाजर अलग।

पूज्य गुरुदेवश्री : गाजर अलग। यह तो शकरकन्द। शकरकन्द कहते हैं या नहीं? हिन्दुस्तान में शकरकन्द कहते हैं। यहाँ हमारे गुजराती में शक्करिया (कहते हैं)। शक्करिया अर्थात् शक्कर। यह शक्करिया है न? आधा सेर का, पौन सेर का लम्बा बड़ा। उसमें ऊपर की छाल है, वह छिलका है और अन्दर जो कस है, वह शक्कर का पिण्ड है। इसी प्रकार आत्मा में पुण्य और पाप के भाव, वे छिलके हैं, ऊपर की छाल है और अन्दर में जो आत्मा है, वह अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द, शकरकन्द के जैसा है वह। आहाहा! यह तो सरल बात है। यह दूसरे प्रकार के इंजैक्शन हैं। यह डॉक्टर देते हैं न इंजैक्शन ऐसा करके, वैसा करके। यह तो भगवान के इंजैक्शन है। आहाहा! बापू! आहाहा!

ये परिग्रह शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत हैं। क्या कहा? कि आत्मा शुद्ध

चैतन्य की अनुभूति सम्यग्दर्शन-ज्ञान की परिणति से रहित राग और राग के फल बाहर, वे सब विपरीत हैं। आहाहा! यह व्यवहाररत्नत्रय का राग, वह अनुभूति से विपरीत है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, वह विकल्प है। पंच महाव्रत का राग, वह विकल्प है, शास्त्र का पठन करना, वह भी राग और विकल्प है। आहाहा!

मुमुक्षु : सुनना वह ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनना, वह भी एक विकल्प है। कहना, वह भी एक विकल्प है। छद्मस्थ को, हों! केवली का कहना, उसमें उन्हें कुछ है नहीं। आहाहा! भाई! तू जहाँ है, वहाँ जा, यह कहते हैं। राग और पुण्य-पाप के भाव में तू नहीं, तू उसमें नहीं, भाई! तुझे खबर नहीं तू कहाँ और कैसे है। आहाहा! तू तो अतीन्द्रिय आनन्द के सुखरूप आस्वादिया तू है। आहाहा! समझ में आया ? क्या कहलाता है ? चूसनी चूसता है न ? वह लाते हैं न ? कुल्फी। धूल चूसता है न ? यह तो आत्मा आनन्द-कुल्फी है। उसे चूस तो तुझे आनन्द का स्वाद आयेगा। यह राग और पुण्य-पाप का चूसना तो अनादि से तूने किया है। जहर का स्वाद लिया है। आहाहा! ऐसा धर्म कैसा निकाला ?

मुमुक्षु : ऐसा सुने तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग (ऐसा है), इसकी हाँ तो कर पहले। मार्ग यह है, इसके अतिरिक्त मार्ग है नहीं। हें! यही मार्ग है। दान, शील, तप भावना, वह तो सब शुभराग है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि वह सब परिग्रह शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत है। आहाहा! बहुत सरस गाथा। अब ९१ (गाथा)। ९० गाथा हुई। परमात्मप्रकाश, योगीन्द्रदेव कृत। सबमें समयसार की छाप है। समयसार का दोहन, सबमें छाप आयी है। उसकी जाति है न यह। आहाहा!

गाथा - ९१

अथ ये सर्वसंगपरित्यागरुपं जिनलिङ्गं गृहीत्वापीष्टपरिग्रहान् गृह्णन्ति ते छर्दिं कृत्वा पुनरपि गिलन्ति तामिति प्रतिपादयति–

२१४) जे जिण–लिंगु धरेवि मुणि इट्ठ–परिग्गह लेंति।
छद्दि करेविणु ते जि जिय सा पुणु छद्दि गिलंति।।९१।।

ये जिनलिङ्गं धृत्वापि मुनय इष्टपरिग्रहान् लान्ति।
छर्दिं कृत्वा ते एव जीव तां पुनः छर्दिं गिलन्ति।।९१।।

ये केचन जिनलिङ्गं गृहीत्वापि मुनयस्तपोधना इष्टपरिग्रहान् लान्ति गृह्णन्ति। ते किं कुर्वन्ति। छर्दिं कृत्वा त एव हे जीव तां पुनश्छर्दिं गिलन्तीति। तथापि गृहस्थापेक्षया चेतनपरिग्रहः पुत्रकलत्रादिः, सुवर्णादिः पुनरचेतनः साभरणवनितादि पुनर्मिश्रः। तपोधनापेक्षया छात्रादिः सचितः, पिच्छकमण्डल्वादिः पुनरचितः, उपकरणसहितश्छात्रादिस्तु मिश्रः। अथवा मिथ्यात्व–रागादिरुपः सचितः, द्रव्यकर्म–नोकर्मरुपः पुनरचितः, द्रव्यकर्मभावकर्मरुपस्तु मिश्रः। वीतरागत्रिगुप्तसमाधिस्थ–पुरुषापेक्षया सिद्धरुपः सचितः पुद्‌गलादिपञ्चद्रव्यरुपः पुनरचितः, गुणस्थानमार्गणास्थान–जीवस्थानादिपरिणतः संसारी जीवस्तु मिश्रश्चेति। एवंविधबाह्याभ्यन्तर–परिग्रहरहितं जिनलिङ्गं गृहीत्वापि ये शुद्धात्मानुभूतिविलक्षण–मिष्टपरिग्रहं गृह्णन्ति ते छर्दिताहार–ग्राहकपुरुषसदृशा भवन्तीति भावार्थः। तथा चोक्तम्––''त्यक्त्वा स्वकीयपितृमित्रकलत्रपुत्रान् सक्तोऽन्य गेहवनितादिषु निर्मुमुक्षुः। दोर्भ्यां पयोनिधिसमुद्‌गतनक्रचक्रं प्रोत्तीर्य गोष्पदजलेषु निमग्नवान् सः।।''।।९१।।

आगे जो सर्वसंग के त्यागरुप जिनमुद्रा को ग्रहण कर फिर परिग्रह को धारण करता है, वह वमन करके पीछे निगलता है, ऐसा कथन करते हैं––

जो जिन लिङ्ग ग्रहण करके भी इष्ट परिग्रह ग्रहण करे।
वह करता है वमन और फिर उसी वमन को ही निगले।।९१।।

अन्वयार्थ :– [ये] जो [मुनयः] मुनि [जिनलिंगं] जिनलिंग को [धृत्वापि] ग्रहणकर [इष्टपरिग्रहान्] फिर भी इच्छित परिग्रहों को [लांति] ग्रहण करते हैं, [जीव] हे जीव, [ते एव] वे ही [छर्दिं कृत्वा] वमन करके [पुनः] फिर [तां छर्दिं] उस वमन को पीछे [गिलंति] निगलते हैं।

भावार्थ :– परिग्रह के तीन भेदों में गृहस्थ की अपेक्षा चेतन परिग्रह पुत्र कलत्रादि, अचेतन परिग्रह आभरणादि, और मिश्र परिग्रह आभरण सहित स्त्री, पुत्रादि, साधु की अपेक्षा सचित परिग्रह शिष्यादि, अचित परिग्रह पीछी, कमंडलु, पुस्तकादि और मिश्र परिग्रह पीछी, कमंडलु, पुस्तकादि सहित शिष्यादि अथवा साधु के भावों की अपेक्षा सचित परिग्रह मिथ्यात्व रागादि, अचित परिग्रह द्रव्यकर्म, नोकर्म और मिश्र परिग्रह द्रव्यकर्म, भावकर्म दोनों मिले हुए। अथवा वीतराग त्रिगुप्ति में लीन ध्यानी पुरुष की अपेक्षा सचित परिग्रह सिद्धपरमेष्ठि का ध्यान, अचित परिग्रह पुद्‌गलादि पाँच द्रव्य का विचार, और मिश्र परिग्रह गुणस्थान मार्गणास्थान जीवसमासादिरुप संसारीजीव का विचार। इस तरह बाहिर के और अतंर के परिग्रह से रहित जो जिनलिंग उसे ग्रहण करो जो अज्ञानी शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत परिग्रह को ग्रहण करते हैं, वे वमन करके पीछे आहार करनेवालों के समान निंदा के योग्य होते हैं। ऐसा दूसरी जगह भी कहा है, कि जो जीव अपने माता, पिता, पुत्र, मित्र, कलत्र इनको छोड़कर पर के घर और पुत्रादिक में मोह करते हैं, अर्थात् अपना परिवार छोड़कर शिष्य–शाखाओं में राग करते हैं, वे भुजाओं से समुद्र को तैरके गाय के खुर से बने हुए गढ़े के जल में डूबते हैं, कैसा है समुद्र, जिसमें जलचरों के समूह प्रगट हैं, ऐसे अथाह समुद्र को तो बाहों से तिर जाता है, लेकिन गाय के खुर के जल में डूबता है। यह बड़ा अचंभा है। घर का ही संबंध छोड़ दिया तो पराये पुत्रों से क्या राग करना? नहीं करना।।९१।।

गाथा-९१ पर प्रवचन

९१। **आगे जो सर्वसंग के त्यागरूप जिनमुद्रा को ग्रहण कर फिर परिग्रह को धारण करता है,...** जिनमुद्रा को धारण करके और वापस राग और विकल्प को ग्रहण करना है। क्योंकि सर्वसंगपरित्याग तो वह कि शुद्धोपयोग को ग्रहण करे वह। आहाहा! मुनिपना शुद्धोपयोग है। यह व्यवहाररत्नत्रय दया, दान का राग, वह कहीं मुनिपना नहीं है। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में तो यह कहा है न? शुद्धोपयोगरूपी मुनिपना अंगीकार करके। ऐसा है। शुद्धोपयोग, यह सुना भी न हो। मुनिपना अर्थात् बापू! वह तो अलौकिक चीज़ है। वह तो शुभ–अशुभराग से रहित चैतन्य के शुद्ध का उपयोग—व्यापार उसका

नाम मुनिपना है। समझ में आया? मोक्षमार्गप्रकाशक, टोडरमल। टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में पहले यह लिया है, शुद्धोपयोग को अंगीकार करके, ऐसा लिया है। महाव्रत को अंगीकार करके नहीं, (क्योंकि) वह तो राग है। आहाहा!

जिनमुद्रा को ग्रहण कर फिर परिग्रह को धारण करता है,... आहाहा! अर्थात् कि मिथ्यात्व को, राग को और बाह्य की चीज़ को। वस्त्र आदि का ग्रहण करे, बाहर की चीज़ें अन्दर मुनिपने को... साथ में गाड़ियाँ घूमें, साथ में माल घूमे... आहाहा! यह तो सब हार का परिग्रह पकड़ा है। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! भगवान का मार्ग भाई! आहाहा! **वह वमन करके पीछे निगलता है,...** वमन करके वापस ग्रहण करता है। इसी प्रकार जिसने परिग्रह छोड़ा और फिर वापस परिग्रह ग्रहण करता है। आहाहा! राग को अंगीकार करे। शुद्धपरिणति को अंगीकार करना चाहिए, उसके बदले राग को अंगीकार करे। आहाहा! समझ में आया? ऐसा धर्म वीतराग का मार्ग होगा यह? हम तो सब यह सुनते हैं कि यात्रा करना, भक्ति करना, पूजा करना, मन्दिर बनाना। लो! कौन करे, सुन न! बाहर की क्रिया कौन कर सकता था? उसमें राग हो, तो शुभ हो। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि **ऐसा कथन करते हैं:—**देखा! ९१। समयसार में टीका में आता है न सचित्त-अचित्त का? वह इसमें डाला है।

२१४) जे जिण-लिंगु धरेवि मुणि इट्ठ-परिग्गह लेंति।
छद्दि करेविणु ते जि जिय सा पुणु छद्दि गिलंति।।९१।।

अन्वयार्थ :— जो मुनि जिनलिंग को... नग्न दिगम्बरदशा **ग्रहणकर फिर भी इच्छित परिग्रहों को ग्रहण करते हैं,...** आहाहा! यह सब आ गया है। शिष्य और पुस्तकों को इकट्ठा करके, यह मेरी चीज़ है, (ऐसा मानता है)। आहाहा! वह परिग्रह ग्रहण किया उसने। परचीज़ कहाँ तेरी थी? आहाहा! चेला, चेली, पुस्तकें, उपकरण, मोरपिच्छी, कमण्डल। यह आ गया पहले। यह पहले आ गया, कहा। बाद में यह लिया है। **जिनलिंग को ग्रहण कर, फिर भी इच्छित परिग्रहों को ग्रहण करते हैं, हे जीव! वे ही वमन करके फिर उस वमन को पीछे निगलते हैं।** आहाहा!

भावार्थ :— परिग्रह के तीन भेदों में गृहस्थ की अपेक्षा चेतन परिग्रह पुत्र,

कलत्रादि,... गृहस्थ को पुत्र, स्त्री, लड़के वह परिग्रह। चेतन की अपेक्षा से। आहाहा! वह तो परवस्तु है। आहाहा! **अचेतन परिग्रह आभरणादि,...** गहने / जेवर, पैसे, लक्ष्मी, मकान, वह अचेतन परिग्रह। आहाहा! **मिश्र परिग्रह आभरणसहित स्त्री, पुत्रादि,...** लो। पुत्र आदि गहनेसहित होते हैं, वे मिश्र परिग्रह हैं। **साधु की अपेक्षा सचित परिग्रह शिष्यादि,...** शिष्य, वह परिग्रह है। यह मेरा, यह मेरा। शिष्य कहाँ का? आत्मा को कहाँ शिष्य था? आहाहा! **सचित परिग्रह शिष्यादि, अचित्त परिग्रह पीछी, कमण्डलु, पुस्तकादि...** आहाहा! **और मिश्र परिग्रह पीछी, कमण्डलु, पुस्तकादि सहित शिष्यादि अथवा साधु के भावों की अपेक्षा...** अब साधु की अपेक्षा लेते हैं। **सचित परिग्रह मिथ्यात्व रागादि,...** आहाहा! विपरीत मान्यता—पुण्य से धर्म होता है, यह परिग्रह मिथ्यात्व का परिग्रह है। आहाहा! सचेत है न यह? मिथ्यात्व, रागादि सचेत हैं। जीव की विकारी पर्याय है न! आहाहा! वह परिग्रह है, उसे पकड़ा है। आहाहा! अरे! ऐसी बातें।

अचित परिग्रह द्रव्यकर्म, नोकर्म... है न? द्रव्यकर्म जड़ और नोकर्म। द्रव्यकर्म और नोकर्म शरीर। द्रव्यकर्म जड़, नोकर्म आदि। **मिश्र परिग्रह द्रव्यकर्म, भावकर्म दोनों मिले हुए।** वह परिग्रह है, लो। सबको छुड़ाते हैं। तीसरा वीतरागी को कैसा परिग्रह (होता है), यह बात आयेगी....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, मागसर कृष्ण १३, रविवार
दिनांक-१९-१२-१९७६, गाथा - ९१, ९२, प्रवचन-१६३

परमात्मप्रकाश, ९१ गाथा। भावार्थ फिर से। यहाँ तो मुख्यरूप से ऐसा लेना है कि जो कुछ जिनलिंग नग्नपना धारण करके, फिर से मिथ्यात्व आदि परिग्रह को लेते हैं, वह वमन करके फिर से खाते हैं, ऐसा कहते हैं। यह वर्णन करते हुए फिर बहुत वर्णन बीच में आ गया। क्या कहते हैं? देखो!

भावार्थ :— परिग्रह के तीन भेदों में... परिग्रह के तीन प्रकार हैं—सचेत, अचेत और मिश्र। **गृहस्थ की अपेक्षा चेतन परिग्रह पुत्र, कलत्रादि...** पुत्र और कलत्र अर्थात् स्त्री आदि उसका वह परिग्रह है। समझ में आया? वह परवस्तु है न? पुत्र, स्त्री आदि परवस्तु है, वह कहीं इसकी चीज़ नहीं है। वह तो जगत का द्रव्य भिन्न है। उन्हें मेरा मानना, वह परिग्रह है। आहाहा!

मुमुक्षु : स्त्री परिग्रह है या मान्यता परिग्रह है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मान्यता परिग्रह है, परन्तु मान्यता का निमित्त है न वह? निमित्त वह है, इसलिए वह परिग्रह है—ऐसा कहने में आता है। आहाहा! भगवान आत्मा तो आनन्दकन्द ज्ञाता-दृष्टा का पुंज है। प्रभु तो असंख्यप्रदेशी क्षेत्र से पुंज है और अनन्त ज्ञानादि गुण से अतीन्द्रिय स्वभाव से भाव से पुंज है। आहाहा! ऐसे आत्मा की दृष्टि छोड़कर यह स्त्री-पुत्र, वे मेरे, यह अज्ञानी को बड़ा परिग्रह है। आहाहा! है? **अचेतन परिग्रह आभरणादि,...** गहने, वस्त्र आदि वे अचेतन हैं।

मुमुक्षु : .... होना ही चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो परन्तु वह परिग्रह है, ऐसा कहते हैं। हो अर्थात् पर भले हो, राज हो। आहाहा! वह कहीं इसकी चीज़ नहीं है।

यहाँ तो परमात्मा वीतरागी आनन्दस्वरूप भगवान के सन्मुख होकर वीतरागी आनन्दरूपी दशा (प्रगट हो), वह जीव का परिग्रह है।

मुमुक्षु : वह निश्चय परिग्रह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सत्य परिग्रह है। आहाहा! भगवान आत्मा... आ गया है न, अपने ऊपर आ गया है। देखो न! **निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न, वीतराग परमआनन्दस्वरूप को परिग्रह अंगीकार करके...** आहाहा! धर्मी का परिग्रह तो वह है। आहाहा! कि निज शुद्धात्मा की भावना। भगवान शुद्ध चैतन्यघन प्रभु, अनाकुल अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द का पिण्ड प्रभु, वह वस्तु। उसकी भावना—उसमें एकाग्र होकर उत्पन्न होती वीतरागी आनन्ददशा। आहाहा! समझ में आया? त्रिकाली वस्तु है आनन्द और ज्ञानमूर्ति, परन्तु उसके अन्तर भान बिना, 'यह है'—ऐसा उसे भान नहीं होता, तब तक 'है', वह इसे कहाँ आया? त्रिभुवनभाई! यह तुम्हारा उत्तर आता है। भाई ने एक बार प्रश्न किया था। वारिया वीरजीभाई के पुत्र। यह कारणपरमात्मा है त्रिकाली तो कार्य आना चाहिए। जब भगवान आत्मा त्रिकाली सच्चिदानन्द प्रभु, जिसे—वस्तु को कारणपरमात्मा कहते हैं, उसे कारणजीव कहते हैं, उसे कारणपरमात्मा कहते हैं। आहाहा! तो कारण हो, उसका तो कार्य आना चाहिए। अब तुम कारणपरमात्मा त्रिकाल है, ऐसा कहो तो कारण में से कारण का कार्य तो आना चाहिए। तो कारण तो त्रिकाल है और कार्य तो आता नहीं। समझ में आया? क्यों चिमनभाई! प्रश्न बराबर था?

परन्तु भाई! कारणपरमात्मा निज शुद्धात्मा त्रिकाली वह है, उसका भरोसा किसे आया? भरोसा में भान बिना यह 'है', वह आया कहाँ से? आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, बापू! धर्म की शुरुआत ही अपूर्व और सूक्ष्म है। वह वस्तु तो अनन्त आनन्दकन्द प्रभु है। तत्त्व है, वस्तु है और उस वस्तु में अनन्त अनीन्द्रिय ज्ञानादि गुण बसे हुए हैं। परन्तु वे हैं, ऐसा भान किसे? आहाहा!

मुमुक्षु : भान न हो तो चला जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : चला जाये, उसे कहाँ है? उसे कहाँ है? भले उसमें हो परन्तु उसे कहाँ है?

मुमुक्षु : घर में रुपये पड़े हों और उसे खबर न हो तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर नहीं तो उसके कहाँ हैं? उसे कहाँ है? आहाहा! लॉजिक से समझना पड़ेगा न इसे। आहाहा! यह चीज़ तो है। पूर्णानन्द अतीन्द्रिय आनन्दकन्द

कारणपरमात्मा ही आत्मा है। परन्तु वह 'है'—ऐसा ज्ञान में भासित हुए बिना, 'है'—ऐसा श्रद्धा की पर्याय में भासित हुए बिना वह 'है', आया कहाँ से? आहाहा! समझ में आया? वीरचन्दभाई! हमारे कलकत्ता में वाँचनकार हैं ये। सब भड़के हैं न, वाँचनेवाले यह सब जगे और हमारी कीमत घट गयी। ऐसा बहुतों को हो गया है। अरे... भगवान! ऐसा क्या करता है, बापू? भाई! प्रभु! तू परमात्मा है। हें! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा जो निज शुद्धात्मा... ऊपर है न? ९०वीं गाथा में ऊपर। उसकी भावना। भगवान पूर्णानन्द में एकाग्रता। स्वसन्मुख से... निमित्त, राग और एक समय की पर्याय से विमुख होकर, पूर्ण आत्मस्वभाव के सन्मुख होकर, जो दशा प्रगट हो, कौन सी? इस भावना से उत्पन्न। ९०में अन्तिम लाईनें हैं। **वीतराग परम आनन्दस्वरूप...** आहाहा! पर्याय में—अवस्था में जो परमानन्द वीतरागस्वरूप आत्मा है, उसका पर्याय में—वीतरागी परमानन्द की परिणति में भान हुआ, तब वीतरागी परिणति उसे प्रगट हुई, उसमें यह आत्मा है, ऐसा जाना। आहाहा! समझ में आया? भाई! मार्ग सूक्ष्म, बापू! जन्म-मरण.... अनादि से भटकता है चौरासी के अवतार में, भाई! यह कहीं साधारण बात नहीं है। यह भटकता है, वह साधारण बात नहीं। महामिथ्यात्व से भटकता है और इसे छूटना, वह सम्यक्त्व भी कोई साधारण बात नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

इस भावना से उत्पन्न वीतराग परमानन्दस्वरूप। वर्तमान दशा में वीतरागी परमानन्द दशा हुई, तब उसे यह आत्मा वीतरागी परमानन्द है, उसका अनुभव हुआ और प्रतीति आयी। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्धात्मा वीतरागी परमानन्द की मूर्ति ही है। परन्तु उसकी परमानन्द की वीतरागता की परमानन्ददशा प्रगट न हो, तब तक उसे वीतराग परमानन्द है, उसका भरोसा कहाँ आया इसे। आहाहा!

मुमुक्षु : आया कब कहलाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परमानन्द प्रगट हो, तब प्रतीति आयी कहलाये। त्रिभोवनभाई! आहाहा! नमूने का वेदन आया, तब उस द्वारा जाना कि ओहो! यह तो आत्मा पूरा वीतरागी परमानन्दस्वरूप जी है। कभी रागरूप हुआ नहीं। और आत्मा कभी संसाररूप परिणमा ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है।

मुमुक्षु : आपने कहा, वह तो मुझे याद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : याद है, वह नहीं। सेठ पूछते हैं कि आप कहते हो, वह मुझे याद है। अर्थात् आ गयी न वस्तु? ऐसा कहते हैं। ऐसा याद तो ग्यारह अंग पढ़ा, तब इसे याद नहीं आया था? वह तो धारणा हुई। वह तो अभव्य को भी ऐसी धारणा होती है। आहाहा! शशीभाई! बापू! मार्ग भाई... आहाहा! वह चीज़ ही वीतराग परमानन्द का कन्द है। कहा नहीं था कल? यह तो बहुत बार दृष्टान्त देते हैं सादा लोगों को।

यह शकरकन्द होता है न? शकरकन्द। हमारे गुजराती में शक्करिया कहते हैं, काठियावाड़ में। उसकी लाल छाल के अतिरिक्त का पूरा पिण्ड है, वह शकरकन्द है। शक्कर अर्थात् चीनी की मिठास का पिण्ड है। इससे उसे शकरकन्द कहा जाता है। आहाहा! शकरकन्द खबर है? एक लाल छाल जरा है, उसका लक्ष्य छोड़ दे तो, वह अन्दर पूरा शक्कर अर्थात् चीनी की मिठास का पिण्ड है। आहाहा!

ऐसे आत्मा में शरीर, वाणी, मन तो एक ओर रखो, परन्तु पुण्य और पाप की विकल्प की छाल को न देखो तो उस छाल के पीछे अकेला शकरकन्द—वीतराग आनन्द का पिण्ड ही वह है। आहाहा! ऐसी बातें! वे कहे, इच्छामि पडिकम्मा ईरिया वहिया ए जीवियाओ ववरोविया मिच्छामि दुक्कडम। कहाँ गये? आये हैं या नहीं तुम्हारे? चुनीभाई। चुनीभाई आये हैं तुम्हारे? नहीं आये? नहीं आये। रवाणी को कहता हूँ। आये हैं? इच्छामि पडिकमणा इरिया वहियाये जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छामि दुक्कडम। तस्सूतरी करणेणं तावकाये ठाणेणं, माणेणं जाणेण अप्पाणं वोसिरामि। क्या किया तूने, कुछ भान नहीं होता। वाणी किसकी? विकल्प क्या है? और तूने क्या किया? इसकी कुछ (खबर है)? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : गुड़ मुँह में जाये फिर भले आँख बन्द हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु गुड़ होना चाहिए न। गुड़ के बदले गोर हो तो? गोर अर्थात् यह कण्डे का चूरा। उसे गोर कहते हैं। कण्डा नहीं यह कण्डा? कण्डा। संधुक्षण रखे, तब पहले चूरा रखते हैं न? क्योंकि कठोर लकड़ी में दियासलाई नहीं पकड़ती। पोची चीज़ हो तो अग्नि पकड़े। इसलिए कण्डे का बारीक चूरा पहले रखते

हैं। उसमें दियासलाई जाये। लकड़ी पूरी हो कठोर, उसमें किस प्रकार पकड़े? इसलिए उसे भी गोर (चूरा) कहते हैं। और इसे गुड़ कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : थोड़ा सा अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा... कहा न? शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न। स्वयं था वैसा अन्दर, ऐसी अन्तर्दृष्टि होने पर, उसमें एकाग्र होने से वीतरागी परमानन्ददशा भावना में—एकाग्रता में प्रगट हुई। वह परिग्रह अंगीकार करके। वह परिग्रह जीव का है। आहाहा! बाकी स्त्री, पुत्र, परिवार और यहाँ तो अभी राग को भी परिग्रह कहेंगे। आहाहा! अरे! सिद्ध का ध्यान करना, वह भी एक सचित्त परिग्रह है, राग। आहाहा! समझ में आया? बापू! यह तो वीतरागमार्ग है, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ, जिसके सौ इन्द्र, एकावतारी इन्द्र एकभवतारी, बत्तीस लाख विमान का स्वामी, असंख्य देव का स्वामी वहाँ बैठे। पिल्ले की भाँति बैठे सभा में। वह बात कैसी होगी, भाई? समझ में आया? एकावतारी इन्द्र सुने। सभा में भगवान विराजते हैं। समझ में आया? आहाहा! बापू! यह बातें अलग हैं। यह कहीं साधारण सुनने में मिले, वह भाग्य बिना मिले, ऐसा नहीं, ऐसी चीज़ है। पुरुषार्थ बिना प्रतीति नहीं आती, भाग्य बिना वह बात नहीं मिलती। समझ में आया? आहाहा!

वीतराग परम आनन्दस्वरूप को परिग्रह अंगीकार करके... आहाहा! उसे पकड़कर रागादि को छोड़ दे। आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म है। आहाहा! समझ में आया? बात भी सुनी न हो ऐसी। यह यहाँ कहते हैं।

गृहस्थ को तीन (परिग्रह होते हैं)। स्त्री, पुत्रादि सचेत परिग्रह; गहने, कपड़े, वे अचेत परिग्रह। आहाहा! स्त्रियों के सन्दूक में बहुत प्रकार की साड़ियाँ होती हैं। वे दिशा को जायें तब दूसरी, विवाह में किसी के मण्डप में जाये तो दूसरी, घर में पहने तो दूसरी, रोटी बनाने बैठे तो दूसरी, वे साड़ियाँ बदला करें। क्योंकि ममता बहुत है न! इसलिए बदला-बदली, बदला-बदली किया करे। इसी प्रकार निगोद के जीवों को शरीर के प्रति मिथ्यात्व की इतनी ममता है कि एक श्वास में अठारह भव बदला करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : उन्हें तो ज्ञान गहलरूप है, यह परिग्रह है, ऐसा कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : भान नहीं तो भी, परिग्रह—मिथ्यात्व की पकड़ नहीं? मिथ्यात्व, वह बड़ा परिग्रह है। विपरीत मान्यता के परिणाम, वह बड़ा परिग्रह, महापाप, महाआस्रव और महासंसार वह है। आहाहा! संसार कोई स्त्री, पुत्र वह संसार नहीं; वह तो परचीज़ है। संसार—संसरणं इति संसारः! भगवान आनन्दकन्द प्रभु में से च्युत होकर, हटकर रागादि चीज़ मेरी है, यह मान्यता मिथ्यात्व और यह संसार है। ऐसे लोग स्त्री, पुत्र छोड़े (तो कहे), संसार छोड़ा। धूल भी नहीं छोड़ा, सुन न! समझ में आया? संसार तो उसे कहते हैं कि जो चिदानन्द वीतराग आनन्दकन्द प्रभु में से च्युत होकर-हटकर रागादि विकल्प जो पुण्य का, दया, दान आदि का उसे अपना मानना, वह मिथ्यात्व बड़ा संसार है। आहाहा! कहो, समझ में आया? ऐसा मार्ग है, बापू! आहाहा! यह प्रेमचन्दभाई कहते थे वे? हें? मैंने पहिचाना नहीं। वह तो बहुत प्रेमी हैं। आहाहा! उनके पुत्र कल आये थे वे। बैठे ऊपर से ख्याल आया। यह तो बहुत महीने से यहाँ है। उसे प्रेम बहुत है। हार्ट के कारण हो गया है। कल उनका पुत्र आया था। मैंने कहा, ख्याल आता नहीं। फिर देखा तब ख्याल आया। बहुत प्रेम होगा। आहाहा! यह हार्ट का है। बीस-बीस वर्ष के जवान को हार्ट बन्द हो जाता है। जड़ है, बापू! उसकी पर्याय में जिस क्षण में जन्मक्षण है, जड़ की जिस पर्याय की जन्म—उत्पत्ति का काल है, उस काल में वह होगी ही। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि अज्ञानी को यह तीन प्रकार के परिग्रह गृहस्थ को (होते हैं)। **मिश्र परिग्रह आभरणसहित स्त्री, पुत्रादि,...** गृहस्थ को। **साधु की अपेक्षा सचित परिग्रह शिष्यादि,...** शिष्य और शिष्या, वह सचित परिग्रह है। आहाहा! **अचित्त परिग्रह पीछी, कमण्डलु, पुस्तकादि...** पात्र-बात्र तो नहीं थे, वस्त्र आदि। है? **अचित्त परिग्रह पीछी, कमण्डलु, पुस्तकादि...** वह अचेत परिग्रह है। परवस्तु है न! वह कहाँ आत्मा की चीज़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : आदि कहा उसमें आ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या आ गया? परिग्रह नहीं आता, वस्त्र नहीं आता। इसलिए नाम दिया न। पिच्छी, कमण्डल, पुस्तकादि। क्या भाई ने कहा, सुना? आदि में वस्त्र,

पात्र आ जाये। आदि कहा इसलिए। आदि में वे नहीं आते। आदि में कोई कलम है लिखने की या अमुक, वह सब आदि में आवे। वस्त्र-बस्त्र होते नहीं। मुनि को वस्त्र का टुकड़ा तीन काल में होता नहीं। वस्त्र का एक टुकड़ा हो, उसे मुनिपना तीन काल में नहीं आता। आहाहा! ऐसा स्वभाव है, वस्तु की मर्यादा ऐसी है।

यहाँ आया न ? **अचित्त परिग्रह पीछी, कमण्डलु, पुस्तकादि और मिश्र परिग्रह पीछी, कमण्डलु, पुस्तकादि सहित शिष्यादि...** शिष्य और पुस्तक यह परिग्रह है। शिष्य और कमण्डल आदि मिश्र परिग्रह है। आहाहा! **अथवा साधु के भावों की अपेक्षा सचित्त परिग्रह मिथ्यात्व रागादि,...** विपरीत मान्यता और रागादि सचित्त परिग्रह है साधु को, अज्ञानी को। आहाहा! समझ में आया ? इन पाप के परिणाम में मजा आता है, पुण्य परिणाम, वह धर्म का कारण है, समझ में आया ? निमित्त से पर में कार्य होता है, मैं भी दूसरे को निमित्त होऊँ तो पर का कार्य होता है—ऐसा जो मिथ्या अभिप्राय, वह परिग्रह है। आहाहा! समझ में आया ? मिथ्यात्व, रागादि सचित्त परिग्रह। आहाहा! कितनों ने तो सुना भी नहीं हो जिन्दगी में। अभी आगे अधिक आयेगा।

अचित्त परिग्रह द्रव्यकर्म, नोकर्म... कहो। जड़कर्म और नोकर्म—शरीर, वह अचित्त परिग्रह साधु को। आहाहा! **और मिश्र परिग्रह द्रव्यकर्म, भावकर्म...** डाला। भावकर्म है, दया, दान, व्रत विकल्प जो हैं, वह भावकर्म सचित्त परिग्रह है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो सचित्त में ले लिया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। भावकर्म नहीं लिया था। वहाँ द्रव्यकर्म और नोकर्म लिया था। कहा न ? अचित्त में।

मुमुक्षु : सचित्त में मिथ्यात्व आदि लिया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें लिया था। परन्तु यहाँ वापस मिश्र में डाला अब। मिश्र में डालना है न! वह भावकर्म कहो या मिथ्यात्व कहो, सब एक ही है। आहाहा!

तीन लोक का नाथ आनन्दकन्द प्रभु को अल्पज्ञरूप से मानना, उसे रागवाला मानना, वह मिथ्यात्व परिग्रह है। आहाहा! समझ में आया ? बाह्य से भले छोड़कर बैठा हो, द्रव्यलिंग धारण करके, परन्तु अन्दर में राग की प्रीति, राग की रुचि और राग मेरी

चीज़ है, यह महा मिथ्यात्व का परिग्रह है। आहाहा! ऐसी बात है। परमात्मप्रकाश। यह अधिकार तो अपने आता है, प्रवचनसार में, भाई! टीका में आता है। उसमें भी आता है। यह अधिकार जयसेनाचार्य की टीका में आता है। समयसार में आता है। दिगम्बर सन्तों की वाणी तो कोई अलौकिक है, जगत में कहीं है नहीं। आहाहा! केवली के पथानुगामी हैं, केवली के मार्ग में चलनेवाले हैं। वे पुकार करते हैं जगत को, प्रसिद्ध होओ कि परवस्तु को, रागादि को अपनी मानने से वह मिथ्यात्व है, वह संसार है, ऐसा प्रसिद्ध होओ। यह संसार इसने छोड़ा नहीं। स्त्री, पुत्र, परिवार, दुकान छोड़कर बैठा, इसलिए संसार छोड़ा, ऐसा है नहीं। मिथ्यात्वरूपी संसार जिसने छोड़ा नहीं, उसने संसार छोड़ा नहीं। उसे संसार गले पड़ा है। समझ में आया? ऐसी बातें हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसी बात ही समझने योग्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही है, बापू! बाकी तो सब धूलधाणी और मरकर चला जायेगा। आहाहा! अरबोंपति ममता में पड़े हैं। बनिया हो तो मरकर पशु में जानेवाले हैं। माँस, शराब न खाये (पीये), इसलिए नरक में तो न जाये। कहा न। आहाहा! यह आँखें मींचकर चले जायेंगे। धर्म किया न हो, पुण्य किया न हो और पाप में बीस-बीस घण्टे, बाईस घण्टे बिताये हों, एकाध घण्टे कहीं सुनने को जाये तो कुगुरु एक घण्टा लूट ले। विपरीत श्रद्धा और विपरीत मान्यता कराकर। व्रत करो, अपवास करो, तुम्हें धर्म होगा। लूट डाला इसे बेचारे को। समझ में आया?

मुमुक्षु : समकित बिना व्रत, तप नहीं होते?

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे न व्रत, तप। अज्ञानी (को) बालतप और बालव्रत।

मुमुक्षु : बाल है वह बड़ा हो धीरे-धीरे।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोटे के अर्थ में बाल नहीं। मूर्खता के अर्थ में बाल है। बाल, युवक वह छोटे के अर्थ में बाल, ऐसा नहीं है। बाल, वह मूर्खता के अर्थ में है। वह मूर्ख बड़ा हो तो बड़ा मूर्ख होगा। आहाहा! अरे! इसने अपनी दया की नहीं। अपनी दया की नहीं। दया अर्थात्? जैसा इसका जीव का सत्त्व है, वैसा इसने माना नहीं, इसलिए दया की नहीं। दूसरे जीव को जीव से भिन्न करना, उसे जीवत्व नहीं मानना, यह हिंसा। इसी

प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द आदि अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसका जीवन ही यह है। उसे न मानकर अल्पज्ञरूप से मानना, रागरूप से मानना। वह है नहीं—ऐसा कहा, इसलिए इसने हिंसा की। आहाहा! समझ में आया? पर की हिंसा कौन कर सकता है? भाव कर सकता है पर को मारने का, परन्तु मार नहीं सकता। इसी प्रकार पर की दया कौन कर सकता है? भाव करे राग, दया पालने का राग। वह हिंसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : दया, वह हिंसा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दया अर्थात्? पर की दया का भाव राग, वह हिंसा है। स्व की दया का भाव, वह अहिंसा—वीतरागता है। आहाहा! अर्थात्? जैसा वह तत्त्व है पूर्णानन्द का जीवन उसका स्वरूप, भावप्राण, ज्ञान, दर्शन, आनन्द, सत्ता से जीवता तत्त्व पूरा, उसे इस प्रकार से स्वीकार करना, उसका नाम जीव की दया है। आहाहा!

मुमुक्षु : आपकी दया बहुत महँगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है। पुरुषार्थसिद्धिउपाय में कहा नहीं? राग है, वह हिंसा है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधे समकिती, वह भी अपराध है। यह तो वीतराग का खेल है, भाई! यह कहीं ऐरी-गैरी साधारण बातें करे, ऐसी नहीं यह।

कहते हैं कि **मिश्र परिग्रह द्रव्यकर्म, भावकर्म...** आहाहा! द्रव्यकर्म अचेत जड़ है और भावकर्म है, वह चैतन्य की विकारी पर्याय है, उसे सचित्त गिनकर, वह अचेत दोनों होकर मिश्र गिना। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम, वे भावकर्म सचित्त है और द्रव्यकर्म अचित्त है। दोनों होकर मिश्र कहे गये हैं। मिश्र परिग्रह है। आहाहा!

मुमुक्षु : महाव्रत परिग्रह है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परिग्रह है राग। ज्ञानी उसे अपना नहीं मानता। आता है, होता है। उसका ज्ञाता रहता है। आहाहा! है? द्रव्यकर्म और भावकर्म, वह मिश्र परिग्रह है। आहाहा!

अथवा... अब आगे ले गये। **वीतराग त्रिगुप्ति में लीन ध्यानी पुरुष की अपेक्षा...** आहाहा! **सचित्त परिग्रह सिद्धपरमेष्ठी का ध्यान,...** सिद्धपरमेष्ठी का ध्यान, वह विकल्प है। परमात्मा तीन लोक के नाथ सिद्धभगवान णमो सिद्धाणं, उनका ध्यान, वह भी राग

का विकल्प है। आहाहा! वह सचित्त परिग्रह है। ऐसी बातें। आहाहा! **सचित्त परिग्रह सिद्धपरमेष्ठी का ध्यान,...** क्योंकि सिद्धभगवान हैं, वे परद्रव्य हैं और परद्रव्य का ध्यान लक्ष्य में लेगा तो उसे राग ही आयेगा। आहाहा! स्वद्रव्य का ध्यान, वह वीतरागी पर्याय है। समझ में आया? आहाहा!

अरे! मनुष्यपना मुश्किल से मिला, निगोद में से निकलकर आया कहाँ से कहाँ। आहाहा! वह दृष्टान्त दिया है न? धाणी... धाणी, ज्वार की धाणी करते हैं न, उसमें से कोई बाहर निकल जाये। बाहर निकल जाये। इसी प्रकार निगोद में से मुश्किल मुश्किल से निकला है बाहर। नित्यनिगोद में अनन्त काल रहा है। आहाहा! इसे करने का काल आया, वहाँ रुक गया कहीं। आहाहा! वह सर्पिणी नहीं होती? सर्पिणी जैसे बहुत बच्चों को जन्म दे, सैकड़ों को। फिर गोला करके खा जाये। उसमें से कोई एकाध बाहर निकल गया तो बच गया। आहाहा! यहाँ नहीं कहा? अपने यहाँ हुआ न थोड़े दिन पहले। कुत्ती ने चार बच्चों को जन्म दिया। कोई मनुष्य नहीं होता और क्षुधा बहुत लगी तो दो पिल्लों को खा गयी। पिल्ले खा गयी। यह है न? वह काली कुत्ती घूमती है। मन्दिर के पीछे। भगवान के मन्दिर के पीछे। आहाहा! भगवान ऊपर तो चिड़िया ईयल खाकर बैठे। उसे कहाँ भगवान की खबर है? आहाहा! दो पिल्ले तुरन्त खा गयी, लो! ताजा। और फिर भीखाभाई को खबर पड़ी, वह जन्मी है। फिर ले गये। तेल का हलुवा, तेल, तेल। हलुवा करके दिया फिर खाया। उससे पहले भी छोटी उम्र में हमको खबर है न। कुतिया जन्म दे, तब लड़के जाते। आई माई! ऐसा कुछ कहते। छोटी उम्र की बात है। कुत्ती जन्म दे तो बनिया के लड़के निकले ठीकरी लेकर। आई माई! कुत्ती प्रसूता हुई है, धान धोबो देना। ऐसा बोलते। यह तो सत्तर वर्ष पहले की बात है। धान धोबो, हों! धोको (डण्डा) नहीं। ठीकरी लेकर... कुत्ती प्रसूता हो न। बनिये को इतनी करूणा थी उस समय। जिसकी गली में जन्मे, वह स्वयं ठीकरी लेकर लड़के दो-चार, छह, सात, निकले। आई माई कुत्ती प्रसूता हुई, धान धोबो दो। उसे खिलाना है। उसे भूख बहुत लगती है उस समय। यह तो अपने बाईयों को डिलीबरी हो, तब मैथी के लड्डू, मैथी के लड्डू खिलाते हैं न? हेतु यह है। औषध का मैथी के लड्डू नहीं कहते? सब खबर है न, एक-एक की सब खबर है।

मुमुक्षु : जामनगर में उसका प्रसिद्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : होगा, अपने तो गाँव में मैथी के लड्डू कहते। लड्डू मसालेवाले डालकर मैथी के लड्डू करते, स्त्री को देते। आहाहा! भूख बहुत लगी हो उसे। आहाहा!

मुमुक्षु : यह सब तो दृष्टान्त हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस दृष्टान्त का अर्थ यह हुआ कि जिसे मिथ्यादृष्टिपना लगा है, वह आत्मा को खा जाता है। आहाहा! वह चैतन्य का घात कर डालता है। आहाहा! मिथ्या अभिप्राय जो यह परिग्रह है, उसे जो पकड़ा है, वह आत्मा चैतन्यमूर्ति का घात कर डालता है। आहाहा! मैं नहीं यह। मैं तो राग हूँ। मैं नहीं यह। मेरी स्त्री, पुत्र, वह मैं हूँ। घात कर डालता है आत्मा का। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं, बापू! यह तो वीतराग की बातें अलग। लोगों में तो बेचारे सम्प्रदाय में तो यह दया पालो और प्रौषध करो, सामायिक करो और प्रतिक्रमण करो। और मन्दिरमार्गी में यात्रा करो और सिद्धचक्र की पूजा करो... धूल में भी नहीं वहाँ, वह तो सब राग है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रतिमा लो।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिमा लो तो भी वह राग है, वहाँ धर्म आत्मा के भान बिना की प्रतिमा कैसी? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि सिद्ध का ध्यान भी परिग्रह है। भले यहाँ वीतरागी की अपेक्षा से लिया है। दूसरा भी सिद्ध का ध्यान करने जाये तो विकल्प होगा। आहाहा! समझ में आया? **अचित्त परिग्रह पुद्गलादि...** एक परमाणु का विचार करेगा तो वह अचित्त परिग्रह है। आहाहा! परद्रव्य है न? परमाणु रजकण जड़ पर है। उस पर के विचार में रुकेगा तो वह विकल्प उठेगा। आहाहा! परमाणु आदि **पाँच द्रव्यों का विचार, और मिश्र परिग्रह गुणस्थान मार्गणास्थान...** आहाहा! यह मिश्र हुआ। चौदह गुणस्थान का विचार। वीतरागदशा में पड़ा है, उसमें से यदि यह आवे तो वह परिग्रह है, कहते हैं। आहाहा! है? मार्गणास्थान। जीव की गति कहाँ? किस गति में है? अमुक... अमुक वह सब मिश्र।

जीवसमासादिरूप संसारी जीव का विचार। लो, यह मिश्रपरिग्रह है। भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, उसका ध्यान, वह वीतरागी पर्याय है। और वह वीतरागी पर्याय,

वह निज परिग्रह है। आया था न ऊपर? ९० में, ९० गाथा में आया था। परिग्रह कहा था। टीका में भूल गये, टीका में है। अर्थ में भूल गये। समझ में आया? आहाहा! **इस तरह बाहिर के और अन्तर के परिग्रह से रहित जो जिनलिंग...** उस बाह्य और अन्तरंग परिग्रह से रहित, हों! ऐसा धारकर जिनलिंग ग्रहण किया है। आहाहा! क्या कहा? अभ्यन्तर में वह मिथ्यात्व आदि के परिग्रह का त्याग किया है और बाह्य में वस्त्रादि का त्याग किया है। आहाहा! कुटुम्ब-कबीला, दुकान-धन्धा, वह बाहर की चीज़ है। ऐसा बाह्य और अन्तर के परिग्रह से रहित जिनलिंग, जिनलिंग अर्थात् नग्नदिगम्बर मुनि वह जिनलिंग है। वस्त्रसहित, वह जिनलिंग ही नहीं। समझ में आया? मुनिपने को वस्त्रसहित वह जिनलिंग नहीं; वह तो कुलिंग है। समझ में आया? यह सूक्ष्म बात है। स्पष्ट करने जाते हैं, वहाँ लम्बा हो जाता है। अन्यलिंग, अन्यमत का लिंग है वह। वस्त्रसहित है, वह अन्यमत का लिंग है। जिन का लिंग नहीं। आहाहा!

पाँचवें अध्याय में कहा है, नहीं? मोक्षमार्गप्रकाशक, पाँचवाँ अध्याय। अन्यमति। उन अन्यमति में यह सब डाले हैं—वेदान्त, सांख्य, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, वे सब अन्यमत हैं, जैनमत है ही नहीं। कठिन पड़े भाई लोगों को, क्या हो? वस्तु आवे तब जो आती हो, वह आवे। कुलिंग नहीं, यह तो जिनलिंग कहा। आहाहा! है?

जिनलिंग उसे ग्रहण कर जो अज्ञानी शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत... आहाहा! शुद्धात्मा परमानन्द प्रभु का अनुभव, वीतरागी परिणति, वह अनुभूति। पर्याय, हों! **अज्ञानी शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत परिग्रह को ग्रहण करते हैं...** आहाहा! इस शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत विकल्प आदि परिग्रह को पकड़ता है, वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। आहाहा! पुस्तकें थोड़ी हैं। सबको नहीं मिली होंगी। **अज्ञानी शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत...** आहाहा! यह व्यवहाररत्नत्रय, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प-राग, पंच महाव्रत का राग, वह अनुभूति से विपरीत है। आहाहा!

मुमुक्षु : अनुभूति से विपरीत, ऐसा लिखते हैं, आत्मा से विपरीत, ऐसा नहीं लिखा।

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणति से विपरीत है तो आत्मा से विपरीत ही है। आत्मा तो द्रव्य है। यहाँ तो वर्तमान परिणति से विपरीत है, ऐसा कहना है, वहाँ फिर द्रव्य की बाता तो कहाँ? आहाहा! क्या कहा यह?

आत्मा जो है, वह पूर्णानन्दस्वरूप भगवान आनन्दकन्द, उसका भान हुआ जो अनुभूति, वह परिणति है वर्तमान। उस वर्तमान परिणति से विकल्पादि परवस्तु भिन्न है। आहाहा! कहो, शशीभाई! आत्मा तो द्रव्य त्रिकाल है। यह तो वर्तमान त्रिकाली भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन, ऐसी अनुभूति... आहाहा! ऐसी जो वीतरागीपर्याय, धर्मरूपपरिणति, अकषायरूप परिणति—अवस्था, उससे विकल्पादि वह भिन्न विपरीत है। आहाहा! अरे रे! भगवान का मार्ग सत्य है, वह सुनने को मिलता नहीं। आहाहा! वह कब समझे और कब अन्दर परिणमे? वहाँ तक सब दुःखी हैं बेचारे। आहाहा! समझ में आया? है? क्या कहा वहाँ?

अज्ञानी शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत... विकल्पादि **परिग्रह को ग्रहण करते हैं...** आहाहा! यह शिष्य मेरा और यह पुस्तक मेरी, यह विकल्प हो वह मेरा... आहाहा! विकल्प शब्द से राग, हों! **वमन करके पीछे आहार करनेवाले के समान निन्दा के योग्य होते हैं।** आहाहा! वमन किया उसे कुत्ता खाता है; वमन किया, उसे मनुष्य नहीं खाता। आहाहा! इसी प्रकार जिसने एक बार छोड़कर, फिर से ग्रहण करे, वह तो कुत्ते जैसा वमन करके खाये, ऐसा है। आहाहा! ऐसा मार्ग लोगों को... दिमाग कम और रुका हुआ कहीं, अब उसमें यह कहना और समझाना। आहाहा! बापू! मार्ग तो यह है, भगवान! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव की ध्वनि उठती है। भगवान विराजते हैं अभी। महावीर परमात्मा (आदि) तो सब णमो सिद्धाणं में गये। अब उन्हें देह नहीं, वाणी नहीं। वह तो अरिहन्तपद में परमात्मा विराजते हैं। महाविदेह (में)। सर्वज्ञ परमात्मा सीमन्धर भगवान। सीमं—आत्मा की मर्यादा के धारक। आहाहा! उन भगवान की वाणी में यह आता है। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे, आठ दिन रहकर लाये तो वह वाणी समयसार उनकी वाणी है। उनकी सब उस प्रकार की यह सब छाप—प्रतिछाया है। आहाहा!

कहते हैं, **वमन करके पीछे आहार करनेवाले के समान निन्दा के योग्य होते हैं। ऐसा दूसरी जगह भी कहा है कि जो जीव अपने माता, पिता, पुत्र, मित्र, कलत्र इनको छोड़कर पर के घर और पुत्रादिक में मोह करते है,...** पर के शिष्य, किसी के लड़के वहाँ उन्हें अपने शिष्य मानकर मोह करे, वह तो वह की वह दशा हुई। घर के

लड़के छोड़कर पर के लड़कों में ममता करे। आहाहा! यह मेरे शिष्य हैं और यह विद्यार्थी हमारे पास पढ़ते हैं। इसलिए हमारे हैं। सेठ! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर गया। आहाहा! हें? क्या कहा?

मुमुक्षु : पर को अपना करना, विशाल दृष्टि कहलाये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अज्ञानदृष्टि कहलाये वह। विचार शब्द से यहाँ अज्ञान लेना। वह अज्ञानदृष्टि विशाल अर्थात्। माँ को भी स्त्री ठहरावे, वह विशाल दृष्टि है न? अकेली स्त्री को स्त्री ठहरावे, उसकी अपेक्षा माँ को ठहरावे, बहिन को स्त्री ठहरावे, वह विशाल दृष्टि है? जमुभाई! ऐसा तो बापू जो हो, वह आयेगा। आहाहा! जो वस्तु हो, उसका विस्तार या न हो उसका विस्तार विशाल? आहाहा! आहाहा! बहुत गाथा... एक-एक गाथा उत्कृष्ट आती है। अरे! ऐसा समय... बापू! मनुष्यपने में वीतराग की सच्ची बात कान में पड़ना, वह महाभाग्य हो उसे पड़े, ऐसी है। आहाहा!

मुमुक्षु : पुण्य का... अब आगे कैसे बढ़ना?

पूज्य गुरुदेवश्री : अब इसे निषेध करना बाहर का और हकार करना स्व का, यह आगे बढ़ना। बहुत संक्षिप्त कहा। कहा नहीं था? एक क्षुल्लक थे। बुद्धि थोड़ी थी परन्तु उन्हें बेचारों को प्रेम बहुत। क्षुल्लक थे। आदिसागर न? गुजर गये बेचारे। अपने यह उद्घाटन किया, तब आये थे। यहाँ की पुस्तकें बहुत ले, दूसरों को दिलावे, पुस्तकें लो। बुद्धि थोड़ी। संक्षिप्त एक बार यह शब्द बोलते, देखो भाई! हम बहुत लम्बा नहीं जानते। परन्तु पर से खस, स्व में बस, टुंकूं टच, इतना बस। सेठ! पर से खस। अर्थात् विकल्पादि से खस (हट)। वस्तु भगवान वीतराग में बस। इतना बस, यह टुंकूं टच। आहाहा! यह सब इसका विस्तार है। आहाहा!

मुमुक्षु : संक्षिप्त कथन से समझनेवाले बहुत कम।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने तो यह बहुत विस्तार होता है। ४२ वर्ष से तो चलता है यहाँ। आहाहा! बीस लाख तो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। चौदह लाख यहाँ से और छह लाख जयपुर से।

मुमुक्षु : वह तो सब परिग्रह कहलाये, ऐसा उसमें आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना माने तो न! जगत की चीज़ है तो जगत में होती है। हुकमीचन्दजी है न पण्डित? बहुत जोरदार जगा है। हुकमीचन्दजी पण्डित अभी बहुत जोरदार। उम्र छोटी ४० वर्ष की है, परन्तु उनका क्षयोपशम और वास्तविक की रुचि बहुत, तथापि घमण्ड नहीं, मान नहीं। आ गये न अभी वे। बहुत नरम व्यक्ति नरम। पच्चीस हजार रुपये देने लगे उन्हें, कहा नहीं? भोपाल में चालीस हजार लोगों की संख्या थी व्याख्यान में। भोपाल, भोपाल पंचकल्याणक था न, हम गये थे न, आठ दिन रहे थे। चालीस हजार लोग सभा में। उसमें एक व्यक्ति ने पच्चीस हजार... दिये थे एक व्यक्ति ने, पद्मचन्द आगरावाले। पैसेवाले हैं न। नाम नहीं दिया। उत्तर (प्रदेश) मुमुक्षु मण्डल की ओर से आपका आदर करके पच्चीस हजार (रुपये) देते हैं। दिया था एक लाख। लिये पच्चीस हजार हाथ में। ३९ वर्ष की उम्र। मैं तो इन महाराज से सीखा हूँ, मुझे तो महाराज का उपकार है। ऐसा करके सौ रुपये डालकर पच्चीस हजार वापस दे दिये। पच्चीस हजार। धूल में क्या था वहाँ? पच्चीस हजार और लाख। थैली हाथ में ली। थैली में दिये। नोट होंगे। मुझे तो महाराज का उपकार है, मैं तो यहाँ से सीखा हूँ। ऐसा करके सौ रुपये डाले। उत्तर (प्रदेश) मुमुक्षु मण्डल को मैं भेंटरूप से वापस देता हूँ। पच्चीस हजार नहीं। नरम व्यक्ति है। पाँच सौ वेतन है, छह सौ करते थे तो इनकार किया। अधिक करना नहीं। मैं काम जितना काम लूँगा उतना करूँगा। अधिक करके वापस बहुत काम कराना... इतना बस है। वह भी लड़के तैयार होंगे तो मैं छोड़ देनेवाला हूँ। बड़े लड़के हैं। बड़े लड़के का नाम परमात्मप्रकाश है, छोटे लड़के का नाम अध्यात्मप्रकाश है। लड़कियों के नाम ऐसे नाम हैं। वह कुछ नाम है, भूल गये। वे सब अध्यात्म के नाम हैं। आहाहा! अरे... भाई! ऐसा समय कहाँ मिले? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **पुत्रादिक में मोह करते है, अर्थात् अपना परिवार छोड़कर शिष्य-शाखाओं में राग करते हैं,...** शिष्य—शाखा। जहाँ हो वहाँ मन्दिर हमने बनाये, हमारे मन्दिर हैं। अरे.. बापू! कहाँ तेरा मन्दिर? कौन बनावे? जड़ की पर्याय परमाणु की तो उस काल में उसके काल में जन्मक्षण है, इसलिए हुई है। किसी ने बनाया है मकान को (मन्दिर को)?

मुमुक्षु : कानजीस्वामी ने बनाया है, ऐसा लोग कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोग तो ऐसा ही कहे न। इसके लिये तो यह बात की है। ऐसा छब्बीस लाख का मकान (मन्दिर)। पौने चार लाख अक्षर। मशीन आयी है, मशीन से उत्कीर्ण। हिन्दुस्तान में पहला-पहला (हुआ)। परन्तु वह तो उसके कारण से हुआ है, बापू! करे कौन? रामजीभाई ध्यान रखते थे। कहो, समझ में आया? परन्तु ध्यान रखते थे, इसलिए वहाँ हुआ है, ऐसा नहीं। ऐसा है, बापू! उन परमाणुओं की पर्याय क्रमसर होने में उसका जन्मक्षण अर्थात् उत्पत्ति का काल था, तब वह हुआ है। यह प्रवचनसार की १०२ गाथा का सिद्धान्त है। जड़ और चैतन्य की उस-उस क्षण में उत्पन्न होती पर्याय वह उसका काल है, इसलिए हुई है। किसी ने की है और किसी से हुई है, ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

वे भुजाओं से समुद्र को तैरके गाय के खुर से बने हुए गड्ढे के जल में डूबते हैं,... आहाहा! दुकान छोड़ी, स्त्री-पुत्र छोड़े, धन्धा छोड़ा, पाँच-पाँच हजार का वेतन हो, वह वेतन छोड़ा, और वापस इस खड्डे में फँस गया। गाय होती है न गाय, खड्डा होता है न? उसमें डूब गयी। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान! आहा! **कैसा है समुद्र, जिसमें जलचरों के समूह प्रगट हैं,...** उस समुद्र में जलचर मछलियाँ भरी हैं अकेली। आहाहा! **ऐसे अथाह समुद्र को तो बाहों से तिर जाता है, लेकिन गाय के खुर के जल में डूबता है। यह बड़ा अचम्भा है। घर का ही सम्बन्ध छोड़ दिया तो पराये पुत्रों से क्या राग करना?** आहाहा! यह हमारा चेला है और यह हमारी चेली है। किसका चेला, चेली? परद्रव्य किसका हो? आहाहा! यह वह लड़के मेरे, पुत्री मेरी कहे। यह चेला, चेली कहे। सब एक की एक बात है। हें!

मुमुक्षु : चेला, चेली हो तो कहना चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु चेला, चेली किसकी? सब सबकी। किसी की कब थी? आहाहा! लो! यह ९१ गाथा हुई।

गाथा - ९२

अथ ये ख्यातिपूजालाभनिमितं शुद्धात्मानं त्यजन्ति ते लोहकीलनिमितं देवं देवकुलं च दहन्तीति कथयति–

२१५) लाहहँ कितिहि कारणिण जे सिव–संगु चयंति।
खीला–लग्गिवि ते वि मुणि देउलु देउ डहंति।।९२।।
लाभस्य कीर्तेः कारणेन ये शिवसंगं त्यजन्ति।
कीलानिमितं तेऽपि मुनयः देवकुलं देउ दहन्ति।।९२।।

लाभकीर्तिकारणेन ये केचन शिवसंगं शिवशब्दवाच्यं निजपरमात्माध्यानं त्यजन्ति ते मुनयस्तपोधनाः। किं कुर्वन्ति। लोहकीलिकाप्रायं निःसारेनिद्रयसुखनिमितं देवशब्दवाच्यं निजपरमात्मपदार्थं दरन्ति देवकुलशब्दवाच्यं दिव्यपरमौदारिकशरीरं च दहन्तीति। कथमिति चेत्। यदा ख्यातिपूजालाभार्थं शुद्धात्मभावनां त्यक्त्वा वर्तन्ते तदा ज्ञानावरणादिकर्मबन्धो भवति तेन ज्ञानावरणकर्मणा केवलज्ञानं प्रच्छाघते केवलदर्शनावरणेन केवलदर्शनं प्रच्छाघते वीर्यान्तरायेण केवलवीर्यं प्रच्छाघते मोहोदयेनानन्तसुखं च प्रच्छाघत इति। एवं विधानन्तचतुष्टय–स्यालाभे परमौदारिकशरीरं च न लभन्त इति। यदि पुनरनेकभवे परिच्छेधं कृत्वा शुद्धात्मभावनां करोति तदा संसारस्थितिं छित्त्वऽघकालेऽपि सवर्गं गत्वागत्य शीघ्रं शाश्वतसुखं प्राप्रोतीति तात्पर्यम्। तथा चोक्तम्––''सग्गो तवेण सव्वो वि पावए किं तु झाण जोएण। जो पावइ सो पावइ परलोके सासयं सोक्खं।।''।।९२।।

आगे जो अपनी प्रसिद्धि, (बड़ाई) प्रतिष्ठा और परवस्तु का लाभ इन तीनों के लिए आत्मध्यान को छोड़ते हैं, वे लोहे के कीले के लिए देव तथा देवालय को जलाते हैं–

कीर्ति लाभ के लिए छोड़ते हैं जो परमात्मा का संग।
लौह–कील के लिए देवकुल को भी करे अग्नि से भस्म।।९२।।

अन्वयार्थ :– [ये] जो कोई [लाभस्य] लाभ [कीर्तिः कारणेन] और कीर्ति के कारण [शिवसंग] परमात्मा के ध्यान को [त्यजंति] छोड़ देते हैं, [ते अपि मुनयः] वे ही मुनि [कीलानिमितं] लोहे के कीले के लिए अर्थात् कीले के समान असार इंद्रिय–सुख के निमित्त [देवकुलं] मुनिपद योग्य शरीररुपी देवस्थान को तथा [देवं] आत्मदेव को [दहंति] भव की आताप से भस्म कर देते हैं।

भावार्थ :– जिस समय ख्याति, पूजा, लाभ के अर्थ शुद्धात्मा की भावना को

छोड़कर अज्ञान भावों में प्रवर्तन होता हैं, उस समय ज्ञानावरणादि कर्मों का बंध होता है। उस ज्ञानावरणादि के बंध से ज्ञानादि गुण का आवरण होता है। केवलज्ञानावरण से केवलज्ञान ढँक जाता है, मोह के उदय से अनंत सुख, वीर्यांताराय के उदय से अनंत बल, और केवलदर्शनावरण से केवलदर्शन आच्छादित होता है। इस प्रकार अनंत चतुष्टय का आवरण हो रहा है। उस अनंत चतुष्टय के अलाभ में परमौदारिक शरीर को नहीं पाता, क्योंकि जो उसी भव में मोक्ष जाता है, उसी के परमौदारिक शरीर होता है। इसलिए जो कोई समभाव में शुद्धात्मा की भावना करे, तो अभी स्वर्ग में जाकर पीछे विदेहों में मनुष्य होकर मोक्ष पाता है। ऐसा ही कथन दूसरी जगह शास्त्रों में लिखा है, कि तप से स्वर्ग तो सभी पाते हैं, परन्तु जो कोई ध्यान के योग से स्वर्ग पाता है, वह परभव में सासते (अविनाशी) सुख को (मोक्ष को) पाता है। अर्थात् स्वर्ग से आकर मनुष्य होके मोक्ष पाता है, उसी का स्वर्ग पाना सफल है, और जो कोरे (अकेले) तप से स्वर्ग पाके फिर संसार में भ्रमता है, उसका स्वर्ग पाना वृथा है।।९२।।

गाथा-९२ पर प्रवचन

---

९२ (गाथा)।

२१५) **लाहहँ कितिहि कारणिण जे सिव-संगु चयंति।**
खीला-लग्गिवि ते वि मुणि देउलु देउ डहंति।।९२।।

आहाहा! **आगे जो अपनी प्रसिद्धि, (बड़ाई), प्रतिष्ठा और परवस्तु का लाभ इन तीनों के लिये...** एक तो बाहर की प्रसिद्धि करने के लिए रुक गया। आहाहा! मैं कमाता हूँ और मैं कमाता हूँ, मैं कर्मी हूँ। कर्मी कहते हैं न? बड़ाई प्रतिष्ठा बाहर में इज्जत बढ़े **और परवस्तु का लाभ...** पुत्र, पुत्र, नौकर बड़े। **इन तीनों के लिये आत्मध्यान को छोड़ते हैं...** आहाहा! भगवान आत्मा का ध्यान छोड़कर उसमें ही रुक जाता है, कहते हैं। आहाहा! **वे लोहे के कीले के लिये देव...** एक कील चाहिए, कील लोहे की। **देव तथा देवालय को जलाते हैं।** देवालय को जलाते हैं एक कील के लिये। कील समझते हो? कील, कील लोहे की। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु का ध्यान छोड़कर बाहर रुक गया, वह कील के लिये देवालय को जलाता है। आहाहा! इसका विस्तार कहेंगे विशेष.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, मागसर कृष्ण १४, सोमवार
दिनांक-२०-१२-१९७६, गाथा - ९२, ९३, प्रवचन-१६४

परमात्मप्रकाश, ९२ गाथा का भावार्थ है। **जिस समय...** क्या कहते हैं? अज्ञानी **जिस समय ख्याति,...** जगत में प्रसिद्धि पाने का भाव **पूजा, लाभ...** शिष्य आदि का लाभ, उसके **अर्थ शुद्धात्मा की भावना को छोड़कर...** शुद्ध आत्मा पवित्र अनन्त गुण का धाम, ऐसा जो आत्मा, उसका ध्यान छोड़कर, उसका आश्रय छोड़कर यह पूजा, प्रतिष्ठा में जो जाता है, वह यहाँ कहते हैं, उसका आत्मा ढँक जाता है। शुद्ध आत्मा पवित्र अनन्त गुण का निधान ऐसी जो चीज़ है परमात्मस्वरूप, उसके ओर की एकाग्रता का भाव हो, उसे छोड़कर मान, प्रतिष्ठा और कीर्ति में जाता है, उसका आत्मा ढँक जाता है, आवरण में वह ढँक जाता है। समझ में आया?

उस ज्ञानावरणादि के बन्ध से ज्ञानादि गुण का आवरण होता है। शुद्धात्मा... परन्तु यह बात बैठना ऐसी चीज़ है, अनन्त-अनन्त शुद्ध गुण पवित्र पड़े हैं आत्मा में। आहाहा! वह पवित्र आत्मा भगवान, उसका एकाग्रपना—ध्यान छोड़कर यह मान, प्रतिष्ठा और कीर्ति में चले जाते हैं... आहाहा! दृष्टान्त दिया है न यह? एक कील के लिये देवालय जलाता है। कील समझते हो? आहाहा! कीली, कीला। एक कील चाहिए हो तो देवालय जलाकर कील निकाले। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा देह-देवालय में परमानन्द की मूर्ति प्रभु है। आहाहा! उसका ध्यान छोड़कर, उसका आश्रय छोड़कर पूजा, प्रतिष्ठा में जो लगे हैं, वे कीली के लिये देवालय जलाते हैं। एक इज्जत के लिये भगवान आत्मा का नाश करते हैं दृष्टि में। समझ में आया? आहाहा!

वस्तु है पूर्णानन्द की मूर्ति प्रभु साक्षात् सिद्धस्वरूप ही आत्मा है। ऐसा जो परमात्मा... आहाहा! उसकी ओर का सावधानपना और एकाग्रता... आहाहा! उसे छोड़कर मान, प्रतिष्ठा और कीर्ति और शिष्यों के और इज्जत के लाभ के लिये बाहर में रुकता है, वह कील के लिये देवालय को जलाता है। वह इज्जत का साधन दुनिया के लिये आत्मा का नाश करता है। समझ में आया? ऐसी बात है, बापू!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नाश, उसे अपना अनादर हुआ न। है, उसका आदर नहीं रहा और नहीं इज्जत, कीर्ति जगत के प्राप्त करने के लिये मर गया वहाँ का वहाँ। समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं, ढँक जाता है। नाश होता है अर्थात् क्या? केवलज्ञानावरणीय आदि से पर्याय ढँक जाती है। आहाहा! .... समझ में आया? वह चीज़ क्या है, उसका माहात्म्य ही अभी आना (कठिन है)। साक्षात् आनन्द का नाथ प्रभु विराजता है। जिसके आनन्द के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन और इन्द्राणियों के भोग सड़े हुए कुत्ते और बिल्ली के जैसे... (सार है) दिखते हैं। आहाहा! ऐसा यह भगवान आत्मा, उसके ध्यान को, उसके सन्मुख और उसका आश्रय छोड़कर एक मान और इज्जत-कीर्ति के लिये मर जाता है साधु होकर। समझ में आया? आहाहा! अनादि से अज्ञानी करता है। उसे बाहर में मानो इज्जत मिले और पैसा मिले और यह मिला, उसमें रुक गया।

परमात्मस्वरूप ही भगवान आत्मा है। परमात्मस्वरूप न हो तो परमात्मा पर्याय में होगा कहाँ से? समझ में आया? आहाहा! छोटी पीपर में चौंसठ पहरी चरपराई भरी है। छोटी पीपर होती है न? कद में छोटी, रंग में काली, तो भी उसके अन्दर में शक्ति जो है... तीखाश समझे? क्या कहते हैं? चरपराई। हिन्दी चरपराई कहते हैं न? हमारे यहाँ तीखाश कहते हैं। कद में छोटी, रंग में काली तो भी उसकी शक्ति में सोलह आना चौंसठ पहरी तीखाश—चरपराई भरी है। वह चरपराई पर्याय में प्रगट हो, तब बाहर चरपराई आवे। परन्तु वह अन्दर पड़ी है, वह बाहर आती है।

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा देह से भिन्न, वाणी से भिन्न, ... से भिन्न, पुण्य-पाप के विकल्प की वृत्तियों से भिन्न और अल्पज्ञ वर्तमान प्रगट पर्याय से भी भिन्न। आहाहा! ऐसा जो साक्षात् पारसमणि ऐसा परमात्मा स्वयं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि उसका जो आदर करता नहीं... आहाहा! यहाँ तो आते-आते यहाँ तक आया। शिष्य और शिष्या के लिये, कुटुम्ब-कबीला के लिये मर जाता है। आत्मा को क्या होता है, उसकी इसे खबर नहीं। तीन लोक का नाथ आनन्द का सागर प्रभु, अनन्त गुण—संख्या में न आवे, इतनी संख्या अनन्त की है। ... आत्मा में सामान्य

गुण अनन्त और विशेष गुण अनन्त हैं। छह बोल बाहर में आते हैं। अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, द्रव्यत्व आते हैं न? छह बोल सामान्य प्रतीति के लिये है। बाकी तो आत्मा में वे सामान्यगुण अनन्त हैं। आहाहा! वह चैतन्य हीरा कौन है, उसकी इसे खबर नहीं। सामान्य अनन्तगुण और विशेष अनन्तगुण। जैसे आत्मा में ज्ञान, आनन्द, दर्शन, चारित्र—शान्ति ऐसे गुण जो विशेष हैं, जो दूसरे जड़ में नहीं। ऐसे विशेष गुण भी अनन्त हैं।... संक्षिप्त समझाने के लिये अभी भाई ने कहा न,... संक्षिप्त बात लें तो एक द्रव्य अनन्त द्रव्यों से नहीं, ऐसी नास्ति में अनन्त गुण हैं। वहाँ भी कहना तो आवे। समझ में आया? आहाहा!

देह देवालय में भगवान परमात्मा स्वयं ही स्वरूप से परमात्मा है पूरा, इसकी खबर नहीं होती। विषयकषाय, भोग, इज्जत, कीर्ति मार डाला। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि ऐसा प्रभु स्वयं विराजता है, उसकी सन्मुखता और सामने देखता नहीं और दुनिया की इज्जत-कीर्ति के लिये आत्मा को भंग—छेद कर डालता है। आहाहा! वह आठों ही कर्म बाँधता है। आठों ही कर्मरहित आत्मा और अनन्तगुणवाला प्रभु... आहाहा! कैसे बैठे? उसकी इसे कीमत नहीं होकर साधारण बाहर के पुण्य और पाप के भाव में उसका उत्साह और कदर करने में सम्मत करने से प्रभु की कीमत वहाँ आच्छादित हो जाती है। समझ में आया? ... नहीं आये? समझ में आया?

अज्ञान भावों में प्रवर्तन होता है,... आहाहा! भगवान आनन्द का घर, अतीन्द्रिय आनन्द का पुंज प्रभु... आहाहा! उसके सन्मुख देखता नहीं, उसका आश्रय लेता नहीं, उसका आदर करता नहीं और इस जगत के पुण्य-पाप और उसके फल के आदर में जाता है, वह कील के लिये देवालय को जलाता है। करोड़ों रुपये का देवालय हो और कील चाहिए हो तो उसे जला डालता है। आहाहा! इतनी यहाँ... आहाहा! जिसकी कीमत नहीं।... ओमकार की व्याख्या की है। भाव ओमकार आत्मा है न! ओमकार दो प्रकार से—एक शब्दरूपी ओमकार और एक भावरूपी ओमकार प्रभु स्वयं। आहाहा! ओमकार शब्द जाके उभयरूप, एक आत्मिक एक पुद्गलरूप। भगवान आत्मा ॐस्वरूप ही है। आहाहा! ॐ पंच परमेष्ठीस्वरूप है, पंच परमेष्ठीस्वरूप ॐ है और ॐस्वरूप भगवान है। आहाहा! ऐसी चीज़ के प्रति आदर न करके, उसके सन्मुख न देखकर,... आहाहा!

एक करोड़पति व्यक्ति और अरबोंपति आया हो। समझ में आया? उसके सन्मुख देखे नहीं, बात न करे और दो-चार वर्ष का लड़का आया हो और उसके साथ खेल में चढ़ जाये तो वह (करोड़पति व्यक्ति) चला जाये। उसे कुछ कीमत ही नहीं। आहाहा! सरदारशहर, भाई थे न? दीपचन्दजी सेठिया, उनके मामा थे। उस समय में, हों! दस करोड़ रुपये। अभी तो भाव बढ़ गये न! दस करोड़। यह बहुत वर्ष पहले। तब तो उनके सन्दूक भरे हुए। सोना, चाँदी, हीरा, माणेक के सन्दूक भरे हुए। वे एक बार इन्हें मिलने आये, सेठ को। ... आये तो यहाँ से एक-दो व्यक्ति... उनका आदर किया। मामा थे न। ... ओहो! ऐसी लड़कियाँ तुम्हारे यहाँ आदर करे, हमको तो कुछ भान ही नहीं। पैसा दस करोड़, तब की बात है, हों! अभी तो बीस गुना भाव बढ़ गया न। ... सन्दूक भरे हुए। वह प्रसन्न हो गया। ... यहाँ का वाँचन, श्रवण... बहुत प्रसन्न हुए। ऐसी शिक्षा तुम्हारी। बर्तन माँजनेवाले के पास शिक्षा। बर्तन माँजे न? उस लड़की को भी ऐसा गायन आवे। हमको तो कुछ भान ही नहीं। धूल में... वह भाई सह (झेल) नहीं सके, सोगानीजी का। सोगानी थे बहुत लाखोंपति। अनुभवदृष्टि हुई थी। स्वर्ग में चले गये हैं। वह उन्हें सहन नहीं हुआ। अब यह कौन जगा है? ... चाहे जो जगे, आठ वर्ष की लड़की हो वह जगे। इससे विशेष क्या है?

इसी प्रकार यहाँ बड़ा पुरुष अन्दर विराजता है, कहते हैं। और उसके सामने देखता नहीं और राग तथा पुण्य के सामने देखता है। आहाहा! वह चैतन्य के पूर्णानन्द का स्वयं अपमान और अनादर करता है। और इसलिए वह आठ कर्म को बाँधता है। आहाहा! ऐसे शुद्ध स्वरूप का अन्तर आदर करनेवाला आठों कर्मों को तोड़ता है। आहाहा! समझ में आया? पूर्णानन्दस्वरूप भगवान निष्क्रिय, राग की क्रिया जिसमें नहीं, अरे! एक समय की पर्याय की परिणति जिसमें नहीं, ऐसा पूर्णानन्द का नाथ भगवान आत्मा, उसके सन्मुख न देखकर, उसकी कीमत न आँककर, उसकी महिमा न लाकर, एक बाहर की चीज़ कीर्ति प्राप्त करने के लिये और शिष्यों को इकट्ठा करने के लिये... कहा न यह सब? ख्याति, पूजा, लाभ, हमारे प्रति विनय... धूल में भी नहीं। आहाहा! बड़ाई, हम गाँव में बड़े हैं। समझ में आया? पैसे से बड़े, इज्जत से बड़े, इस वकालात के पठन से बड़े, इस डॉक्टर के पठन से बड़े। आहाहा! इस महत्ता के प्रेम में

आत्मा को मार डाला। आहाहा! महत्ता... कल आया था न? इसका अर्थ किया है महत्ता। ... कल आया था। वह क्या कहलाये? राजमलजी की टीका। आहाहा!

उसकी महिमा क्या कहना? प्रभु का स्तवन है न भक्तामर में? नाथ! तेरी भक्ति करने से... आहाहा! रण में हाथी मर गये हों और उनके.... उसमें यदि तेरी भक्ति का करनेवाला जाये तो उसे कोई अड़चन नहीं कर सकता। सिंह की दाढ़ में आया हो, सिंह, सिंह, जंगल में से सिंह (की) दाढ़ में आया हो पकड़ में, परन्तु प्रभु! जिसे तेरी भक्ति है, आहाहा! वह दाढ़ में तुझे पकड़ नहीं सकता। आता है? भक्तामर में आता है, भक्तामर में। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! सिंह की झपट में नहीं आता। इसी प्रकार तीन लोक का नाथ का जिसने आदर किया अन्दर में, उसे दुनिया के भय और सब ... नाश कर डाला है। भय कैसा? और जिसने उसका आदर किया नहीं और बाहर के पैसे, इज्जत, कीर्ति का माहात्म्य किया है, वे मर गये हैं। उसने जीव का जितना जीवन है, वैसा जीवन उसने नहीं माना। आहाहा! समझ में आया? दुनिया की इज्जत, प्रतिष्ठा, सेठाई, बाहर में पुत्र, पुत्री का विवाह करने में लाखों खर्च करे और तब यह चौड़ा होकर घूमे। मारवाड़ी में बहुत करते हैं। ... उस समय देखे तो... इत्र छिड़के। जीमण करे, प्रीतिभोज करे। उत्साह... उत्साह... उत्साह किसका है प्रभु? आनन्द का नाथ अन्दर विराजता है, प्रभु! उसका आदर नहीं और यह... समझ में आया? है?

ज्ञानावरणादि के बन्ध से ज्ञानादि गुण का आवरण होता है। कर्म से बात की है। अपनी पर्याय में हीनता हो गयी न? पर का लाभ माना तो अपने लाभ का नकार किया। यह ज्ञान की परिणति अपने से ही हीन हुई है, तब ज्ञानावरणीय को निमित्त कहा जाता है। आहाहा! ऐसा वाँचे फिर दिखावे, देखो! **ज्ञानावरणादि के बन्ध से ज्ञानादि गुण का आवरण होता है। केवलज्ञानावरण से केवलज्ञान ढँक जाता है,...** देखो! केवलज्ञानावरणीय से केवलज्ञान ढँक जाता है, ऐ... देवीलालजी! केवलज्ञानावरणीय से केवलज्ञान ढँक जाता है। यह स्पष्ट लिखा है इसमें। यह तो असद्भूतव्यवहारनय। संक्षिप्त करने के लिये बात डाली। ज्ञान की परिणति ही हीन हो गयी है इसकी।

आहाहा! जिसने ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द प्रभु, अकेला ज्ञान का पुंज प्रभु, ज्ञान का ढोकला है वह। उसका जिसने आदर छोड़कर पर के एक मान-सम्मान, कीर्ति में चला गया, उसने ज्ञान की दशा हीन की है। वह भावघाति है। शुद्धात्मा का आराधन करनेवाले को केवलज्ञान प्रगट होता है। समझ में आया? आहाहा! गये कनुभाई?

परमात्मप्रकाश में गजब किया है न! हें! इसका दृष्टि में तुझे माहात्म्य नहीं आया और उसका माहात्म्य छोड़कर बाहर की प्रतिष्ठा, पैसा, ... परिवार बड़ा और कुछ अच्छा मिला हमको लाभ, लाभ सवाया बनिया लिखते हैं न दीवाली पर। दरवाजे में नहीं लिखते? लाभ सवाया। किसका लाभ? धूल का? पैसे मिलेंगे। आहाहा! अनन्त लाभ मिले, ऐसा भगवान आत्मा है। उसका आदर करने से अनन्तगुण की शक्ति में से व्यक्तता अनन्त की प्रगटे। आहाहा! ऐसे भगवान को तू भूलकर इसके लिये रुक गया। वह केवलज्ञान ढँका।

मोह के उदय से अनन्त सुख... अनन्त आनन्द प्रभु आत्मा में। स्वभावरूपी आनन्द बेहद आनन्द / अनन्त आनन्द अपरिमित आनन्द, जिसकी पूरी शक्ति का माप नहीं मिलता। आहाहा! ऐसा जो अनन्त सुख आत्मा का, वह पर के लाभ और प्रेम में ढँक जाता है। और स्वरूप का आराधन करने से वह अनन्त सुख प्रगट होता है। समझ में आया? ऐसा उपदेश किस नयी जाति का? कुछ करना कि दया पालना, व्रत करना, अपवास करना।

मुमुक्षु : दया पालने का....

पूज्य गुरुदेवश्री : तेरी दया पालने की बात चलती है। पर की दया कौन पालता है? परद्रव्य की पर्याय कौन कर सकता है, प्रभु? आहाहा! दान कौन दे सकता है पैसे का? वह तो जड़ है। तूने तेरा दान नहीं दिया, प्रभु! ऐसा कहते हैं। सम्प्रदान। आत्मा में वह सम्प्रदान नाम का गुण पड़ा है अन्दर। आहाहा! उसका आदर करने से पर्याय में अनन्त आनन्द की दशा प्रगट होकर स्वयं अपने को देता है, वह दान है। समझ में आया? यह पैसे-फैसे के दान में अभिमान चढ़े कि मैंने पैसे दिये। कितने ही तो पचास हजार देकर तख्ती लगावे मकान में पत्थर की, क्या कहलाये? तख्ती। मेहनत लेकर

तख्ती लगावे। आहाहा! स्वयं किसलिए करता है? वह भले दे। अपने आप देगा पैसा। स्वयं लिखावे। .....

यहाँ कहते हैं कि **केवलदर्शनावरण से केवलदर्शन आच्छादित होता है।** मोह से अनन्त सुख और **वीर्यान्तराय के उदय से अनन्त बल...** ढँक जाते हैं। आहाहा! ऐसा कहकर क्या कहते हैं? कि भगवान तो अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य के चतुष्टय से भरपूर भगवान है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त बल। आहाहा! ऐसे भगवान का आदर न करके जगत की इज्जत और लाभ के लिये मर गया। उसे अनन्त सुख ढँक जाता है, उसका अनन्त बल ढँक जाता है। आहाहा! और शुद्धात्मा अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द का नाथ, उसका आराधन करनेवाले को अनन्त ज्ञानादि प्रगट होते हैं। समझ में आया? ऐसी बातें हैं। इसमें क्रिया कितनी करना? बाहर की क्रिया की बात नहीं। अन्दर में आनन्द में एकाग्र होना, वह क्रिया है। आहाहा! समझ में आया? ... बापू! वह तो शुभभाव है, भाई! शुभभाव में तो आत्मा को बन्धन होता है। आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप अनन्त दर्शन, ज्ञान, अनन्त सुख के स्वरूप प्रभु विराजे, उसका अनादर करके जो रागादि की क्रिया करे, उसमें तो आत्मा ढँक जाता है। कठिन लगे।

किस चीज़ का किस प्रकार अनादर करता हूँ, उसकी इसे खबर नहीं। समझ में आया? भगवान परमानन्दस्वरूप ऐसी चीज़ अन्दर है। आहाहा! भले क्षेत्र छोटा हो, देह-देवालय जितना, परन्तु उसका भाव छोटा नहीं। आहाहा! ... आत्मा के रस को छोड़कर विभाव के रस में पड़ता है। समझ में आया?

केवलदर्शनावरण से केवलदर्शन आच्छादित होता है। इस प्रकार अनन्त चतुष्टय का आवरण हो रहा है। आहाहा! क्या कहते हैं? अनन्त चतुष्टय सामर्थ्यरूप पड़ा है अन्दर। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य वही आत्मा। उसका माहात्म्य छोड़कर, उसकी ओर का झुकाव छोड़कर और जगत का प्रेम, लाभ, पूजा और प्रतिष्ठा के लाभ के लिये पड़ा है, उसे अनन्त चतुष्टय ढँक जाता है, पर्याय में। शक्ति तो शक्ति है ही। आहाहा! समझ में आया? ऐसी व्याख्या। दीक्षा लो। किसकी दीक्षा?

आत्मा कौन है, उसके अनुभव बिना दीक्षा कहाँ से आयी ? दीक्षा तो स्थिरता के लिये है। आत्मा पूर्णानन्द का नाथ जिसकी दृष्टि के स्वीकार में आया नहीं, वह दृष्टि निर्मल हुई नहीं, उसे दीक्षा चारित्र की... कहाँ से आवे ? समझ में आया ? चारित्र तो शुद्धोपयोग है। शुद्धोपयोग वह चारित्र है। शुद्धोपयोगी शुद्धभाव से स्वरूप क्या है, उसे जाना नहीं। आहाहा! उसे शुद्धोपयोग का चारित्र आवे कहाँ से ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका निवृत्त ? अन्दर की निवृत्ति या बाहर की ? अनन्त बार मुनिपना—निवृत्ति ली। हजारों रानियाँ छोड़कर मुनि दीक्षित हुआ, नग्न दिगम्बर। उससे क्या है ? अन्दर से निवृत्त होना चाहिए, उससे निवृत्त हुआ नहीं और बाहर से निवृत्ति लेकर उसमें अभिमान किया। आहाहा! ऐसी बात है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो'। अनन्त बार मुनिव्रत धारक ग्रैवेयक गया, परन्तु अन्दर में मिथ्यात्व के त्याग बिना तेरा त्याग कहाँ से आया ?

इस प्रकार अनन्त चतुष्टय का आवरण हो रहा है। उस अनन्त चतुष्टय के अलाभ में परमौदारिकशरीर को नहीं पाता,... देखा! जहाँ अनन्त चतुष्टय भगवान ज्ञान, दर्शन, आनन्द की प्राप्ति (हुई), उसे परमौदारिकशरीर होता है। वह यह अनादर करनेवाला, पर का आदर करनेवाले को परमौदारिकशरीर प्राप्त नहीं करता। **क्योंकि जो उसी भव में मोक्ष जाता है,...** जिसे इस देह से अन्तिम (देह से) मोक्ष जाना है। **उसी के परमौदारिकशरीर होता है।** आहाहा! उसे परमौदारिकशरीर होता है। तीर्थंकर को तो जन्म से ही परमौदारिकशरीर होता है। समझ में आया ? माता के गर्भ में आवे वहाँ परमौदारिकशरीर होता है। आहाहा! चैतन्यरत्न की डिब्बी उसके जैसी होती है। समझ में आया ? केसर कहीं थैली में नहीं रखी जाती। उसे डिब्बा और बरनी चाहिए केसर के लिये। इसी प्रकार भगवान का तीर्थंकर का आत्मा... आहाहा! उनका शरीर पहले से डिब्बी ही उसकी अलग प्रकार की होती है—परमौदारिक। और दूसरे जीव को केवलज्ञान पावे तब परमौदारिकशरीर हो जाता है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, दोनों जिसे नहीं। पर का आदर करता है, उसे अनन्त चतुष्टय नहीं तथा परमौदारिकशरीर नहीं। समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...जन्मे तब से उन्हें मूत्र, मल नहीं होता।

मुमुक्षु : बाल होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाल होते हैं। केवलज्ञान होने के बाद बाल बढ़ते नहीं। छाया नहीं पड़ती।

यहाँ तो दो बात कहते हैं। जिसे इज्जत और कीर्ति के लाभ में खो गया है आत्मा, उसे अनन्त चतुष्टय प्राप्त नहीं होते, आवरण प्राप्त होते हैं और नहीं उसे परमौदारिक शरीर चाहिए, वह उसे मिलता नहीं। **इसलिए जो कोई समभाव में शुद्धात्मा की भावना करे,...** आहाहा! पर के लाभ की इच्छा छोड़कर... आहाहा! ख्याति, लाभ का भाव छोड़कर आत्मख्याति के लिये जो अन्दर में ध्यान करता है... आहाहा! आत्मख्याति है न प्रसिद्धि? उस **समभाव में शुद्धात्मा की भावना करे,...** वीतरागभाव से आत्मा में ध्यान करे, ऐसा कहते हैं। राग से आत्मा का ध्यान होता नहीं। आहाहा! शुभराग से आत्मा में नहीं जाया जाता। अन्दर जाने के लिये... शुद्ध-शुद्ध।

शुद्धात्मा की भावना करे, तो अभी स्वर्ग में जाकर... पंचम काल में भी शुद्धात्मा की भावना करे तो अभी तो स्वर्ग मिले। **पीछे विदेह में मनुष्य होकर...** विदेहक्षेत्र में जाये। **मोक्ष पाता है।** समझ में आया? अभी केवलज्ञान का पुरुषार्थ नहीं, शुद्धात्मा का आदर सम्यग्दर्शन, ज्ञान किया है, उसे राग कुछ बाकी रह जाता है, इससे स्वर्ग में जायेगा। वहाँ से मनुष्यदेह प्राप्त करके महाविदेह से मोक्ष जायेगा। समझ में आया? **ऐसा ही कथन दूसरी जगह शास्त्रों में लिखा है, कि तप से स्वर्ग तो सभी पाते हैं,...** क्या कहते हैं? क्रियाकाण्ड की जो निशानी है, उससे तो स्वर्ग मिलता है, बहुतों को अनन्त बार मिला। **परन्तु जो कोई ध्यान के योग से स्वर्ग पाता है,...** आहाहा! अन्तर के आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान (सहित) जो हैं, वह जो स्वर्ग पाता है, वह अलग प्रकार है। स्वर्ग में वह जीव रुकेगा नहीं। धर्मशाला की भाँति वहाँ रहेगा। आहाहा! ऐसी बातें। यात्रा करो सम्मेदशिखर की, लो! एक बार वंदे जो कोई... आता है न? नारक, पशु न होई, उसमें क्या भला हुआ? ऐसा भाव पुण्य का हो तो एक बार नरक, पशु में न जाये, बाद

में जायेगा। आहाहा! सम्मेदशिखर का महावीरकीर्ति लाये हैं, वे कहे, मेरे पास पुस्तक है, सम्मेदशिखर के माहात्म्य की (पुस्तक है)। क्या है? उसमें ऐसा लिखा है, सम्मेदशिखर की यात्रा और दर्शन करे तो ४९ भव में मोक्ष जाये। (हमने) कहा, यह वाणी भगवान की नहीं। भगवान की वाणी नहीं। परद्रव्य के दर्शन और परद्रव्य के आश्रय से भव घटे, (ऐसा) तीन काल में नहीं। आहाहा!

भगवान भव और भवरहित आत्मा, उसके आश्रय में जाये तो भव घटे। सम्मेदशिखर के आश्रय से, गिरनार के आश्रय से (नहीं)। शत्रुंजय का आता है। शत्रुंजय का माहात्म्य है श्वेताम्बर में। शत्रुंजय माहात्म्य। ऐसा अपने में कुछ किया होगा, सम्मेदशिखर का माहात्म्य। आहाहा! साक्षात् समवसरण में तीर्थंकर विराजे, उनके दर्शन करे और पूजा करे तो भी पुण्य होता है। संसार नहीं घटता। आहाहा! परद्रव्य के आश्रय से संसार नहीं घटता। जिसमें संसार नहीं, उसका आश्रय करे तो संसार घटता है। हें! आहाहा!

जो कोई ध्यान के योग से स्वर्ग पाता है,... देखा! अकेली तपस्या आदि करके स्वर्ग में जाये, वह तो अनन्त बार गया है। आत्मा में आश्रय करने पर, बाकी रह गया जो भाव, तो राग के कारण स्वर्ग में जाये। ज्ञानी है, वह स्वर्ग में जाये, वह अलग चीज़ है और अज्ञानी स्वर्ग में जाये अनन्त बार गया, वह अलग चीज़ है। क्योंकि वह स्वर्ग में जाकर फिर वापस मनुष्य होकर मोक्ष जायेगा। और वह (अज्ञानी) स्वर्ग में गया हो तो वहाँ से निकलकर तिर्यंच आदि होकर नरक में जायेगा। आहाहा! समझ में आया? **वह परभव में सासते (अविनाशी) सुख को (मोक्ष को) पाता है।** लो। स्वर्ग में गया परन्तु वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जायेगा। आहाहा! **अर्थात् स्वर्ग से आकर मनुष्य होके मोक्ष पाता है,...** आहाहा! **उसी का स्वर्ग पाना सफल है,...** क्योंकि उसके बाद मनुष्य होकर मोक्ष ही जानेवाला है। वह (अज्ञानी) स्वर्ग में अनन्त बार गया, वहाँ से निकलकर मनुष्य या पशु होकर नरक में जायेगा। आहाहा! ऐसी बात है। आत्मा को... बात है। आत्मा के गीत हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... यह दो-चार भव हों, वह सब ज्ञान का ज्ञेय है।

और जो कोरे (अकेले) तप से स्वर्ग पाके... आहाहा ! आत्मज्ञान बिना, आत्मदर्शन बिना, आत्मअनुभव बिना मात्र तपस्या और व्रत पालन से **स्वर्ग पाके फिर संसार में भ्रमता है,...** वह चार गति में भटकनेवाला है। आहाहा! ऐसा मार्ग कैसा ? अभी क्या कहते हैं, यह पकड़ना कठिन पड़े। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनवर का पंथ ऐसा है। आहाहा! मात्र स्वर्ग में जानेवाला कोरा, आत्मज्ञानरहित, वह तो **फिर संसार में भ्रमता है, उसका स्वर्ग पाना वृथा है।** सम्यग्दर्शन और आत्मा के आराधन बिना के जो स्वर्ग में जाये, उसका .... है। आत्मध्यान से स्वर्ग में जाये, पूरा नहीं कर सके इसलिए, तो वहाँ से निकलकर, धर्मशाला में से निकलकर वापस सवेरे रास्ता काटे। धर्मशाला में से निकलकर... आहाहा! यह रीति ही कोई अलग प्रकार की है। ९२ हुई।

गाथा - ९३

अथ यो बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहेणात्मानं महान्तं मन्यते स परमार्थं न जानातीति दर्शयति–

२१६) अप्पउ मण्णइ जो जि मुणि गुरुयउ गंथहि तत्थु।
सो परमत्थे जिणु भणइ णवि बुज्झइ परमत्थु।।९३।।
आत्मानं मन्यते य एव मुनिः गुरुकं ग्रन्थैः तथ्यम्।
स परमार्थेन जिनो भणति नैव बुध्यते परमार्थम्।।९३।।

आत्मानं मन्यते य एव मुनिः। कथंभूतं मन्यते। गुरुकं महान्तम्। कैः। ग्रन्थैर्बाह्याभ्यन्तर-परिग्रहैस्तथ्यं सत्यं स पुरुषः परमार्थेन वस्तुवृत्त्या नैव बुध्यते परमार्थमिति जिनो वदति। तथाहि। निर्दोषिपरमात्मविलक्षणैः पूर्वसूत्रोक्तसचित्ताचित्तमिश्र–परिग्रहैर्ग्रन्थरचनारुपशब्दशास्त्रोर्वा आत्मानं महान्तं यः स परमार्थशब्दवाच्यं वीतराग–परमानन्दैकस्वभावं परमात्मानं न जानातीति तात्पर्यम्।।९३।।

आगे जो बाह्य अभ्यंतर परिग्रह से अपने को महंत मानता है, वह परमार्थ को नहीं जानता, ऐसा दिखलाते हैं–

जो मुनि परिग्रह से ही अपने को महान अनुभव करते।
वे परमार्थ न जानें – यह परमार्थ विज्ञ जिनवर कहते।।९३।।

अन्वयार्थ :– [य एव] जो [मुनिः] मुनि [ग्रंथैः] बाह्य परिग्रह से [आत्मानं] अपने को [गुरकं] महंत (बड़ा) [मन्यते] मानता है, अर्थात् परिग्रह से ही गौरव जानता है, [तथ्यम्] निश्चय से [सः] वही पुरुष [परमार्थेन] वास्तव में [परमार्थम्] परमार्थ को [नैव बुध्यते] नहीं जानता, [जिनः भणति] ऐसा जिनेश्वरदेव कहते हैं।

भावार्थ :– निर्दोष परमात्मा से पराङ्मुख जो पूर्वसूत्र में कहे गए सचित्त, अचित्त, मिश्र परिग्रह हैं, उनसे अपने को महंत मानता है, जो मैं बहुत पढ़ा हूँ। ऐसा जिसके अभिमान है, वह परमार्थ यानी वीतराग परमानंदस्वभाव निज आत्मा को नहीं जानता। आत्म–ज्ञान से रहित है, यह निःसंदेह जानो।।९३।।

गाथा-९३ पर प्रवचन

आगे जो बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह से अपने को महन्त मानता है,... है? अभ्यन्तर राग से और बाहर से स्त्री, कुटुम्ब, पैसा और प्रतिष्ठा से। **वह परमार्थ को नहीं जानता,...** वह परमार्थ को तो जानता नहीं। ९३।

२१६) अप्पउ मण्णइ जो जि मुणि गुरुयउ गंथहि तत्थु।
सो परमत्थे जिणु भणइ णवि बुज्झइ परमत्थु।।९३।।

अन्वयार्थ :— जो मुनि बाह्य परिग्रह से अपने को महन्त मानता है,... आहाहा! शिष्य और प्रतिष्ठा और बड़ी पुस्तकें बनी हो और बड़ी इज्जत जगत में निकाली। ओहोहो! **बाह्य परिग्रह से अपने को महन्त मानता है, अर्थात् परिग्रह से ही गौरव जानता है,...** आहाहा! **'तथ्यम्' निश्चय से वही पुरुष वास्तव में परमार्थ को नहीं जानता,...** ओहोहो! बाहर की महत्ता में पड़े हैं, उन्हें अन्दर की महत्ता की खबर नहीं, कहते हैं। **ऐसा जिनेश्वरदेव कहते हैं।** है? **वही पुरुष वास्तव में परमार्थ को नहीं जानता,...** बाहर की इज्जत, कीर्ति और लाभ बाहर का, उसमें जिसकी महन्तता और महत्ता दिखती है, वह परमार्थ भगवान को नहीं जानता।

भावार्थ :— निर्दोष परमात्मा से पराङ्मुख... वीतरागमूर्ति प्रभु भगवान आत्मा। निर्दोष कहा न? जिसमें राग-द्वेष आदि, पुण्य-पाप का दोष जिसमें है ही नहीं आत्मा में। आहाहा! ऐसा जो निर्दोष परमात्मा। परमात्मा अर्थात् स्वयं, हों! अपना आत्मा। उससे पराङ्मुख—उससे उल्टा रहकर। आहाहा! **पूर्वसूत्र में कहे गये सचित्त, अचित्त, मिश्र परिग्रह...** लो, पहले आ गया। मिथ्यात्व, वह सचित्त परिग्रह है; शिष्य आदि का बाह्य परिग्रह सचित्त है। आहाहा! निर्जरा में आया था न? सचित्त, अचित्त का भोग। सचित्त अर्थात् इन्द्रिय सचेत है। ऐ... निर्जरा में आया न? ...वेदन अल्प है। आहाहा! .... यह नहीं चलता वहाँ। गृहस्थ भी सचेत, अचेत प्रयोग करता है। समझ में आया? ऐसा जो... जिसे आत्मज्ञान और भान है, उसे निर्जरा हो जाती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आया था न? ... सचेत, अचेत। स्त्री आदि में सचेत डाला था, बाहर से और अन्दर... एकेन्द्रिय जीव भी कदाचित् वहाँ... आहाहा!

परन्तु जिसे सचेत अकेला ज्ञान का सागर भगवान वह सचेत। आहाहा! उस सचेत को जिसने चेता, वह कदाचित् एकेन्द्रियादि के जीव को कोई .... तो भी वह ऐसे बन्ध को प्राप्त नहीं होता कि जिसमें संसार बढ़े; इसलिए उसे बन्ध नहीं है, ऐसा कहा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो... समझ में आया?

आत्मज्ञान नहीं और व्रत, तप करके हम धर्मी हैं, ऐसा मानता है और मनवाता है, वह... इसलिए विरोध करने खड़े हुए हैं। वह करेंगे। ... आत्मज्ञान बिना के जो कुछ ... जाये वह कुछ ... नहीं। हें! ... नग्न दिगम्बर सन्त आनन्द के झूले में झूलनेवाले, हमने ब्रह्मचर्य की व्याख्या की। हे जवानों! हे युवकों! तुमको यह पसन्द न आये तो दुःख हो, हम मुनि हैं, हमको माफ करना। आचार्य दिगम्बर आचार्य सन्त आत्मध्यान में मस्त, आहाहा! ...हे युवकों! तुम्हारा शरीर जवान लट्ठ जैसा हो और तुम्हारी... हो, उसे मैं यह ब्रह्मचर्य की बात करूँ तो ठीक नहीं लगे। हम तो मुनि हैं, ब्रह्मचारी हैं, हम ब्रह्मचर्य की बात करते हैं, तुमको दुःख लगे तो माफ करना, भाई! आहाहा! देवीलालजी!

यहाँ सन्त कहते हैं कि हम तो जो बात है, वैसी सत्य बात कहेंगे। सम्यग्दर्शनरहित प्राणी व्यवहार कल्पित है, वह भी राग है, वह कहीं समकित नहीं। उसे व्यवहारसमकित किसके कहा जाये? जिसे निश्चय हुआ है, उसके व्यवहार कहलाता है। आहाहा! ऐसा कि यह तत्त्वार्थश्रद्धान आया है। ... अभी तो व्यवहारश्रद्धा ... व्यवहार आचरण... ऐसा कहते हैं।

परमात्मा से पराङ्मुख... आहाहा! आत्मज्ञान से रहित—निश्चय सम्यग्दर्शन, स्वभाव के अनुभव से रहित, **सचित्त, अचित्त, मिश्र परिग्रह हैं, उनसे अपने को महन्त मानता है,...** आहाहा! हम आचार्य हुए, बड़े साधु हुए, दीक्षायें,... आहा! गजरथ निकालते हैं न? यह आत्मज्ञान बिना के तेरे गजरथ, वह तो शुभभाव है, बन्ध है। समझ में आया? आया है न? ... बाहुबली, इतनी जरा खटक रह गयी। भरत की पृथ्वी में खड़ा हूँ। ... अभिमान के गज में चढ़े... वह गज चढ़ने से केवलज्ञान नहीं होता। उस

मान में चढ़ने से परमात्मा केवलज्ञान नहीं होता। समझ में आया? उन्हें तो अकेले मुनि हैं, उन्हें जरा कहा।

यह तो सम्यग्ज्ञान बिना के, आत्मा का जहाँ आदर नहीं... आहाहा! वह बाहर की महिमा में ख्याति, पूजा, लाभ... राजा दीक्षा ले। भर्तृहरि ने दीक्षा ली। आता है, भर्तृहरि राजा। पिंगला की खबर पड़ी कि अरे..! मेरी प्रिया पिंगला। मुझे अमरफल मिला, मैंने उसे दिया, उसने अश्वपाल को दिया।... मालवा का अधिपति, उसकी रानी अश्वपाल के साथ चले। अश्वपाल वैश्या के साथ चले। वैश्या को वापस प्रेम हो गया राजा के ऊपर तो वह राजा को देने आयी। अरे! यह क्या? यह कहाँ से आया? 'देखा नहीं कुछ सार जगत में देखा नहीं कुछ सार।' राज छोड़ दिया। गुरु ने हुकम किया कि पिंगला के पास आहार लेने जाओ।... जा, पिंगला के पास जा। पिंगला तो शोक में थी, रानी थी।... पिंगला कहे, प्रभु! मेरे पास अभी कुछ नहीं है। माता! ऐसा बोले, माता! आहार दे। अरे! प्रभु! तुम मुझे माता न कहो। माता! भिक्षा दे नाटक में (आता है) 'भिक्षा दे माता पिंगला।' हे माता! मेरे गुरु की आज्ञा, तू रानी से भिक्षा ले।... मेरी मण्डली चली जा रही है। प्रभु! मैंने आज बनाया नहीं, मैंने कुछ बनाया नहीं।... 'खीर रे बनाऊँ क्षण एक में, जीमते जाओ योगीराजजी...' खीर, खीर। उसे देरी नहीं लगेगी। 'खीर रे बनाऊँ क्षण एक में, जीमते जाओ योगीराजजी...' माता! मेरी जमात जाती है। आहाहा! कैसा वह वैराग्य होगा! ....

यहाँ कहते हैं कि जिसे बड़ी महन्तता **मैं बहुत पढ़ा हूँ। ऐसा जिसके अभिमान है, वह परमार्थ यानी वीतराग परमानन्दस्वभाव निज आत्मा को नहीं जानता।** आहाहा! वीतराग परमानन्दस्वरूप भगवान को नहीं जानता। **आत्म-ज्ञान से रहित है, यह निःसन्देह जानो।**

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ९४

ग्रन्थेनात्मानं महान्तं मन्यमानः सन् परमार्थं कस्मान्न जानातीति चेत्–

२१७) बुज्झंतहँ परमत्थु जिय गुरु लहु अत्थि ण कोइ।
जीवा सयल वि बंभु परु जेण वियाणइ सोइ।।९४।।

बुध्यमानानां परमार्थं जीव गुरुः लघुः अस्ति न कोऽपि।
जीवाः सकला अपि ब्रह्म परं येन विजानाति सोऽपि।।९४।।

बुध्यमानानाम्। कम्। परमार्थम्, हे जीव गुरुत्वं लघुत्वं वा नास्ति। कस्मान्नास्ति। जीवाः सर्वेऽपि परब्रह्मस्वरुपाः तदपि कस्मात्। येन कारणेन ब्रह्मशब्दवाच्यो मुक्तात्मा केवलज्ञानेन सर्वं जानाति यथा तथा निश्चयनयेन सोऽप्येको विवक्षितो जीवः संसारी सर्वं जानातीत्यभि–प्रायः।।९४।। एवमेक–चत्वारिंशत्सूत्रप्रमितमहास्थलमध्ये परिग्रहपरित्याग–व्याख्यानमुख्य तया सूत्राष्टकेन तृतीयमन्तरस्थलं समाप्तम्। अत उर्ध्वं त्रयोदशसूत्रपर्यन्तं शुद्धनिश्चयेन सर्वे जीवाः केवलज्ञानादिगुणैः समानास्तेन कारणेन षोडशवर्णिकासुवर्णवद्भेदो नास्तीति प्रतिपादयति।

आगे शिष्य प्रश्न करता है, कि जो ग्रंथ से अपने को महंत मानता है, वह परमार्थ को क्यों नहीं जानता? इसका समाधान आचार्य करते हैं–

जो जाने परमार्थ तत्त्व को उनको लघु–गुरु कोइ नहीं।
परम ब्रह्ममय सभी जीव हैं ऐसा जानें निश्चित ही।।९४।।

अन्वयार्थ :– हे जीव, परमार्थ को समझनेवालों के कोई जीव बड़ा छोटा नहीं है, सभी जीव परब्रह्मस्वरुप हैं, क्योंकि निश्चयनय से वह सम्यग्दृष्टि शुद्धस्वरुप ही सबको जानता है।

भावार्थ :– जो परमार्थ को नहीं जानता, वह परिग्रह से गुरुता समझता है, और परिग्रह के न होने से लघुपना जानता है, यही भूल है। यधपि गुरुता–लघुता कर्म के आवरण से जीवों में पायी जाती है, तो भी शुद्धनय से सब समान हैं, तथा ब्रह्म अर्थात् सिद्धपरमेष्ठी केवलज्ञान से सबको जानते हैं, सबको देखते हैं, उसी प्रकार निश्चयनय से सम्यग्दृष्टि सब जीवों को शुद्धरुप ही देखता है।।९४।।

इस तरह इकतालीस दोहों के महास्थल में परिग्रह त्याग के व्याख्यान की मुख्यता

से आठ दोहों का तीसरा अंतरस्थल पूर्ण हुआ। आगे तेरह दोहों तक शुद्ध निश्चय से सब जीव केवलज्ञानादिगुण से समान हैं, इसलिये सोलहवान (ताव) के सुवर्ण की तरह भेद नहीं है, सब जीव समान हैं, ऐसा निश्चय करते हैं।

वीर संवत् २५०२, पौष शुक्ल २, बुधवार
दिनांक-२२-१२-१९७६, गाथा - ९४, ९५, ९६, प्रवचन-१६५

.... जीव का स्वभाव है, वह तो केवलज्ञानकन्द है सब। सभी आत्मायें केवलज्ञान और आनन्द के कन्द हैं। उसे बाह्य परिग्रह के कारण छोटे-बड़े मानना, वह ग्रन्थ परिग्रह कहना। बाह्य चीज़। बाह्य चीज़ की अधिकता से अपने को महन्त माने, वह परमार्थ को नहीं जानता। हमारे पास पैसा है, इज्जत है, शरीर है, दूसरे की अपेक्षा अच्छा, वह सब परिग्रह है। यह कहेंगे।

२१७) बुज्झंतहँ परमत्थु जिय गुरु लहु अत्थि ण कोइ।
जीवा सयल वि बंभु परु जेण वियाणइ सोइ।।९४।।

अन्वयार्थ :— हे जीव, परमार्थ को समझनेवालों के... निश्चय की बात है। भगवान आत्मा केवलज्ञान और आनन्द का कन्द है। सभी आत्मा। दृष्टि, द्रव्यदृष्टि से देखा तो अपना द्रव्य जो शुद्ध चैतन्य है, ऐसा देखा। ऐसी द्रव्यदृष्टि से दूसरे को देखे तो भी वह शुद्ध चैतन्यघन है, आनन्दकन्द है। आहाहा! ऐसा उसे देखे। बाह्य के परिग्रह की अधिकता से मैं बड़ा हूँ और बाह्य के परिग्रह की कमी से वे छोटे हैं, ऐसा नहीं। अरे! आहाहा! **हे जीव! परमार्थ को समझनेवालों के कोई जीव बड़ा छोटा नहीं है,...** लो, यह अधिकार आया आज। छोटे-बड़े कोई जीव नहीं, सब भगवानस्वरूप है। आहाहा!

द्रव्य जो वस्तु द्रव्य है चैतन्य, इस प्रकार से तो सब आत्मायें साधर्मी हैं। आहाहा! पर्याय में अन्तर है, वह जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य तो यह एक चीज़ है। आहाहा! जिसकी दृष्टि में अपना आत्मा पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द, ऐसा उसका स्वरूप है, ऐसा जो सब जीवों का स्वरूप है। आहाहा! आचार्य कहते हैं, **समझनेवालों के कोई जीव**

बड़ा छोटा नहीं है, सभी जीव परब्रह्मस्वरूप हैं,... आहाहा! संयोग की दृष्टि से न देखकर आत्मस्वभाव की दृष्टि से देखने से सभी जीव सरीखे और समान हैं। आहाहा! **सभी जीव परब्रह्मस्वरूप हैं,...**

क्योंकि निश्चयनय से वह सम्यग्दृष्टि एकरूप (शुद्धरूप) ही सबको जानता है। एक अर्थात् सब होकर वेदान्त कहता है, ऐसा नहीं, परन्तु एक स्वरूप सबका है, ऐसा संग्रहनय से देखें तो सभी जीव एकरूप है। जाति से समान हैं। आहाहा! व्यक्तितः भिन्न-भिन्न है, जाति सबकी एक है। आहाहा! समझ में आया? भाषा ऐसी है, देखा! टीका में ऐसा है। **'सोऽप्येको विवक्षितो जीवः'** है न? **'निश्चयनयेन सोऽप्येको विवक्षितो'** आहाहा! जिसकी दृष्टि में भगवान अपना क्या है, वह आया है, उस प्रकार से सब आत्मा को उस दृष्टि से देखता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अभव्य भी वह परमात्मस्वरूप है। समझ में आया?

भावार्थ :— जो परमार्थ को नहीं जानता, वह परिग्रह से... अर्थात्? बाह्य की चीज़ थोड़ी, विशेष, अधिक ऐसा जो भेद डालता है, वह तो बाहर की चीज़ के कारण से है। अन्तर की चीज़ के कारण कुछ भेद है नहीं। आहाहा! **परिग्रह से गुरुता-लघुता समझता है,...** यह इन्द्र है और यह नारकी है। यह पैसेवाला है और यह गरीब है। यह तो बाह्य के व्यवहार की अपेक्षा से है। वस्तु में गरीब भी नहीं और अधिक भी नहीं, सब समान आनन्दकन्द हैं। **परिग्रह के न होने से लघुपना जानता है,... परिग्रह से गुरुता समझता है,... यही भूल है।** आहाहा! यह दृष्टि की विशालता। यहाँ प्रश्न था, नहीं? किसने कहा था तब? रवाणी। क्या था वह? विशाल दृष्टि। सब बहुत हैं, वे मेरे मानना, यह विशाल दृष्टि है। माँ को स्त्री मानना, स्त्री को स्त्री मानना, यह विशाल दृष्टि है— ऐसा है? आहाहा! यहाँ तो अन्तर का स्वरूप इसे कितना उल्लंघ गया है। आहाहा! अपनी पर्याय में अल्पज्ञता है, राग है, उसे उल्लंघकर वस्तु के स्वभाव का ज्ञान किया है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उस दृष्टि से देखने पर सभी आत्मा भगवान जाति से एक हैं। समझ में आया? आहाहा! यह विशालता है। हें! आहाहा!

यद्यपि गुरुता-लघुता कर्म के आवरण से जीवों में पायी जाती है,... कर्म के

निमित्त से और उपादान की पर्याय की योग्यता से। समझ में आया? गुरुता-लघुता अर्थात् कुछ विशेषता हो, कुछ कम हो, ऐसा बाहर में सामग्री में दिखाई दे। **तो भी शुद्धनय से सब समान हैं,...** आहाहा! यह विशालता है। जो चीज़ इसकी नहीं, उसे अपनी मानना, वह विशालता है?

तथापि ब्रह्म अर्थात् सिद्धपरमेष्ठी केवलज्ञान से सबको जानते हैं,... आहाहा! सिद्ध भगवान केवलज्ञान से सबको जानते हैं, **सबको देखते हैं, उसी प्रकार निश्चयनय से सम्यग्दृष्टि सब जीवों को शुद्धरूप ही देखता है।** लो। अपने को जहाँ शुद्ध जाना, पर्याय में अशुद्धता और अल्पज्ञता, वह नहीं। वस्तुरूप से पूर्ण और शुद्ध, ऐसा जहाँ अपने को जाना, इस प्रकार से सब आत्मा हैं, ऐसा जानता है। आहाहा! **सिद्धपरमेष्ठी केवलज्ञान से सबको जानते हैं, सबको देखते हैं, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि सब जीवों को शुद्धरूप ही देखता है।** वस्तु-वस्तु। वीतरागमूर्ति प्रभु। अरे! कहाँ? अनाकुल शान्तरस का कन्द है, वह पूर्ण पवित्रस्वरूप है। इस प्रकार से सम्यग्दृष्टि सब जीवों को समान देखता है। आहाहा! समझ में आया?

इस तरह इकतालीस दोहों के महास्थल में परिग्रह त्याग के व्याख्यान की मुख्यता से आठ दोहों का तीसरा अन्तरस्थल पूर्ण हुआ। आगे तेरह दोहों तक शुद्ध निश्चय से सब जीव केवलज्ञानादिगुण से समान हैं, इसलिए सोलहवान (ताव) के सुवर्ण की तरह भेद नहीं है,... सोलहवान सोना जैसा है, वे सब समान हैं। सोलहवान सोने की भाँति। सोलहवान कहलाता है न? सोलहवान। **इसलिए सोलहवान (ताव) के सुवर्ण की तरह भेद नहीं है, सब जीव समान हैं,...** आहाहा! पूर्ण पवित्रता का भण्डार अनन्त ज्ञान और आनन्द और शान्ति और वीर्य का भण्डार, पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण। ऐसी चीज़ अपनी है, ऐसा जाना है, तो वह सब चीज़—आत्माओं को इस प्रकार से देखता है, मानता है। आहाहा! दृष्टि—द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से बात है, हों! यह कहते हैं, लो।

गाथा - ९५

तद्यथा–

२१८) जो भत्तउ रयण–त्तयह तसु मुणि लक्खणु एउ।
अच्छुउ कहिं वि कुडिल्लियइ सो तसु करइ ण भेउ।।९५।।

यः भक्तः रत्नत्रयस्य तस्य मन्यस्व लक्षणं इदम्।
तिष्ठतु कस्यामपि कुड्यां स तस्य करोति न भेदम्।।९५।।

जो इत्यादि। पदखण्डनारुपेण व्याख्यानं क्रियते। जो यः भत्तउ भक्तः। कस्य। रयण–त्तयहं रत्नत्रयस्य तसु तस्य पुरुषस्य मुणि मन्यस्व जानीहि। किम्। लक्खणु एउ लक्षणं इदं प्रत्यक्षीभूतम्। इदं किम्। अच्छुउ कहिं वि कुडिल्लियइ तिष्ठतु कस्यामपि कुड्यां शरीरे सो तसु करइ ण भेउ स ज्ञानी तस्य जीवस्य देहभेदेन भेदं न करोति। तथाहि। योऽसौ वीतरागस्वसंवेदन–ज्ञानी निश्चयस्य निश्चयरत्नत्रयलक्षणपरमात्मनो वा भक्तः तस्येदं लक्षणं जानिहि। हे प्रभाकरभट्ट। क्वापि देहे तिष्ठतु जीवस्तथापि शुद्धनिश्चेन षोडशवर्णिकासुवर्णवत्केवलज्ञानादिगुणैर्भेदं न करोतीति। अत्राह प्रभाकरभट्टः। हे भगवन् जीवानां यदि देहभेदेन भेदो नास्ति तर्हि यथा केचन वदन्त्येक एव जीवस्तन्मतमायातम्। भगवानाह। शुद्धसंग्रहनयेन सेनावनादिवज्जात्यपेक्षया भेदो नास्ति व्यवहारनयेन पुनर्व्यक्त्यपेक्षया बने भिन्नभिन्नवृक्षवत् सेनायां भिन्नभिन्न–हस्त्यश्वादिवद्भेदोऽस्तीति भावार्थः।।९५।।

वह एसे हैं–

रत्नत्रय के भक्तों का है यही एक लक्षण जानो।
कैसे भी तन में रहने वाले जीवों को सम माने।।९५।।

अन्वयार्थ :– [यः] जो मुनि [रत्नत्रयस्य] रत्नत्रय की [भक्तः] आराधना (सेवा) करनेवाला है, [तस्य] उसके [इदम् लक्षणं] यह लक्षण [मन्यस्व] जानना कि [कस्यामपि कुड्यां] किसी शरीर में जीव [तिष्ठतु] रहे, [सः] वह ज्ञानी [तस्य भेदम्] उस जीव का भेद [न करोति] नहीं करता, अर्थात् देह के भेद से गुरुता लघुता का भेद करता है, परंतु ज्ञानदृष्टि से सबको समान देखता है।

भावार्थ :– वीतराग स्वसंवेदनज्ञानी निश्चयरत्नत्रय के आराधक का ये लक्षण

प्रभाकरभट्ट तू निःसंदेह जान, जो किसी शरीर में कर्म के उदय से जीव रहे, परंतु निश्चय से शुद्ध, बुद्ध (ज्ञानी) ही है। जैसे सोने में वान-भेद है, वैसे जीवों में वान-भेद नहीं है, केवलज्ञानादि अनंत गुणों से सब जीव समान हैं। ऐसा कथन सुनकर प्रभाकरभट्ट ने प्रश्न किया, हे भगवन्, जो जीवों में देह के भेद से भेद नहीं है, सब समान हैं, तब जो वेदान्ती एक ही आत्मा मानते हैं, उनको क्यों दोष देते हो? तब श्रीगुरु उसका समाधान करते हैं,-कि शुद्धसंग्रहनय से सेना एक ही कही जाती है, लेकिन सेना में अनेक हैं, तो भी ऐसे कहते हैं, कि सेना आयी, सेना गयी, उसी प्रकार जाति की अपेक्षा से जीवों में भेद नहीं हैं, सब एक जाति हैं, और व्यवहारनय से व्यक्ति की अपेक्षा भिन्न-भिन्न हैं, अनंत जीव हैं, एक नहीं है। जैसे वन एक कहा जाता है, और वृक्ष जुदे जुदे हैं, उसी तरह जाति से जीवों में एकता है, लेकिन द्रव्य जुदे जुदे हैं, तथा जैसे सेना एक है, परन्तु हाथी, घोडे, रथ, सुभट अनेक हैं, उसी तरह जीवों में जानना।।९५।।

गाथा-९५ पर प्रवचन

---

९५ (गाथा)।

२१८) **जो भत्तउ रयण-त्तयह तसु मुणि लक्खणु एउ।**
अच्छुउ कहिं वि कुडिल्लियइ सो तसु करइ ण भेउ।।९५।।

अन्वयार्थ :— जो मुनि रत्नत्रय की आराधना करनेवाला है,... आहाहा! जो कोई धर्मात्मा, आत्मा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, निश्चय, इस निश्चयरत्नत्रय की आराधना करनेवाले हैं... आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय के करनेवाले हैं, ऐसा नहीं कहा, उसकी सेवना करनेवाले हैं, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! पूर्ण ब्रह्म आत्मा का दर्शन, ज्ञान और चारित्र। निश्चय अर्थात् स्वआश्रित हुई दशा। उसकी जो सेवा अर्थात् आराधना करते हैं। आहाहा! **उसके यह लक्षण जानना कि किसी शरीर में जीव रहे,...** निगोद के शरीर में रहे या सर्वार्थसिद्धि के शरीर में रहे... आहाहा! परमौदारिकशरीर में रहे, वह नहीं देखकर जीव समान देखते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **किसी शरीर में जीव रहे, वह ज्ञानी उस जीव का भेद नहीं करता, अर्थात् देह के भेद से गुरुता-लघुता का भेद**

करता है, परन्तु ज्ञानदृष्टि से सबको समान देखता है। आहाहा! देह से गुरुता लघुता का भेद जानते हैं। समझ में आया? देह के भेद से अल्पज्ञता की पर्याय से देखने पर छोटे-बड़े होते हैं। परन्तु वस्तु देखने से... आहाहा!

ज्ञानदृष्टि से सबको समान देखता है। आहाहा! क्या कहना चाहते हैं? वर्तमान संयोग और वर्तमान अल्पज्ञता और विकारता को न देखकर ज्ञानदृष्टि से देखें तो सब समान हैं। वर्तमान अल्पज्ञता और राग से देखो तो वह भेद है। समझ में आया? आहाहा! अन्तर की चीज़ से देखो तो सब सरीखे समान आनन्दकन्द प्रभु है। अभव्य हो या... 'सर्व जीव है सिद्धसम।' आता है न? 'सर्व जीव है सिद्धसम', श्रीमद् में आता है। 'सर्व जीव है सिद्धसम, जो समझे वे होय।' जो समझे वह हो। आहाहा! **देह के भेद से गुरुता लघुता का भेद करता (जानता) है, परन्तु ज्ञानदृष्टि से सबको समान देखता है।** आहाहा!

भावार्थ :— वीतराग स्वसंवेदनज्ञानी... रत्नत्रय आराधक की व्याख्या की। कौन सा रत्न और क्या जाति उसकी? आहा! **वीतराग स्वसंवेदनज्ञानी निश्चयरत्नत्रय के आराधक का ये लक्षण हे प्रभाकर भट्ट! तू निःसन्देह जान,...** आहाहा! मुनि निश्चयरत्नत्रय के आराधक होते हैं। यह वीतराग स्वसंवेदनज्ञानी। देखा! वीतरागी है, वह ज्ञान। आहाहा! अपना स्वभाव वीतरागस्वरूप है, उसका वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान में निश्चयरत्नत्रय को आराधता है। आहाहा! जो लक्षण कहा है, उसे **निःसन्देह जान,...** आहाहा! यह विशाल दृष्टि।

पर्याय में शरीर के कारण या कर्म के निमित्त के सम्बन्ध से अपनी योग्यता में प्रत्येक जीव में अन्तर है। यह आया न नियमसार में? **'णाणा कम्मा, णाणा जीवा, णाणा लब्धि'।** वाद-विवाद नहीं करना, यह आया था। आहाहा! उस पर्याय से देखने पर अनेक प्रकार के जीव, क्षयोपशम भी अलग प्रकार का, कर्म का निमित्त अलग प्रकार का। आहाहा! 'णाणा लब्धि, णाणा कम्मा', कर्म अनेक प्रकार के। जीव नाना प्रकार के। कोई भव्य, अभव्य अनेक प्रकार। आहाहा! लो, वहाँ ऐसा कहा। उस पर्याय के और शरीर के सम्बन्ध की अपेक्षा से देखने की बात है और वह एकदम अन्तर्दृष्टि से देखने की बात है। आहाहा! क्या कहा यह? जो पर्याय में अल्पज्ञता और शरीर के संयोगों में

अन्तर है, ऐसी विद्यमान चीज़ है, उसे अन्दर से उड़ा देता है। स्वभाव में वह नहीं, स्वभाव परिपूर्ण है। आहाहा! अल्पज्ञता और विकारता का अस्तित्व, अस्तिपना समय जितना होता है। समय जितना। यह क्या कहा समझ में आया? इसकी एक समय की अवस्था में प्रत्येक जीव में भेद है। आहाहा! किसी जीव के समान परिणाम होते नहीं। आहाहा! भिन्न-भिन्न जीव है तो भिन्न-भिन्न परिणाम (होते हैं)। परन्तु वह तो पर्याय—अवस्था देखने पर भिन्न-भिन्न है। परन्तु उसे गौण करके अकेला त्रिकाली ज्ञायक आनन्दस्वभाव... आहाहा!

जैसे नारियल में छाल न देखकर, काचली न देखकर और काचली की ओर की लाल छाल, उसे न देखे तो वह नारियल तो श्वेत—सफेद मीठा गोला है। सभी नारियल? आहाहा! इसी प्रकार आत्मा को वर्तमान पर्याय, राग और शरीरादि के छोटे-बड़े शरीर का सम्बन्ध आदि, उसे देखने पर वह अन्तर है, परन्तु वस्तु देखने पर उसमें यह कुछ है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, लो।

यह परमात्मप्रकाश है न, तो सब परमात्मा है, ऐसा देखता है, ऐसा कहते हैं। अपना आत्मा परमात्मा और सब आत्मा परमात्मस्वरूप ही शक्ति से है, सामर्थ्य से, स्वभाव से, स्वरूप से। आहाहा! तथापि कहा वहाँ। **देह के भेद से गुरुता लघुता का भेद...** जाने। परन्तु स्वभाव की दृष्टि से देखने पर भेद हे नहीं। आहाहा! **किसी शरीर में कर्म के उदय से जीव रहे, परन्तु निश्चय से शुद्ध, बुद्ध (ज्ञानी) ही है।** लो। शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव है। शुद्धनिश्चय ऐसा इतना है। **किसी शरीर में कर्म के उदय से जीव रहे, परन्तु निश्चय से शुद्ध, बुद्ध (ज्ञानी) ही है।** पवित्र और ज्ञानी है, ऐसा कहते हैं। किसी भी शरीर में रहो, निगोद के शरीर में हो, '**एयत्तणिच्छयगदो**' आता है न? '**समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे।**' आहाहा! एकत्व निश्चय से देखो उसके तत्त्व को, सर्व जीव समान आनन्दकन्द दिखते हैं। उसे बन्धकथा, बन्धकथा शब्द है, परन्तु बन्ध के सम्बन्ध के भाव से देखो तो विसंवाद है। विसंवाद खड़ा होता है, कहते हैं। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं, **जैसे सोने में वान-भेद है, वैसे जीवों में वान-भेद नहीं है,...** आहाहा! **केवलज्ञानादि अनन्त गुणों से सब जीव समान हैं।** केवलज्ञान, केवल आनन्द, केवलवीर्य, केवलशान्ति... आहाहा! अनन्त।

अनन्त गुणों से सब जीव समान हैं। ऐसा कथन सुनकर प्रभाकर भट्ट ने प्रश्न किया,... गुरु से। **हे भगवन्! जो जीवों में देह के भेद से भेद नहीं है, सब समान हैं, तब तो वेदान्ती एक ही आत्मा मानते हैं,...** तो इस प्रमाण वेदान्ती भी मानते हैं। आप उन्हें दूषण क्यों देते हो? समझ में आया? सर्वव्यापक वेदान्ती मानते हैं। सर्वव्यापक एक अद्वैत। तुम भी यहाँ एक कहते हो। और वे एक मानते हैं, उन्हें तुम दूषण देते हो। **उनको क्यों दोष देते हो?**

श्रीगुरु उसका समाधान करते हैं—कि शुद्धसंग्रहनय से सेना एक ही कही जाती है,... सेना का दृष्टान्त दिया। सेना... सेना। हाथी, घोड़ा, रथ, पालकी, लोग। सेना तो एक नाम से होती है। वस्तु अलग-अलग है सब। **शुद्धसंग्रहनय से सेना एक ही कही जाती है, लेकिन सेना में अनेक हैं,...** हाथी, घोड़ा, मनुष्य आदि। **तो भी ऐसे कहते हैं कि सेना आयी,...** ऐसा कहे न? सेना आयी, सेना गई—ऐसा संग्रहनय से कहते हैं।

उसी प्रकार जाति की अपेक्षा से जीवों में भेद नहीं है,... जाति की अपेक्षा से भेद नहीं है। गेहूँ के दाने लाख हों, परन्तु दानों में दूसरे दाने में अन्तर नहीं है, जाति तो सब गेहूँ की एक है। व्यक्तरूप से व्यक्तिरूप से भिन्न है भले, परन्तु जाति जो हो, एक गेहूँ का दाना वैसा दूसरा, लाखों, करोड़ों ऐसे। **सब एक जाति हैं,...** ओहोहो! **और व्यवहारनय से व्यक्ति की अपेक्षा भिन्न-भिन्न हैं,...** व्यवहार से भिन्न-भिन्न संख्या की अपेक्षा से भिन्न-भिन्न है। आहाहा! गेहूँ के दाने सब एक ही जाति के हैं। इस अपेक्षा से जाति एक है, परन्तु गेहूँ का दाना एक ऐसे अनन्त, वे सब भिन्न-भिन्न हैं। इसी प्रकार जाति अपेक्षा से आत्मा एक कहलाता है। व्यवहारनय से सब भिन्न-भिन्न हैं। आहाहा! क्या कहना चाहते हैं?

तेरी दृष्टि परमात्मा के ऊपर होनी चाहिए, ऐसा कहते हैं। तेरा नाथ परमात्मा अन्तर पूर्ण आनन्द का धाम, वहाँ तेरी दृष्टि होनी चाहिए। सब दृष्टि उठाकर। संयोग की, राग की, पर्याय की... आहाहा! समझ में आया? संयोग कम-ज्यादा, उसकी दृष्टि छोड़ दे, राग अधिक तीव्र है, वह दृष्टि छोड़ दे, एक समय की पर्याय अल्प है या इसकी

विशेष है, वह छोड़ दे। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ अन्दर, उसे देख। आहाहा!

व्यक्ति की अपेक्षा भिन्न-भिन्न हैं, अनन्त जीव हैं... एक नहीं। एक है नहीं। **जैसे वन एक कहा जाता है,...** वह सेना का दृष्टान्त दिया था। अब वन का वन। **वन एक कहा जाता है, और वृक्ष जुदे-जुदे हैं,...** पीपल के, नीम के, आम के वृक्ष अलग होते हैं परन्तु तो भी वन कहलाता है वन। वन है, इसलिए एक ही प्रकार के वृक्ष हैं, ऐसा नहीं। वृक्ष की अपेक्षा से वन एक कहलाता है, परन्तु वृक्ष की जाति की अपेक्षा से वृक्ष अलग-अलग हैं। पीपल के हों, नीम के हों, आम के हों। आहाहा! जामुन के हों। **जैसे वन एक कहा जाता है, और वृक्ष जुदे-जुदे हैं, उसी तरह जाति से जीवों में एकता है,...** देखा! जाति से एकता, संख्या से एकता नहीं। संख्या से तो अनन्त भिन्न-भिन्न है। आहाहा!

मुमुक्षु : शक्ति की अपेक्षा से एक ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शक्ति—स्वभाव उसकी जाति ही एक है। प्रत्येक भगवानस्वरूप ही है।

मुमुक्षु : पर्याय की शक्ति में अन्तर हो न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय की बात का लक्ष्य छोड़ देना, वह व्यवहार है। यह तो कहा नहीं? संयोग को नहीं देखना, राग को नहीं देखना, एक समय की पर्याय में हीनाधिकता को नहीं देखना। पूर्णानन्द का नाथ भगवान स्वयं है, उसे देखना। इस प्रकार सब आत्मा को देखना। तथापि जाति से एक कहे जाते हैं, परन्तु व्यक्ति से एक नहीं। व्यक्ति से अनन्त भिन्न-भिन्न है सब। आहा! वेदान्त तो व्यक्ति से एक ही कहता है। समझ में आया? एक ही आत्मा। अनन्त नहीं, गुणभेद नहीं, पर्याय नहीं—ऐसा कहता है।

(समयसार) ११वीं गाथा में कहा न? '**ववहारोऽभूदत्थो**' इसके कारण एक कहते थे न वे? मुम्बईवाले नाथूराम पण्डित। अपने जैन दिगम्बर थे। कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार को वेदान्त के ढाले में ढाला है, ऐसा कहते थे। मुम्बई में थे, गुजर गये। भाई! ऐसा नहीं। क्योंकि ११वीं गाथा में ऐसा कहा, व्यवहार अभूतार्थ है, ऐसा कहा। अर्थात् कि सब पर्याय ही झूठी है। किस प्रकार? पर्यायों को गौण करके 'नहीं' ऐसा कहा गया

है। पर्याय का अभाव करके 'नहीं' ऐसा नहीं कहा गया है। '**ववहारोऽभूदत्थो**' है, उसमें बड़ी... पर्यायमात्र अभूतार्थ—झूठी है, ऐसा वहाँ कहा।

मुमुक्षु : वेदान्त तो पर्याय को मानता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वेदान्त पर्याय को मानता नहीं। ऐसा नहीं। समझ में आया? वहाँ तो ऐसा ही स्पष्ट कहा है, लो, '**ववहारोऽभूदत्थो**' पर्यायमात्र, वह असत्य है। पर्यायमात्र, वह असत्य है। और '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' त्रिकाल, वह एकरूप है। आहाहा! वह भूतार्थ है। त्रिकाली एकरूप है, वह सत्य है और पर्यायमात्र असत्य है, ऐसा वहाँ कहा है। इसलिए वह वेदान्त हो गया, ऐसा नहीं। वहाँ तो पर्याय को गौण करके असत्य है, ऐसा कहा है, गौण करके 'नहीं' ऐसा कहा है। आहाहा! और भूतार्थ को मुख्य गिनकर, उसे निश्चय कहकर आश्रय लेना है। आहाहा! समझ में आया?

निश्चय, वह मुख्य—ऐसा नहीं और व्यवहार, वह गौण—ऐसा नहीं। मुख्य, वह निश्चय; गौण, वह व्यवहार। अब इसमें अन्तर क्या? निश्चय, वह मुख्य नहीं। निश्चय तो पर्याय भी निश्चय से इसकी है। गुणभेद भी इसके हैं। स्वआश्रय में तीनों इसके ही हैं। उसे मुख्य न गिनकर, निश्चय को मुख्य न कहकर, मुख्य को निश्चय कहा। मुख्य अर्थात् त्रिकाली वस्तु जो है, उसे मुख्य गिनकर निश्चय कहा। आहाहा! समझ में आया?

यह तो तत्त्वज्ञान का विषय बहुत सूक्ष्म, बापू! इसलिए स्पष्टीकरण किया है भाई ने—पण्डित जयचन्द्रजी ने। अभूतार्थ है... पाइ तो ऐसा ही आया, पर्याय असत्यार्थ है। वेदान्ती भी ऐसा कहते हैं, पर्याय नहीं। और तुम्हारी गाथा ११ में कहते हैं, पर्याय असत्य है। किसे पड़ी है इतनी सब। आहा! भाई! पर्याय को गौण करके अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये निश्चय, वह मुख्य नहीं परन्तु मुख्य, वह निश्चय (कहा है)। त्रिकाली वस्तु वह मुख्य है और वह निश्चय तथा पर्याय को गौण करके, उसे असत्य कहा गया है। आहाहा! शान्तिभाई! परन्तु कहाँ इसमें निवृत्ति कहाँ है? धन्धे में से निवृत्त हो, तब यह निर्णय करे न। आहाहा!

वृक्ष जुदे-जुदे हैं, उसी तरह जाति से जीवों में एकता है,... जाति से एक जाति। आहाहा! **लेकिन द्रव्य जुदे-जुदे हैं,...** आहाहा! वस्तु एक नहीं, जाति अपेक्षा से एक

कहा। जैसा चैतन्य आत्मा, चैतन्य आत्मा, चैतन्य आत्मा... यह जाति की अपेक्षा से एक कहा, व्यक्ति अपेक्षा से भिन्न-भिन्न है। गेहूँ की एक पूरी बोरी हो तो उसे गेहूँ कहा जाता है। परन्तु दाना एक है, ऐसा नहीं। प्रत्येक दाना गेहूँ का भिन्न-भिन्न है। आहाहा! ऐसी बातें धर्म की। ऐसा कैसे है? ऐसा क्यों कहना चाहते हैं? कि वस्तु जो त्रिकाली है, उसे तू सत्यरूप से स्वीकार और पर्याय तथा रागादि भेद है, उन्हें गौण करके असत्यरूप से जान। आहाहा!

मुमुक्षु : ध्येय तो पर्याय करती है, उसे कैसे निकाल देते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्येय करती है परन्तु है असत्यार्थ, वह त्रिकाली कहाँ है? ध्येय तो पर्याय ही करे न, कार्य तो पर्याय में होता है न! द्रव्य में कहाँ कार्य होता है? परन्तु कार्य का ध्येय कहाँ है? द्रव्य का है। द्रव्य... यह तो बहुत बार कहा गया है न कि पर्याय में द्रव्य आता नहीं, परन्तु द्रव्य का जैसा स्वरूप है, वैसा पर्याय में ज्ञान होता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो भगवान के दरबार की बातें है, बापू! आहाहा!

जैसे सेना एक है, परन्तु हाथी, घोड़े, रथ, सुभट अनेक हैं, उसी तरह जीवों में जानना। लो। जाति की अपेक्षा से जीव एक कहा जाता है। व्यक्ति की अपेक्षा से, प्रगट भिन्न-भिन्न तत्त्व की अपेक्षा से अनेक है। आहाहा! आश्रय लेनेवाली तो पर्याय है। हें!

मुमुक्षु : पर्याय ने निर्णय क्या किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्णय किया कि यह त्रिकाली है वह। ऐसा निर्णय किया। मैं कौन हूँ, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा! वर्तमान पर्याय... पर्याय को समझे नहीं। वे बेचारे कहते थे। इन्दौर में शिविर लगाया था न। द्रव्य, गुण, पर्याय यह और क्या? कहो! मूल अभ्यास ही तत्त्व का नहीं और क्रियाकाण्ड चढ़ गया। तत्त्व की वस्तु क्या है और कैसे है, उसकी कुछ खबर नहीं।

एक समय की पर्याय में पूर्ण अनन्त गुण का पिण्ड ध्रुव, आदि-अन्त बिना का दल, वह एक समय की पर्याय में श्रद्धा में—ज्ञान में आ जाता है। तथापि वह पर्याय, द्रव्य में एक होती नहीं। द्रव्य, पर्याय में एक होता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : किस धर्म की बात करते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस जैनधर्म की। जैनधर्म किसे कहना? आया था न? कल नहीं? परमात्मप्रकाश में। जैनधर्म। उसमें—भावपाहुड़-८३ गाथा। जैनधर्म किसे कहना? कि जो पूजा, भक्ति, वन्दन, वैयावृत्य, श्रवण, कहना आदि सब जो विकल्प है, वह जैनधर्म नहीं, वह तो पुण्यभाव है। आहाहा! बाकी व्रत... ऐसा क्यों कहा? वापस स्पष्टीकरण किया न कि पूजा, भक्ति, वन्दन, वैयावृत्य क्यों (जैनधर्म नहीं) ? कि वह तो देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य के आश्रय से बात है। उसमें आश्रय, लक्ष्य तो पर के ऊपर है, स्व के ऊपर नहीं वह। आहाहा! और व्रत, तप का भाव शुभभाव है। वह कोई जैनधर्म नहीं। ऐसा कहा है वहाँ तो। आहाहा!

अलिंगग्रहण में तो यहाँ तक कहा है। अलिंगग्रहण—१७वाँ बोल। यति की बाह्य क्रिया का जिसमें अभाव है। पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति आदि, वे सब विकल्प हैं, वे वस्तु में नहीं। यति की बाह्य क्रिया का जिसमें अभाव है, ऐसा यह आत्मा अलिंगग्रहण है। अर्थात्? पंच महाव्रतादि के विकल्प से वह आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अलिंगग्रहण है न? १७वाँ बोल है। द्रव्य-भाववेदरहित है, यति की बाह्य क्रिया का जिसमें अभाव है। आहाहा! यह १७वाँ बोल है और १८वाँ यह है, अर्थावबोधरूप गुणविशेष, उसके आलिंगनरहित शुद्ध द्रव्य है। क्या कहा यह? यह कहते हैं। अर्थावबोधरूप गुणविशेष। पदार्थ का ज्ञानविशेष। उस अर्थावबोधरूप गुणविशेष के आलिंगन रहित शुद्ध द्रव्य है। गुणभेद को भी आत्मा स्पर्श नहीं करता, कहते हैं। आहाहा! आलिंगन नहीं करता, ऐसा कहते हैं, चूमता नहीं।

तीसरी गाथा में ऐसा कहा, अपने गुण-पर्याय को चूमता है। लो, तीसरी गाथा में ऐसा कहा। पर को स्पर्शता नहीं, परद्रव्य को स्पर्शता नहीं। यह तो पर से भिन्नता बतलायी। समझ में आया? प्रत्येक द्रव्य अपने अनन्त धर्म को चूमता है, स्पर्शता है, आहाहा! परन्तु अन्य द्रव्य को स्पर्शता नहीं, चूमता नहीं। आहाहा! यह लड़के को चूमता नहीं? मुख वहाँ छूता भी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अर्थावबोधरूप गुणविशेष के आलिंगनरहित शुद्ध द्रव्य है। जिसके गुणभेद का भी (अभाव है)। वस्तु कहना है न यहाँ। गुणभेद का भी जिसमें अवकाश नहीं। आहाहा! गुणभेद को भी वह स्पर्शता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : उसके अभेदपने को स्पर्शता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक वस्तु है, उसे वह स्पर्शता है। द्रव्यसामान्य। यह १८वें में कहा। १९ में यह कहा, अर्थावबोधरूप पर्यायविशेष, अर्थावबोधरूप पर्यायविशेष को आलिंगता नहीं, ऐसा शुद्ध द्रव्य है। आहाहा! फिर अन्त में ऐसा कहा, प्रत्यक्ष... क्या कहलाता है? प्रत्यभिज्ञान। प्रत्यभिज्ञान का कारण ऐसा जो द्रव्य; प्रत्यभिज्ञान अर्थात् यह है... है... है... है... ऐसा। ऐसा जो प्रत्यभिज्ञान का कारण, ऐसा जो द्रव्य, उसे नहीं स्पर्शता आत्मा शुद्ध पर्यायरूप है। आत्मा द्रव्य को स्पर्शता नहीं, पर्याय को स्पर्शता है। पर्यायरूप है वह। क्योंकि वेदन में पर्याय आती है। वेदन में द्रव्य आता नहीं। आहाहा! ऐसा तत्त्व सूक्ष्म।

मुमुक्षु : महाराज! यहाँ गुणभेद अर्थात् पर्याय ली है?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसमें? नहीं, गुणभेद गुण लिये। पर्याय को दूसरे बोल में लिया।

मुमुक्षु : अनन्त गुणों का समुदाय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भेद है इतना। अर्थावबोधरूप गुणविशेष और दूसरे में अर्थावबोधरूप पर्यायविशेष और तीसरे में प्रत्यभिज्ञानरूप द्रव्य, उसे स्पर्शता नहीं; पर्याय को वेदता है। आहाहा! सूक्ष्म अवश्य बापू! क्या हो? मूल द्रव्य, गुण, पर्याय का ज्ञान ही घट गया। बात ऐसी की ऐसी रह गई। आहाहा! दया पालो और प्रौषध करो, और प्रतिक्रमण करो। आहाहा!

यहाँ तो क्या कहना था? पर्यायमात्र को असत्य कहकर, ध्रुवस्वरूप नित्य को सत्य कहा है। उसका कारण कि मुख्य जो द्रव्य त्रिकाली है, उसे निश्चय कहकर उसका आश्रय लेने से तुझे समकित होता है। इसलिए अपना प्रयोजन, मुख्य निश्चय का आश्रय करे, तब प्रयोजन सिद्ध होता है। उस कारण से पर्याय को गौण करके असत्य कहकर त्रिकाली को मुख्य कहकर निश्चय कहकर सत्य कहा। आहाहा! ऐसी कहाँ निवृत्ति हो सुनने को? समझ में आया? आहाहा! लॉजिक से तो कहा जाता है भाई! ऐसे का ऐसा मानना, ऐसा नहीं। उसके ज्ञान में यह किस प्रकार है, इसका भास होना चाहिए। इसके बिना माना क्या कहलाये? आहाहा!

मुमुक्षु : जानना... जानना रहा, करना कुछ नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानना... जानना, यह करना नहीं है ? पर का करना नहीं है, राग का करना नहीं है। परन्तु जानना, वह करना नहीं ? आहाहा! ज्ञान का कार्य, जानना, वह उसका कार्य है। वह कार्य यह है। राग, निमित्त कार्य है ही नहीं। आहाहा! कहो, सेठ! वहाँ बड़े होकर घूमे न काम में, वह कहीं काम नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ। आहाहा! ऐसा करने करने की ना करते हैं, ऐसा कहते हैं। झगड़ा खड़ा किया है न! व्यवहार का लोप कर डालते हैं। बात सच्ची, बात सच्ची। परन्तु व्यवहार है, उसका लोप है या नहीं, उसका लोप ? व्यवहार है, है उसका नकार करके निश्चय का आश्रय करने की बात है। दोनों नय के विषय हैं। व्यवहारनय का विषय पर्याय, रागादि, निमित्तादि है। निश्चयनय का विषय त्रिकाली, वह भी विषय है। एक को मुख्य करके दूसरे को गौण करके प्रयोजन सिद्ध कराया है। आहाहा! बात यह है।

मुमुक्षु : सत्ता नहीं मिटती।

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्ता कहाँ जाये ? परन्तु कार्य तो पर्याय में होता है। द्रव्य में होता है कार्य ? उस कार्य को यहाँ गौण करके असत्यार्थ कहा है, अभूतार्थ (कहा है)। उसका भी विवाद। एक व्यक्ति ऐसा कहता है, अभूतार्थ कहा है, असत्यार्थ कहाँ कहा है ? और उसे ऐसा कहता है। टीका में है, अभूतार्थ अर्थात् असत्यार्थ। जयसेनाचार्य की टीका में है। नीचे पण्डित जयचन्द्रजी ने कहा है। आहाहा! तत्त्व की दृष्टि बिना बाहर में से मान बैठे। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **परन्तु हाथी, घोड़े, रथ, सुभट अनेक हैं, उसी तरह जीवों में जानना।** लो। आहाहा!

गाथा - ९६

अथ त्रिभुवनस्थजीवानां मूढा भेदं कुर्वन्ति, ज्ञानिनस्तु भिन्नभिन्नसुवर्णानां षोडशवर्णिकैकत्ववत्केवलज्ञानलक्षणेनैकत्वं जानन्तीति दर्शयति-

२१९) जीवहँ तिहुयण-संठियहँ मूढा भेउ करंति।
केवळ-णाणिं णाणि फुडु सयलु वि एक्कु मुणंति।।९६।।

जीवानां त्रिभुवनसंस्थितानां मूढा भेदं कुर्वन्ति।
केवलज्ञानेन ज्ञानिनः स्फुटं सकलमपि एकं मन्यन्ते।।९६।।

जीवहं इत्यादि। जीवहं तिहुयण-संठियहं स्वेतकृष्णरक्तादिभिन्नभिन्नवस्त्रैर्वेष्टितानां षोडशवर्णिकानां भिन्नभिन्नसुवर्णानां यथा व्यवहारेण वस्त्रवेष्टनभेदेन भेदः तथा त्रिभुवन-संस्थितानां जीवानां व्यवहारेण भेदं दृष्ट्वा निश्चयनयेनापि मूढा भेउ करंति मूढात्मानो भेदं कुर्वन्ति। केवल-णाणिं वीतरागसदानन्दैकसुखाविनाभूतकेवलज्ञानेन [१]वीतरागस्वसंवेदन णाणि ज्ञानिनः फुडु स्फुडं निश्चितं सयलु वि समस्तमपि जीवराशिं एक्कु मुणंति संग्रहनयेन समुदायं प्रत्येकं मन्यन्त इति अभिप्रायः।।९६।।

आगे तीन लोक में रहनेवाले जीवों का अज्ञानी भेद करते हैं। जीवपने से कोई कम-बढ़ नहीं हैं, कर्म के उदय से शरीर-भेद हैं, परंतु द्रव्यकर सब समान हैं। जैसे सोने में वान-भेद है, वैसे ही पर के संयोग से भेद मालूम होता है, तो भी सुवर्णपने से सब समान हैं, ऐसा दिखलाते हैं-

मूढ़ जीव ही तीन लोक के जीवों में करते हैं भेद।
ज्ञानी जन तो ज्ञानमात्र से सब जीवों को मानें एक।।९६।।

अन्वयार्थ :- [त्रिभुवनसंस्थितानां] तीन भुवन में रहनेवाले [जीवानां] जीवों का [मूढाः] मूर्ख ही [भेदं] भेद [कुर्वंति] करते हैं, और [ज्ञानिनः] ज्ञानी जीव [केवलज्ञानेन] केवलज्ञान से [स्फुटं] प्रगट [सफलमपि] सब जीवों को [एकं मन्यंते] समान जानते हैं।

भावार्थ :- व्यवहारनयकर सोलहवान के सुवर्ण भिन्न भिन्न वस्त्रों में लपेटें तो वस्त्र के भेद से भेद है, परंतु सुवर्णपने से भेद नहीं है, उसी प्रकार तीन लोक में तिष्ठे हुए जीवों

---

१. पाठान्तर - वीतरागस्वसंवेदन णाणि ज्ञानिनः = णाणि वीतरागस्वसंवेदनज्ञानिनः

का व्यवहारनय से शरीर के भेद से भेद है, परंतु जीवपने से भेद नहीं है। देह का भेद देखकर मूढ़ जीव भेद मानते हैं, और वीतराग स्वसंवेदनज्ञानी जीवपने से सब जीवों को समान मानता है। सभी जीव केवलज्ञानवेलि के कंद सुख-पंक्ति है, कोई कम बढ़ नहीं है।।९६।।

गाथा-९६ पर प्रवचन

आगे तीन लोक में रहनेवाले जीवों का अज्ञानी भेद करते हैं। है ९६ ? आहाहा! लाख रत्न का ढ़ेर हो, लाख-लाख। सब रत्न-रत्न लगे। परन्तु रत्न लाख है, कहीं एक नहीं हो गये। सब लाख रत्न समान हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा सब समान रत्नरूप से है। परन्तु लाख जैसे संख्या से है, वे एक नहीं हुए, इसी प्रकार अनन्त संख्या से जीव हैं, वे एक नहीं हुए। आहाहा! **तीन लोक में रहनेवाले जीवों का अज्ञानी भेद करते हैं।** उसमें यह लेख रह गया है, नीचे है। स्पष्टीकरण किया है। सबको समान नहीं जानता। है ?

आगे तीन लोक में रहनेवाले जीवों का अज्ञानी भेद करते हैं, सबको समान नहीं जानते। और ज्ञानीजन केवलज्ञान लक्षण से सबको समान जानते हैं। है ? ऊपर शीर्षक है। उस शीर्षक का अर्थ रह गया है थोड़ा। ऊपर शीर्षक है न ? '**त्रिभुवनस्थजीवानां मूढा भेदं कुर्वन्ति, ज्ञानिनस्तु भिन्नभिन्नसुवर्णानां षोडशवर्णिकै-कत्ववत्केवलज्ञान-लक्षणेनैकत्वं जानन्तीति**' इतना अर्थ रह गया है अन्दर। नीचे यह अर्थ रह गया है। समझ में आया ? यह तो भाई! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा हुआ, कहा हुआ तत्त्व बहुत सूक्ष्म है। आहाहा!

जीवपने से कोई कम-बढ़ नहीं हैं,... है ? स्पष्टीकरण किया है। **कर्म के उदय से शरीर-भेद हैं, परन्तु द्रव्यकर सब समान हैं।** आहाहा! एक स्त्री का शरीर और किसी को पुरुष का शरीर और किसी को चींटी का शरीर, हाथी का शरीर और मच्छ का शरीर। आहाहा! परन्तु वस्तुरूप से अन्दर देखो, तब तो एकाकार आनन्दकन्द प्रभु है। आहाहा! यहाँ पर्यायबुद्धि उड़ाकर द्रव्यबुद्धि कराने को सब समान हैं, ऐसा कहते हैं।

आहाहा! समझ में आया? भाषा तो एकदम सादी आती है परन्तु बहुत सूक्ष्म तत्त्व है। यह तो कॉलेज है विज्ञान की। आहाहा!

जैसे सोने में वान-भेद है, वैसे ही पर के संयोग से भेद मालूम होता है,... जीव में, **तो भी सुवर्णपने से सब समान हैं, ऐसा दिखलाते हैं**—लो। आहाहा!

२१९) जीवहँ तिहुयण-संठियहँ मूढा भेउ करंति।
केवळ-णाणिं णाणि फुडु सयलु वि एक्कु मुणंति।।९६।।

अन्वयार्थ :— 'त्रिभुवनसंस्थितानां' तीन भुवन में रहनेवाले... 'त्रिभुवन-संस्थितानां' रहनेवाले यह जीव। **जीवों का मूर्ख ही भेद करते हैं,...** आहाहा! **और ज्ञानी जीव...** धर्मी जीव **'केवलज्ञानेन' केवलज्ञान से प्रगट...** केवल ज्ञान अर्थात् अकेला ज्ञान। पर्यायभेद भी नहीं जहाँ। आहाहा! अकेला ज्ञानपुंज प्रभु, चैतन्य ज्ञानपुंज। प्रदेश से असंख्य प्रदेश का पुंज, भाव से अनन्त गुण का पुंज। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा... आहाहा! सब। **केवलज्ञान से प्रगट सब जीवों को समान जानते हैं...** केवलज्ञान की पर्याय की बात नहीं, हों! पर्याय जो केवलज्ञान है वह (अलग)। यह तो केवल-ज्ञान। अकेला ज्ञानस्वरूप।

जैसे रुई की गाँठ होती है न, गाँठ? क्या कहते हैं? गठरी। रुई... रुई। पच्चीस मण की बड़ी। बोरा? इसी प्रकार यह ज्ञान का बोरा—बड़ी गाँठ है। ज्ञान की गाँठ। आहाहा! इस ज्ञान की अपेक्षा से सब समान हैं। **केवलज्ञान से प्रगट सब जीवों को समान जानते हैं।** लो, आहाहा!

भावार्थ :— व्यवहारनयकर सोलहवान के सुवर्ण भिन्न-भिन्न वस्त्रों में लपेटें तो... क्या कहा? सोलहवान सोना है। सौ, दो सौ, पाँच सौ, सोलहवान सोना। उसे वस्त्र में लपेटे। **भिन्न-भिन्न वस्त्रों में लपेटें...** कोई काला वस्त्र हो, कोई सफेद हो, कोई सिंह का चित्र हो, कोई कबूतर का चित्र हो, ऐसे कपड़े से लपेटे। **परन्तु सुवर्णपने से भेद नहीं है,...** आहाहा! क्या कहा यह? पाँच-पाँच रुपया भार की ईंट सोने की एक हजार हो और उसे वस्त्र के भिन्न-भिन्न टुकड़ों में लपेटा हो। कोई काला, कोई सफेद, कोई मोटा, कोई पतला, कोई नया, कोई पुराना / जीर्ण, तथापि उस भिन्न-भिन्न वस्त्र से कहीं

सोना भिन्न-भिन्न हुआ नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **परन्तु सुवर्णपने से भेद नहीं है,...** क्या कहा? हजार पाँच-पाँच रुपयाभार की सोने की ईंट (हो), उसे भिन्न-भिन्न वस्त्र से लपेटे, इससे कहीं सोना भिन्न-भिन्न हो गया है? आहाहा! यह किसी को स्त्री का शरीर, किसी को पुरुष का, किसी को कौवे का, किसी को सिंह का। यह सब भगवान सोलहवान सोना अन्दर है। केवलज्ञान का कन्द प्रभु है, उसके ऊपर यह सब लपेटा किया है। इससे वह सोना कहीं उसरूप हुआ नहीं। सोने की ईंट उस वस्त्ररूप हुई है? आहाहा! परन्तु ऐसा क्या? धर्म करना हो, उसे कुछ करने का रहता नहीं। परन्तु यह करने का नहीं? उसमें तो मुफ्त का कष्ट है, यह तो सुखदायक वस्तु है। आहाहा! यह समझने में तो सुख है। आहाहा! और वह समझने में, क्लेश इन क्रियाकाण्ड में दु:ख है, राग है, क्लेश है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात।

सुवर्णपने से भेद नहीं है, उसी प्रकार तीन लोक में तिष्ठे हुए जीवों का... तीन लोक में रहे हुए अनन्त जीव। आहाहा! चौदह राजुलोक में जीव भरे हैं पूरे। यहाँ अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... हैं सर्वत्र अन्दर। आहाहा! **जीवों का व्यवहारनय से शरीर के भेद से भेद है, परन्तु जीवपने से भेद नहीं है।** आहाहा! **देह का भेद देखकर मूढ़ जीव भेद मानते हैं,...** आहाहा! **और वीतराग स्वसंवेदनज्ञानी जीवपने से सब जीवों को समान मानता है।** लो, आहाहा! **सभी जीव केवलज्ञानवेलि के कन्द...** सब जीव केवलज्ञानवेलि के कन्द अर्थात् **सुख-पंक्ति है,...** आहाहा! सुख की पंक्ति, सुखधारा है अन्दर। **केवलज्ञानवेलि के कन्द सुख-पंक्ति है, कोई कम बढ़ नहीं है।** आहाहा! यह द्रव्यदृष्टि को निर्मल कराते हैं। द्रव्य ऐसा है, ऐसी दृष्टि कर तो वह सम्यक् है। आहाहा! विशेष कहेंगे लो.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ९७

अथ केवलज्ञानादिलक्षणेन शुद्धसंग्रहनयेन सर्वे जीवाः समाना इति कथयति-

२२०) **जीवा सयल वि णाण-मय जम्मण-मरण-विमुक्क।**
जीव-पएसहिँ सयल सम सयल वि सगुणहिँ एक्क।।९७।।

जीवाः सकला अपि ज्ञानमया जन्ममरणविमुक्ताः।
जीवप्रदेशैः सकलाः समाः सकला अपि स्वगुणैरेके।।९७।।

जीवा इत्यादि। जीवा सयल वि णाण-मय व्यवहारेण लोकालोकप्रकाशकं निश्चयेन स्वशुद्धात्मग्राहकं यत्केवलज्ञानं तज्ज्ञानं यधपि व्यवहारेण केवलज्ञानावरणेन झंपितं तिष्ठति तथाऽपि शुद्धनिश्चयेन तदावरणाभावात् पूर्वोक्तलक्षणकेवलज्ञानेन निवृत्तत्वात्सर्वेऽपि जीवा ज्ञानमयाः जम्मण-मरण-विमुक्क व्यवहारनयेन यधपि जन्ममरणसहितास्तथापि निश्चयेन वीतरागनिजानन्दैकरुपसुखामृतमयत्वादनाधनिधनत्वाद्व शुद्धात्मस्वरुपाद्भिलक्षणस्य जन्ममरण-निर्वर्तकस्य कर्मण उदयाभावाज्जन्ममरणविमुक्ताः। जीव-पएसहिं सयल सम यधपि संसारा-वस्थायां व्यवहारेणोपसंहारविस्तारयुक्तत्वाद्देहमात्रा मुक्तावस्थायां तु किंचिदूनचरमशरीरप्रमाणा-स्तथापि निश्चयनयेन लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशत्व-हानिवृद्धयभावात् स्वकीयस्वकीय-जीवप्रदेशैः सर्वे समानाः। सयल वि सगुणहिं एक्क यधपि व्यवहारेणाव्याबाधानन्तसुखादिगुणाः संसारावस्थायां कर्मझंपितास्तिष्ठन्ति, तथापि निश्चयेन कर्माभावात् सर्वेऽपि स्वगुणैरेकप्रमाणा इति। अत्र यदुक्तं शुद्धात्मनः स्वरुपं तदेवोपादेयमिति तात्पर्यम्।।९७।।

आगे केवलज्ञानादि लक्षण से शुद्धसंग्रहनयकर सब जीव एक हैं, ऐसा कहते हैं-

सभी जीव हैं ज्ञान स्वभावी जन्म मरण से रहित सदैव।
हैं प्रदेश सबके समान अरु गुण दृष्टि से भी सब एक।।९७।।

अन्वयार्थ :- [सकला अपि] सभी [जीवाः] जीव [ज्ञानमयाः] ज्ञानमयी हैं, और [जन्ममरणविमुक्ताः] जन्म-मरण सहित [जीवप्रदेशैः] अपने अपने प्रदेशों से [सकलाः समाः] सब समान हैं, [अपि] और [सकलाः] सब जीव [स्वगुणैः एके] अपने केवलज्ञानादि गुणों से समान हैं।

भावार्थ :- व्यवहार से लोक-अलोक का प्रकाशक और निश्चयनय से निज

शुद्धात्मद्रव्य का ग्रहण करनेवाला जो केवलज्ञान वह यधपि व्यवहारनय से केवलज्ञानावरणकर्म से ढँका हुआ है, तो भी शुद्ध निश्चयनय से केवलज्ञानावरण का अभाव होने से केवलज्ञानस्वभाव से सभी जीव केवलज्ञानमयी हैं। यधपि व्यवहारनयकर सब संसारी जीव जन्म-मरण सहित हैं, तो भी निश्चयनयकर वीतराग निजानंदरुप अतीन्द्रिय सुखमयी हैं, जीनकी आदि भी नहीं और अंत भी नहीं ऐसे हैं, शुद्धात्मस्वरुप से विपरीत जन्म मरण के उत्पन्न करनेवाले जो कर्म उनके उदय के अभाव से जन्म-मरण रहित हैं। यधपि संसारअवस्था में व्यवहारनयकर प्रदेशों का संकोच विस्तार को धारण करते हुए देहप्रमाण हैं, और मुक्त-अवस्था में चरम (अंतिम) शरीर से कुछ कम देहप्रमाण हैं, तो भी निश्चयनयकर लोकाकाशप्रमाण असंख्यातप्रदेशी हैं, हानि-वृद्धि न होने से अपने प्रदेशों कर सब समान हैं, और यधपि व्यवहारनय से संसार-अवस्था में इन जीवों के अव्याबाध अनंत सुखादिगुण कर्मों से ढँके हुए हैं, तो भी निश्चयनयकर कर्म के अभाव से सभी जीव गुणोंकर समान हैं। ऐसा जो शुद्ध आत्मा का स्वरुप है, वही ध्यान करने योग्य है।।९७।।

वीर संवत् २५०२, पौष शुक्ल ३, गुरुवार
दिनांक-२३-१२-१९७६, गाथा - ९७, ९८, प्रवचन-१६६

परमात्मप्रकाश, ९७ गाथा। **आगे केवलज्ञानादि लक्षण से शुद्धसंग्रहनयकर सब जीव एक हैं, ऐसा कहते हैं—**

२२०) **जीवा सयल वि णाण-मय जम्मण-मरण-विमुक्क।**
जीव-पएसहिँ सयल सम सयल वि सगुणहिँ एक्क।।९७।।

आहाहा! **अन्वयार्थ :— सभी जीव ज्ञानमयी हैं,...** दृष्टि हो गयी है, वह आत्मा को परमात्मा जानता है। समझ में आया? इससे सब आत्मा को वह परमात्मा जानता है, ऐसा कहते हैं। उसका स्वरूप ही ज्ञानमय है, अकेला ज्ञानमय। प्रत्येक आत्मा अकेला ज्ञानमय है। आहाहा! व्यवहार का राग और फाग उसमें है नहीं, ऐसा कहते हैं। शुद्धसंग्रहनयकर जीव ज्ञानस्वरूप, ज्ञानसूर्य सब आत्मा। आहाहा! वह कब बैठे ऐसा? कि जिसकी निमित्त, राग और पर्यायबुद्धि उड़ जाती है और स्वभावबुद्धि होती है, उसे यह बैठता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

‘**जन्ममरणविमुक्ता:**’ जन्म-जरा-मरण से तो भगवान आत्मा रहित है। आहाहा! परमस्वरूप, परमस्वरूप आनन्दघन ज्ञानमय वस्तु में जन्म-मरण से तो भिन्न चीज़ है। आहाहा! **अपने-अपने प्रदेशों से सब समान हैं,...** यह प्रदेश लिये वापस। प्रत्येक आत्मा असंख्यप्रदेशी। अपने प्रदेश हैं असंख्य, वे ही सबके असंख्य प्रदेश हैं। प्रदेश से भी समान, गुण से समान और जन्म-मरण से रहित भी समान। आहाहा! समझ में आया? **और सब जीव अपने केवलज्ञानादि गुणों से समान हैं।** दृष्टि का विशाल स्वभाव जो त्रिकाली विशाल स्वभाव, वह दृष्टि का विषय है। इसलिए दृष्टिवन्त को परमात्मा अपना स्वरूप भासित होता है। इस प्रकार दूसरे सब आत्मा भी परमात्मस्वरूप है। आहाहा! वस्तु है न पूरी ज्ञानमय चीज़। अल्पज्ञपना जिसमें नहीं। राग तो नहीं, संयोग तो नहीं, अल्पज्ञपना भी नहीं। आहाहा!

पंचाध्यायी में लिया है न हरि? आत्मा को हरि कहा है। वह भी हरते इति हरि, नास्ति से बात ली है। मिथ्यात्व और राग-द्वेष को नष्ट करे, इसलिए हरि आत्मा है। आहाहा! आज सवेरे मीराबाई का टुकड़ा (वाक्यांश) है, वह याद आया। ‘हरि भजता हजी कोईनी लाज जता नथी जाणी रे, हरि भजता हजु कोईनी लाज जता नथी जाणी...’ सेठ! हरि कौन? यह आत्मा, हों! इसे भजने से किसी की लाज अभी गयी नहीं दुनिया में से। ऐसा जो भगवान आत्मा... आहाहा! अल्पज्ञ की दृष्टिवाले को, राग की दृष्टिवाले को, निमित्त की दृष्टिवाले को, पर्याय की बुद्धिवाले को, ऐसा आत्मा जँचता नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह मीराबाई में आता है।

यहाँ तो हरि यह। भगवान आत्मा अल्पज्ञ और राग का भी जिसमें अभाव है। आहाहा! निमित्त परद्रव्य का तो अभाव है, आहाहा! परन्तु व्यवहार के विकल्प दया, दान, व्रतादि जिसे अभी लोग कहते हैं कि व्यवहार लोप होता है, सेठ! सुना है न तुमने तो सब यह? व्यवहार लोप करते हैं सोनगढ़िया। कहे बापू! कहो, दिक्कत नहीं। अरे... भगवान! बापू! तुझे खबर नहीं, प्रभु! व्यवहार का तो अभाव है परन्तु अल्पज्ञपने का त्रिकाली ज्ञानमयी वस्तु में अभाव है। आहाहा! अरे! ऐसा निधान... देखो न किस प्रकार वर्णन करते हैं!

यह परमात्मप्रकाश है। आहाहा! परम आत्मा प्रकाश की मूर्ति। अल्पज्ञपना नहीं,

राग नहीं, निमित्त नहीं। आहाहा! ऐसी जिसकी दृष्टि... यह कहेंगे, वीतराग स्वसंवेदनज्ञान हुआ, वह तो ऐसा आत्मा को मानता है। समझ में आया? आहाहा! रागरहित है न, अन्दर आयेगा, बाद में आयेगा। ९८ में आता है, नहीं? उसमें आता है, वह यहाँ आया, वहाँ ही आया भावार्थ में। **व्यवहार से लोक-अलोक का प्रकाशक...** भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु लोकालोक को प्रकाशित करता है, ऐसा कहना वह तो व्यवहार है। आहाहा! है भावार्थ? **निश्चयनय से निज शुद्धात्मद्रव्य का ग्रहण करनेवाला...** आहाहा! अपना जो ज्ञान त्रिकाली स्वभाव, उसे ग्रहण करनेवाला यह आत्मा। पर को जाने, यह तो व्यवहारनय का कथन है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ पर्यायबुद्धि को उड़ा देते हैं। क्योंकि वह सच्ची बुद्धि नहीं। आहाहा!

द्रव्य भगवान अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु, आहाहा! पूर्ण ज्ञानमय; ज्ञानवाला—ऐसा भी नहीं। समझ में आया? आहाहा! बापू! मार्ग सूक्ष्म, भाई! व्यवहार से होता है और निमित्त से होता है, ऐसा कहते हैं न? तो कहते हैं कि निमित्त और व्यवहार का तो जिसमें अभाव है। आहाहा! निश्चयमोक्षमार्ग से भी द्रव्यस्वभाव ज्ञात होता है, ऐसा कहना वह पर्याय से है। आहाहा! पर्याय से ज्ञात होता है द्रव्य, परन्तु जानता है कैसा द्रव्य? अकेला ज्ञानमय, आनन्दमय, आनन्दमय, बस! आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा आत्मा कब है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि है। कब है क्या, अभी है—ऐसा कहते हैं। वर्तमान में वह ज्ञानमय, आनन्दमय विद्यमान चीज़ है। उसे अविद्यमान बनायी है। एक समय की पर्याय और रागवाला माना, वह अविद्यमान बनायी है और जिसने पर्याय और राग नहीं, अविद्यमान है, उसे अविद्यमान कहकर विद्यमान चीज़ है, उसे विद्यमान बनायी है। आहाहा! समझ में आया? यह क्या कहा?

एक समय की पर्याय, राग, वह है। उसे जिसने विद्यमान बनाया है, उसने त्रिकाली को अविद्यमान बनाया है। आहाहा! वीरचन्दभाई! बहुत सूक्ष्म बातें हैं। आहाहा! और जिसने एक समय में भगवान केवलज्ञान का कन्द... नहीं आया था ऊपर? आया था न? **केवलज्ञानवेलि के कन्द सुख-पंक्ति है,...** ९६ में आया था, अन्तिम लाईन। सब जीव... आहाहा! ९६ की अन्तिम लाईन। **सभी जीव केवलज्ञानवेलि...** केवलज्ञान की

वेलडी का **कन्द सुख-पंक्ति है,...** आहाहा! केवलज्ञान का कन्द और सुख की धारा है। आहाहा! **सभी जीव...** अभव्य भी ऐसे ही हैं, आहाहा! आहाहा! पैसेवाले, कर्मवाले तो नहीं, रागवाला भी नहीं, अल्पज्ञतावाला भी नहीं, वह तो भगवान। आहाहा! **सभी जीव केवलज्ञानवेलि...** आहाहा! वह क्या कहलाता है यह? काशीफल... काशीफल। काशीफल नहीं होता? साकरकोळा (गुजराती शब्द)। वह उसकी बेल छोटी होती है। पके अधमण अधमण के बड़े काशीफल। कोळा कहते हैं न उसे?

मुमुक्षु : हमारे यहाँ कुंबला कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। इसी प्रकार यह भगवान आत्मा... आहाहा! अकेला केवलज्ञान की बेलड़ी का कन्द और सुख की धारा भरी हुई है। सुख की पंक्ति है उसमें, कहते हैं। आहाहा! है न ९६ अन्तिम? कल अन्तिम लिया गया था उतावल से, यह लाईन। **कोई कम-बढ़ नहीं है।** आहाहा! पर्याय की अल्पज्ञता और राग का अस्तित्व वह विद्यमान है, उसे अविद्यमान कर डालता है। दृष्टि उसे अविद्यमान—वह नहीं और जो विद्यमान है, उसे अविद्यमान करती है। आहाहा! अज्ञानी विद्यमान है उसे अविद्यमान करता है और क्षणिक विद्यमान चीज़ है, उसे विद्यमान करता है। वही है, ऐसा मानता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात तो सुनने को किसी दिन मिलती हो। आहाहा!

भाई! तू परमात्मा है। आहाहा! 'जिन' शब्द में जीतना आता है। अज्ञान को और राग को जीते, वह जैन। क्योंकि जैन शब्द है न! और मोक्ष है, उसमें भी दु:ख से मुक्त होना, यह आता है, परन्तु अस्तिरूप से लें तब तो वह मुक्तस्वरूप ही है, अबन्धस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? उसकी चैतन्य महासत्ता, चैतन्य का महाअस्तित्व... आहाहा! जिसे महाअस्तिपना दृष्टि में आया है, उसे अल्पज्ञ और राग का अविद्यमानपना भासित होता है कि यह मुझमें है ही नहीं। आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई यह तो! आहाहा!

वस्तु जो है, वस्तु स्वयं परमात्मा स्वयं चिदानन्द सहजात्मस्वरूप सर्वज्ञदेव परमगुरु। सहजात्मस्वरूप स्वयं सर्वज्ञदेव, स्वयं परमगुरु महा प्रभु है। आहाहा! उसकी महत्ता की उसे खबर नहीं। उसकी महिमा की उसे खबर नहीं और यह मान लिया कि

राग शुभ दया, दान और व्रत करते हैं न, उससे मिलेगा। वह उसकी महत्ता का उसने नाश कर डाला। समझ में आया? आहाहा! ऐसा स्वरूप अब। दया पालना, भक्ति करना और पूजा करना और व्रत पालना। वासन्तीलालजी! यह सब सुना था या नहीं? आहाहा! गजब बात है, बापू! आहाहा!

आज दिन की वृद्धि का दिन है। क्या कहा यह? कल अन्तिम २२वीं तारीख को दिन छोटे में छोटा और रात्रि बड़ी में बड़ी। काल २२वीं तारीख, दिसम्बर की। रात बड़ी में बड़ी। आज शुरु होता है वह बढ़े। दिन मिनिट... मिनिट बढ़ेगा और रात्रि मिनिट... मिनिट घटेगी। आहाहा! समझ में आया? वह यह दिवसवृद्धि, चैतन्यमूर्ति दिनकर। दिवस का करनेवाला ऐसा सूर्य। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा केवलज्ञान के प्रकाश का सूर्य। यह ऐसी बातें है, बापू! पागल और गहल बातें जैसी है। बापू! मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा!

कहते हैं, लोकालोक का प्रकाशक व्यवहार से कहने में आता है **और निश्चयनय से निज शुद्धात्मद्रव्य का ग्रहण करनेवाला...** आहाहा! यह तो त्रिकाली को ग्रहण करनेवाला भगवान है। व्यवहार को जानना, ऐसा भी नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं। यह निमित्त से तो नहीं, राग से तो नहीं, अल्पज्ञ से तो नहीं, परन्तु पर को जाननेवाले से भी यह नहीं। आहाहा! समझ में आया? निश्चय से अपने पूर्ण स्वरूप को ग्रहण करनेवाला यह भगवान है। आहाहा! उसे यह जाननेवाला है। संयोग में नहीं, राग में नहीं, अल्पज्ञपने में नहीं, परन्तु पर को जाननेवाला भी नहीं वास्तव में। आहाहा! वह तो भगवान पूर्ण अपना स्वरूप है, वह तो उसे जाननेवाला है। आहाहा! समझ में आया?

ग्रहण करनेवाला जो केवलज्ञान... यह केवलज्ञान है। यह तो केवलज्ञान तीन काल-तीन लोक को जाननेवाला, उसे यह जाननेवाला है। आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसी बातें। निश्चय... निश्चय... निश्चय। परन्तु सत्य यह है। आहाहा! श्रद्धा में कितनी महत्ता की इसे श्रद्धा है, ऐसा कहते हैं। कितने बड़े की इसे श्रद्धा है। श्रद्धा में यह भगवान अपने को पूर्ण को जाने, ऐसा श्रद्धावान उसकी श्रद्धा में है यह। आहाहा! समझ में आया? समझ में आया तो विश्राम का वाक्य है। आहाहा! भाई! इसका अन्तर माहात्म्य आये बिना, इसकी महिमा जाने बिना दृष्टि सच्ची नहीं होगी। आहाहा! और

सच्ची दृष्टि बिना जो कुछ करे, वह सब चार गति में भटकने के लिये है। आहाहा! इसलिए खलबलाहट हो गयी है न! निश्चय... निश्चय... निश्चय।

निज शुद्धात्मद्रव्य का... देखा! परद्रव्य को नहीं, केवली को जाननेवाला भी नहीं। आहाहा! बापू! मार्ग अलग प्रकार है। आहाहा! **निज...** निश्चयनय से निज— स्वयं, अपने शुद्धात्मद्रव्य को जाननेवाला है। ग्रहण करनेवाला है अर्थात् जाननेवाला है। ऐसा जो केवलज्ञान। केवलज्ञान अर्थात्? स्वयं अपना अकेला ज्ञान। **यद्यपि व्यवहारनय से केवलज्ञानावरणकर्म से ढँका हुआ है,...** यहाँ विवाद। आया देखो, देखो इसमें। कहते हैं कि कर्म से आवरण है। **व्यवहारनय से...** उसे संक्षिप्त कहना है, इसलिए निमित्त से बात की है। बाकी वास्तव में तो अपनी पर्याय का विषय स्वयं ने हीन किया है, वह उसका आवरण है। आता है न, भाई? विषय प्रतिबद्ध, नहीं? पंचास्तिकाय। आहाहा! स्वयं अल्पज्ञ विषयरूप से जानने में परिणमा है, वही उसे विघ्न है, वह उसका आवरण है। आहाहा!

जिसका सर्व विषय पूर्ण है और उसमें भी पूर्ण विषय स्वद्रव्य है... आहाहा! पर्याय में पूर्ण विषय सब है, परन्तु ऐसा करते भी यह द्रव्य जो पूर्ण है... आहाहा! एक पर्याय में सर्व द्रव्य का प्रत्यक्षपना पूर्णपना है, इससे भी यह आत्मा पूर्णरूप से अपने को जाने, ऐसा पूर्ण है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! कहो, त्रिभोवनभाई! ऐसी बातें हैं, इसलिए लोगों-बेचारों को... आहाहा!

मुमुक्षु : फिर से फरमाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न! आहाहा! ऐसा केवलज्ञानमय। केवल अर्थात् अकेला ज्ञानमय प्रभु और पर्याय को केवलज्ञान कहो तो उसे आवरणरूप से उसकी अपनी हीन भावघाति कर्म की परिणति अपनी है, उससे वह घाता गया है, उससे वह पूर्ण ज्ञानमय ज्ञात नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्यकर्म से नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य (कर्म) तो निमित्त का कथन है। १६वीं गाथा में नहीं आया? प्रवचनसार। द्रव्यघाति, भावघाति दो कर्म है। द्रव्यघाति तो पर है। भावघाति

उसकी अशुद्धता का घातनेवाला वह है। आहाहा! सूक्ष्म बात पड़े लोगों को। सुनने को मिली न हो, वाँचन में आयी न हो, इसलिए दूसरे प्रकार से शास्त्र को वाँचा हो, अब उसे यह बात बैठाना (कठिन पड़ती है)। और ज्ञान का परिणमन हीन स्वयं ने कर डाला है, उससे ढँक गया है। समझ में आया? दिक्कत तो यह कर्म की है और व्यवहार के दो, और निमित्त के तीन, और क्रमबद्ध का चार, सोनगढ़ के सामने।

मुमुक्षु : वह तो स्वयं के सामने है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके सामने है, बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! आहाहा!

व्यवहारनय से केवलज्ञानावरणकर्म से ढँका हुआ है, तो भी शुद्ध निश्चय से केवलज्ञानावरण का अभाव होने से... देखा! यह आवरण का अथवा अल्पज्ञपने का भी जिसमें अभाव है। आहाहा! ऐसी बात कहाँ है? दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त ऐसी बात कहनेवाला कोई निकला नहीं। आहाहा! नागा बादशाह से आघा। उन्हें दुनिया की पड़ी नहीं कि ऐसा कहूँगा तो समाज कैसे मानेगी? उसके घर में रहे। घर में रहे अर्थात् उसकी कल्पना के घर में, ऐसा। निजघर में आयी नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा केवलज्ञानावरणीय का अभाव जिसमें है, कहते हैं। है? अर्थात्? भावघातिरूप से जो ज्ञान की हीन दशा हुई है, उसका त्रिकाली स्वभाव में अभाव है। समझ में आया? ऐसे अर्थ करना। फिर वे कहे, अपने को लगे वैसे अर्थ करते हैं। अरे... भगवान! बापू! तूने मार्ग सुना नहीं, हों प्रभु! आहाहा! **सभी जीव केवलज्ञानमयी हैं।** यह घाति का, अपना—स्व का घात किया, उसका भी अभाव है। अकेले ज्ञानमय परिपूर्ण रसकन्द। ज्ञानसूर्य ध्रुव आदि—अन्त रहित चीज़ परिपूर्ण स्वभावसम्पन्न ऐसा भगवान आत्मा, ऐसे सब आत्मा हैं। आहाहा!

यद्यपि व्यवहारनयकर सब संसारी जीव जन्म-मरणसहित हैं,... पर्याय में। **तो भी निश्चयनयकर वीतराग निजानन्दरूप...** देखो, आया यह। **निश्चयनयकर वीतराग निजानन्दरूप अतीन्द्रिय सुखमयी हैं,...** वह वीतराग निजानन्द पर्याय जहाँ प्रगट हुई, उसे यह पूरा वीतराग निजानन्दमयी है, ऐसा भासित होता है। आहाहा! समझ में आया? **निश्चयनयकर वीतराग निजानन्द...** वापस देखा, वीतरागी परन्तु निजानन्दरूप **अतीन्द्रिय सुखमयी हैं,...** आहाहा! वीतराग निज आनन्दमयी निजसुखमयस्वरूप भगवान आत्मा,

ऐसे सब आत्मा हैं। आहाहा! **अतीन्द्रिय सुखमयी हैं,...** आहाहा! **जिनकी आदि भी नहीं और अन्त भी नहीं ऐसे हैं,...** आहाहा! भगवान ज्ञान और सुखमयी, जिसकी सत्ता—अस्तित्व ज्ञानमयी और सुखमयी जिसका अस्तित्व, ऐसा जो भगवान आत्मा। आहाहा!

शुद्धात्मस्वरूप से विपरीत, जन्म-मरण के उत्पन्न करनेवाले जो कर्म उनके उदय के अभाव से जन्म-मरण रहित है। लो, आहाहा! **शुद्धात्मस्वरूप से विपरीत, जन्म-मरण के उत्पन्न करनेवाले जो कर्म उनके उदय के अभाव से जन्म-मरण रहित है।** उसमें है नहीं, उदय ही नहीं। आहाहा! गजब बात परन्तु भाई! परमात्मप्रकाश। पण्डित हुकमचन्दजी के पुत्र का नाम परमात्मप्रकाश है। अपने पण्डितजी, जयपुर, हुकमीचन्दजी। उनके बड़े पुत्र का नाम परमात्मप्रकाश है, छोटे का नाम अध्यात्मप्रकाश है। लड़की का ऐसा कुछ नाम है। अध्यात्मप्रकाशी? अध्यात्मप्रभा। लो ठीक, लड़की का नाम अध्यात्मप्रभा। हुकमीचन्दजी।

मुमुक्षु : दूसरी लड़की का नाम शुद्धात्मप्रभा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, होगा। है नाम है। हुकमीचन्दजी का क्षयोपशम अभी बहुत। उम्र छोटी, ४० वर्ष की, परन्तु क्षयोपशम बहुत। परन्तु लोग ऐसा कहते हैं कि यह तो सोनगढ़ का पण्डित है। अरे... भगवान!

मुमुक्षु : सोनगढ़ का पण्डित अर्थात् सच्चा पण्डित।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! भाई! भाग पाड़ना रहने दे, बापू! मार्ग है, वह है। आहाहा!

ओहोहो! जो भगवान आत्मा वस्तुस्वभाव परिपूर्ण ज्ञान और सुख की धारा जिसमें पड़ी है पूरी, आहाहा! ऐसे भगवान में यह केवलज्ञानावरणीय आदि का अभाव है और जो जन्म-मरण का कारण कर्म, उसका भी अभाव है। आहाहा! जो जन्म-मरण रहित है, तो पर्याय में जन्म-मरण रहित होता है। समझ में आया? **यद्यपि संसारअवस्था में व्यवहारनयकर प्रदेशों का संकोच-विस्तार को धारण करते हुए...** देखो, प्रदेश लिये अब। पाठ में आया था न! जीव प्रदेश '**सकलाः समाः**'। आहाहा! संसार अवस्था में व्यवहारनयकर प्रदेश असंख्य हैं, वे संकोच-विकास हों। निगोद में संकोच हो जाये।

हजार योजन का मच्छ (अथवा) केवलज्ञान समुद्घात करे तो विस्तार हो। यह व्यवहारनयकर **देहप्रमाण हैं। और मुक्त-अवस्था में चरम (अन्तिम) शरीर से कुछ कम देह प्रमाण हैं,...** वह सब व्यवहार से भेद (हुआ)।

तो भी निश्चयनयकर लोकाकाशप्रमाण असंख्यप्रदेशी हैं,... आहाहा! यह निश्चय। असंख्यप्रदेशी। संकोच हो तो भी असंख्यप्रदेशी है, विकास हो तो भी असंख्यप्रदेशी है। सामान्य एकरूप है। आहाहा! समझ में आया? **तो भी निश्चयनयकर लोकाकाशप्रमाण असंख्यप्रदेशी हैं, हानि-वृद्धि न होने से अपने प्रदेशोंकर सब समान हैं,...** आहाहा! यह हजार योजन का मच्छ (होता है) और केवलज्ञान समुद्घात के समय जो, वह भी असंख्यप्रदेश की अपेक्षा से सब समान हैं। हें! आहाहा! आता है न? 'सर्व जीव है ज्ञानमय, धारे समताभाव' नहीं? योगसार। योगसार में पीछे आता है। सर्व जीव है (ज्ञानमयी)। सामायिक की व्याख्या की है वहाँ। सर्व जीव है ज्ञानमय, धारे समताभाव। उस समताभाव से सब भगवान ज्ञानमय है। आहाहा! ऐसा शान्ति से अन्दर जो समझते हैं, उन्हें सामायिक होती है। आहाहा! श्रीमद् में ऐसा कहा, 'सर्व जीव है सिद्धसम, जो समझे वे होय।' आहाहा! (योगसार में) ज्ञानमय कहा। आहाहा!

मुमुक्षु : है सर्व गुण समान....

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद ही नहीं अब कुछ। राग की तो बात ही कहाँ है। आहाहा! अकषाय स्वभावमूर्ति प्रभु सब आत्मा, हों! वीतरागस्वभाव मूर्ति असंख्यप्रदेशी समान और गुण से भी समान। आहाहा! समझ में आया?

हानि-वृद्धि न होने से अपने प्रदेशोंकर सब समान हैं,... आहाहा! सभी जीव एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय और केवलज्ञानी और सिद्ध। एक अंगुल के असंख्य भाग में असंख्य शरीर निगोद के और एक शरीर में अनन्त जीव, परन्तु असंख्य प्रदेश से सब समान। आहाहा! ऐसी बात। संख्या लोकाकाश प्रमाण उसकी संख्या। उस लोकाकाश प्रमाण संख्या किसी की कम -अधिक नहीं। संकोच-विकास बाह्य क्षेत्र से होओ परन्तु अन्दर क्षेत्र से (असंख्य प्रदेशी ऐसा का ऐसा है)। आहाहा! गजब बात करते हैं न! बाह्य क्षेत्र से संकोच-विकास, निगोद में इतना संकुचित हो जाये, वह हजार योजन का (मच्छ का विस्तार हो), परन्तु अन्तर क्षेत्र से देखो तो असंख्य प्रदेशी है, ऐसा है।

आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! हें! केवलज्ञान के समुद्घातवाला जीव और निगोद का जीव, प्रदेश से सब समान हैं। ऐसा वस्तु का स्वरूप है। आहाहा! जिनवर के अतिरिक्त यह बात कहीं (नहीं है)। वह भी दिगम्बर धर्म में। आहाहा! ऐसी गम्भीरता। एक-एक श्लोक में गम्भीरता तो देखो! कितनी गहराई की बातें। आहाहा! गहरा कुँआ, उसे किस प्रकार से बताते हैं! आहाहा! **सब समान हैं,...**

और यद्यपि व्यवहारनय से संसार-अवस्था में इन जीवों के अव्याबाध अनन्त सुखादिगुण कर्मों से ढँके हुए हैं,... यहाँ कहते हैं, कर्म से ढँका हुआ है और तुम इनकार करते हो कि कर्म से ढँका हुआ नहीं है। भावकर्म—हीन दशा से पूरा ढँक गया है। आहाहा! १६वीं गाथा में यह ही कहा, भावघाति और द्रव्यघाति दोनों लेना। द्रव्यघाति द्रव्यघाति ही है, ऐसा नहीं। आहाहा! वह तो निमित्त है। स्वयं ही उपादान की पर्याय में हीनरूप से भावघातिरूप से घात करता है अपने... स्वरूप का। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **अव्याबाध अनन्त सुखादिगुण...** अनन्त लिये न अनन्त। हीनपरिणमन के कारण से ढँक हुए हैं, कर्म से ढँके हुए हैं, यह निमित्त से कथन है।

तो भी निश्चयनयकर कर्म के अभाव से... आहाहा! जिसमें जड़कर्म का भी अभाव और हीन भावघाति के परिणमन का भी जिसमें अभाव है। आहाहा! **ढँके हुए हैं, तो भी निश्चयनयकर कर्म के अभाव से सभी जीव गुणोंकर समान हैं।** आहाहा! शक्ति—गुण की स्वभाव की सत्ता अस्तिरूप से सब जीव समान हैं। आहाहा! कहो, अभव्य का जीव भी समान है। यहाँ तो द्रव्यस्वभाव की बात लेनी है न! पर्याय में अन्तर है, वह तो व्यवहार से है। आहाहा! ऐसे कथन आवे स्पष्ट कि कर्म से ढँका हुआ है और यहाँ तुम अर्थ दूसरे करते हो। संक्षिप्त भाषा में... हमारे पण्डितजी ने लिखा है, नहीं? पंचास्तिकाय में न? वह निमित्त का कथन है। संक्षिप्त बोलने का कथन है। लम्बा-लम्बा करने जाये कि हीनपने परिणमा है, उसमें कर्म का निमित्त है, दोनों उसमें नहीं इसलिए... लम्बा-लम्बा (न कहे)। भाषा तो ऐसी ही होने की। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात विवाद की कहाँ है, बापू! आहाहा!

सभी जीव गुणोंकर समान हैं। ऐसा जो शुद्ध आत्मा का स्वरूप है,... आहाहा!

देखो! इसका तात्पर्य—रहस्य बताया। **ऐसा जो शुद्ध आत्मा का स्वरूप है, वही ध्यान करनेयोग्य है।** आहाहा! वह श्रद्धा में लेने योग्य है। आहाहा! ध्यानविषय कुरु। वर्तमान पर्याय का विषय उसे बना। आहाहा! असंख्य प्रदेशी समान, गुण से समान, आवरण से रहित ऐसा जो भगवान आत्मा... आहाहा! उसे वर्तमान में हीन पर्याय और रागवाली से भिन्न कर, अधिक कर डाल। आहाहा! यह कुछ बात है, भाई! हीन पर्याय है, उसे निमित्त है, असंख्य प्रदेशी संकोच-विकास है, उससे भिन्न है। पूर्णानन्द का नाथ भगवान तेरा... आहाहा! उसका ध्यान कर। उसे ध्यान में ले, उसे ध्यान में ले। आहाहा! किसे ध्यान में ले? जो गुण से परिपूर्ण, असंख्यप्रदेश से परिपूर्ण, जन्म-मरणरहित... आहाहा! जिसमें पर्याय की हीन अवस्था का भी जिसमें अभाव, उसे ध्यान में ले। आहाहा! ऐसा तो कभी सुनने को मिले। हें! आहाहा! यदि मध्यस्थता से आठ दिन सुने तो इसे खबर पड़े। हें! कि यह क्या है। परन्तु ऐसा का ऐसा विरोध करे। करो बापू! क्या हो? उसे जँचा न हो, बैठा न हो तो अपनी बात जिस प्रकार से रुचि है, उस प्रकार से वह बात करे, दूसरा क्या करे? आहाहा! 'जिसमें जितनी बुद्धि है, इतनो दिये बताय, वांको बुरो न मानिये और कहाँ से लाये?' आहाहा!

मुमुक्षु : उसे तो ऐसा लगे कि आवरणवाली पर्याय निरावरण स्वभाव में....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पर्याय में आवरण और हीन है, वस्तु में कहाँ है? आहाहा! वह पर्यायनय का विषय है, ऐसा सिद्ध किया कि है अवश्य। परन्तु अन्दर वस्तु में नहीं, इसलिए निश्चय में निषेध हो गया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

९७ (गाथा) बहुत अच्छी आयी, लो। आहाहा! सहज आज बढ़ने का दिन है। हें! उसमें आज गाथा आयी है। आहाहा! और सवेरे भी यह आया था, यह सब खलबलाहट करते हैं न। 'हरि भजता हजी कोईनी लाज जाता नथी जाणी रे...' ऐसे भगवान को भजने से किसी की हीन दशा हो, ऐसा है नहीं जगत में। आहाहा! ऐसा मार्ग है, बापू! यह ९७ (गाथा) पूरी हुई। आहाहा! यहाँ व्यवहार में असंख्य प्रदेश संकोच-विकास है, जन्म-मरणसहित है, अल्पज्ञतासहित है, आवरण का निमित्त है, वह है। परन्तु वापस यहाँ उड़ा दिया। इस प्रकार व्यवहार के काल में व्यवहार है, परन्तु व्यवहार का स्वभाव में अभाव है, इसलिए उससे स्वभाव की प्राप्ति हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

समझ में आया? ऐसा है, वारियाजी! ऐसा मार्ग।

मुमुक्षु : ऐसा सुनने ही आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इसे प्रेम है न, रस है। आहाहा! यह तो प्रभु! तेरे घर की बात है न, भाई! तेरा घर कितना बड़ा! आहाहा! बड़े के घर में जाना हो तो कितनी तैयारी होकर जाया जाता है। हें! इसी तरह पर्याय में योग्यता से अन्दर में जाया जाता है। आहाहा! यह प्रथा ही टूट गयी थी। लोगों को दूसरा बैठ गया हो न दृढ़।

मुमुक्षु : निमित्त से होता है, व्यवहार से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बस बात यह। यह कहे वह बराबर, परन्तु ऐसा कहे वह ठीक नहीं। सोनगढ़वाले परस्त्री को सेवन करे तो पाप नहीं, ऐसा कहते हैं। अरर! प्रभु! यह नहीं होता, भाई! ऐसी बात नहीं की जाती। ऐसा कहते हैं कि व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा मानते नहीं। मात्र निश्चय से ही होता है, इसलिए एकान्त है, ऐसा कह सकते हैं वे। तत्त्व की अपेक्षा में ऐसा कहे परन्तु ऐसी बात तो नहीं करनी चाहिए। अररर! यहाँ तो व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प को पाप कहना है। अर र! स्त्री सेवन की बातें बापू! अरे... प्रभु... प्रभु! क्या होगा? वापस वाममार्गी ठहराते हैं। गजब करते हैं न! यह कहे तो बराबर है, उसकी बात, व्यवहार से होता है, उसकी बात ही करते नहीं और व्यवहार को उड़ा देते हैं। यह बात सच्ची है। निमित्त से होता है, ऐसा कहते नहीं। यह स्पष्टीकरण तो भाई ने—कैलाशचन्दजी ने कर दिया है कि सोनगढ़वाले निमित्त का निषेध करते हैं, परन्तु निमित्त नहीं, ऐसा नहीं। परन्तु निमित्त से कर्ता हो, यह इनकार करते हैं। यह बात तो ऐसी ही है। निमित्त नहीं? निमित्त है। परन्तु निमित्त पर के कार्य का कर्ता नहीं। इसी प्रकार व्यवहार नहीं? व्यवहार है। परन्तु व्यवहार निश्चय का कर्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : उपकारी का उपकार छुपावे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त से नहीं होता, तब ही उसका उपकार माने, यह व्यवहार है। आहाहा! यह समझे बिना क्या? आहाहा! उसे ऐसा विकल्प आवे, बन्ध का कारण है परन्तु विनय का आता है। आहाहा!

गाथा - ९८

अथ जीवानां ज्ञानदर्शनलक्षणं प्रतिपादयति-

२२१) जीवहँ लक्खणु जिणवरहि भासिउ दंसण-णाणु।
तेण ण किज्जइ भेउ तहँ जइ मणि जाउ विहाणु।।९८।।

जीवानां लक्षणं जिनवरैः भाषितं दर्शनं ज्ञानं।
तेन न क्रियते भेदः तेषां यदि मनसि जातो विभातः।।९८।।

जीवहं इत्यादि। जीवहं लक्खणु जिणवरहिं भासिउ दंसण-णाणु यधपि व्यवहारेण संसारावस्थायां मत्यादिज्ञानं चक्षुरादिदर्शनं जीवानां लक्षणं भवति तथापि निश्चयेन केवलदर्शनं केवलज्ञानं च लक्षणं भाषितम्। कैः जिनवरैः। तेण ण किज्जइ भेउ तहँ तेन कारणेन व्यवहारेण देहभेदेऽपि केवलज्ञानदर्शनरुपनिश्चयलक्षणेन तेषां न क्रियते भेदः। यदि किम्। जइ मणि जाउ विहाणु यदि चेन्मनसि वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानादित्योदयेन जातः। कोऽसौ। प्रभातसमय इति। अत्र यधपि [१]षोडशवर्णिकालक्षणं बहूनां सुवर्णानां मध्ये समानं तथाप्येकस्मिन् सुवर्ण गृहीते शेषसुवर्णानि सहैव नायान्ति। कस्मात्। भिन्नभिन्नप्रदेशत्वात्। तथा यद्यपि केवलज्ञान-दर्शनलक्षणं समानं सर्वजीवानां तथाप्येकस्मिन् विवक्षितजीवे पृथक्कृते शेषजीवा सहैव नायान्ति। कस्मात्। भिन्नभिन्नप्रदेशत्वात्। तेन कारणेन ज्ञायते यधपि केवलज्ञानदर्शनलक्षणं समानं तथापि प्रदेशभेदोऽस्तीति भावार्थः।।९८।।

आगे जीवों का ज्ञान-दर्शन लक्षण कहते हैं-

जिनवर ने जीवों का लक्षण दर्शन ज्ञान बताया है।
अतः न उनमें भेद करो यदि मन में ज्ञान सूर्य ऊगा।।९८।।

अन्वयार्थ :- [जीवानां लक्षणं] जीवों का लक्षण [जिनवरैः] जिनेंद्रदेव ने [दर्शनं ज्ञानं] दर्शन और ज्ञान [भाषितं] कहा है, [तेन] इसलिए [तेषां] उन जीवों में [भेदः] भेद [न क्रियते] मत कर, [यदि] अगर [मनसि] तेरे मन में [विभातः जातः] ज्ञानरुपी सूर्य का उदय हो गया है, अर्थात् हे शिष्य, तू सबको समान जान।

भावार्थ :- यधपि व्यवहारनय से संसारी अवस्था में मत्यादि ज्ञान, और चक्षुरादि दर्शन जीव के लक्षण कहे हैं, तो भी निश्चयनयकर-केवलदर्शन केवलज्ञान ये ही लक्षण हैं, ऐसा जिनेंद्रदेव ने वर्णन किया है। इसलिये व्यवहारनयकर देह-भेद से भी भेद नहीं है, केवलज्ञानदर्शनरुप निजलक्षणकर सब समान हैं, कोई भी बड़ा-छोटा नहीं है। जो तेरे मन में वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानरुप सूर्य का उदय हुआ है, और मोह-

निद्रा के अभाव से आत्म-बोधरुप प्रभात हुआ है, तो तू सबों को समान देख। जैसे यधपि सोलहवानी के सोने सब समान वृत हैं, तो भी उन सुवर्ण-राशियों में से एक सुवर्ण को ग्रहण किया, तो उसके ग्रहण करने से सब सुवर्ण साथ नहीं आते, क्योंकि सबके प्रदेश भिन्न हैं, उसी प्रकार यधपि केवलज्ञान दर्शन लक्षण सब जीव समान हैं, तो भी एक जीव का ग्रहण करने से सबका ग्रहण नहीं होता। क्योंकि प्रदेश सबके भिन्न-भिन्न हैं, इससे यह निश्चय हुआ, कि यधपि केवलज्ञान दर्शन लक्षण से सब जीव समान हैं, तो भी प्रदेश सबके जुदे-जुदे हैं, यह तात्पर्य जानना।।९८।।

गाथा-९८ पर प्रवचन

९८। **आगे जीवों का ज्ञान-दर्शन लक्षण कहते हैं:—**लो।

२२१) जीवहँ लक्खणु जिणवरहि भासिउ दंसण-णाणु।
तेण ण किज्जइ भेउ तहँ जइ मणि जाउ विहाणु।।९८।।

भगवान जिनवरदेव ने जीव का लक्षण ज्ञान-दर्शन कहा तो फिर अब भेद नहीं करना कि यह जीव ऐसा है और यह जीव ऐसा। सब ज्ञान-दर्शन से (पूर्ण है)। परन्तु गजब काम किया है न! आहाहा! देखो! कहते हैं, तेरा सूर्य उग गया है, ज्ञानरूपी सूर्य उग गया तो अब भेद करना नहीं, सब ज्ञान-दर्शनवाले समान हैं। आहाहा!

अन्वयार्थ :—जीवों का लक्षण जिनेन्द्रदेव ने... आहाहा! **दर्शन औन ज्ञान कहा है,...** देखना और जानना, वह इसका स्वभाव है, वह इसका लक्षण कहा। आहाहा! **इसलिए उन जीवों में भेद मत कर,...** कि यह अल्पज्ञानी है और यह अल्पदर्शी है, ऐसा रहने दे अब। आहाहा! कितना समभाव! ज्ञान-दर्शन कहे हैं भगवान ने, **उन जीवों में भेद मत कर, अगर तेरे मन में...** आहाहा! **'विभातः जातः'** आहाहा! **ज्ञानरूपी, सूर्य का उदय हो गया है,...** आहाहा! यदि तुझे सम्यग्ज्ञान उदित हुआ हो तो यह भेद न कर अब। आहाहा! यह आया है, हों! पहले कहना था न, वह इसमें आया। निचली लाईन में है, निचली में। **तेरे मन में वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानरूप सूर्य का उदय हुआ है,...** टीका में नीचे आयेगा। यह तो अभी शब्दार्थ है। **ज्ञानरूपी सूर्य का उदय हो गया है, अर्थात् हे शिष्य! तू सबको समान जान।** आहाहा! टीका ली जायेगी बाद में...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, पौष शुक्ल ४, शुक्रवार
दिनांक-२४-१२-१९७६, गाथा - ९८, ९९, प्रवचन-१६७

९८ का भावार्थ चलता है न? परमात्मप्रकाश, गाथा ९८ चलती है। भावार्थ। अध्यात्म विषय है सूक्ष्म। अनन्त काल से यह आत्मा अन्दर ज्ञान-दर्शनलक्षण सम्पन्न है, त्रिकाली ज्ञान-दर्शन सम्पन्न ही आत्मा है, ऐसा कभी निर्णय किया नहीं, अनुभव किया नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि, **यद्यपि व्यवहारनय से संसारी अवस्था में...** संसारीदशा में **मत्यादि ज्ञान...** है। मतिज्ञान पर्याय अल्प है **और चक्षुरादि दर्शन...** भी है। वे **जीव के लक्षण कहे हैं,...** व्यवहार से। आहाहा! भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप आत्मा है, उसका व्यवहारनय से मतिज्ञान, चक्षुदर्शन आदि पर्यायलक्षण व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! **तो भी निश्चयनयकर—केवलदर्शन, केवलज्ञान ये ही लक्षण हैं,...** आहाहा! केवलज्ञान, दर्शन पर्याय नहीं, हों! आहाहा! भगवान आत्मा जिनवर परमेश्वर ऐसा कहते हैं—ऐसा कहते हैं न? देखो! '**जिणवरहि भासिउ।**' जिनवर वीतराग त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि में ऐसा आया कि '**दंसण-णाणु-लक्खणु।**' आहाहा! भगवान आत्मा केवलदर्शन, केवलज्ञान जो त्रिकाली स्वभाव, वह उसका लक्षण है। समझ में आया? कहो, व्यवहाररत्नत्रय जो विकल्प-राग है, वह तो उसका लक्षण ही नहीं, और मतिज्ञान, चक्षुदर्शन आदि की पर्याय है, वह व्यवहारलक्षण है। आहाहा! निश्चय में तो भगवान आत्मा केवलज्ञान, केवलदर्शन, वह उसका लक्षण है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात भाई! आहाहा!

आत्मा निमित्त से तो ज्ञात होता नहीं, और व्यवहाररत्नत्रय दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव से भी ज्ञात नहीं होता। और व्यवहारनय से मतिज्ञान आदि, चक्षुदर्शन आदि की पर्याय से ज्ञात होता है, तो वह तो व्यवहार है। आहाहा! त्रिकाली भगवान ज्ञान और आनन्द, ज्ञान और दर्शन उसका त्रिकाली स्वभाव ज्ञान और दर्शन है—केवलदर्शन, केवलज्ञान। आहाहा! वह जिसका लक्षण है, उससे ज्ञात होता है। समझ में आया? योगीन्द्रदेव १३०० वर्ष पहले दिगम्बर मुनि हुए। कुन्दकुन्दाचार्य के बाद हुए हैं, वे

कहते हैं। आहाहा! **ऐसा जिनेन्द्रदेव ने वर्णन किया है।** है ? आहाहा! गणधर और एक भवतारी इन्द्रों की सभा में भगवान जिनवरदेव की यह वाणी थी, दिव्यध्वनि यह थी कि तेरी चीज़ निमित्त से तो ज्ञात होती नहीं, व्यवहार विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति से भी ज्ञात नहीं होती, व्यवहारनय से तो मतिज्ञान और चक्षुदर्शन से ज्ञात होती है, ऐसा व्यवहारनय से कहा जाता है। आहाहा! निश्चय से तो त्रिकाली ज्ञान-दर्शनलक्षण, त्रिकाली ज्ञान उपयोग—दर्शन त्रिकाल, उस लक्षण से ज्ञात होता है, ऐसा जिनवर ने कहा है। समझ में आया ? है ? **निश्चयनयकर केवलदर्शन-केवलज्ञान ये ही लक्षण हैं,...** इसका अर्थ कि इस लक्षण से ज्ञात होता है।

मुमुक्षु : पारिणामिकभाव लक्षण हुआ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाली पारिणामिकभाव, उसमें जो केवलज्ञान, केवलदर्शन त्रिकाली है, उस लक्षण से ज्ञात होता है। जानती है पर्याय, परन्तु उस लक्षण से ज्ञात होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! वीतरागमार्ग जिनवर का मार्ग अलौकिक है। आहाहा! सेठ को देरी क्यों लगी ? कहो, सेठ! समझ में आया ? अभी तक सब निकाला, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

आत्मा वह वस्तु है, उसमें ज्ञान-दर्शन त्रिकाली स्वभाव है। आहाहा! तो वह आत्मा त्रिकाली ज्ञान-दर्शन लक्षण से ज्ञात होता है, ज्ञात होता है पर्याय में, परन्तु वह ज्ञान-दर्शन लक्षण त्रिकाली है, उससे ज्ञात होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! परमात्मप्रकाश, दिगम्बर सन्त जो केवली के पथानुगामी, उनकी अध्यात्म-वाणी बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! **इसलिए...** इसलिए अर्थात् जिनेन्द्रदेव वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, त्रिकाली ज्ञान-दर्शन उसका लक्षण है, वह निश्चय से है। त्रिकाली ज्ञान-दर्शन लक्षण है, वह त्रिकाली है, परन्तु उसका निर्णय करनेवाली पर्याय वर्तमान है। क्या कहते हैं, समझ में आया ? केवलदर्शन, केवलज्ञान जो गुण आत्मा का लक्षण। उसका लक्षण कोई दया, दान, व्रत, भक्ति, वह उसका लक्षण नहीं, वह तो उपाधि / विकार है। आहाहा! समझ में आया ?

त्रिकाली भगवान आत्मा का त्रिकाली ज्ञान-दर्शन लक्षण। आहाहा! उस लक्षण

द्वारा अर्थात् गुण की ध्रुवता द्वारा गुणी को जाना जा सकता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, सेठ! अभी तो लोगों ने मार्ग को पूरा बिखेर डाला है। आहाहा! जिनवरदेव परमेश्वर अनन्त-अनन्त जिनवर, तीर्थंकर ऐसा कहते हैं। है न पाठ? '**जिणवरहि भासिउ**'। हें! '**जीवहँ लक्खणु जिणवरहि भासिउ दंसण-णाणु।**' आहाहा! गजब काम किया है न!

मुमुक्षु : स्थूल ज्ञान सूक्ष्म का निर्णय किस प्रकार करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : करे अन्दर पर्याय, गुण को पकड़े कि यह आत्मा है, ऐसा। ज्ञान-दर्शन त्रिकाली है, वह आत्मा। सूक्ष्म बात! त्रिकाली गुण से निर्णय नहीं होता, निर्णय तो पर्याय में होता है, परन्तु पर्याय का लक्ष्य कहाँ है? हें! आहाहा! गजब बात है, ऐसी बात। त्रिकाली ज्ञान-दर्शन लक्षण है तो त्रिकाली है, वह तो ध्रुव है। हें! यहाँ मतिज्ञान आदि व्यवहार को तो निकाल डाला, वह तो व्यवहार है। आहाहा!

वस्तु जो है वस्तु भगवान आत्मा, उसका त्रिकाली उपयोग—दर्शन, ज्ञान उपयोग लक्षण है। '**उवओगो लखणं**' है न तत्त्वार्थसूत्र उमास्वामी (कृत)। दसलक्षणीपर्व में वाँचा जाता है परन्तु बाहर की व्यवहार की बातें अकेली, तत्त्व क्या है, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा! यहाँ तो परमात्मा जो परमात्मा जिनवर ने कहा, वह यहाँ सन्त कहते हैं। आहाहा! **ऐसा जिनेन्द्रदेव ने वर्णन किया है।** आहाहा!

मुमुक्षु : निर्णय करनेवाला ज्ञान स्वयं लक्षण नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्णय करनेवाला ज्ञान, वह लक्षण नहीं, त्रिकाली लक्षण (कहना है)। मतिज्ञान को लक्षण कहा, वह व्यवहार से कहा है। आहाहा! मतिज्ञान, श्रुतज्ञान वर्तमान सम्यक् पर्याय है, वह तो व्यवहार हुआ। वर्तमान पर्याय है न! और त्रिकाली ज्ञान-दर्शन, वह निश्चय हुआ। आहाहा! सूक्ष्म है थोड़ा। व्यवहारनय से मतिज्ञान आदि, चक्षु (दर्शन) आदि है तो भी निश्चयनय से अर्थात् अन्दर ध्रुव में लक्ष्य करने से जो ज्ञान-दर्शन ध्रुव, वह ध्रुव का लक्षण है। आत्मा का वह लक्षण है।

मुमुक्षु : त्रिकाली वस्तु का त्रिकाली लक्षण।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! आहाहा! यह कहेंगे।

इसलिए व्यवहारनयकर देह से... भेद होने पर भी। यह जरा शब्द में अन्तर है अर्थ में। पाठ में ऐसा है। **'व्यवहारेण देहभेदेऽपि'** ऐसा है। अर्थ में जरा शब्द में अन्तर हो गया है। **व्यवहारनयकर देह में भेद होने पर भी केवलज्ञानदर्शनरूप निजलक्षणकर सब समान हैं,...** क्या कहा, समझ में आया? यह तो वीतराग परमेश्वर भाई! परमेश्वर जिनवर किसे कहे? यह साधारण लोग मान ले कि भगवान ऐसे। परन्तु बापू! भगवान को समझना, वह बहुत अपूर्व बात है। जिनवर, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल—तीन लोक अपनी पर्याय में ज्ञात हुए। पर्याय को जानते हुए ज्ञात हो गये। आहाहा!

मुमुक्षु : निश्चय से भेद नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शब्द में अन्तर हो गया है। **व्यवहारनयकर देह से भिन्न होने पर भी...** ऐसा चाहिए। **देह-भेद से भी भेद होने पर भी...** ऐसा है न भाई! समझ में आया? ऐसा उपदेश धर्म? यह वीतराग का मार्ग ऐसा होगा? यहाँ तो कहे, भक्ति करना, पूजा करना, व्रत करना, तप करना। भाई! वे सब क्रियायें तो राग की क्रिया हैं। वह वीतरागमार्ग ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? वीतराग जिनवरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा ऐसा कहते हैं, निश्चय केवलज्ञान, केवलदर्शन वह उसका लक्षण है और उससे लक्ष्य में आता है। (लक्ष्य) करनेवाली पर्याय है, निर्णय करनेवाली पर्याय है, परन्तु पर्याय ने, ज्ञान-दर्शन जो त्रिकाल, उससे ज्ञात होता है, ऐसा जाना है। आहाहा! भारी कठिन बातें! परमात्मप्रकाश है यह।

मुमुक्षु : यह भी भेद हो गया, यह लक्षण और यह लक्ष्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लक्ष्य इतना समझाने के लिये भेद है। लक्षण और लक्ष्य यह व्यवहार भेद है। निश्चय तो लक्षण और लक्ष्य एकरूप है। यहाँ तो ज्ञात होता है, ऐसा बतलाना है न। तो ज्ञात तो पर्याय में आता है। परन्तु वह पर्याय, त्रिकाली ज्ञान-दर्शन लक्षणवाला यह द्रव्य, उसे वह जानती है। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

व्यवहारनयकर देह से भेद होने पर भी... भेद से भी भेद नहीं, ऐसा नहीं। देह से भेद होने पर भी **केवलज्ञानरूप निजलक्षणकर सब समान हैं,...** सब भगवान आत्मा

है। आहाहा! निगोद का जीव हो, पंचेन्द्रिय का हो, नारकी हो, देव का हो। आत्मा अन्दर है आत्मा। आहाहा! उसका जो ज्ञान-दर्शन त्रिकाली लक्षण है... आहाहा! द्रव्यसंग्रह में आता है भाई यह, उपयोग त्रिकाली लक्षण। द्रव्यसंग्रह। त्रिकाली, हों! आहाहा! त्रिकाली ज्ञान-दर्शन ध्रुव, वह कायम ज्ञान-दर्शन रहनेवाला लक्षण। वर्तमान पर्याय इस लक्षण से आत्मा को जानती है। आहाहा! समझ में आया? भाई! मार्ग सम्यग्दर्शन का अलौकिक है। सम्यग्दर्शन बिना सब थोथा है। आहाहा! यह व्रत, तप और सब एक बिना के शून्य हैं। एक को क्या कहा जाता है? बिन्दु। आहाहा! वह यहाँ बताते हैं।

भगवान! तू तो परमात्मस्वरूप है न! परमात्मप्रकाश है न! तो परमात्मस्वरूप ही आत्मा है और उसका लक्षण अन्दर त्रिकाली ज्ञान-दर्शन, वह त्रिकाली उसका लक्षण है। आहाहा! वह लक्षण यह और लक्ष्य यह, उसका अभेद का निर्णय तो पर्याय करती है। परन्तु वह पर्याय सीधा पर्याय लक्षण है और यह (लक्ष्य है), ऐसा नहीं है। वह पर्याय त्रिकाली लक्षण है, वह वस्तु है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! अनन्त काल हुआ, अनन्त-अनन्त काल। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' मुनिपना अनन्त बार लिया, दिगम्बर मुनि हजारों रानियाँ त्याग किया और पंच महाव्रत, पाँच समिति, गुप्ति अनन्त बार ली। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' अनन्त पुद्‌गलपरावर्तन नौवें ग्रैवेयक के किये। आहाहा! 'पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' आहाहा! इसका अर्थ क्या हुआ? कि पंच महाव्रत, पाँच समिति, गुप्ति जो विकल्प राग है, वह तो दुःख है। आहाहा! उस दुःख से आत्मा ज्ञात नहीं होता। आहाहा!

भगवान ज्ञान और आनन्दस्वरूप प्रभु है। वह दुःख की क्रिया तो राग की क्रिया है, उससे ज्ञात नहीं होता। आहाहा! 'आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' ऐसा छहढाला में आता है। परन्तु कहाँ पड़ी है दरकार जगत को? मात्र इस संसार की बातें। उससे निवृत्त हो तो व्यवहार क्रियाकाण्ड करे। हो गया।

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही। आहाहा! क्या कहते हैं, देखो!

निजलक्षणकर **कोई भी बड़ा-छोटा नहीं है।** आहाहा! अनन्त आत्मा जो है अनन्त आत्मा, निगोद से लेकर सब, वे केवलज्ञान-केवलदर्शन से ज्ञात होते हैं, यह उसका लक्षण है। वे सब समान हैं। सभी आत्मा समान हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : केवलज्ञान, केवलदर्शन क्यों लिखा है? सहज ज्ञान, दर्शन लिखना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : सहज ज्ञान त्रिकाली। यह त्रिकाली केवलज्ञान। उपयोग लक्षण के दो अर्थ हैं। एक उपयोग त्रिकाली लक्षण है। द्रव्यसंग्रह में (आता है)। सूक्ष्म बात है, भाई! सम्यग्दर्शन, वह चीज़ ऐसी है कि अनन्त-अनन्त काल हुआ, अनन्त बार मुनिपना लिया, परन्तु सम्यग्दर्शन नहीं किया। आहाहा! वह मुनिव्रत भी सम्यग्दर्शन बिना थोथा निकला, चार गति में भटका। सूक्ष्म बात, बापू! इसलिए मुश्किल पड़ती है न लोगों को। यह क्या कहते हैं?

अब यहाँ कहते हैं, देखो! **केवलज्ञानदर्शनरूप निजलक्षणकर सब समान हैं,...** आहाहा! **कोई भी बड़ा-छोटा नहीं है। जो तेरे मन में वीतराग...** अब आया यह, देखो! यह पर्याय आयी। शान्ति से समझना, बापू! यह तो जिनवरदेव तीन लोक के नाथ तीर्थंकर, गणधर और एकावतारी इन्द्रों के बीच यह बात करते थे। महाविदेह में भगवान विराजते हैं। सीमन्धर भगवान तो अभी विराजते हैं। आहाहा! वहाँ कुन्दकुन्दाचार्य गये थे, आठ दिन वहाँ रहे थे। यह (परमागममन्दिर में) बीच में कुन्दकुन्दाचार्य हैं, वे आठ दिन (महाविदेहक्षेत्र में) रहे थे। संवत् ४९। साक्षात् भगवान विराजते हैं महाविदेह में, पाँच सौ धनुष का देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है और अभी अरबों वर्ष है और अभी अरबों वर्ष रहेंगे। आहाहा! भगवान के पास गये थे, आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाये हैं।

मुमुक्षु : आपने उद्घाटन किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, ऐसा कहते हैं। बात तो ऐसी है। आहाहा!

अब यहाँ क्या कहते हैं? त्रिकाली ज्ञानलक्षण, वह उसका लक्षण। जानने में कैसे आया? कहते हैं। समझ में आया? **तेरे मन में वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञानरूप सूर्य का उदय हुआ है,...** आहाहा! तेरे मन में वीतराग निर्विकल्प पर्याय अन्दर वीतरागी।

आहाहा! स्वसंवेदन। अपने ज्ञानस्वरूप का स्व अर्थात् अपना, सं—प्रत्यक्ष वेदन। आहाहा! **वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञानरूप सूर्य का उदय हुआ है,...** आहाहा! तो ऐसा निर्णय कर, ऐसा कहते हैं। परन्तु यह पर्याय आयी। आहाहा! गजब बात है! दिगम्बर सन्तों की अध्यात्म की कथनी कहीं नहीं है। सम्प्रदाय को मिलती नहीं। ऐसे के ऐसे बिना भान के व्यवहारक्रिया (करे), यह किया और यह करो। जिन्दगी चली जाती है। हो गया।

तीन बातें लीं। यह आत्मा मतिज्ञानादि से ज्ञात होता है, यह तो व्यवहारनय है। एक बात। केवलज्ञान, केवलदर्शन त्रिकाली लक्षण से जानना, यह निश्चय है। दो बात। परन्तु वह ज्ञात होता है किस पर्याय में? भाई! आहाहा! तेरे मन में निर्विकल्प पर्याय का वेदन हुआ हो, उसमें तुझे ख्याल में आयेगा। आहाहा! **तेरे मन में वीतराग निर्विकल्प...** रागरहित वीतरागी परिणति—दशा निर्विकल्प अभेद... आहाहा! स्वसंवेदन—अपना आत्मा ही स्व, अपने वेदन में आनेवाला। ऐसे **ज्ञानरूप सूर्य का उदय हुआ है,...** ऐसे ज्ञानरूप सूर्य का उदय हुआ है तो ऐसा जान कि ज्ञान-दर्शन त्रिकाली, वह आत्मा है। तीनों आये—द्रव्य, गुण और पर्याय। भाई! द्रव्य, गुण और पर्याय। आहाहा! गजब बात है!

द्रव्य वह वस्तु। भगवान त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु। उसका गुण यहाँ केवलज्ञान, केवलदर्शन यह लक्षण। आहाहा! परन्तु इस लक्षण से ज्ञात होता है किसकी पर्याय में? आहाहा! सम्यग्दृष्टि को... आहाहा! रागरहित वीतरागी पर्याय निर्विकल्प अभेद स्वसंवेदनज्ञानरूप अवस्था... आहाहा! है? ऐसा जो सूर्य उदय हुआ हो तो वह ऐसा जान। आहाहा! लोगों को यह ऐसा लगता है कि निश्चय... निश्चय। परन्तु निश्चय (अर्थात्) यही सत्य है। ऐसा कि व्यवहार (तो कहते नहीं)। व्यवहार तो असत्य राग है। यहाँ तो मतिज्ञान की पर्याय को व्यवहार कह दिया। राग-द्वेष के परिणाम, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम तो राग है, उसकी तो यहाँ बात है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! देखो! यह सन्तों-दिगम्बर सन्तों के द्रव्य, गुण और पर्याय के चढावा! आहाहा!

भगवान! तुझमें तीन वस्तु है—एक द्रव्य वस्तु त्रिकाली। उसके ज्ञान, दर्शन लक्षण यह त्रिकाली। अब वह त्रिकाली, वर्तमान निर्विकल्प पर्याय में ज्ञात होता है, वह सूर्य उदित हुआ तो तुझे ख्याल आया। आहाहा! समझ में आया? वीरचन्दभाई! ऐसा सूक्ष्म है।

मुमुक्षु : इसमें कुछ पात्रता तो होनी चाहिए न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यही पात्रता। जिसमें आत्मा दृष्टि में आ गया, वह पात्रता। अब उसमें मोक्ष रह सकेगा। समझ में आया? श्रीमद् राजचन्द्र ने ऐसा कहा है, सम्यग्दर्शन, वही पात्रता है। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! इसने अनन्त काल... आहाहा! त्याग लिया, मुनिपना लिया, संयम लिया, हजारों रानियों का त्याग किया परन्तु अन्दर मिथ्यात्व का त्याग नहीं किया। इसके बिना सब मिथ्या परिभ्रमण चार गति में रहा। आहाहा! समझ में आया? अधिकार ऐसा है, भाई!

दूसरे प्रकार से कहें तो वस्तु है, वह वीतरागस्वरूप है और त्रिकाली ज्ञान-दर्शन है, वह भी वीतरागस्वरूप ही है। परन्तु ज्ञान-दर्शन से वीतराग। और उसकी परिणति वीतरागी हो, उसमें वह ख्याल में आता है। ऐसा धर्म कहाँ का? अरे... भगवान! बापू! यह वस्तु ऐसी है। जिनदेव वीतरागदेव... इसीलिए तो आचार्य कहते हैं, **'जीवहँ लक्खणु जिणवरहि भासिउ दंसण-णाणु'**। जिनवर पाठ है न? जिनवर मूल पाठ में है। **'जीवहँ लक्खणु जिणवरहि भासिउ दंसण-णाणु, तेण ण किज्जइ भेउ'** इसलिए भेद न कर। क्यों? **'जइ मणि जाउ विहाणु'** यदि तुझे सम्यग्ज्ञान का सूर्य उगा हो तो अब भेद न कर। आहाहा! गाथा तो गाथा है! ओहो! ऐसे सबको समान जानना किस प्रकार होता है? **तेरे मन में वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानरूप सूर्य का उदय हुआ है,...** तो ऐसे जान। आहाहा!

और मोह-निद्रा के अभाव से आत्म-बोधरूप प्रभात हुआ है,... आहाहा! मोह अर्थात् मिथ्यात्वरूपी निद्रा, उसके अभाव से आत्मबोधरूप प्रभात हुआ। आत्मबोधरूप—आत्मा ऐसा है, ऐसा बोध सम्यक्ज्ञान में हुआ। आहाहा! कितनों ने तो यह बात सुनी न हो जिन्दगी में। निवृत्ति कहाँ है? आहाहा! क्या गाथा! (सूर्य का) **उदय हुआ है, और**

मोह-निद्रा के अभाव से... मिथ्यात्व के नाश से **आत्म-बोधरूप प्रभात हुआ है....** प्रभात उगा। आहाहा! सम्यग्ज्ञानरूपी वीतरागी निर्विकल्प ज्ञान का सूर्य यदि तुझे उगा हो और मोह-निद्रा का अभाव होकर प्रभात हुआ हो तो ऐसा जान। ऐसी बात है, सेठ! कभी सुनी नहीं, ऐसी यह बात है। बात सच्ची, ऐसा फेरफार हो गया। अरेरे!

सत्य-सूर्य भगवान आत्मा... आहाहा! ज्ञान-दर्शन के लक्षण से सूर्य प्रभु आत्मा, निर्विकल्प वीतराग स्वसंवेदन पर्याय से यदि तुझे सूर्य उगा हो, प्रभात हुआ हो तो उसे ऐसे जान। आहाहा! श्वेताम्बर में बत्तीस, पैंतालीस सूत्र, करोड़ों श्लोक वांचों तो इस एक गाथा का सार उनमें कहीं है नहीं। समझ में आया? ओहो! गजब किया है सन्तों ने, दिगम्बर सन्तों ने!! आहाहा! श्वेताम्बर के तो करोड़ों श्लोक देखे हैं। यह एक गाथा जो है, उसके एक भाव की गन्ध नहीं मिलती कहीं। आहाहा! यह तो सनातन जैनदर्शन। आहाहा! गजब बात है, भाई! आहाहा!

कहते हैं कि ज्ञान-दर्शन त्रिकाली लक्षण से, वह लक्षण द्रव्य का—वस्तु का, परन्तु जिसे निर्विकल्प वीतरागी पर्याय प्रगट हुई है, सूर्य उगा है, उसमें ज्ञात होता है। आहाहा! कहो, यह कारणपरमात्मा। प्रश्न किया था न भाई ने। कारणपरमात्मा आत्मा त्रिकाली है तो कार्य क्यों नहीं हुआ? परन्तु कहते हैं कि कार्य में निर्विकल्पदशा प्रगट करके, 'यह है', ऐसी मान्यता हुई, उसे प्रगट होता है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग बापू... अनन्त जन्म-मरणरहित और अनन्त-अनन्त आनन्द मुक्तदशा (हो), उसका उपाय कोई अलौकिक है! आहाहा! ओहोहो!

व्यवहाररत्नत्रय है, दया, दान, व्रत, भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि, वह तो राग है। राग तो व्यवहार से भी लक्षण नहीं। क्या कहा, समझ में आया? व्यवहार भी लक्षण नहीं। उससे ज्ञात होता है, ऐसा उसका लक्षण ही नहीं। आहाहा! गजब बात करते हैं न! व्यवहार लक्षण हो तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान की पर्याय है, वह व्यवहारलक्षण है। आहाहा! और त्रिकाली ज्ञान-दर्शन स्वभाव भगवान चैतन्यबिम्ब परमात्मस्वरूप परमात्मा—आत्मा है। ऐसा निर्विकल्प वीतरागपर्याय स्वसंवेदन सूर्य यदि तुझे उगा हो और मिथ्यात्व का नाश होकर प्रभात हुआ हो तो उसे देख। आहाहा! शास्त्र में है या

नहीं यह ? यह शास्त्र में है, उसकी तो बात चलती है। **तो तू सबों को समान देख।** देखो! आहाहा! रागरहित वीतरागी पर्याय में निर्विकल्पता यदि तुझे प्रगट हुई हो तो वह उससे सब जीव को समान देख, समान देख। सब भगवानस्वरूप है। आहाहा! आहाहा! समझ में आया ?

जैसे यद्यपि सोलहवानी के सोने सब समान वृत्त हैं,... सोलहवान सोना। सोना होता है न सोलहवान। सोलहवान कहते हैं ? वान। यह आता है न। सोलहवान है। **सोलहवानी के सोने सब समान वृत्त हैं,...** सोलहवान सोना हो पाँच रुपयाभार, पाँच रुपयाभार, पाँच रुपयाभार, ऐसा हजार **सब समान वृत्त हैं, तो भी उन सुवर्ण-राशियों में से एक सुवर्ण को ग्रहण किया, तो उसके ग्रहण करने से सब सुवर्ण साथ नहीं आते,...** आहाहा! यह न्याय देते हैं इसे। सब समान है तेरी दृष्टि में। परन्तु यदि तुझे आत्मा ग्रहण हुआ, वीतराग निर्विकल्पस्वरूप ग्रहण हुआ, वह आत्मा, उससे सब ग्रहण नहीं होते। आहाहा! समझ में आया ? बापू! यह तो तीन लोक के नाथ, जिन्हें इन्द्र, इन्द्र एकावतारी जैसे गलुडिया अर्थात् पिल्ला सभा में सुने, उनकी यह वाणी है। दिगम्बर सन्त आडतिया होकर जगत को केवलज्ञान के माल की बात करते हैं। आहाहा! ओहो! धन्यभाग्य! जब यह वाणी निकली परमात्मा की, धन्य भाग्य हो, उसे तो सुनने को मिली! आहाहा!

यह कहा जाता है, उसमें बहुत गम्भीरता है। दिगम्बर सन्तों की एक-एक कड़ी, एक-एक लाईन... आहाहा! जिनवर ने ऐसा कहा है कि ज्ञान-दर्शन। उसमें ज्ञान-दर्शन अर्थात् पर्याय नहीं। आहाहा! त्रिकाली ज्ञान-दर्शन, वह आत्मा का लक्षण है, ऐसा जिनवर ने कहा है। आहाहा! '**तेण ण किज्जइ भेउ**'। इस कारण से आत्मा में भेद न कर कि यह आत्मा, यह आत्मा, यह आत्मा दूसरे प्रकार का आत्मा, सब आत्मा एक सरीखे हैं। परन्तु किसे ? जिसके '**मणि**'—मन में '**विभातः**' सूर्य उगा हो। आहाहा! चैतन्य का प्रकाश हुआ हो। आहाहा! है न ? '**मणि जाउ विहाणु**' मन में हुआ हो '**विभातः**' प्रभात। जिसे सूर्य उगा हो। आहाहा! रागरहित निर्विकल्प सम्यग्ज्ञान की सूर्यदशा प्रगट हुई हो तो तुझे वह सुप्रभात हुआ है, ओहोहो! अन्धकार का नाश हुआ है, ऐसा कहा न ? मोहनिद्रा कहा न ? मोहनिद्रा का अभाव। आहाहा!

ऐसा जान तथापि, ऐसा होने पर भी सब समान है। परन्तु वीतरागी पर्याय से जब ज्ञात होता है तो अपना एक आत्मा ही ग्रहण होता है। समझ में आया? ऐसा कहते हैं। वीतरागी पर्याय से ग्रहण होता है तो सब समान होने पर भी अपना आत्मा ही ग्रहण होता है। आहाहा! गम्भीर... गम्भीर... गम्भीर वीतराग वाणी। जैनदर्शन कहो या दिगम्बर दर्शन कहो, अन्यत्र कहीं नहीं। आहाहा! उसकी गम्भीरता की सम्प्रदाय में है, उन्हें खबर नहीं। आहाहा! गजब बात!

प्रभु क्या कहते हैं कि तुझे वीतरागी निर्विकल्प चैतन्यसूर्य जो प्रगट हुआ हो और मोहनिद्रा के अन्धकार का अभाव हुआ हो, प्रभात हुआ हो तो सबको समान जान। एक बात। परन्तु सबको समान जानने में निर्विकल्प वीतरागी पर्याय में ग्रहण तो एक अपना आत्मा ही होता है। शान्तिभाई! सूक्ष्म है यह सब। तुम्हारे जवाहरात में... यह तो मार्ग ऐसा है, बापू! क्या कहें? आहाहा! कहाँ पड़ी है जगत को, आत्मा क्या है और कहाँ जाना है। आहाहा! व्यवहार के यह करो और यह करो और यह करो। भक्ति करो, यात्रा करो, व्रत पालन करो और अपवास करो। अरे.. भगवान! बापू! वह तो राग की क्रिया है। भाई! उस राग की क्रिया से आत्मा ज्ञात नहीं होता। अरे! मतिज्ञान से ज्ञात होता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! उसे त्रिकाली ज्ञान-दर्शन से जानने में आवे, वर्तमान वीतरागी पर्याय से। समझ में आया? कहो, सुजानमलजी!

मुमुक्षु : यह सत्य निकाला न आपने वीतराग निर्विकल्प।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आया न। यह वस्तु में ज्ञात होता है। राग से ज्ञात होता है? व्यवहाररत्नत्रय का राग है, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, भक्ति, पूजा से ज्ञात होता है? वह तो राग है। वह जीव का लक्षण है? आहाहा!

कहते हैं, **सुवर्णराशियों में से एक सुवर्ण को ग्रहण किया, तो उसके ग्रहण करने से सब सुवर्ण साथ नहीं आते,...** आहाहा! सोलहवान सब समान हैं, परन्तु सोलहवान में एक पकड़ में आया सोलहवान तो वह एक पकड़ में आया, सब नहीं पकड़ में आये। इसी प्रकार सब जीव समान होने पर भी वीतरागी पर्याय में स्वद्रव्य आत्मा ही अनुभव में आता है। एक ग्रहण होता है। पर सब समान होने पर भी उसमें सब नहीं आते।

आहाहा! ऐसा मार्ग। ओहो! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जिनचन्द्र, सूर्य... आहाहा! जिनचन्द्र अर्थात् शीतल स्वभाव से भरपूर अकषायस्वभाव ऐसा सूर्यप्रकाश जिसका। आहाहा!

यह भगवान चैतन्यसूर्य जिनचन्द्र ऐसा फरमाते हैं, ऐसा कहते हैं, भगवान! एक बार सुन तो सही, प्रभु! आहाहा! तेरा त्रिकाली ज्ञानलक्षण जो आत्मा का, उसका निर्णय तेरी निर्विकल्प वीतरागी पर्याय में होता है। तो निर्विकल्प वीतरागी पर्याय जो प्रगट हुई तो सबको समान जान। समान जानने पर भी निर्विकल्प पर्याय में तेरा आत्मा अकेला ही ग्रहण होता है। आहाहा! हें! कहीं मिले नहीं ऐसी बात। आहाहा! वीतराग जिनवरदेव का मूल मार्ग। 'मूल मारग सुन लो जिनवर का रे' यह जिन का मूल मार्ग है। आहाहा! अरेरे! लोग, यह निश्चय है... निश्चय है... निश्चय है, ऐसा कर-करके अनादर करके... आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! एक गाथा में कितनी चीज़! हें! गजब बात है!

उसी प्रकार यद्यपि केवलज्ञानदर्शनलक्षण सब जीव समान हैं, तो भी एक जीव का ग्रहण करने से सबका ग्रहण नहीं होता। देखो! समझे? आहाहा! चैतन्य की निर्मल वीतरागी पर्याय में सभी जीव समान जानते होने पर भी, ग्रहण में तो एक अपना आत्मा ही होता है। आहाहा! टीका, वह टीका है न! यह सिद्धान्त कहा जाता है। वीतराग की वाणी का सार है। आहाहा! **क्योंकि प्रदेश सबके भिन्न-भिन्न हैं,...** अब सिद्धान्त कहा वापस। अपना भगवान ज्ञान-दर्शन लक्षण से लक्षित निर्विकल्प वीतरागी पर्याय में होता है। तो वह निर्विकल्प पर्याय सम्यग्दर्शन की पर्याय में, सम्यग्ज्ञान की पर्याय में अकेला स्व का ग्रहण होता है। समान होने पर भी पर का ग्रहण नहीं होता। आहाहा! क्योंकि प्रदेश भिन्न है। भाव समान है, ऐसा कहते हैं। ज्ञान-दर्शन लक्षण से सब समान है, तथापि प्रदेश भिन्न है। आहाहा! देवशीभाई! ऐसा कहाँ था तुम्हारे वहाँ गाँव में?

मुमुक्षु : गाँव में भी नहीं था और भारत में नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्यत्र नहीं था? सच्ची बात। आहाहा! कितने बोल डाले! आहाहा!

क्योंकि प्रदेश सबके भिन्न-भिन्न हैं,... यह भगवान सब ज्ञानलक्षण से लक्षित

ज्ञान-दर्शनवाले सब समान हैं, ऐसा होने पर भी सब द्रव्य के—सब आत्मा के प्रदेश—क्षेत्र भिन्न हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : गजब की तुलना करते हो!

पूज्य गुरुदेवश्री : है, अन्दर है या नहीं? आहाहा! स्थिति, वस्तु की स्थिति ऐसी है। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा देह, वाणी की क्रिया से भी ज्ञात होता नहीं, क्योंकि वह तो जड़ है। दया, दान, व्रत, भक्ति, यात्रा के भाव से भी ज्ञात नहीं होता, क्योंकि वह तो राग है। मतिज्ञान से ज्ञात होता है, उसे लक्षण कहना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! त्रिकाली ज्ञान-दर्शन ध्रुव में ध्यान लगाकर... आहाहा! निर्विकल्प वीतरागी पर्याय में ध्रुव को ध्येय बनाकर, विषय बनाकर ध्यान करना... आहाहा! उसके चैतन्यसूर्य में यह भान होता है। आहाहा! वापस यह घर में वाँचना थोड़ा, यहाँ का यहीं नहीं रखना। सेठ! क्या कहा? घर में वाँचना थोड़ा, यहीं का यहीं नहीं रखना।

मुमुक्षु : व्यवहार की तो सफाई कर डाली।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु है, उसे उड़ाया है या नहीं? है या नहीं? सब जीव समान है या नहीं? है, तो भी उड़ाया है। प्रदेशभेद है और अपना स्वरूप ही ग्रहण होता है। आहाहा!

इससे यह निश्चय हुआ, कि यद्यपि केवलज्ञान-दर्शन लक्षण से सब जीव समान हैं,... देखा! **तो भी प्रदेश सबके जुदे-जुदे हैं, यह तात्पर्य जानना।** रहस्य है। आहाहा! अपनी निर्विकल्प वीतराग पर्याय में सबको समान मानना, ऐसा होने पर भी, वीतरागी पर्याय में स्व का ही ग्रहण होता है, पर का ग्रहण नहीं होता। आहाहा! यह विशेष कहते हैं अब, देखो!

गाथा - ९९

अथ शुद्धात्मनां जीवजातिरुपेणैकत्वं दर्शयति-

२२२) बंभहँ भुवणि वसंताहँ जे णवि भेउ करंति।
ते परमप्प-पयासयर जोइय विमलु मुणंति।।९९।।

ब्रह्मणां भुवने वसतां ये नैव भेदं कुर्वन्ति।
ते परमात्मप्रकाशकराः योगिनः विमलं मन्यन्ते।।९९।।

बंभहं इत्यादि। बंभहं ब्रह्मणः शुद्धात्मनः। किं कुर्वतः। भुवणि वसंताहं भुवने त्रिभुवने वसंतः तिष्ठतः जे णवि भेउ करंति ये नैव भेदं कुर्वन्ति। केन। शुद्धसंग्रहनयेन ते परमप्प-पयासयर ते ज्ञानिनः परमात्मस्वरुपस्य प्रकाशकाः सन्त जोइय हे योगिन् अथवा बहुवचनेन हे योगिनः। किं कुर्वन्ति। विमलु मुणंति विमलं संशयादिरहितं शुद्धात्मस्वरुपं मन्यन्ते जानन्तीति। तधथा। तधपि जीवराश्यपेक्षया तेषामेकत्वं भण्यते तथापि व्यक्त्यपेक्षया प्रदेशभेदेन भिन्नत्वं नगरस्य गृहादिपुरुषादिभेदवत्। कश्चिदाह। यथैकोऽपि चन्द्रमा बहुजलघडेषु भिन्नभिन्नरुपेण द्दश्यते तथैकोऽपि जीवो बहुशरीरेषु भिन्नभिन्नरुपेण द्दश्यत इति। परिहारमाह। बहुषु जलघटेषु चन्द्रकिरणोपाधिवशेन जलपुद्गला एव चन्द्राकारेण परिणता न चाकाशस्थचन्द्रमाः। अत्र द्दष्टान्तमाह। यथा देवदत्तमुखोपाधिवशेन नानादर्पणानां पुद्गला एव नानामुखाकारेण परिणमन्ति न च देवदत्तमुखं नानारुपेण परिणमति। यदि परिणमति तदा दर्पणस्थं मुखप्रतिबिम्बं चेतनत्वं प्राप्नोति, न च तथा, तथैकचन्द्रमा अपि नानारुपेण न परिणमतीति। किं च न चैको ब्रह्मनामा कोऽपि द्दश्यते प्रत्यक्षेण यश्चन्द्रवन्नानारुपेण भविष्यति इत्यभिप्रायः।।९९।।

आगे जाति के कथन से सब जीवों की एक जाति है, परन्तु द्रव्य अनन्त हैं, ऐसा दिखलाते हैं-

जो त्रिभुवन के जीवों में नहिं भेदभाव किञ्चित् करते।
वे परमात्म प्रकाशन करके विमल आत्मा को लखते।।९९।।

अन्वयार्थ :- [भूवने] इस लोक में [वसन्तः] रहनेवाले [ब्रह्मणः] जीवों का [भेदं] भेद [नैव] नहीं [कुर्वति] करते हैं, [ते] वे [परमात्मप्रकाशकराः] परमात्मा के प्रकाश करनेवाले [योगिन्] योगी, [विमलं] अपने निर्मल आत्मा को [जानंति] जानते

हैं। इसमें संदेह नहीं है।

भावार्थ :- यद्यपि जीव-राशि की अपेक्षा जीवों की एकता है, तो भी प्रदेशभेद से प्रगटरूप सब जुदे-जुदे हैं। जैसे वृक्ष जातिकर वृक्षों का एकपना है, तो भी सब वृक्ष जुदे जुदे हैं, और पहाड़-जाति से सब पहाड़ों का एकत्व है, तो भी सब जुदे-जुदे हैं, तथा रत्नजाति से रत्नों का एकत्व है, परन्तु सब रत्न पृथक् पृथक् हैं, घट-जाति की अपेक्षा सब घटों का एकपना है, परंतु सब जुदे-जुदे हैं, और पुरुष-जातिकर सबकी एकता है, परंतु सब अलग अलग हैं। उसी प्रकार जीव-जाति की अपेक्षा से सब जीवों का एकपना है, तो भी प्रदेशों के भेद से सब ही जीव जुदे-जुदे हैं। इस पर कोई परवादी प्रश्न करता है कि जैसे एक ही चन्द्रमा जल के भरे बहुत घड़ों में जुदा-जुदा भासता है, उसी प्रकार एक ही जीव बहुत शरीरों में भिन्न-भिन्न भास रहा है, उसका श्रीगुरु समाधान करते हैं-जो बहुत जल के घड़ों में चन्द्रमा की किरणों की उपाधि से जल-जाति के पुद्गल ही चन्द्रमा के आकार के परिणत हो गये हैं, लेकिन आकाश में स्थित चन्द्रमा तो एक ही है, चन्द्रमा तो बहुत स्वरूप नहीं हो गया। उनका दृष्टान्त देते हैं। जैसे कोई देवदत्तनामा पुरुष उसके मुख की उपाधि (निमित्त) से अनेक प्रकार के दर्पणों से शोभायमान काँच का महल उसमें वे काँचरूप पुद्गल ही अनेक मुख के आकार के परिणत हुए हैं, कुछ देवदत्त का मुख अनेकरूप नहीं परिणत हुआ है, मुख एक ही है। जो कदाचित् देवदत्त का मुख अनेकरूप परिणमन करे, तो दर्पण में तिष्ठते हुए मुखों के प्रतिबिम्ब चेतन हो जावें। परंतु चेतन नहीं होते, जड़ ही रहते हैं, उसी प्रकार एक चन्द्रमा भी अनेकरूप नहीं परिणमता। वे जलरूप पुद्गल ही चन्द्रमा के आकार में परिणत हो जाते हैं। इसलिए ऐसा निश्चय समझना, कि जो कोई ऐसा कहते हैं कि एक ही ब्रह्म के नानारूप दिखते हैं। यह कहना ठीक नहीं है। जीव जुदे-जुदे हैं।।९९।।

गाथा-९९ पर प्रवचन

---

९९ गाथा। **आगे जाति के कथन से सब जीवों की एक जाति है,...** ओहो! सब जीव की जाति एक है। **परन्तु द्रव्य अनन्त हैं,...** वस्तुरूप से अनन्त है। जाति एक है, परन्तु द्रव्यरूप से अनन्त है। **ऐसा दिखलाते हैं—**

२२२) **बंभहँ भुवणि वसंताहँ जे णवि भेउ करंति।**
ते परमप्प-पयासयर जोइय विमलु मुणंति।।९९।।

आहाहा! **अन्वयार्थ :— इस लोक में... 'भूवन'** अर्थात् इस लोक में। **रहनेवाले... 'ब्रह्मणः'** जीव। ब्रह्मस्वरूप भगवान आत्मा। आहाहा! ऐसे **जीवों का भेद नहीं करते हैं,...** आहाहा! **वे... 'परमात्मप्रकाशकराः'** यह परमात्मप्रकाश ग्रन्थ है न? आहाहा! **'परमात्मप्रकाशकराः' परमात्मा के प्रकाश करनेवाले हे योगी! अपने निर्मल आत्मा को जानते हैं।** आहाहा! **इसमें सन्देह नहीं है।** आहाहा! सब जीवों को भेद नहीं करते। आहाहा! इसका अर्थ वीतरागभाव होता है। वह **'परमात्मप्रकाशकराः योगिन्'** हे मुनि! आहाहा! **अपने निर्मल आत्मा को जानते हैं। इसमें सन्देह नहीं है।**

भावार्थ :— यद्यपि जीव-राशि की अपेक्षा जीवों की एकता है,... है न? ऊपर इन्होंने लिया था उसका उपोद्घात करके। अमृतचन्द्राचार्य की शैली जैसी यह है। दूसरा आया हो न, वह पहली गाथा का अन्त में रखे। ऐसी शैली ली है। नहीं तो पाठ में प्रदेशभेद नहीं ९८ में। ९९वें में देखा, वह नहीं, तथापि उसमें से यह निकाला। आहाहा! **जीव-राशि की अपेक्षा जीवों की एकता है,...** अनन्त रत्न हैं, अनन्त रत्न, तो रत्न की अपेक्षा से सबकी एक जाति है, तथापि रत्न-रत्न भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? **यद्यपि जीव-राशि की अपेक्षा जीवों की एकता है, तो भी प्रदेशभेद से प्रगटरूप सब जुदे-जुदे हैं।** आहाहा! वेदान्त कहता है कि एक ही आत्मा है, ऐसा नहीं है। एक ही आत्मा सर्वव्यापक अद्वैतब्रह्म, ऐसा नहीं है। ब्रह्म शब्द **'बंभहँ'** लिया—ब्रह्म। भगवान आत्मा, आहाहा! **प्रदेशभेद से प्रगटरूप सब जुदे-जुदे हैं।**

जैसे वृक्ष जातिकर वृक्षों का एकपना है,... वृक्ष की जाति की अपेक्षा से वृक्ष का वन एक कहलाता है। **तो भी सब वृक्ष जुदे-जुदे हैं,...** प्रत्येक वृक्ष भिन्न-भिन्न है। सबको वृक्ष कहा जाता है परन्तु वृक्ष है भिन्न-भिन्न। आहाहा! **और पहाड़-जाति से सब पहाड़ों का एकत्व है,...** पहाड़-पहाड़—पर्वत। **तो भी सब वृक्ष जुदे-जुदे हैं,** आहाहा! **तथा रत्नजाति से रत्नों का एकत्व है,...** लाख रत्न हो तो रत्न की जाति एक है। **परन्तु सब रत्न पृथक्-पृथक् हैं,...** आहाहा! कितने दृष्टान्त देते हैं, लो! **घट-जाति की**

अपेक्षा सब घटों का एकपना है,... घट-घट। **परन्तु सब जुदे-जुदे हैं,...** अभी तो दृष्टान्त देते हैं। **और पुरुष-जातिकर सबकी एकता है,...** पुरुष, पुरुष, पुरुषरूप से सब एक हैं, परन्तु भिन्न-भिन्न चीज़ है। आहाहा! सब पुरुष होकर एक नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : जाति एक कही, सत्ता एक नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाति एक है, तथापि सत्ता भिन्न-भिन्न है। आहाहा!

परन्तु सब अलग-अलग हैं। आहाहा! **उसी प्रकार जीव-जाति की अपेक्षा से सब जीवों का एकपना है, तो भी प्रदेशों के भेद से सब ही जीव जुदे-जुदे हैं।** आहाहा! भिन्न-भिन्न है। अज्ञानी ऐसा कहते हैं कि जगत में सब आत्मा एक ही है। ऐसा नहीं है। सब जीव समान / सरीखे होने पर भी प्रदेश भिन्न, उनकी जाति भिन्न, जातिरूप से एक हो, परन्तु वस्तुरूप से प्रत्येक की भिन्नता है। अनन्त आत्मायें, अनन्त आत्मायें। आहाहा! यह जिनवरदेव के मत में ऐसा है, दूसरे अज्ञानी तो एक ही आत्मा सब मिलकर है, ऐसा मानते हैं। आहाहा! कहो, यह बाद में शरीर में नीचे उतारेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, पौष शुक्ल ५, शनिवार
दिनांक-२५-१२-१९७६, गाथा - ९९, १००, प्रवचन-१६८

परमात्मप्रकाश, ९९ गाथा। यहाँ तक आया है बीच में। जैसे वृक्षरूप से वृक्ष बहुत हों तो भी वृक्ष कहलाते हैं। इसी प्रकार जीव बहुत हैं, तथापि जाति अपेक्षा से उसे जीव कहा जाता है। यह बात चलती है।

उसी प्रकार जीव-जाति की अपेक्षा से सब जीवों का एकपना है,... संस्कृत, हिन्दी है हिन्दी, पृष्ठ २४२। **तो भी प्रदेशों के भेद से सब ही जीव जुदे-जुदे हैं।** सभी आत्मायें अत्यन्त भिन्न परिपूर्ण भगवान है। यह ऐसा कहते हैं। आहाहा! जाति की अपेक्षा से जीव... जीव... जीव... जीव... सब अनन्त होने पर भी, जाति अपेक्षा से एक है, परन्तु उनकी संख्या भिन्न-भिन्न है। आहाहा! यह कहते हैं, देखो! **इस पर कोई परवादी प्रश्न करता है कि जैसे एक ही चन्द्रमा जल के भरे बहुत घड़ों में जुदा-जुदा भासता है,...** एक चन्द्र (होता है) और जल के घड़े होते हैं, सौ, दो सौ, पाँच सौ। तो उसमें चन्द्र, **जल के भरे बहुत घड़ों में जुदा-जुदा भासता है,...** क्या कहा, समझ में आया? सौ घड़े पानी के भरे हुए हों। चन्द्रमा तो एक है। चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब पड़े तो सौ घड़ों में दिखता है। तो एक है वह सौरूप हुआ न? ऐसा वह कहता है। **जल के भरे बहुत घड़ों में जुदा-जुदा भासता है, उसी प्रकार एक ही जीव बहुत शरीरों में भिन्न-भिन्न भास रहा है।** ऐसा अज्ञानी कहता है। अज्ञानी की दलील है। एक ब्रह्म है, ऐसा मानते हैं न सब? सर्वव्यापक एक आत्मा है। जैसे भिन्न-भिन्न घड़े के पानी में चन्द्र एक होने पर भी भिन्न-भिन्न भासित होता है, उसी प्रकार परमात्मा एक होने पर भी प्रत्येक शरीर में जीव भिन्न-भिन्न है, वह चन्द्र का ही रूप है, वह आत्मा का ही रूप है, ऐसा कहता है। देवीलालजी!

उसका श्रीगुरु समाधान करते हैं—जो बहुत जल के घड़ों में चन्द्रमा की किरणों की उपाधि से जल-जाति के पुद्गल ही चन्द्रमा के आकार के परिणत हो गये हैं,... क्या कहते हैं यह? चन्द्र वहाँ है और पानी में तो पानी के परमाणु चन्द्र के आकार परमाणु परिणमित हुए हैं, वह चन्द्र वहाँ नहीं है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ

आत्मा की महत्ता बतलाते हैं। भगवान आत्मा देह में परिपूर्ण, सब होकर परिपूर्ण नहीं; एक ही परिपूर्ण है। सर्वज्ञ भगवान परमेश्वर जिनेन्द्रदेव ऐसा कहते हैं कि प्रत्येक देह में जो आत्मा अन्दर है, वह परिपूर्ण वीतराग आनन्दकन्द है। आहाहा! उसमें सब मिलकर एक है, ऐसा नहीं। वह एकस्वरूप ही भगवान अन्दर है। आहाहा! अन्दर पूर्णानन्द का नाथ प्रभु देह में और राग और पुण्य-पाप के विकल्प से भी पार पूर्ण वीतरागी आनन्दकन्द प्रभु आत्मा है। आहाहा! ऐसे पूर्ण आत्मा की स्वसन्मुख होकर प्रतीति करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म है। आहाहा! ऐसा धर्म है। समझ में आया? आहाहा!

यह कहते हैं, **चन्द्रमा तो एक ही है, चन्द्रमा तो बहुत स्वरूप नहीं हो गया।** गुरु उत्तर कहते हैं। चन्द्रमा तो वहाँ एक ही है। पानी के घड़े में जो दिखता है, वह कहीं चन्द्र नहीं है, वह तो पानी के परमाणु उसरूप हुए हैं। वह चन्द्र नहीं। चन्द्र तो वहाँ ही है। है न? **उसका दृष्टान्त देते हैं।** आचार्य महाराज उसके सामने दृष्टान्त देते हैं। **जैसे कोई देवदत्तनामा पुरुष...** है। पुरुष है, पुरुष यहाँ, देवदत्त नाम का पुरुष। **उसके मुख की उपाधि (निमित्त) से अनेक प्रकार के दर्पणों से शोभायमान काँच का महल उसमें वे काँचरूप पुद्गल ही अनेक मुख के आकार के परिणत हुए हैं...** काँच का महल हो और बीच में एक देवदत्त खड़ा हो। तो वहाँ सब काँच में देवदत्त दिखाई दे, वह देवदत्त वहाँ नहीं है। वहाँ तो काँच के परमाणु उसरूप हुए हैं। समझ में आया? आहाहा! **कुछ देवदत्त का मुख अनेकरूप नहीं परिणत हुआ है,...** देवदत्त एकरूप जो अन्दर खड़ा है, वह कहीं अनेकरूप हुआ नहीं। समझ में आया? इसी प्रकार चन्द्रमा एक है और सैकड़ों घड़ों में (दिखता है), वह चन्द्रमा एक है, वह कहीं अनेक हुआ नहीं। वह तो परमाणु की पर्याय चन्द्र के उसरूप चन्द्र के आकार परिणमित हुई है। चन्द्र नहीं वहाँ। इसी प्रकार देवदत्त के मुख से चारों ओर काँच हो, काँच का बँगला हो, तो उसमें दिखते हैं देवदत्त जैसे रजकण। परन्तु वह तो काँच के परमाणु हैं। वहाँ देवदत्त नहीं। आहाहा! है? **मुख एक ही है।**

जो कदाचित् देवदत्त का मुख अनेकरूप परिणमन करे, तो दर्पण में तिष्ठते हुए मुखों के प्रतिबिम्ब चेतन हो जाये। तो अन्दर में दिखता है, वह चेतन हो जाये।

आहाहा! **परन्तु चेतन नहीं होते, जड़ ही रहते हैं,...** उस काँच में देवदत्त का शरीर जो दिखता है, वह शरीर नहीं। काँच में तो काँच के रजकण उसरूप हुए हैं। वरना चेतन हो जाये तो वहाँ चेतन हो जाये, यदि वह वहाँ अन्दर ज्ञात हुए तो। आहाहा! आत्मा को प्रत्येक देह से भिन्न-भिन्न भगवान है, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। सब होकर एक आत्मा है, ऐसा नहीं।

यहाँ परमात्मा स्वयं... आहाहा! कहते हैं, देखो! **उसी प्रकार एक चन्द्रमा भी अनेकरूप नहीं परिणमता। वे जड़रूप पुद्गल ही चन्द्रमा के आकार में परिणत हो जाते हैं। इसलिए ऐसा निश्चय समझना कि जो कोई ऐसा कहते हैं कि एक ही ब्रह्म के नानारूप दिखते हैं।** भगवान एकरूप परमात्मा है, वह अनेक प्रकार से दिखता है, ऐसा जो कोई कहता हो तो वह झूठी बात है। वेदान्त ऐसा कहता है। **यह कहना ठीक नहीं है। जीव जुदे-जुदे हैं।** आहाहा! अब कहते हैं।

गाथा - १००

अथ सर्वजीवविषये समदर्शित्वं मुक्तिकारणमिति प्रकटयति–

२२३) राय–दोस बे परिहरिवि जे सम जीव णियंति।
ते सम–भावि परिट्ठिया लहु णिव्वाणु लहंति।।१००।।

रागद्वेषौ द्वौ परिहृत्य ये समान् जीवान् पश्यन्ति।
ते समभावे प्रतिष्ठिताः लघु निर्वाणं लभन्ते।।१००।।

राय इत्यादि। पदखण्डनारुपेण व्याख्यानं क्रियते। राय–दोस बे परिहरिवि वीतराग–निजानन्दैकस्वरुपस्वशुद्धात्मद्रव्यभावनाविलक्षणौ रागद्वेषौ परिहृत्य जे ये केचन सम जीव णियंति सर्वसाधारणकेवलज्ञानदर्शनलक्षणेन समानान् सदृशान् जीवान् निर्गच्छन्ति जानन्ति ते ते पुरुषाः। कथंभूताः। सम–भावि परिट्ठिया जीवितमरणलाभाला–भसुखदुःखादिसमता–भावनारुपे समभावे प्रतिष्ठिताः सन्तः लहु णिव्वाणु लहंति लघु शीघ्रं आत्यन्तिकस्वभावैका–चिन्त्याद्भुतकेवलज्ञानादिगुणास्पदं निर्वाणं लभन्त इति। अत्रेदं व्याख्यानं ज्ञात्वा रागद्वेषौ त्यक्तवा च शुद्धात्मानुभूतिरुपा समभावना कर्तव्येत्यभिप्रायः।।१००।।

आगे ऐसा कहते हैं, कि सब ही जीव द्रव्य से तो जुदे–जुदे हैं, परंतु जाति से एक हैं, और गुणोंकर समान हैं, ऐसी धारणा करना मुक्ति का कारण है–

राग–द्वेष को तजकर जो सब जीवों को समभाव लखें।
समता रस में लीन रहें वे शिवलक्ष्मी अति शीघ्र वरें।।१००।।

अन्वयार्थ :– [ये] जो [रागद्वेषौ] राग और द्वेष को [परिहृत्य] दूर करके [जीवाः समाः] सब जीवों को समान [निर्गच्छंति] जानते हैं, [ते] वे साधु [समभावे] समभाव में [प्रतिष्ठिताः] विराजमान [लघु] शीघ्र ही [निर्वाणं] मोक्ष को [लभंते] पाते हैं।

भावार्थ :– वीतराग निजानंदस्वरुप जो निज आत्मद्रव्य उसकी भावना से विमुख जो राग–द्वेष उनको छोड़कर जो महान् पुरुष केवलज्ञान दर्शन लक्षणकर सब ही जीवों की समान गिनते हैं, वे पुरुष समभाव में स्थित शीघ्र ही शिवपुर को पाते हैं। समभाव का लक्षण ऐसा है, कि जीवित, मरण, लाभ, अलाभ, सुख, दुःखादि सबको समान जानें। जो अनन्त सिद्ध हुए और होवेंगे, यह सब समभाव का प्रभाव है। समभाव

से मोक्ष मिलता है। कैसा हे वह मोक्षस्थान, जो अत्यंत अद्भुत अचिंत्य केवलज्ञानादि अनन्त गुणों का स्थान है। यहाँ यह व्याख्यान जानकर राग-द्वेष को छोड़के शुद्धात्मा के अनुभवरुप जो समभाव उसका सेवन सदा करना चाहिए। यही इस ग्रंथ का अभिप्राय है।।१००।।

गाथा-१०० पर प्रवचन

आगे ऐसा कहते हैं कि सब ही जीव द्रव्य से तो जुदे-जुदे हैं,... वस्तु से प्रत्येक चीज़ भिन्न-भिन्न है। **परन्तु जाति से एक हैं,...** जाति सबकी एक है। जैसे गेहूँ लाख हों तो वे हैं भिन्न-भिन्न गेहूँ, परन्तु जातिरूप से गेहूँ एक हैं। इसी प्रकार आत्मा प्रत्येक का भिन्न-भिन्न है परन्तु जातिरूप से एक हैं। समझ में आया? यह किसलिए कहते हैं? कि इस देह में भगवान देह के रजकण वह तो मिट्टी है, अन्दर कर्म है, वह मिट्टी है और यह पुण्य-पाप के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव होते हैं, वह भी पुण्यरूपी विकार पाप है, मलिन है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना के भाव, पापरूप मलिनता है। इन दो के अन्दर पीछे परिपूर्ण भगवान वीतराग आनन्दकन्द आत्मा पड़ा है। आहाहा! इसने कभी खोज, निर्णय किया ही नहीं। साधुपना लिया, क्रियाकाण्ड किये, पंच महाव्रत पालन किये, परन्तु यह भगवान अन्दर परिपूर्ण अन्दर ज्ञान स्वभाव से पर से अत्यन्त भिन्न है, ऐसी अन्तर में दृष्टि सम्यक् की नहीं। आहाहा! इसके बिना सब व्रत और तप और नियम और क्रियाकाण्ड किये, मरकर भटका। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं, देखो!

परन्तु जाति से एक हैं, और गुणोंकर समान हैं,... आहाहा! ऐसे लाख रत्न हों तो रत्न रूप से एक जाति कहलाती है, परन्तु एक-एक रत्न भिन्न-भिन्न है। उस रत्न का प्रकाश अन्दर है, वह रत्न का है। इसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त आत्मा एक सरीखे जाति से होने पर भी, उनका ज्ञान, ज्ञान अर्थात् जानने का स्वभाव, देखने का स्वभाव, आनन्दस्वभाव इन गुणों से सब समान हैं। वे गुण यहाँ हैं, ऐसे ही गुण वहाँ हैं। इस अपेक्षा से समान है, परन्तु गुण सब होकर एक है, ऐसा नहीं। अरे! अब ऐसी बातें।

पोपटभाई ! इसमें कहीं सुनाई दे, ऐसा नहीं वहाँ कहीं। नहीं ? आहाहा ! प्रभु ! तू कितना है ? कहाँ है ? कैसे है ? ऐसी अन्तर में दृष्टि किये बिना इसे सम्यग्दर्शन होता नहीं और धर्म की शुरुआत होती नहीं। कामाणी ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : व्रत और तप करने से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्रत, तप तो विकल्प है, धूल भी नहीं। वह तो राग है। वास्तविक व्रत तो आत्मा आनन्दकन्द में लिपट जाना अन्दर में, वह व्रत है। और तप भी आत्मा में, जैसे सोना को गेरुं लगाने से सोना ओपता है; उसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्द की दशा से, उग्र अतीन्द्रिय आनन्द की दशा से शोभे, उसका नाम तप कहा जाता है। आहाहा ! व्याख्या सब दूसरे प्रकार की है, भाई ! आहाहा ! अरेरे ! कहते हैं, तू कहाँ कितना बड़ा है, उसकी महिमा की तुझे खबर ही नहीं। और यह दया, दान और व्रत पालन किये, वहाँ हो गया धर्म। परन्तु वह तो विकल्प, राग है। वह तो परलक्ष्यी विकार है, वह कहीं आत्मा का स्वरूप नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

गुणोंकर समान हैं, ऐसी धारणा करना मुक्ति का कारण है—देखो ! आहाहा ! '**प्रकटयति**' ऐसा शब्द है अन्दर। '**मुक्तिकारणमिति प्रकटयति**'। प्रगट करता है परन्तु इस प्रकार से बतलाते हैं, ऐसा। आहाहा ! १०० (गाथा)।

२२३) राय-दोस बे परिहरिवि जे सम जीव णियंति।
ते सम-भावि परिट्ठिया लहु णिव्वाणु लहंति।।१००।।

आहाहा ! **अन्वयार्थः—जो राग और द्वेष को दूर करके...** आहाहा ! है शब्दार्थ ? १०० गाथा। आहाहा ! यह दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव भी राग है, उसे दूर करके अन्दर कौन है, उसकी नजर कर, कहते हैं। आहाहा ! सूक्ष्म बात है, बापू ! जिनवरमार्ग...

मुमुक्षु : व्यवहार को दूर करने से निश्चय होता है, ऐसा आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार को दूर करने से, इसके लिये तो यह चलता है। व्यवहार से होता है, ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं। यहाँ तो व्यवहार के राग से दूर करके। आहाहा ! जहाँ परिपूर्ण भगवान आनन्दस्वरूप से भरा पड़ा है आत्मा। अतीन्द्रिय आनन्द से छलाछल भरा है भगवान अन्दर। कहाँ देखे ? आहाहा ! झपट्टे मारे बाहर में, मानो

पैसे में सुख है और स्त्री में सुख है और इज्जत में सुख है, धूल भी नहीं। झपट्टे मारता है अज्ञानी। पोपटभाई! सुख नहीं? पैसे थे तो भी वह हो गया तो मन ऐसे बिना ठिकाने का नहीं हो गया था? तब कहीं पैसे चले नहीं गये थे। कामाणी! पहिचानते हो पोपटभाई को? नहीं पहिचानते हो। पोपटभाई को पहिचानते हो? वढवाण के हैं। मस्तिष्क घूम गया था अन्दर। पैसे तो थे दो करोड़। धूल में क्या करे वहाँ? चैन पड़ता नहीं था, खबर है न? खबर है। आहाहा!

भगवान अन्तर में इन पैसे से भिन्न, स्त्री से भिन्न, कीर्ति से भिन्न, शरीर से भिन्न, पुण्य-पाप के राग से भगवान भिन्न अन्दर है। आहाहा! ऐसे आत्मा के अन्दर प्रत्येक आत्मा गुण से समान है। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी ऐसे अनन्त आनन्दादि स्वभाव के गुण से तो प्रत्येक आत्मा समान है। परन्तु प्रत्येक आत्मा समान होने पर भी प्रत्येक एक नहीं। एक-एक भिन्न है। आहाहा! जिनवरदेव का मार्ग सूक्ष्म, भाई! देखो, है?

राग और द्वेष को... 'परिहृत्य' दूर करके... यह क्या कहा? कि शरीर, वाणी, मन तो भिन्न है, उसकी तो बात यहाँ है नहीं। वह तो भिन्न ही है। वह तो राख भिन्न है। परन्तु अन्दर में दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव हों, वह राग है। आहाहा! हिंसा, झूठ, चोरी, विषयवासना का भाव हो, वह राग है। आहाहा! उस राग और द्वेष के भाव को दूर करके, छोड़कर। आहाहा! स्त्री, पुत्र छोड़े और दुकान छोड़ी और धन्धा छोड़ा, इसलिए संसार छोड़ा —ऐसा नहीं है। जिसे संसार अर्थात् राग-द्वेष के भाव... आहाहा! उनसे दृष्टि छोड़कर। बात यह है कि पर्यायबुद्धि में जो राग-द्वेष दिखते हैं, उसकी बुद्धि छोड़कर। आहाहा! कान्तिभाई! ऐसा सूक्ष्म मार्ग, भाई! वह तो दया पालो, अपवास किये, सामायिक की, हो गया धर्म। धूल भी नहीं, मर जानेवाले हैं। कहो, जादवजीभाई! आहाहा! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं यहाँ। जो रहा, वह भगवान उपादेय है अन्दर। अन्दर चिदानन्द सच्चिदानन्द प्रभु 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' ऐसी अन्दर चीज़ है। उसे खबर कहाँ है, सुना कहाँ है? इस धूल-धमाका के कारण निवृत्त कहाँ है यह? आहाहा! और निवृत्त हो तो कदाचित् दया, दान और व्रत के परिणाम करे तो वह भी राग है।

आहाहा! यह तो बहुत बार कहते हैं न! संसार के बीस घण्टे तो इसमें—पाप में जाते हैं। कमाना और खाना, भाग में और सोने में—नींद में। एकाध घण्टा समय मिले कुछ तो सुनने जाये तो कुगुरु एक घण्टा लूट ले। तुम यह करो तो धर्म होगा, व्रत करो तो धर्म होगा, तप करो तो (धर्म होगा), लूट डालते हैं मार्ग को। समझ में आया? आहाहा! श्रीमद् ने ऐसा कहा, श्रीमद् ने ऐसा कहा है, हों! एक घण्टा मिले, (सुनने) जाये, वहाँ कुगुरु लूट लेता है। तुम यह अपवास करते हो न, यह व्रत पालते हो न, (इससे) धर्म होगा। धूल भी नहीं, सुन न! ऐसे व्रत और तप तो अनन्त बार किये हैं।

मुमुक्षु : सवेरे सामायिक करते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हमारे आया था न, तब? सामायिक करते हो? प्रौषध करते हो? हाँ, हो गया। (संवत्) १९९० के वर्ष में इकट्ठे हुए थे। फिर चलते-चलते बात आयी कि यह अनन्त रजकण का पिण्ड है, बापू! यह सोने की ईंट या यह शरीर। तब उसने प्रश्न किया कि महाराज! आत्मा कितने परमाणुओं का बना होगा? वह सामायिक और प्रौषध करनेवाला। (संवत्) १९९० के वर्ष के बात है। आहाहा! उजमशीभाई थे, नहीं? वे रोचकावाला नहीं? रोचकावाला, क्या नाम? उजमशी? उनके मामा थे। नानचन्दभाई, बरवाळा के पास पालडी है न? कैसा गाँव? पानवी... पानवी, पानवी नहीं? गये हैं न, उस गाँव में गये थे। उजमशी रोचकवाला थे न? यहाँ रहते, बोटाद रहते थे। वे मर गये अहमदाबाद में संथारा करके, खोटा। कुछ भान नहीं होता। उनके मामा थे। वे इकट्ठे हुए थे बहुत वर्ष पहले। मूलचन्दजी इकट्ठे। इसलिए ४०० लोग बाहर से आये थे, गाँव के लोग थे। पूछा, सामायिक करते हो? सामायिक, चोविहार करते हो? हाँ। प्रतिक्रमण करते हो? बस, बस। हो गया जाओ, हो गया धर्म। उसमें यह बात निकली कि बापू! यह शरीर तो अनन्त रजकण परमाणु का पिण्ड है। यह आत्मा नहीं। सोने की ईंट भी अनन्त रजकण का स्कन्ध है, वह आत्मा नहीं। तब कहे, यह आत्मा कितने रजकण का बना होगा महाराज? यह सब (सामायिक करनेवाले)। अरे.. भाई! रजकण है, वह तो जड़ है। उससे बना है, ऐसा कहाँ है? यह (आत्मा) तो अनन्त ज्ञान और आनन्द से भरपूर भगवान अन्दर है। आहाहा! अरे! यह बात सुनता है कहाँ?

यह यहाँ कहते हैं, **राग और द्वेष को दूर करके...** है ? आहाहा ! यह पुण्य और पाप के भाव, यह सब विकल्प और राग है। भाई ! तुझे खबर नहीं। यह दया, दान, व्रत के भाव शुभ हैं, वह पुण्य है, उससे बन्धन होता है, वह कहीं धर्म नहीं। आहाहा ! यह अन्तर में राग और द्वेष के विकल्प कषाय के भाव हैं, उनसे दूर करके, हटकर। आहाहा ! **सब जीवों को समान जानते हैं,...** सब जीव वीतरागस्वरूप से भरपूर हैं। आहाहा ! मेरा नाथ भगवान भी मैं वीतरागस्वरूप से हूँ। आहाहा ! वीतराग की मूर्ति प्रभु आत्मा है। अभी, हों ! अन्दर में वीतरागमूर्ति प्रभु है। ऐसा राग से भिन्न पड़कर और अपने वीतरागस्वभाव में आने पर, सब जीव वीतरागस्वभाव से समान हैं, ऐसा उसे प्रतीति में आवे, तब उसे समभाव हो। समभाव हो, वह वीतरागता हो; वीतरागता हो, वह धर्म हो। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा धर्म कहाँ से निकाला ? एक व्यक्ति ऐसा कहे। ऐसा नया धर्म ? नया नहीं, अनादि का यही है। लोगों ने कृत्रिम करके बिगाड़ दिया वीतरागमार्ग को। आहाहा !

गुणों से समान सभी जीवों को जानता है, **वे साधु समभाव में विराजमान...** वीतरागभाव से, राग से रहित वीतरागभाव से जीव को समान जाने, ऐसे सब जीवों को समान जानकर वीतरागभाव में विराजमान रहे। आहाहा ! वह वीतरागभावी जीव **शीघ्र ही मोक्ष को पाते हैं।** वे अल्प काल में सिद्ध भगवान होंगे। आहाहा ! समझ में आया ? दूज उगी, वह पूर्णिमा होगी ही। इसी प्रकार जिसे परमात्मा आनन्द अपना स्वभाव, शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन अभी आयेगा टीका में। वीतराग परमानन्दस्वरूप ऐसा जहाँ अन्दर भान हुआ, वह दृष्टि हुई, वह दूज उगी। वह दूज, दूज सम्यक्—सम्यग्दर्शनरूपी दूज, दूज उगी। उसका पूर्ण पूनम में उसे केवलज्ञान होगा। आहाहा ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : सबको जाने, वह समभाव या एक को जाने, वह समभाव ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अपने को जाने तो समभाव हुआ, इसलिए सबको समान जाना। समझ में आया ? आहाहा ! जैसे अपने को राग-द्वेष रहित जाना, तब इसका अर्थ यह हो गया कि सब आत्मा राग-द्वेष रहित समान वीतरागस्वरूप प्रभु है, अभी। आहाहा ! दृष्टि का विषय बताते हैं कि राग है, तथापि उससे भिन्न पड़कर दृष्टि में पूर्ण आनन्दकन्द भगवान ध्रुव चैतन्यस्वभाव नित्यानन्द आत्मा, वह दृष्टि में आवे, तब उसे

समभाव प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन, वह समभाव का अंश है। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसी बातें! वह तो इच्छामि... इरिया ववरोविया तस्स मिच्छामि दुक्कडम्। जाओ। हें! और तावकाय ठाणेणं माणेणं अप्पाणं वोसरे। कुछ खबर नहीं होती, भान (नहीं होता), पहाड़े बोले उसकी भी खबर नहीं होती। आहाहा! वाणी है। तस्स मिच्छामि, यह तो वाणी—जड़ है और विकल्प उठता है कि यह, वह तो राग है। अप्पाणं वोसरे। परन्तु कौन सा आत्मा? इस राग को छोड़ता हूँ और रागरहित मेरा चिदानन्द आत्मा, उसे ग्रहण करता हूँ। इसका नाम कायोत्सर्ग है।

मुमुक्षु : हमको कुछ समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची। यह सब बात सब फेरफार हो गया। आहाहा! ओहोहो!

शीतल स्वभाव, वीतराग समभाव ऐसा जो गुण अपना, ऐसे गुण से सभी जीव समान हैं। स्त्री, पुरुष, नपुंसक वह शरीर के चिह्न हैं, वे आत्मा में नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! सम्यग्दृष्टि को अपने पूर्ण गुण भासित होते हैं, वह आत्मा। ऐसे सब आत्मा पूर्ण गुणसम्पन्न हैं, वह इसमें आ जाता है। आहाहा! लो। **मोक्ष को पाते हैं।**

भावार्थः—वीतराग निजानन्द एकस्वरूप जो निज आत्मद्रव्य... देखो अब। यह आत्मद्रव्य कैसा है भगवान आत्मा? आत्मपदार्थ देह में भिन्न भगवान, यह देवालय—देह देवालय है, उसमें देव विराजता है। आहाहा! कैसा है देव? मेरा आत्मा, ऐसा कहते हैं। कामाणी! ऐसा सूक्ष्म है। कलकत्ता में वहाँ सुनाई दे, ऐसा नहीं है। कलकत्ता रहते हो? आहाहा! दृष्टान्त दिया नहीं था? शकरकन्द का दृष्टान्त नहीं दिया था? शकरकन्द है, यह शक्करिया, उसकी लाल छाल है, वह छिलका है, छिलका है, छिलका। उसे न देखो तो अन्दर है, वह शकरकन्द है। शक्कर अर्थात् चीनी की मिठास का पिण्ड है। शकरकन्द यह वैष्णव लोग नहीं खाते? माघ महीने में शिवरात्रि में। आहाहा! वह आधा सेर का शकरकन्द होता है, आधा सेर, उसकी छाल तो जरा चवन्नी भार ही होती है पूरी। उस छाल को न देखकर अन्दर को देखो तो वह शक्कर की मिठास का पिण्ड है। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि पुण्य-पाप के भाव को न देखो, वह छाल है। आहाहा! कहा न? राग-द्वेष, वह छाल। और सामने वीतराग है। आहाहा! यह पुण्य-पाप के

विकल्प की वृत्ति राग है, उसे न देखकर, उसे छोड़कर अन्तर में शकरकन्द है आत्मा। वीतरागी आनन्द का पिण्ड है। आहाहा! आहाहा! जिसके आनन्द की गन्ध इन्द्र को इन्द्राणी के भोग में नहीं। वह तो जहर की गन्ध है। समझ में आया? यह है, देखो! क्या कहा?

वीतराग निजानन्द... है? उसमें 'एक' शब्द पड़ा रहा है। निजानन्द एकस्वरूप ऐसा चाहिए। स्वरूप है न? उसके बीच में 'एक' चाहिए। बहुत जगह 'एक' पड़ा रहा है। आहाहा! मोहरछाप लगायी है। वीतरागी निजानन्द—निज आनन्द, अपना आनन्द अन्दर वीतरागी निजानन्द भरा है। आहाहा! जैसे शकरकन्द शक्कर की मिठास का (पिण्ड है), इसलिए शकरकन्द कहलाता है। शकरकन्द का अर्थ चीनी की मिठास का पिण्ड। इसलिए उसे शकरकन्द कहा जाता है। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा आनन्द का कन्द है। अरे! कहीं सुनने को मिले नहीं, वह कब विचार करे? आहाहा! राग-द्वेष, वे छिलके हैं, जैसे शकरकन्द के ऊपर लाल छाल (होती है, उसी प्रकार)। ऐसे राग-द्वेष रहित, अन्तर में राग-द्वेष को छोड़कर अन्तर में वीतरागी निजानन्द भगवान... अरे! ऐसा कैसे बैठे? आहाहा!

वीतराग निजानन्द... निजानन्द, निज आनन्द वीतरागी। आहाहा! यह शरीर, वाणी, मन तो एक ओर रखो। वह तो जड़ बेचारे, उसके कारण से आये और उसके कारण से जायेंगे। आहाहा! वह कहीं तेरे नहीं, तुझमें नहीं, उनमें तू नहीं। मात्र जो राग और द्वेष के परिणाम पुण्य-पाप के होते हैं, वे तेरी पर्याय में हैं—अवस्था में हैं; वस्तु में नहीं। आहाहा! इन राग-द्वेष के विकल्प को, उस ओर का आश्रय, लक्ष्य छोड़कर अन्तर में भगवान वीतराग निजानन्द एकस्वरूप... आहाहा! वीतराग, वह राग का आनन्द मानता है, पैसे में, भोग में, इज्जत में, कीर्ति में, मकान-बँगला में। वह तो राग का दुःख; राग में आनन्द मानता है। वह तो दुःख है। आहाहा! यह वीतरागी निजानन्दस्वरूप प्रभु आत्मा है। आहाहा! वह यह कैसे बैठे?

कहते हैं कि प्रभु! तुम कौन हो? तुझे कहाँ जाने से तुझे वह दृष्टि में आवे? कि राग से छूटकर अन्दर में जा तो तेरा आत्मा दृष्टि में आवे। ऐसी बात है। आहाहा! ओहोहो! वीतराग निजानन्द—निज आनन्द, वीतरागी निजानन्द ऐसा जो स्वरूप, ऐसा निज आत्मद्रव्य, वह आत्मा है। आहाहा! आत्मद्रव्य वस्तु है, आत्मा भगवान, वह पुण्य और

पाप के विकल्प से छूटकर वीतराग निजानन्द एकस्वरूप ऐसा आत्मद्रव्य... आहाहा! १००वीं गाथा है न! पूर्ण। आहाहा! प्रभु! तू पूर्ण वीतरागी आनन्द से भरा है न, नाथ! आहाहा! तेरी गर्दन अन्यत्र कहाँ जाये? प्रभु! क्या करता है तू यह? आहाहा! यह छह लड़के बैठे हों और आमदनी कुछ हुई हो और उसका पिता बैठा हो बीच में, वह बातें करे अन्दर से। छह लड़के हैं इसे। आहाहा! किसके लड़के? बापू! यह दया, दान और व्रत का राग भी तेरा नहीं (तो) वे तो दूर रहे। आहाहा! कहो, आणन्दभाई! यह ऐसा सूक्ष्म है। आहाहा! आहाहा!

बाहर की चीज़ में तो कहीं आत्मा नहीं और बाहर की चीज़ आत्मा में नहीं। अब रही बात पुण्य और पाप के भाव। वह अनादि से हो रहे हैं। अब उसे कहते हैं कि यह ऊपर की छाल है, इसलिए उसे छोड़ दे। अन्दर का निजानन्द वीतराग भगवान विराजता है, वहाँ दृष्टि कर। आहाहा! उसकी श्रद्धा-ज्ञान कर तो तुझे कल्याण का पन्थ हाथ आयेगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसा धर्म। अब वह चिल्लाहट मचाते हैं कि व्रत को, तप को सोनगढ़िया उड़ाते हैं। भाई! भगवान उड़ाते हैं या....? तेरे व्रत, तप माने हुए, वे सब कैसे हैं, यह खबर नहीं? आहाहा! वह स्थूल राग, साधारण होवे तो। नौवें ग्रैवेयक में गया और व्रत, तप किये, ऐसा तो अभी है भी कहाँ? अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक में गया। तब तो बारह-बारह महीने का संथारा। आहाहा! दो-दो महीने का संथारा, बारह-बारह महीने के अपवास और बाल ब्रह्मचारी, आजीवन ब्रह्मचर्य पालन किया। वह तो सब विकल्प है, राग है। आहाहा! परलक्ष्यी वृत्ति है, वह कहीं वस्तु नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहो, शान्तिभाई! यह सब झबेरी हैं। फँस गये, बाहर में पैसे में जरा व्यवस्थित हो तो उलझ जायें। क्या होगा? आहाहा!

प्रभु! तू कितना है? और इतने सब जीव हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : आप व्रत, तप को क्यों उड़ाते हो? आत्मा को जाना नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह व्रत है। निश्चय स्वरूप वीतराग निजानन्द स्वरूप में लीन होना, वह व्रत है। यह तो व्यवहार व्रतादि की बात में धर्म मानता है, वह सब झूठ है, वह तो पुण्य है। आहाहा!

पहले शब्द में ही गजब किया है। वीतराग—राग बिना का निज आनन्दस्वरूप प्रभु। आहाहा! एकस्वरूप। वापस भेद नहीं, ऐसा कहते हैं। वीतराग निजानन्द एकस्वरूप। यह तो अध्यात्म बात है, बापू! वीतराग की वाणी बहुत सूक्ष्म। आत्मा वीतरागी निज—अपना आनन्द एकस्वरूप। भेद भी नहीं वापस पर्याय में। आहाहा! समझ में आया? यह कुछ वार्ता नहीं कि थोड़े शब्दों में पूरा हो जाये। यह तो गम्भीर वस्तु है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसा जो निज। दोनों जगह, निज वीतराग निज आनन्दस्वरूप, वहाँ भी निज लिया और ऐसा निज आत्मद्रव्य। आहाहा! उसे यह पुण्य और पाप की क्रियावाला मानना, रागवाला मानना तो स्वरूप जैसा है, उसका अनादर है। समझ में आया? आहाहा! गजब बात की है! आहाहा!

पाठ में इतना लिया है न? '**राय-दोस बे परिहरिवि जे सम जीव णियंति।**' जो समभाव '**पश्यन्ति**' ऐसा है न? '**णियंति**' का अर्थ '**पश्यन्ति**' किया है। क्या कहते हैं? पुण्य और पाप के विकल्प की वृत्तियों को छोड़कर अन्दर में राग-द्वेष रहित '**सम जीव णियंति**' यह तो सम की व्याख्या की। समभावी अर्थात् वीतरागी निजानन्द जीव को जो देखता है, मानता है, वह समभावी '**परिट्ठिया**' समभाव में रहनेवाला अल्प काल में निर्वाण को पाता है। उन व्रत के विकल्प को छोड़कर अन्दर में स्थिर हो, वह पाता है। आहाहा! समझ में आया? बापू! तू है, वह पूर्ण अन्दर है। वह पर्याय में भी पूर्णता नहीं आती। राग और पुण्य-पाप के विकल्प तो विकार है। उनमें तो तू नहीं, वे तुझमें नहीं। परन्तु एक समय की तेरी दशा है, उसमें वह पूर्ण आता नहीं। पूर्ण पूर्णरूप से रहकर पर्याय, पर्यायरूप होती है परन्तु वह पर्याय में, आहाहा! पर्याय अर्थात् अवस्था—हालत। राग से पृथक् करके वीतरागी निजानन्द में, निजानन्द एक स्वरूप ऐसा आत्मद्रव्य... आहाहा! है?

उसकी भावना से विमुख... भगवान निजानन्द आत्मा आत्मद्रव्यस्वरूप की एकाग्रता से विमुख। आहाहा! **राग-द्वेष...** देखो भाषा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम भी आत्मा की भावना से ये विमुख हैं। आहाहा! समझ में आया? वीतराग निजानन्द, निजानन्द प्रभु एकस्वरूपी आत्मा, ऐसा जो निज आत्मपदार्थ, उसकी एकाग्रता से विमुख। उसकी सन्मुखता से विमुख राग और द्वेष। आहाहा! यह व्रत, तप, भक्ति

और पूजा का भाव, वह आत्मा के स्वभाव की सन्मुखता से विरुद्धभाव है, विमुखभाव है। आहाहा! है न? **राग-द्वेष उनको छोड़कर...** भगवान वीतराग निजानन्द एकस्वरूप ऐसा आत्मपदार्थ, उसकी एकाग्रता से, उसकी सन्मुखता से विमुख राग और द्वेष, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, परन्तु उनसे विमुख। आहाहा! क्योंकि राग के परिणाम की दिशा परसन्मुख है और आत्मा की परिणति की दिशा, दशा स्वदिशा-सन्मुख है। ऐसा धर्म। क्या कहा?

अपना निजानन्द वीतराग जो आत्मद्रव्य, उसकी सन्मुखता की एकाग्रता से विमुख राग। आहाहा! वह **राग-द्वेष उनको छोड़कर...** स्वभाव की एकाग्रता से विमुख ऐसे राग-द्वेष को छोड़कर **जो महान पुरुष...** आहाहा! महान पुरुष वह है कि जो **केवलज्ञान दर्शन लक्षणकर सब ही जीवों को समान गिनते हैं,...** आहाहा! केवलज्ञान अर्थात्? केवलज्ञान की पर्याय नहीं यहाँ। ज्ञानपुंज प्रभु अकेला ज्ञान, अकेला ज्ञान। जैसे रुई की गाँठ अकेली है पच्चीस मण की, उसी प्रकार यह ज्ञान का पिण्ड है पूरा आत्मा। आहाहा! कितनों ने तो यह बात सुनी भी न हो। ऐसा होगा मार्ग? अरेरे! मार्ग को नोंच डाला, सबने तोड़ डाला, बापू! इसलिए विरोध करते हैं न लोग। भाई! तुझे खबर नहीं, बापू! आहाहा!

यह बाह्यव्रत, दया, तप, अपवास, भक्ति, पूजा, यह भाव आत्मा के स्वभाव की सन्मुखता से विमुख भाव है। आहाहा! क्यों? कि राग की दशा की दिशा परसन्मुख है और वीतराग परिणति की दशा स्वदिशा-सन्मुख है। दोनों के मुख-फेर है। आहाहा! ऐसा उपदेश अब। करना क्या हमारे इसमें, कुछ सूझ नहीं पड़ती। यह करना, वह चलता नहीं? कि पुण्य और पाप के विकल्पों की अस्ति है, उस अस्ति का लक्ष्य छोड़कर भगवान आत्मद्रव्य परमात्मा विराजता है अन्दर में, सब आत्माओं को। शरीर के लक्ष्य को छोड़ दे, स्त्री, पुरुष और नपुंसक तथा तिर्यंच, नारकी का देह, वह तो आत्मा नहीं; और यहाँ पुण्य और पाप के भाव भी आत्मा नहीं। आहाहा! क्योंकि पुण्य-पाप तत्त्व भिन्न है नौ तत्त्व में। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। तो पुण्य, पाप तत्त्व भिन्न है। उससे भगवान भिन्न है। कहो, सेठ! ऐसी बात है। अरे!

मुमुक्षु : छोड़ना, वह छोड़ना रहा, करना कुछ नहीं रहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह छोड़ना और यह करना, स्थिर होना, वह करना नहीं आया? राग का व्यय करके स्वभाव का समभाव प्रगट करना। आहाहा! छोड़ना, वह भी नास्ति से बात करते हैं। बाकी वास्तव में तो वीतराग निजानन्दस्वरूप जीवद्रव्य में स्थिर होने से राग की उत्पत्ति नहीं होती, उसे राग छोड़ा, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! अरे.. अरे..! हें! वस्तु तो ऐसी है, बापू! उपदेश की शैली तो कैसी चले? आहाहा!

निजानन्द भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु वह आत्मद्रव्य। आहाहा! वह आत्मपदार्थ। उसकी सन्मुखता का भाव, वह वीतरागभाव। क्योंकि वस्तु वीतरागी निजानन्दस्वरूप है, तो उसकी सन्मुखता का भाव वीतराग है। आहाहा! क्या कहा? वीतराग निजानन्द एकस्वरूप भगवान आत्मपदार्थ है तो उसकी एकाग्रता का भाव भी वीतरागी भाव है। आहाहा! क्योंकि वीतराग निजानन्दस्वरूप भगवान का आश्रय लेकर उत्पन्न होता है, वह वीतरागी पर्याय होती है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें अब। मार्ग बापू अलग, भाई! आहाहा! चौरासी के अवतार में दुःखी। एक-एक योनि में अनन्त अवतार किये, बापू! आहाहा! उसके दुःख का समुद्र भरे, ऐसे दुःख सहन किये हैं, बापू! तूने तो भोगे परन्तु तेरे दुःख को देखनेवाले को आँसू आये हैं। परन्तु वह भूल गया। यहाँ जरा मनुष्यपना मिला, पंचेन्द्रिय हुआ, उसमें कुछ पैसा पाँच-पच्चीस हजार, लाख, दो लाख, पाँच लाख मिले। आहाहा! उसमें कुछ यह लौकिक जानकारी हो, लो न लौकिक। आहाहा! भगवान! तू भूल गया, प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो क्या कहते हैं? यह गजब बात है! आत्मा जो है, वह वीतरागी निजानन्द एकस्वरूप, वह आत्मद्रव्य है। उसका गुण वर्णन किया। वह गुणी ऐसा भगवान कैसे गुणवाला है? आहाहा! कि वह वीतरागी निजानन्द एकस्वरूप गुणवाला वह द्रव्य है। वह रागवाला है और एक समय की पर्यायवाला है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, वीरचन्दभाई! इसमें कुछ कलकत्ता में मिले, ऐसा नहीं कहीं वहाँ। आहाहा! शरीर, वाणी, मन परद्रव्य का अस्तित्व है। है, वह उसमें। अब यहाँ कर्म का अस्तित्व है, वह कर्म में। अब यहाँ पुण्य-पाप के भाव हैं, वह विकार का अस्तित्व है, वह

विकार में। आहाहा! यहाँ तो यह अस्तित्व का तत्त्व कितना है यहाँ? आहाहा! जो वीतरागी निजानन्द एकस्वरूप जिसकी अस्ति है। आहाहा! समझ में आया? वहाँ कहीं बीड़ियों—बीड़ियों में मिले, ऐसा नहीं। सेठ! क्या कहलाये? तम्बाकू के बड़े भरे हैं पूरे गोदाम। साठ तो मोटरें घर में हैं। धूल में भी नहीं, कहते हैं। मोटर का अस्तित्व उसमें है। आहाहा! तुझे तेरे में होनेवाले पुण्य और पाप का अस्तित्व, वह क्षणिक विकार है, उसका अस्तित्व उसमें है। उसका अस्तित्व वस्तु में नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! परमात्मप्रकाश, तेरा नाथ परमात्मप्रकाशस्वरूप है, ऐसा कहते हैं।

ओहोहो! एक लाईन में कितना भर दिया है! भावना, क्या लिया? वीतराग निजानन्द एकस्वरूप आत्मपदार्थ, उसकी एकाग्रता, उसकी सन्मुख की वीतराग पर्याय हुई, उसमें एकाग्रता। उससे विमुख। आहाहा! ऐसे जो **राग-द्वेष उनको छोड़कर जो महान पुरुष...** आहाहा! उसे महान कहते हैं यहाँ तो कहते हैं। बाकी सब पैसेवाले करोड़पति और अरबोंपति सब भिखारी हैं। आहाहा! महान पुरुश तो भले आठ वर्ष का बालक हो, परन्तु जो राग को छोड़कर स्वरूप में स्थिर होता है, वह महान पुरुष है। आहाहा! वह एक आता है न? पुरुषार्थसिद्धिउपाय में नहीं आता? चेतना में पुरुष किसे कहते हैं? पुरुषार्थसिद्धिउपाय में आता है। चेतना में सोवे जो जागकर, उसका नाम पुरुष कहते हैं। राग में सोवे, वह पुरुष नहीं। वे सब नपुंसक हैं। यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम में भी जो पड़ा है, वह नपुंसक है। क्योंकि वीर्य स्वरूप जो आत्मा का है, वह वीर्य स्वरूप जो बल—आत्मबल, उसकी रचना तो निर्मल की रचना करे, वह उसका बल है। विकार की रचना करे, वह नपुंसक है, उसका बल नहीं। आहाहा! गजब बात है न! पर का धन्धा-बन्धा तो कर सकता नहीं, परन्तु राग की रचना करे दया, दान और व्रत की... आहाहा! उस वीर्य को नपुंसक कहा है। जैसे नपुंसक को प्रजा नहीं होती, पावैया को प्रजा नहीं होती... आहाहा! यह हीजड़ा (को) प्रजा हो, उसे पुत्र-पुत्री? इसी प्रकार जिसे पुण्यपरिणाम में आत्मा की प्रजा नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो विश्राम का वाक्य है, समझ में आया यह। आहाहा!

अन्तर में पुण्य परिणाम की रचना करे और वह मैं, यह तो कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि नपुंसक है। टाईल्स की रचना करे, वह नहीं, वह तो नहीं ही। बात दूर रह गयी? थाणा

में है, इनका टाईल्स का बड़ा कारखाना। तब वहाँ उतरे थे न! आहाहा! उसकी रचना तो आत्मा तीन काल में कर नहीं सकता, परन्तु पुण्य के परिणाम की रचना करे, उसे आत्मबल से भिन्न नपुंसक कहा गया है। आहाहा! अब ऐसी बातें! और जो पुण्य के परिणाम को छोड़कर वस्तु में एकाग्र होता है... है ? आहाहा! **छोड़कर जो महान पुरुष केवलज्ञान दर्शन लक्षणकर सब ही जीवों को समान गिनते हैं,...** एक ज्ञान, दर्शनस्वरूप भगवान आत्मा, ऐसा स्वयं समभाव में आया तो सबको ऐसा ही जाना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! केवलज्ञान। केवलज्ञान अर्थात् पर्याय नहीं, हों! केवली की केवल (ज्ञान) पर्याय, वह तो पर्याय है। यह तो केवलज्ञान पूरी वस्तु। **केवलज्ञान (केवल) दर्शन लक्षणकर सब ही जीवों को समान गिनते हैं,...** वह महान पुरुष है। आहाहा!

वे पुरुष समभाव में स्थित शीघ्र ही शिवपुर को पाते हैं। लो। आहाहा! क्योंकि आत्मा वीतरागी निजानन्दस्वरूप आत्मद्रव्य और वीतराग की आज्ञा यह है कि राग को छोड़कर अन्दर वीतरागी स्वभाव का आश्रय ले तो तुझे वीतरागी समभाव प्रगट होगा। आहाहा! क्योंकि वीतरागीस्वरूप ही तू है, समभावीस्वरूप ही तू है। समभावीस्वरूप ही तू है। उसका आश्रय लेकर समभाव, शान्ति, वीतरागता, निजानन्द सुख की परिणति... आहाहा! उसे समभाव कहते हैं और उससे तेरी अल्पकाल में मुक्ति होगी। समझ में आया ? आहाहा! **वे पुरुष समभाव में स्थित...** ज्ञान, दर्शन त्रिकाली स्वभाव में स्थित, वह समभाव। राग में स्थित, वह विषमभाव राग-द्वेष। पुण्य-पाप में स्थित, वह विषमभाव। ज्ञान, दर्शन में स्थित, वह समभाव। आहाहा! अरे! ऐसा मार्ग, भाई! मार्ग बहुत ऐसा है प्रभु का वीतरागमार्ग ऐसा है। आहाहा! अरे! लोगों को—वाडा में जन्मे, उन्हें सुनने को मिलता नहीं। आहाहा! हें। है न, यहाँ तो ८७ वर्ष हुए। सत्तर वर्ष से तो सब जानते हैं। आहाहा! अरेरे! यह चीज़ कहाँ है ? अरे! सुनने को मिलता नहीं, उसे रुचि में कब आवे ? यह दशा कब बदले ? परसन्मुख की दशा की दिशा परसन्मुख है। तेरे स्वभाव की दशा की दिशा तुझमें अन्दर है। आहाहा! अन्तर्मुख देख। आहाहा! जहाँ भगवान विराजता है पूर्णानन्द प्रभु स्वयं। आहाहा! समझ में आया ? अब यह समभाव किसे कहते हैं, इसकी व्याख्या करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, पौष शुक्ल ६, रविवार
दिनांक-२६-१२-१९७६, गाथा - १००, १०१, प्रवचन-१६९

परमात्मप्रकाश, गाथा १००। भावार्थ फिर से। यह जैनदर्शन का रहस्य है। यह आत्मा **वीतराग निजानन्द एकस्वरूप निज आत्मद्रव्य...** आहाहा! यह भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर जिनवरदेव ने प्रगट किया और जगत को प्रगटरूप से प्रसिद्धि की कि भगवान! तू कौन है ? आहाहा! वीतराग परमानन्द निजानन्द एकस्वरूप निज आत्मद्रव्य। देखो! आहाहा! जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट करना है, धर्म की पहली सीढ़ी, उसे यह आत्मा संयोगी चीज़ है, उसमें तो यह नहीं, अन्दर दया, दान, भक्ति के, पूजा के भाव आवें, उसमें भी आत्मा नहीं, वह तो राग है। आहाहा! ऐसे एक समय की प्रगट पर्याय जो व्यक्त है, वह कहीं आत्मा पूर्ण नहीं। आहाहा! वह तो वीतराग निजानन्द, वीतरागी निज आनन्दस्वरूप भगवान द्रव्य आत्मा है। आहाहा! भावार्थ है न पहली लाईन। बहुत ही वीतराग सर्वज्ञ जिनवरदेव का रहस्य आत्मा कैसा है, यह बताकर उसकी प्रतीति करे, उसे अनुभव करे तो उसे धर्म होता है। बाकी बाह्य से यह व्रत, तप, भक्ति, पूजा और यात्रा (करे), वह सब राग की क्रियायें हैं। आहाहा! बहुत कठिन काम। उस राग को जाननेवाली वर्तमान ज्ञान की पर्याय है, वह भी पर्यायबुद्धिवाला माने उसे। समकिती तो पूर्ण आनन्द निजानन्द वीतरागस्वरूप आत्मद्रव्य को मानता है।

मुमुक्षु : उसमें ज्ञानपर्याय साथ में ले तो क्या बाधा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानपर्याय जानती है न उसे। ज्ञानपर्याय उसे जानती है। ज्ञानपर्याय पर्याय को जानती है, ऐसा नहीं। ज्ञान की पर्याय... सूक्ष्म बात, भगवान! यह तो वीतराग परमेश्वर जन्म-मरण रहित होने का पंथ परमात्मा का। कहते हैं, इन्होंने क्या पूछा ? कि वर्तमान पर्याय को दृष्टि में इकट्ठी लें तो ? परन्तु पर्याय अन्दर गयी तो जाननेवाली कौन रही ? यह तो बड़ा भ्रम है। बड़ा भ्रम।

मुमुक्षु : अन्तर में जाकर जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में जाये परन्तु अन्दर में जाये वह जाना किसने ? जानने

की पर्याय में जाना किसने? वह पर्याय जानती है कि वह परिपूर्ण मेरा स्वरूप है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! वर्तमान में तो ऐसी गड़बड़ हो गयी है। आहाहा!

परमेश्वर जिनवरदेव त्रिलोकनाथ ने इस आत्मा को ऐसा कहा और देखा और जाना कि भगवान आत्मा... आहाहा! अरे! इसे भगवान कहने पर भी कठिन पड़े। बापू! भगवान है प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा! तेरा स्वभाव कहा न? **वीतराग निजानन्दस्वरूप एकस्वरूप निज आत्मद्रव्य उसकी भावना...** यह भावना पर्याय हुई। समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! जिनवरदेव परमेश्वर का मार्ग अलौकिक है। वर्तमान में तो कुचल डाला है। यह यात्रा करे और धर्म हो जाये, व्रत पाले और धर्म हो जाये, भगवान की भक्ति-पूजा करे और धर्म हो जाये, ऐसा मार्ग को बिगाड़ डाला है। बापू! यह मार्ग नहीं है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय भी वैभव है न अपना।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उस वैभव में ज्ञात कौन होता है? डाह्याभाई! आहाहा! निजपर्याय पर्याय का विषय स्वयं नहीं। पर्याय का विषय त्रिकाली ज्ञायकभाव है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! प्रचलित पंथ है, उसमें यह सब बात फेरफारवाली हो गयी है। ...भाई! ऐसा मार्ग, भाई!

मुमुक्षु : भेद पड़ जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद ही है। पर्याय में द्रव्य आता नहीं, ऐसा भेद है। पर्याय में द्रव्य की जो शक्ति निजानन्द, सहजानन्द प्रभु एक स्वरूप आत्मद्रव्य, उसका ज्ञान आवे, उसकी श्रद्धा हो, परन्तु उस पर्याय में वह आत्मद्रव्य नहीं आ जाता। आहाहा! ऐसी बात! वह तो दया पालो और भक्ति करो, पूजा करो और व्रत करो, हो गया धर्म। अरे.. बापू! यह तो मर गया अनन्त बार कर-करके। भाई! जिससे सम्यग्दर्शन हो, आहाहा! समझ में आया? यह तो शान्ति का मार्ग है, प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो निजानन्द वीतराग एकस्वभाव ऐसा जो आत्मद्रव्य ऐसा जो भगवान आत्मा, आहाहा! नित्यानन्द ध्रुव। उसकी भावना, वह पर्याय। समझ में आया? पर्याय की भावना नहीं। द्रव्य की भावना—पर्याय।

मुमुक्षु : पर्याय कहती है, मैं ध्रुव हूँ, यह मिथ्या नहीं कहलायेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय कहती है कि ध्रुव हूँ अर्थात् कि त्रिकाली हूँ, ऐसा त्रिकाली (को) स्वीकारती है पर्याय। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! मूल चीज़ को समझना बापू! कठिन है, भाई! शास्त्र पढ़ा अनन्त बार, ग्यारह अंग पढ़ा, पण्डिताई में पूज्य हुआ, यह चीज़ दूसरी, बापू! समझ में आया?

यहाँ भगवान आत्मा वीतराग निजानन्द एकस्वभावरूप जो आत्मद्रव्य वस्तु। वह वस्तु, उसकी भावना। अर्थात् पर्याय, उसकी भावना—एकाग्रता करती है। पर्याय, वह वस्तु में एकाग्र होती है। पर्याय में पर्याय एकाग्र होती है, ऐसा नहीं है। ऐसा मार्ग, भाई! क्या हो? आहाहा! संसार के पाप के कारण निवृत्त होता नहीं। यह कमाना, खाना, भोग, विषय और रात्रि में छह-सात घण्टे सोना... आहाहा! जिन्दगी अकेली पाप में जाती है। धर्म तो नहीं, परन्तु वहाँ तो पुण्य भी नहीं। आहाहा! यह धन्धा और... ऐ... पोपटभाई! हें! अधिक पैसेवाले को अधिक उपाधि। दो करोड़ और पाँच करोड़ और दस करोड़ धूल इकट्ठी। मिट्टी है, पुद्गल है, प्रभु! वह तू नहीं। तू उसमें नहीं और वह तुझमें नहीं। तुझे मानना हो तो तू कितना है? आहाहा! उसमें यह पैसा, परिग्रह और जड़, कुटुम्ब, स्त्री, पुरुष तो उसमें नहीं, वह तो परचीज़ है। परन्तु उसमें कर्म भी नहीं वस्तु में। भगवान उसे यहाँ वस्तु कहते हैं। कर्म तो नहीं परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम जो राग है, वह वस्तु में नहीं। वह तो नहीं, परन्तु वर्तमान पर्याय उसे जानती है, वह पर्याय उसमें नहीं। डाह्याभाई! ऐसा मार्ग है, भगवान! क्या कहें? परमात्मा का सन्देश तो यह है। आहाहा! अरे! इसकी महिमा इसे सूझी नहीं। इसकी महत्ता भगवान आत्मा एक समय में... आहाहा!

वीतराग निजानन्द एकस्वरूप प्रभु। आहाहा! भाषा तो देखो! ऐसा जो निज द्रव्य। वापस वहाँ भी निज द्रव्य लिया। **उसकी भावना,...** उसे जाननेवाली पर्याय। उसमें एकाग्र हो, उसे यहाँ पर्याय को भावना कहा जाता है। आहाहा! भारी पकड़ना कठिन अभी सुनने में। भगवान वीतराग निजानन्द एकस्वरूपी प्रभु, वह द्रव्य, वह वस्तु; और उस वस्तु में श्रद्धा करनेवाली, जाननेवाली पर्याय, वह उसकी भावना कही जाती है। भावना में भाव की एकाग्रता है। भाव की एकाग्रता, वह भावना में है। आहाहा! सूक्ष्म

बात, भाई! अनन्त जन्म-मरण करके... आहाहा! वह सब अरबोंपति, करोड़ोंपति दुःखी हैं बेचारे। दुःखी... दुःखी... दुःखी... दुःखी। आहाहा! आत्मा के आनन्द की खबर नहीं।

मैं सहजानन्दमूर्ति प्रभु हूँ, मेरा निधान तो... आया था न? ९६ में नहीं आया था? ९६ में अन्तिम शब्द आया था। **केवलज्ञानवेलि के कन्द सुख-पंक्ति है,...** आहाहा! ९६ का अन्तिम शब्द है, ९६ गाथा। ९६ है न? उसका अन्तिम शब्द है। ...भाई! ९६ का अन्तिम शब्द है। ९६, ९६। **केवलज्ञानवेलि के कन्द सुख-पंक्ति...** आहाहा! नाथ! तू देख तो सही तुझे, कौन है? अकेला ज्ञान और आनन्द की वेलडी का कन्द है वह तो प्रभु। आहाहा! ज्ञान और आनन्द की धारावाही पंक्ति पड़ी है अन्दर। ... भाई! यह तो कभी सुना भी न हो वहाँ। आहाहा! अरे! प्रभु! तू कौन है, देख तो सही, भाई! और जैसा जितना जैसे है, वैसे उसे प्रतीति में और ज्ञान में न आवे तो वह प्रतीति और ज्ञान सच्चा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! और ऐसा धर्म कैसा? यह वीतराग का धर्म ऐसा होगा? वीतराग में तो दया पालना और छहकाय की हिंसा न करना, ऐसा सुना था। कन्दमूल नहीं खाना और छह परबी ब्रह्मचर्य पालना। अरे! प्रभु! सुन तो सही, प्रभु! वह क्रिया तो राग की है। वह राग तुझमें नहीं। ...भाई! ऐसा है, भगवान! आहाहा!

आत्मवस्तु ऐसी है। फिर ज्ञान, दर्शन कहेंगे। अभी यह द्रव्य कहते हैं। आहाहा! पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण आनन्द, ऐसे स्वभाववाला पदार्थ—ऐसे आत्मद्रव्य की भावना... आहाहा! उसकी सन्मुखता होना और राग, निमित्त और पर्याय की विमुखता होना। आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा! **जो राग-द्वेष...** देखो! भगवान आत्मा पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द और पूर्ण ज्ञान का कन्द प्रभु। जैसे वेलडी में काशीफल पकते हैं न? अधमण-अधमण के। यह वेलडी-वेलडी। यह काशीफल नहीं अधमण के? वेलडी छोटी है परन्तु पाक ऐसे होते हैं। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा का क्षेत्र असंख्यप्रदेशी छोटा है यहाँ। परन्तु उसकी वेलडी फलती है, तब अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द का काशीफल उसमें से प्रस्फुटित होता है। कोळा समझे सेठ? साकरकोळा। साकरकोळा मिठास होती है। शकरकन्द की मिठास हो, वैसी उसकी मिठास नहीं होती। परन्तु उसे साकरकोळा (काशीफल) कहते हैं। शकरकन्द को साकरकन्द कहते हैं। शकरकन्द है न? वह वास्तव में शकरकन्द—चीनी का कन्द है। वह शकरकन्द ऊपर की लाल छाल

के अतिरिक्त शक्कर का कन्द है वह शकरकन्द; इसलिए उसे शकरकन्द कहते हैं और इसे साकरकोळा कहते हैं।

इसी प्रकार भगवान आनन्द की वेलडी। आहाहा! उसकी पर्याय में अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति पकती है। वह उसकी वेलडी का फल है, प्रभु! आहाहा! कहो, डाह्याभाई! अरेरे! इसने निजपरमात्मा स्वयं स्वरूप है। आहाहा! उसकी... है? उससे विमुख। भावना से विमुख, हों! त्रिकाली ज्ञायक द्रव्यस्वभाव आनन्दप्रभु पूर्ण आनन्द का नाथ, उसकी भावना अर्थात् एकाग्रता पर्याय, उससे विमुख जो पुण्य और पाप। आहाहा! समझ में आया? यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, और तप तथा हिंसा, झूठ, चोरी और विषय, यह सब विकल्प राग है। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं, उससे विमुख जो राग-द्वेष। आहाहा! भावना, वह स्वभाव के सन्मुख है और भावना से पुण्य-पाप वे विमुख हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो और कहीं रह गयी। मिट्टी मिले यह धूल। किसे मिले? इसे कहाँ मिली है? आवे, तब मुझे मिली, इसे तो ऐसी ममता मिली है। आहाहा! वह तो कहीं रह गयी। समझ में आया? परन्तु यह पैसा करोड़ों, अरबों मिले, उसका जो भाव शुभभाव, वह आत्मा की पर्याय से विमुख भाव है। आहाहा! समझ में आया?

राग-द्वेष उनको छोड़कर... ऐसा है न? आहाहा! ऐसे परमात्मस्वरूप के प्रति एकाग्रता और यह राग-द्वेष को छोड़े, वह व्यय। आहाहा! त्रिकाली आनन्द वीतराग निजानन्दस्वरूप, वह ध्रुव, उसकी एकाग्रता, वह पर्याय मोक्षमार्ग की, समभाव की। उससे विमुख, वह पुण्य-पाप के भाव। उनको छोड़कर भगवान आत्मा के आनन्द की एकाग्रता में रहे। आहाहा! **जो महान पुरुष...** वह महान पुरुष कहते हैं। सब पैसेवाले और धूलवाले, सेठिया और राजा, दस-दस हजार का वेतन महीने का और एक दिन की वकालत और एक दिन के दस हजार मिले, सब धूलधाणी है। आहाहा! समझ में आया? सुजानमलजी!

महान पुरुष... आहाहा! **केवलज्ञान- (केवल) दर्शन लक्षणकर सब ही जीवों**

को समान गिनते हैं,... आहाहा! सब भगवान आत्मायें, परमेश्वर वीतराग ऐसा पुकारते हैं, सब आत्मायें अनन्त हैं, वे सब केवलज्ञान, केवलदर्शन लक्षण से सब समान हैं। आहाहा! अरेरे! सत्य बात इसे सुनने को मिले नहीं और असत्य के पोषण में रहे पूरे दिन पाप में। सुनने का मिले नहीं सच्चा। आहाहा!

मुमुक्षु : कहाँ मिले?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या हो भाई! आहाहा!

ऐसा जीव। आहाहा! कैसा जीव? वीतराग निजानन्द एकस्वरूप निज आत्मद्रव्य की एकाग्रतावाला सम्यग्दृष्टि ज्ञानी **राग-द्वेष को छोड़कर जो महान पुरुष...** वह महान पुरुष, आहाहा! **केवलज्ञान-दर्शन लक्षणकर सब ही जीवों को समान गिनते हैं,...** सब जीव पूर्णानन्दस्वरूप भगवान है। आहाहा! केवलज्ञान। केवलज्ञान अर्थात् वह पर्याय नहीं। अकेला ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान। केवलदर्शन—दर्शन...दर्शन... दर्शन—दृष्टा। ज्ञाता-दृष्टा के स्वभाववाला भगवान, ऐसे स्वभाव से सब आत्मा समान हैं। लीलाधरभाई! ऐसा सुनने को मिलता नहीं, भगवान! यह क्या कहते हैं? यह कहाँ? आहाहा! भगवान का पुकार कौन सुने? श्रीमद् कहते थे, अरेरे! हमारी यह बात—नाद को कौन सुनेगा? समझ में आया? आहाहा! यह दुनिया के चतुर होकर घूमे बड़े और पाँच-पाँच लाख की आमदनी महीने की, मानो हम बड़े हो गये। धूल में भी बड़े नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह महान पुरुष है। आहाहा!

जिसका आनन्द परिपूर्ण प्रभु का है, आहाहा! उसका आनन्द बाहर में स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी में नहीं, परन्तु वह आनन्द एक समय की पर्याय में भी नहीं, इतना आनन्द, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जो भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, उसका आनन्द नहीं, स्त्री, कुटुम्ब, पैसा, परिवार में; उसका आनन्द नहीं, पुण्य-पाप के भाव में; वह आनन्द पूर्ण आनन्द है, वह एक समय की पर्याय में भी पूर्ण आनन्द नहीं। आहाहा! चिमनभाई! ऐसी बातें हैं, इसलिए लोग बेचारे भड़क जाते हैं। अरे! हम ऐसा मानते हैं, उससे तो यह विरुद्ध निकाला। विरुद्ध नहीं, बापू! सुन! तेरी मान्यता से विरुद्ध है। वस्तु से विरुद्ध नहीं, प्रभु! तुझे खबर नहीं। भाई! आहाहा! तेरी प्रभुता की, तुझे

महिमा की—तेरी महिमा की खबर नहीं। तेरी महिमा तुझे आँकना आती नहीं। आहाहा! समझ में आया?

वे पुरुष समभाव में स्थित... वे समभाव में स्थित हैं। आहाहा! वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी ज्ञान और स्वरूप में स्थिरता, वह त्रिकाली वस्तु की भावना—एकाग्रता। वह समभाव में स्थित है। त्रिकाली समभाव है, उसकी एकाग्रता, उस समभाव में स्थित है। आहाहा! सेठ! अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र प्रभु है। आहाहा! अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय वीतरागता। आहाहा! उसका भरचक भरपूर भगवान आत्मा है। आहाहा! उसकी एकाग्रता, उसमें एकाग्रता, वह समभाव है और उस समभाव द्वारा सब जीवों को समान जानता है। आहाहा! कहो, चिमनभाई! ऐसी बातें हैं, भाई! कितने ही कहते हैं कि सोनगढ़ ने नया धर्म निकाला। अरे... भगवान! सुन न, प्रभु! भाई! मार्ग यह है न, नाथ! अनन्त तीर्थंकरों का यह पुकार है। अनन्त परमेश्वर का दिव्यध्वनि में आया हुआ यह भाव है। आहाहा!

अब, **वे पुरुष समभाव में स्थित...** त्रिकाली ज्ञानानन्द में स्थिर रहा हुआ जो समभाव, उसमें जो स्थित शिवपुरी को पहुँचेंगे, वे मोक्ष जायेंगे। है? **शीघ्र ही शिवपुर को पाते हैं।** शीघ्र। अल्प काल में परमात्मदशा वे प्राप्त करेंगे। आहाहा! जिसे दूज उगी, वह तेरहवें दिन में पूर्णिमा होगी ही। इसी प्रकार पूर्णानन्द के नाथ का जहाँ अन्दर ज्ञान का अनुभव हुआ, वह प्रतीति हुई, अनुभव हुआ और समभाव प्रगट हुआ, वह दूज उगी। उसे पूर्ण परमात्मा होने में अब देरी नहीं है। समझ में आया? बाकी सब भटक मरेंगे। आहाहा! पोपटभाई! ऐसा है। यह शिवपुर (पहुँचेगा)। शिव-पुर। कल्याण की मूर्ति भगवान आत्मा सिद्धपरमात्मा, वह शिवपुर, वहाँ वह पहुँचेगा। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तक तो कल अपने आ गया था। यह तो कोई नये हों उन्हें जरा...।

अब, **समभाव का लक्षण ऐसा है,...** समभाव किसे कहना? आहाहा! **कि जीवित, मरण,...** शरीर का जीवत्व हो या देह छूटे। आहाहा! **लाभ, अलाभ...** अरबों का लाभ हो, या लड़का अच्छा और लड़के को कन्या अच्छी मिले, ऐसा लाभ हो या अलाभ। एक पाई भी न मिले और सगे-सम्बन्धी कोई न रहे। दोनों में जिसे समभाव है। आहाहा! दूसरे प्रकार से कहें तो यह ज्ञाता-दृष्टा है न! ऐसा कहते हैं मूल तो! आहाहा!

उससे जीवन और मरण में जिसे ज्ञाता-दृष्टापना समभाव है। आहाहा! जिसे लाभ और अलाभ में समभाव है। आहाहा! जिसने **सुख-दुःखादि सबको समान जाने।** आहाहा! अनुकूलता के ढ़ेर का पार न हो और प्रतिकूलता के ढ़ेर का पार न हो, परन्तु जिसे समभाव है। उस चीज़ में मेरा कुछ है नहीं। आहाहा! मेरी चीज़ में जो आनन्द है, उसकी जो प्रतीति और समभाव प्रगट हुआ, वह समभाव अन्यत्र कहीं है नहीं। आहाहा! ऐसा उपदेश कैसा यह? नये लोग हों बेचारों को कुछ खबर नहीं होती। संसार की चतुराई में डूब गये हों बेचारे। उसमें सुनने जाये तो मिले यह कि यात्रा करो, पूजा करो, भक्ति करो, सिद्धचक्र की पूजा कराओ। पाँच-दस लाख खर्च करो, मन्दिर बनाओ। तुमको धर्म होगा। ऐसा सुने बेचारा। चिमनभाई! हें! वह तो शुभभाव है, पुण्यभाव है, यदि राग मन्द करता हो तो। दस लाख, पच्चीस लाख के मन्दिर बनाये हों। कहा न। आहाहा!

मुमुक्षु : करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : करना यह। यह कहते हैं न करने का। त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव में एकाग्रता करना, यह करना। पूर्णानन्द के नाथ का स्वीकार करना, अल्पज्ञ और राग का स्वीकार छोड़ देना। तीन लाख की धर्मशाला बनायी है न! हम वहाँ थे, तब उद्घाटन किया था सेठियों ने। करोड़पति है तो तीन लाख की धर्मशाला बनायी। मानो कोई इसमें से धर्म होगा? दुनिया में तो ऐसा होता है कि आहाहा! भगवानदास शोभालाल ने तीन-तीन लाख की धर्मशाला (बनायी)। लौकिक को प्रयोग करने की, जाओ चाहे जो प्रयोग करे। क्या है परन्तु उसमें अब, धूल में? सेठ! आहाहा! 'सुधा संसाधनी धर्मशाला' नहीं आया उसमें? आहाहा! अमृत का सागर भगवान, वह धर्मशाला तो आत्मा है। आहाहा! है न, उसमें आया था न? यह ही है न? 'कर्म संसाधनी धर्मशाला', सुधा अमृत के धर्म की संसाधनी धर्मशाला। 'सुधा ताप की नाश की मोक्षमाला, मेघमाला'। यह तो जिनवाणी की व्याख्या की है। 'महामोह विध्वंसनी मोक्षदानी, नमो देवी वागेश्वरी जैनवाणी।' इस जैनवाणी में यह भाव वीतरागता को वर्णन करते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह बनारसीदास की ॐकार की स्तुति है। बनारसीदास हो गये न! उसमें वह धर्मशाला आयी। आहाहा!

जिनवाणी धर्मशाला। अर्थात्? वीतरागभाव जो है, वह आत्मा वीतरागभाव की

प्रतीति करता है, वह धर्मशला है। आहाहा! समझ में आया? यह तो बात-बात में अन्तर है। 'आनन्दा कहे परमानन्दा माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मळे ने एक त्रांबियाना तेर।' इसी प्रकार वीतरागदेव कहते हैं कि तेरी बात और मेरी बात में बात-बात में अन्तर है। आहाहा! डाह्याभाई! राग है यह तो। आहाहा! समझ में आया? आता है न मांगलिक में? अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं, साहू शरणं, केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणं, वह यह। पूर्णानन्द के नाथ की एकाग्रता का समभाव, वह केवली पण्णत्तो धर्म। समझ में आया? समभाव से मोक्ष मिलता है। है?

जो अनन्त सिद्ध हुए और होवेंगे,... जो अनन्त सिद्धपरमात्मा णमो सिद्धाणं। अनन्त सिद्ध हुए और अनन्त सिद्ध होयेंगे। भविष्य में अनन्त सिद्ध होंगे। **यह सब समभाव का प्रभाव है।** आहाहा! वीतरागी निजानन्द की परिणति होना, वह वीतराग समभाव है। उस समभाव से अनन्त सिद्ध हुए और अनन्त सिद्ध होंगे। एक ही पंथ है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' आहाहा! लो! **समभाव से मोक्ष मिलता है।**

कैसा है वह मोक्षस्थान,... अब मोक्षस्थान सिद्धपद (कैसा है)? **जो अत्यन्त अद्‌भुत अचिन्त्य केवलज्ञानादि अनन्त गुणों का स्थान है।** आहाहा! मोक्ष कैसा होगा? तेरा जो स्वरूप है अनन्त ज्ञान, दर्शन, वह पर्याय में प्रगट हो जाये पूर्णज्ञान और पूर्ण आनन्द, वह मोक्ष है। बाकी सब भटकने के रास्ते हैं। अरेरे! आहाहा! यहाँ अरबोंपति हो, मरकर ढोर में जाये। गिलहरी की कूख में जाये। आहाहा! जिसे चैतन्य की खबर न हो, जिसे आत्मा के आश्रय की शरण न मिले। अरे! **जो अत्यन्त अद्‌भुत अचिन्त्य केवलज्ञानादि अनन्त गुणों का स्थान है।** आहाहा! यह वह पर्याय, हों! अनन्त केवलज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त गुण की अनन्त पर्याय प्रगट हो गयी है, उसे मोक्ष कहते हैं। उस बैकुण्ठ में जाकर ईश्वर की सेवा करे, वह मोक्ष। ऐसा मोक्ष नहीं, यहाँ कहते हैं। यहाँ कहे न, हमको आहार-पानी दो, तुम्हे बैकुण्ठ में लड्डू मिलेंगे। वहाँ भी इसे अभी मनुष्य रहना है (और) लड्डू खाने हैं। यहाँ तो मोक्ष अर्थात् भगवान आत्मा, अनन्त ज्ञान, आनन्द, शान्ति का स्वभाव का सागर है। उसकी एकाग्रता से जो पूर्ण अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द प्रगट हुए, उसे मोक्ष कहते हैं। दुःख से मुक्त और परमानन्द की प्राप्ति से सहित। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ यह व्याख्यान जानकर... है ? **राग-द्वेष को छोड़के...** लो ठीक। यह व्यवहार का रागादि छोड़कर, ऐसा कहते हैं। अब वह चिल्लाहट करते हैं कि व्यवहार से होता है, व्यवहार से होता है। अरे.. भगवान! व्यवहार तो राग है न, प्रभु! राग से वीतरागता हो ? या वीतरागस्वभाव है, उसके आश्रय से वीतरागता होगी ? आहाहा! **यह व्याख्यान जानकर राग-द्वेष को छोड़के शुद्धात्मा के अनुभवरूप जो समभाव...** भाषा देखी वापस! शुद्ध परमात्मा आनन्दस्वरूप भगवान का अनुभव, वह पर्याय है। आहाहा! भाषा अनजानी, भाव अनजाने, इस जगत का परिचय किया, उससे अलग प्रकार यह आता है। आहाहा! बहियों में नामा देखने जाये तो तुरन्त अमुक नाम यहाँ आया, फलाना नाम आया। उस नामा का पृष्ठ हाथ में आवे नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **शुद्धात्मा के अनुभवरूप जो समभाव...** भाषा देखो! समभाव का अर्थ ऐसा नहीं कि राग किया और उसे मारा नहीं और क्रोध नहीं किया, यह नहीं। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रत्न, चैतन्यरत्न प्रभु, ऐसे हीरा की पर्याय जो प्रगट हो वीतरागी अनुभव, उसे समभाव कहा जाता है। समझ में आया ? **समभाव उसका सेवन सदा करना चाहिए।** लो, यह क्या करना! ऐ... सेठ! आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान पूर्णानन्द प्रभु की सेवा, उसमें सदा एकाग्रता करना। आहाहा! समझ में आया ? **समभाव उसका सेवन सदा करना चाहिए।** आहाहा! पूर्ण स्वरूप भगवान... परन्तु बैठे कैसे ? आहाहा! दो बीड़ी—सिगरेट को पीवे, तब पाखाने में दस्त उतारे भाईसाहब को, ऐसे तो अपलक्षण। आहाहा! सवेरे डेढ़ पाव-सेर चाव पीवे तो मस्तिष्क ठिकाने रहे, नहीं तो सुनने में मस्तिष्क ठिकाने नहीं आज। आहाहा! कितनी पराधीनता के व्यसन ऐसे। आहाहा! अब उसे यह आत्मा... आहाहा! भगवान! परन्तु सुखी होना हो, तब तो यह पंथ लेकर ही रहेगा। ये सब दुःख के पंथ हैं, नाथ! आहाहा! कमाई करना, वह दुःख का पंथ है, परन्तु पूजा, भक्ति और व्रत के परिणाम, वह दुःख का पंथ है। आहाहा! क्योंकि वह राग है। आहाहा!

यही इस ग्रन्थ का अभिप्राय है। है ? **यही इस ग्रन्थ का अभिप्राय है।** १०० हुई, १००।

गाथा - १०१

अथ सर्वजीवसाधारणं केवलज्ञानदर्शनलक्षणं प्रकाशयति-

२२४) जीवहँ दंसणु णाणु जिय लक्खणु जाणइ जो जि।
देह-विभेएँ भेउ तहँ णाणि कि मण्णइ सो जि।।१०१।।

जीवानां दर्शनं ज्ञानं जीव लक्षणं जानाति य एव।
देहविभेदेन भेदं तेषां ज्ञानी किं मन्यते तमेव।।१०१।।

जीवहं इत्यादि। जीवहं जीवानां दंसणु णाणु जगत्त्रयकालत्रयवर्तिसमस्तद्रव्यगुण-पर्यायाणां क्रमकरणव्यवधानरहितत्वेन परिच्छित्तिसमर्थं विशुद्धदर्शनं ज्ञानं च। जिय हे जीव लक्खणु जाणइ जो जि लक्षणं जानाति य एव देह-बिभेएं भेउ तहं देहविभेदेन भेदं तेषां जीवानां, देहोद्भवविषयसुखरसास्वाद-विलक्षणशुद्धात्मभावनारहितेन जीवेन यान्युपार्जितानि कर्माणि [1]तदुदयेनोत्पन्नेन देहभेदेन जीवानां भेदं णाणि किं मण्णइ वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी किं मन्यते। नैव। कम्। सो जि तमेव पूर्वोक्तं देहभेदमिति। अत्र ये केचन ब्रह्माद्वैतवादिनो नानाजीवान्न मन्यन्ते तन्मतेन विवक्षितैकजीवस्य जीवितमरणसुखदुःखादिके जाते सर्वजीवानां तस्मिन्नेव क्षणे जीवितमरणसुखदुःखादिकं प्राप्नोति। कस्मादिति चेत्। एकजीवत्वादिति। न च तथा दृश्यते इति भावार्थः।।१०१।।

आगे सब जीवों में केवलज्ञान और केवलदर्शन साधारण लक्षण हैं, इनके बिना कोई जीव नहीं है। ये गुण शक्तिरुप सब जीवों में पाये जाते हैं, ऐसा कहते हैं-

दर्शन और ज्ञान लक्षण है जीवों का, जो जीव लखें।
तो शरीर के भेदों से क्या वह उन सबमें भेद करे?।।१०१।।

अन्वयार्थ :- [जीवानां] जीवों के [दर्शनं ज्ञानं] दर्शन और ज्ञान [लक्षणं] निज लक्षण को [य एव] जो कोई [जानाति] जानता है, [जीव] हे जीव, [स एव ज्ञानी] वही ज्ञानी [देहविभेदेन] देह के भेद से [तेषां भेदं] उन जीवों के भेद को [किं मन्यते] क्या मान सकता है, नहीं मान सकता।

---

१. पाठान्तर - तदुदयेनोत्पन्नेन=तदुयोत्पन्नेन

भावार्थ :– तीन लोक और तीन कालवर्ती समस्त द्रव्य गुण पर्यायों को एक ही समय में जानने में समर्थ जो केवलदर्शन केवलज्ञान है, उसे निज लक्षणों से जो कोई जानता है, वही सिद्ध–पद पाता है। जो ज्ञानी अच्छी तरह इन निज लक्षणों को जान लेवे वह देह के भेद से जीवों का भेद नहीं मान सकता। अर्थात् देह से उत्पन्न जो विषय–सुख उनके रस के आस्वाद से विमुख शुद्धात्मा की भावना से रहित जो जीव उसने उपार्जन किये जो ज्ञानावरणादिकर्म, उनके उदय से उत्पन्न हुए देहादिक के भेद से जीवों का भेद, वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी कदापि नहीं मान सकता। देह में भेद हुआ तो क्या, गुण से सब समान हैं, और जीव–जातिकर एक हैं। यहाँ पर जो कोई ब्रह्माद्वैतवादी वेदान्ती नाना जीवों को नहीं मानते हैं, और वे एक ही जीव मानते हैं, उनकी यह बात अप्रमाण है। उनके मत में एक ही जीव के मानने से बड़ा भारी दोष होता है। वह इस तरह है, कि एक जीव के जीने–मरने, सुख–दुखादि के होने पर सब जीवों के उसी समय जीना, मरना, सुख, दुःखादि होना चाहिये, क्योंकि उनके मत में वस्तु एक है। परन्तु ऐसा देखने में नहीं आता। इसलिये उनका वस्तु एक मानना वृथा है, ऐसा जानो।।१०१।।

गाथा–१०१ पर प्रवचन

---

१०१ (गाथा)। १०१

२२४) **जीवहँ दंसणु णाणु जिय लक्खणु जाणइ जो जि।**
देह–विभेएँ भेउ तहँ णाणि कि मण्णइ सो जि।।१०१।।

अन्वयार्थः—आगे सब जीवों में केवलज्ञान और केवलदर्शन साधारण लक्षण हैं,... भगवान आत्मा एकेन्द्रिय के जीव से लेकर सिद्ध समान सर्व जीव हैं। आहाहा! केवलज्ञान। पर्याय की बात नहीं। केवलज्ञान—अकेला ज्ञान, अकेला दर्शन। यह साधारण उसका लक्षण है। समझ में आया? **इनके बिना कोई जीव नहीं है।** आहाहा! अनन्त निगोद के आलू, शकरकन्द, एक टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव हैं, भगवान ने कहे हैं, भाई! आहाहा! वे सब जीव ऐसे पूर्णानन्द के नाथ हैं। पर्याय में भले हीनता दिखती हो, वस्तु में पूर्णता है। आहाहा! यह तो भाषा ऐसी की है। ज्ञाता–

दृष्टा के लक्षण से वह वस्तु है। ज्ञान और दर्शन त्रिकाली स्वभाव, वह उसका लक्षण है। उस लक्षण से वह पहिचाना जाये, ऐसा है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यहाँ तो कहे, स्थावर जीव किसे कहते हैं? स्थिर रहे उसे। त्रस किसे कहते हैं? हिले-चले उसे। यह आत्मा की व्याख्या की खबर ही उसे नहीं।

आत्मा अल्पज्ञ है, वह भी नहीं यहाँ तो। यह राग करे, वह आत्मा; पुण्य करे, वह आत्मा, यह भी नहीं। यहाँ तो त्रिकाली ज्ञान और दर्शन लक्षणवाला भगवान आत्मा, उन सब जीवों को इस प्रकार से तू जान। आहाहा! समझ में आया? **इनके बिना कोई जीव नहीं है।** है? अनन्त जीव ज्ञान और दर्शन से भरपूर भगवान लक्षणवाले हैं। आहाहा! उनका लक्षण शुभभाव राग से ज्ञात हो, ऐसा आत्मा नहीं—ऐसा कहते हैं। व्रत, तप, दया, दान, भक्ति और यात्रा के भाव से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। क्योंकि वह उसका लक्षण नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **इनके बिना कोई जीव नहीं है।**

ये गुण शक्तिरूप सब जीवों में पाये जाते हैं,... आहाहा! जैसे पीपर में चौंसठ पहरी चरपराहट भरी है। चौंसठ पहरी अर्थात् सोलह आना—रुपया। ऐसी करोड़ों पीपर हों तो प्रत्येक पीपर में सोलह (आना) चौंसठ पहरी चरपराहट और हरा रंग पड़ा है अन्दर। वह पीपर है कि जिससे घूँटने से चौंसठ पहरी प्रगट होती है। वह है, उसमें से आती है। आहाहा! इसी प्रकार सब भगवान आत्मा, कहते हैं कि गुण—शक्ति सब जीवों में समान हैं, सोलहआना पूर्ण। आहाहा! जिसका स्वभाव, जिसका स्वभाव ज्ञान—दर्शनगुण से—शक्ति से परिपूर्ण है। समझ में आया? यह कहते हैं।

अन्वयार्थ:—जीवों के दर्शन और ज्ञान निज लक्षण को जो कोई जानता है, हे जीव! वही ज्ञानी देह के भेद से उन जीवों के भेद को क्या मान सकता है,... आहाहा! देह के भेद। कोई ऐकेन्द्रिय का, दो इन्द्रिय का,त्रीन्द्रिय का, चौइन्द्रिय का, स्त्री का, पुरुष का, नपुंसक का, ढोर का, नारकी का, ऐसे देहभेद से ज्ञानी उसे जीव नहीं मानता। आहाहा! भगवान अन्दर विराजता है पूर्णानन्द का नाथ केवलज्ञान, केवलदर्शन के लक्षणवाला। उसे वह जीव मानता है। धर्मी जीव, आहाहा! **देह के भेद से उन जीवों के भेद को क्या मान सकता है? नहीं मान सकता।** आहाहा! बात ऐसी। परमात्मप्रकाश ग्रन्थ है।

दिगम्बर सन्त योगीन्द्रदेव १३०० वर्ष पहले हुए हैं। कुन्दकुन्दाचार्य दो हजार वर्ष पहले (हुए)। यह बनाया है। आहाहा! पंचम काल में बनाया हुआ शास्त्र है। समझ में आया? कोई कहे कि यह तो चौथे काल के लिये होगा। भगवान! सुन न! काल-फाल तुझमें है ही कहाँ? आहाहा! दूसरा, तीसरा और चौथा वह काल तो पर है, तुझमें कहाँ है? पर्याय भी एक समय की तुझमें नहीं, वहाँ फिर काल कहाँ से आ गया उसमें? आहाहा!

भावार्थः—तीन लोक और तीन कालवर्ती... तीन लोक—ऊर्ध्व, मध्य और अधो। तीन काल—वर्तमान, भूत और भविष्य। आहाहा! **समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों को एक ही समय में जानने में समर्थ...** आहाहा! तीन लोक और तीन लोक को समस्त द्रव्य-गुण-पर्याय को। सभी द्रव्य, गुण की अवस्था को—पर्याय को। द्रव्य-गुण-पर्याय भी सुना न हो। द्रव्य अर्थात् यह पैसा। एक बार कहा था न? आणन्दभाई! तुम्हारे नहीं माणेकचन्द? थानवाले। एक बार आये थे यहाँ। बहुत वर्ष हो गये, हों! ३०-३५ वर्ष हो गये। वहाँ ऊपर लिखा है न, 'द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि'। इसलिए उसने प्रश्न किया। पोटरी है न? पोटरी। थे वे, गुजर गये हैं या हैं? गुजर गये। बहुत समय हो गया। ऊपर लिखा, 'द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि।' यहाँ पैसे वाले बहुत आते हैं, नानालालभाई करोड़पति बहुत आते हैं, इसलिए वह कहे, महाराज! यह द्रव्यदृष्टि अर्थात् क्या? यह पैसेवाले, वे समकितदृष्टि? द्रव्य अर्थात् पैसा। अरे.. भगवान! यहाँ हमारे पैसे का क्या काम है? द्रव्य अर्थात् आत्मा। यह जो कहा जाता है पूर्णानन्द का घन भगवान, वह द्रव्य। उसकी दृष्टि होना, वह समकितदृष्टि है। कहो, पोपटभाई! माणेकचन्दभाई थे पोटरीवाले। वे सब रिश्तेदार होते हैं तुम्हारे वहाँ। वे कहते थे। अरे! कहा, तुम श्वेताम्बर में जन्मे। अभी द्रव्य क्या, दृष्टि क्या, इसकी खबर नहीं होती।

मुमुक्षु : अन्धकार में....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्धकार में चलते हैं सब। ओहोहो!

यह पर्याय की बात करते हैं अभी। **तीन लोक और तीन कालवर्ती समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों को एक ही समय में जानने में समर्थ जो केवलदर्शन-केवलज्ञान है,...**

यह तो त्रिकाली शक्ति की बात है, हों! त्रिकाली शक्ति। उसकी शक्ति ऐसी है दर्शन, ज्ञान की कि तीन काल—तीन लोक को द्रव्य, गुण, पर्याय को जाने, ऐसी शक्ति है। पर्याय में प्रगट होती है परन्तु शक्ति में है, उसमें से आती है। चौसठ पहरी चरपराहट भरी है, उसमें से घूँटे तो चौसठ पहरी आती है। है, उसमें से आती है। कुँए में से हौज में आता है। आहाहा! समझ में आया? कुछ समझ में आया? अर्थात् समझ जाये तब तो....

मुमुक्षु : आये तो इसके लिये हैं। समझने के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! **केवलदर्शन-केवलज्ञान है, उसे निज लक्षणों से जो कोई जानता है,...** देखो! सब जीव को केवलज्ञान, केवलदर्शन—अकेला ज्ञान और दर्शन। आहाहा! ऐसा जो जानता है। पीपर के दाने को चौसठ पहरी चरपराई और हरे रंग से जो जानता है। हरा रंग है न अन्दर? काला तो बाहर है। आहाहा! चरपरा रस और हरा रंग, उससे छोटी पीपर इतनी परन्तु पूरी चौसठ पहरी भरी है। इसी प्रकार यह भगवान आत्मा छोटे में छोटे शरीर में हो, तो भी वह आत्मा केवलज्ञान, केवलदर्शन के लक्षण से पूरा भरा है। तीन काल—तीन लोक के द्रव्य, गुण, पर्याय को जानने की शक्तिवाले उसके ज्ञान और दर्शन हैं।

भगवान केवलज्ञान, केवलदर्शन की ईंट प्रभु, उसके ऊपर देह की लपेट चाहे जिस प्रकार की हो, परन्तु उसमें अन्दर में भेद नहीं पड़ता। आहाहा! ऐसी बातें अब। वीतराग जैनधर्म की बातें होंगी? वीतरागमार्ग तो छहकाय की दया पालना और व्रत करना और अपवास करना। उन श्वेताम्बर को और पूजा, भक्ति करना, यात्रा (करना), ऐसा कहे। भगवान! सुन भाई! सब बातें खबर है। समझ में आया?

कहते हैं, **केवलदर्शन-केवलज्ञान है, उसे निज लक्षणों से जो कोई जानता है, वही सिद्ध-पद पाता है। जो ज्ञानी अच्छी तरह इन निज लक्षणों को जान लेवे वह देह के भेद से जीवों का भेद नहीं मान सकता। अर्थात् देह से उत्पन्न जो विषय-सुख उनके रस के आस्वाद से विमुख...** क्या कहते हैं अब? **देह से उत्पन्न जो विषय-सुख उनके रस के आस्वाद से विमुख...** आहाहा! शरीर से उत्पन्न हुए विषयभोग की वासना राग। आहाहा! **देह से उत्पन्न जो विषय-सुख उनके रस के आस्वाद से विमुख...** इस आनन्द

के विषय के आस्वाद से विमुख। **शुद्धात्मा की भावना से रहित जो जीव...** आहाहा! कितनी बात लेते हैं! देह से उत्पन्न विषयसुख। आहाहा! पंचेन्द्रिय की ओर लक्ष्य जाने पर इसे स्त्री आदि का भोग और खाने-पीने के दाल-भात, या मैसूर खाये, उसे खाता नहीं, वह तो जड़ है। उसके ऊपर लक्ष्य जाने पर उसे राग होता है। वह राग, वह विषय का स्वाद है। उससे विमुख। है? आहाहा! कौन? शुद्धात्मा की भावना से रहित है। त्रिपटी (बात की है)। आहाहा!

शुद्धात्मा परमानन्दस्वरूप भगवान की एकाग्रता पर्याय, उससे रहित जो जीव, **उसने उपार्जन किये...** यह देहादि क्यों मिले, उसकी बात करते हैं। **उसने उपार्जन किये जो ज्ञानावरणादिकर्म, उनके उदय से उत्पन्न हुए देहादिक के भेद से...** देखा! क्या कहा यह? आहाहा! इस विषयसुख के आस्वाद से विमुख, शुद्धात्मा की भावना से रहित जीव, उसने उपार्जन किये कर्म। आहाहा! क्योंकि वस्तुस्वभाव है, उससे तो कर्म उत्पन्न नहीं होता। विषयसुख के रस में से उत्पन्न हुआ कर्म। आहाहा! और उससे हुए देह के भेद। **जीवों का भेद, वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी कदापि नहीं मान सकता।** आहाहा! **देहादि के भेद से जीवों का भेद, वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी कदापि नहीं मान सकता।** आहाहा! क्या कहा यह? जिसे आत्मा के आनन्द का स्वाद नहीं, उसे विषयसुख के स्वाद से राग से कर्म उत्पन्न होते हैं, उसे उससे यह शरीर के भिन्न-भिन्न भेद पड़ते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी—धर्मी नहीं मान सकता। धर्मी देह के भेद से भेद नहीं मानता। क्योंकि विकल्प है, वही उसकी चीज़ नहीं थी। स्वाद जो लिया, वह उसकी चीज़ नहीं थी और उससे कर्म बँधे और उससे विविध देह मिले। ज्ञानी, देह के भेद से जीव भेद मानता नहीं। आहाहा! गजब बातें हैं!

देह में भेद हुआ तो क्या, गुण से सब समान हैं। गुण से तो सब समान भगवान है अन्दर। आहाहा! ज्ञान और दर्शन ध्रुव लक्षण—स्वरूप उसका। सब आत्मा का ज्ञान, दर्शन, आनन्द सुखस्वरूप, उसमें कहाँ भेद पड़े हैं? उससे विरुद्ध स्वाद लेकर कर्म उपजे, उसके भेद से शरीर का भेद पड़ा है। आहाहा! अब इसकी विशेष बात करेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, पौष शुक्ल ७, सोमवार
दिनांक-२७-१२-१९७६, गाथा - १०१, १०२, १०३, प्रवचन-१७०

.... अनेक प्रकार के जीव नहीं मानते। वेदान्ती भिन्न-भिन्न आत्मा नहीं मानता। एक ही अद्वैत, सब होकर एक अद्वैत है। **और वे एक ही जीव मानते हैं, उनकी यह बात अप्रमाण है।** जाति से एक, गुण से समान; परन्तु वस्तुएँ सब एक, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। **उनके मत में एक ही जीव के मानने से बड़ा भारी दोष होता है।** एक मानने से। **वह इस तरह है कि एक जीव के जीने—** एक जीव जीता है, एक मरता है, **सुख-दुःखादि के होने पर सब जीवों के उसी समय जीना, मरना, सुख, दुःखादि होना चाहिए,...** ऐसा तो है नहीं। आहाहा! वेदान्त का बड़ा अन्तर है। यह समयसारादि निश्चय ग्रन्थ, ऐसा मानकर कितने ही ऐसा कहते हैं कि यह वेदान्त में ढाला है। इसलिए यह स्पष्टीकरण किया है। आहाहा! वेदान्त ने आत्मा, अपूर्व, अरूपी, आनन्दघन, चिद्घन, आनन्द, ऐसा कहते हैं परन्तु वे कहते हैं वह सर्वव्यापकरूप से कहते हैं। और यह तो एक-एक आत्मा असंख्यप्रदेश में ज्ञान, दर्शन, आनन्दस्वभाव से परिपूर्ण प्रभु है। आहाहा! उसकी दृष्टि बाह्य की पर्यायबुद्धि में मिठास है, वह चली जाती है। समझ में आया? धर्मी को आत्मा एक जातिकर और गुण से समान जानने से बाह्य पर्यायबुद्धि में मिठास है, वह उड़ जाती है। समझ में आया? और पर्यायबुद्धि में जिसे मिठास है, शरीरभेद से भेद में, पर्यायभेद से भेद में ऐसे अस्तित्व को जो मानता है, उसे पर्याय में मिठास लगती है। इतना अस्तित्व उसे दिखता है। उसे आत्मा अखण्डानन्द प्रभु... ओहो! शैली तो देखो! उसकी इसे मिठास आती नहीं। समझ में आया?

उसी समय जीना, मरना, सुख, दुःखादि होना चाहिए, क्योंकि उनके मत में वस्तु एक है। परन्तु ऐसा देखने में नहीं आता। तब वे लोग कहते हैं कि वह तो भ्रम है, भासित होता है वह। सब होकर एक है तो भी भिन्न भासित होता है वह भ्रम है, ऐसा कहते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष वस्तु भिन्न है। एक जीवे, एक मरे, एक सुखी, एक दुःखी भिन्न-भिन्न है, ऐसा कहते हैं। समयसार को कितने ही ऐसा कहे न कि जैसा वेदान्त है, वैसा यह समयसार है। ऐसा नहीं है। आत्मा की व्याख्या जो समयसार करता है, वह व्याख्या अन्ममत में नहीं है। वे तो एक आत्मा व्यापक करक व्याख्या करते हैं, वह तो भ्रम है, अज्ञान है। आहाहा! **परन्तु ऐसा देखने में नहीं आता। इसलिए उनका वस्तु एक मानना वृथा है, ऐसा जानो।**

गाथा - १०२

अथ जीवानां निश्चयनयेन योऽसौ देहभेदेन भेदं करोति स जीवानां दर्शनज्ञानचारित्रलक्षणं न जानातीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं कथयति-

२२५) देह-विभेयइँ जो कुणइ जीवइँ भेउ विचितु।
सो णवि लक्खणु मुणइ तहँ दंसणु णाणु चरितु।।१०२।।

देहविभेदेन यः करोति जीवानां भेदं विचित्रम्।
स नैव लक्षणं मनुते तेषां दर्शनं ज्ञानं चारित्रम्।।१०२।।

देह इत्यादि। देह-विभेयइँ देहममत्वमूलभूतानां ख्यातिपूजालाभस्वरुपादीनां अपध्यानानां विपरीतस्य स्वशुद्धात्मध्यानस्याभावे यानि कृतानि कर्माणि तदुदयजनितेन देहभेदेन जो कुणइ यः करोति। कम्। जीवइं भेउ विचित्तु जीवानां विचित्रं नरनारकादिदेहरुपं सो णवि लक्खणु मुणइ तहं स नैव लक्षणं मनुते तेषां जीवनाम्। किंलक्षणम्। दंसणु णाणु चरित्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञानचरित्रमिति। अत्र निश्चयेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रलक्षणानां जीवानां ब्राह्मणक्षत्रियवैश्य-चाण्डालादिदेहभेदं दृष्ट्वा रागद्वेषौ न कर्तव्याविति तात्पर्यम्।।१०२।।

आगे जीव ही को जानते हैं, परंतु उसके लक्षण नहीं जानते, वह अभिप्राय मन में रखकर व्याख्यान करते हैं-

जो तन के विभिन्न भेदों से जीवों के भी भेद प्रभेद-
नहिं माने, अरु माने दर्शन-ज्ञान-चारित्रमयी ही जीव।।१०२।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो [देहविभेदेन] शरीरों के भेद से [जीवानां] जीवों का [विचित्रम्] नानारुप [भेदं] भेद [करोति] करता है, [स] वह [तेषां] उन जीवों का [दर्शनं ज्ञानं चारित्रम्] दर्शन-ज्ञान-चारित्र [लक्षणं] लक्षण [नैव मनुते] नहीं जानता, अर्थात् उसको गुणों की परीक्षा (पहचान) नहीं है।

भावार्थ :- देह के ममत्व के मूल कारण ख्याति (अपनी बड़ाई) पूजा और लाभरुप जो आर्त रौद्रस्वरुप खोटे ध्यान उनसे निज शुद्धात्मा का ध्यान उसके अभाव से इस जीव ने उपार्जन किये जो शुभ-अशुभ कर्म उनके उदय से उत्पन्न जो शरीर है, उसके भेद से भेद मानता है, उसको दर्शनादि गुणों की गम्य नहीं है। यधपि पाप के उदय

सो नरक-योनि, पुण्य के उदय से देवों का शरीर और शुभाशुभ मिश्र से नर-देह तथा मायाचार से पशु का शरीर मिलता है, अर्थात् इन शरीरों के भेद से जीवों की अनेक चेष्टायें देखी जाती हैं, परंतु दर्शन ज्ञान लक्षण से सब तुल्य हैं। उपयोग लक्षण के बिना कोई जीव नहीं है। इसलिये ज्ञानिजन सबको समान जानते हैं। निश्चयनय से दर्शन-ज्ञान-चारित्र जीवों के लक्षण हैं, ऐसा जानकर ब्रह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र चांडालादि देह के भेद देखकर रोग-द्वेष नहीं करना चाहिये। सब जीवों के मैत्रीभाव करना, यही तात्पर्य है।।१०२।।

गाथा-१०२ पर प्रवचन

१०२। **आगे जीव ही को जानते हैं, परन्तु उसके लक्षण नहीं जानते, यह अभिप्राय मन में रखकर व्याख्यान करते हैं—** देह को ही जीव मानते हैं, ऐसा कहते हैं। यह नारकी है और यह मनुष्य है और यह मानव है, ऐसे जीव को ऐसा वे मानते हैं, ऐसा कहते हैं। परन्तु ऐसा हे नहीं। आहाहा!

२२५) **देह-विभेयइँ जो कुणइ जीवइँ भेउ विचितु।**
सो णवि लक्खणु मुणइ तहँ दंसणु णाणु चरितु।।१०२।।

आहाहा! **अन्वयार्थ :— जो शरीर के भेद से जीवों का नानारूप भेद करता है,...** शरीर भेद से यह स्त्री और पुरुष, मनुष्य और नारकी, देव और एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, आहाहा! यह शरीरभेद से जीव के सब भेद मानते हैं। समझ में आया? आहाहा! वेदान्त है, वह सर्वव्यापक मानता है, एक ही आत्मा। ऐसा नहीं है। प्रत्येक आत्मा भिन्न है और प्रत्येक आत्मा के गुण समान हैं। जाति एक है। कोई ऐसा ले कि इस समयसार में निश्चय की बात करते हैं, इसलिए वेदान्त की है। अपने जैन में तो छहकाय मानना, छहकाय की दया पालना, ऐसा व्याख्या (होती है), ऐसी तो तुम्हारे में है नहीं। तुम कहो, पर की दया पालने का भाव वह राग, उसे हिंसा कहते हो। आहाहा! समझ में आया? ऐसा नहीं। आहाहा! परवस्तु है। अनन्त आत्मायें भिन्न-भिन्न हैं। समझ में आया? यह किसलिए लिया है?

निश्चय समयसार का जो निश्चय है, उसमें पर्याय को अभूतार्थ कहा है। ११वीं गाथा में भूतार्थ सत्यार्थ त्रिकाली यह भगवान आत्मा ध्रुव, ध्रुव, ध्रुव सत्, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। इस अपेक्षा से वहाँ मुख्य त्रिकाली चीज़ को मुख्य करके, निश्चय करके उसे सत्यार्थ कहा है, और पर्याय को गौण करके अभूतार्थ—असत्यार्थ कहा है। ११वीं गाथा मूल गाथा वह जैनदर्शन का प्राण है। हें! आहाहा! '**ववहारोऽभूदत्थो**' व्यवहार असत्यार्थ, ऐसा कहा। तो व्यवहार तो पर्याय है जीव की, वह व्यवहार है। वस्तु जो त्रिकाल ज्ञायक आनन्दकन्द प्रभु है, वह सत्यार्थ है, निश्चय है। और एक समय की पर्याय भले केवलज्ञान की पर्याय हो या मतिज्ञान की हो या अज्ञान की हो, उस पर्याय को यहाँ व्यवहार कहकर असत्यार्थ कहा है। असत्य कहा, उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि वह झूठी है। आहाहा! वस्तु त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु, वह सत्यार्थ वस्तु अनादि-अनन्त परमआनन्द का कन्द, उसका आश्रय करके सम्यग्दर्शन हो, वह मुख्य प्रयोजन जानकर त्रिकाली चीज़ को सत्य कहा और पर्याय को गौण करके व्यवहार और असत्य कहा। सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : नय और नय का विषय अभेद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नय का विषय निश्चय का अभेद है, व्यवहार का भेद है। यह तो सूक्ष्म बात है, बापू! एक समय की पर्याय है, वह व्यवहार है। त्रिकाली जो आनन्दकन्द प्रभु ध्रुव है, वह निश्चय है। परन्तु यहाँ तो पर्याय को असत्य कहा है। हें! कहा नहीं? एक बार कहा था। एक थे दिगम्बर, (पण्डित) नाथूराम प्रेमी, मुम्बई। वे ऐसा मानते थे कि यह समयसार कुन्दकुन्दाचार्य ने वेदान्त के ढाले में ढाला है। क्योंकि एकदम वस्तु आनन्दकन्द शुद्ध निर्मलानन्द और यह ध्रुव, वह वस्तु है; पर्याय, वह अवस्तु असत्यार्थ कही है, इसलिए समयसार वेदान्त के ढाले में ढाला है, ऐसा (वे) कहते थे। गुजर गये। झूठी बात है। हें! ऐसा नहीं है।

वस्तु है एक समय की आनन्दकन्द शुद्ध चैतन्यघन चिद्रूप चिद्स्वरूप आनन्दरूप आनन्दस्वरूप नित्य, उसे मुख्य कहकर, निश्चय कहकर, उसका आश्रय लिया है, क्योंकि मुख्य प्रयोजन सम्यग्दर्शन का सिद्ध होने, सम्यक् सत्य दर्शन की सिद्धि होने के

लिये त्रिकाली को मुख्य भूतार्थ कहा। और एक समय की पर्याय को गौण करके असत्यार्थ कहा। अभाव करके असत्यार्थ कहा, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह सूक्ष्म बातें, बापू! कठिन बात! जैनदर्शन की शैली समझना। समझ में आया? सेठ! यह सब समझना पड़ेगा। आहाहा!

भगवान आत्मा '**ववहारोऽभूदत्थो**' ऐसा पाठ है। तो पर्याय, राग आदि सब असत्यार्थ है, ऐसा कहा है, ११वीं गाथा में। और '**ववहारोऽभूदत्थो**' अभूतार्थ है, असत्यार्थ है और '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**'। भगवान पूर्णानन्द प्रभु सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा, वह आत्मा। अज्ञानी ने सर्वज्ञ के अतिरिक्त जितने मत हैं, उन सबने आत्मा को देखा नहीं। समझ में आया? वह भूतार्थ, वह त्रिकाली आनन्दकन्द का पिण्ड, उसे शुद्धनय कहा है। उस वस्तु को शुद्धनय कहा है। वरना नय तो ज्ञान का अंश है और उसका विषय भूतार्थ है। सूक्ष्म बात, भगवान! परन्तु वहाँ तो उसे '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' यह दूसरा पद है। भूतार्थ त्रिकाली भगवान आत्मा एक असंख्यप्रदेशी अनन्त गुण का पिण्ड एक वस्तु, वह शुद्धनय है। उसे शुद्धनय निश्चयनय कहा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : पर्याय से भिन्न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय से भिन्न। पर्याय में द्रव्य कहाँ आता है? सूक्ष्म बात है, बापू! वीतराग का मार्ग कोई अलौकिक है, बापू! आहाहा!

एक समय की पर्याय में द्रव्य जो त्रिकाली, वह आता नहीं। परन्तु एक समय की पर्याय में भूतार्थ का ज्ञान और भूतार्थ की श्रद्धा आती है। यह क्या कहते हैं? समझ में आया? इससे ऐसा कहा कि जो त्रिकाली चीज़, एक-एक आत्मा त्रिकाली, हों! अनन्त आत्मायें हैं सब। वेदान्त की भाँति एक ही आत्मा है और व्यापक है, ऐसा तीन काल में नहीं है। यह सब गप्प मारी है, झूठ है सब। समझ में आया?

यहाँ तो एक आत्मा भूतार्थ त्रिकाली वस्तु, उसे शुद्धनय कहा और पर्याय को अभूतार्थ कहा, असत्य कहा। केवलज्ञान की पर्याय भी असत्यार्थ है, ऐसा कहा। सुनो, भाई! यह तो मार्ग... हें! केवलज्ञान, केवलदर्शन, मतिज्ञान, यह पुण्य-पाप, आस्रव सात तत्त्व जो हैं, जीवद्रव्य के अतिरिक्त सात, उन सातों तत्त्वों को नाशवान गिना है।

केवलज्ञान भी एक समय की पर्याय है। केवलज्ञान दूसरे समय में दूसरा, तीसरे समय में तीसरा, ऐसा का ऐसा परन्तु वस्तु पर्याय भिन्न दूसरी जाति—दूसरा भाव। आहाहा! केवलज्ञान जो सर्वज्ञपर्याय है, वह भी एक समय की दशा है। पर्याय है न! समझ में आया? उसे भी असत्य कहकर, अभूतार्थ कहकर गौण करके असत्य कहा है। और त्रिकाली चीज़ को मुख्य करके निश्चय कहकर प्रयोजन सिद्ध होने के लिये उसे निश्चय कहा है। सम्यग्दर्शन का प्रयोजन त्रिकाली मुख्य को निश्चय करने से सिद्ध होता है। आहाहा! अभी विवाद पहला समकित में। आहा! समझ में आया? ज्ञान और चारित्र तो कहीं रह गये। यह कहेंगे अभी।

कहते हैं कि जो व्यवहार की असत्यता, यहाँ कही, वहाँ लोगों को ऐसा हो जाता है कि यह तो वेदान्त हो गया। डाह्याभाई! पर्याय नहीं, पर्याय झूठी है—ऐसा कहा। तो वेदान्त भी ऐसा कहता है। पर्याय नहीं, एक ही वस्तु है त्रिकाली, बस! पर्याय और अवस्था ऐसे भेद कहाँ है, ऐसा कहता है। ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! उस पर्याय को, उसका लक्ष्य छुड़ाने के लिये उसे गौण करके उसे असत्यार्थ कहा है और त्रिकाली चीज़ को मुख्य करके निश्चय कहकर उसका आश्रय लिया है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए यह वेदान्त कहता है कि सर्व आत्मा एक ही है, शुद्ध है, अखण्ड है, अभेद है। अत्यन्त मिथ्यात्व है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ यह कहा, है न? देखो १०२। **जो शरीरों के भेद से जीवों का नानारूप भेद करता है,...** यह नारकी है और यह मनुष्य है और देव है और एकेन्द्रिय है और दो इन्द्रिय है, यह सब शरीर के भेद से जीव के भेद जो मानता है। आहाहा! है? **वह उन जीवों का दर्शन-ज्ञान-चारित्र लक्षण नहीं जानता...** विशिष्टता यहाँ चारित्र को इकट्ठा किया। आहाहा! क्या कहते हैं? जो कोई यह एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और स्त्री, पुरुष और नारकी तथा देव, पर्याप्त और अपर्याप्त... आहाहा! ऐसे जो देह के भेद से जीव के भेद जो मानता है, उसे जीव के लक्षण की खबर नहीं। समझ में आया? जीव का लक्षण दर्शन, ज्ञान, चारित्र। देखा! आहाहा! पहला दर्शन, ज्ञान आया था। अब यहाँ चारित्र डाला है। क्या कहते हैं?

भगवान आत्मा दृष्टास्वभाववाला त्रिकाल। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग:, यह पर्याय है। यह तो उसका त्रिकाली लक्षण है। आहाहा! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो मोक्ष का मार्ग है, वह तो पर्याय है, वह द्रव्य-गुण नहीं। आहाहा! यह तो दर्शन, ज्ञान चारित्र लक्षण त्रिकाली है। भगवान दर्शनस्वरूप त्रिकाल है। यह भगवान (अर्थात्) हम आत्मा को ही भगवान कहते हैं, हों! दर्शनस्वभाव त्रिकाल है, ज्ञानस्वभाव त्रिकाल है और चारित्र अर्थात् वीतरागस्वभाव उसका त्रिकाल है। आहाहा! अरे! जैन वीतराग क्या कहते हैं, यह बेचारे को सुनने को मिले नहीं और जिन्दगी चली जाये, भाई! आहाहा! परमात्मा तीन लोक का नाथ जिनवरदेव का यह पुकार है, वह सन्त, वीतराग का ही यह सत्य तत्त्व है। सन्त अपनी भाषा से आड़तिया होकर वीतराग का माल देते हैं। माल भगवान का यह है, भाई! समझ में आया? आहाहा! क्या कहते हैं?

यह जो मनुष्यगति है और देवगति है और ऐकेन्द्रिय है, ऐसे जो शरीर के भेद से जीव का भेद मानता है, वह वस्तु को नहीं जानता। वह भगवान आत्मा को नहीं जानता। आहाहा! क्यों? यह आत्मा अन्दर भगवान सच्चिदानन्द प्रभु सत्-चिद्-ज्ञान और यहाँ चारित्र को इकट्ठा लिया है अब। त्रिकाली है न। चारित्र जो वीतरागी पर्याय प्रगट होती है, वह तो पर्याय है, परन्तु वह पर्याय प्रगट कहाँ से हुई है? वीतरागी चारित्र त्रिकाल है, उसमें से वह आती है। आहाहा! बिल्कुल परम सत्य है। केवलज्ञान, वह पर्याय है केवली तीर्थंकर की, हों! आहाहा! वह पर्याय भी आयी कहाँ से? वह त्रिकाली ज्ञान की मूर्ति ज्ञान—ध्रुवस्वरूप है, उसमें से ज्ञान आता है। इसलिए त्रिकाली का ज्ञान लक्षण है। आहाहा! उस त्रिकाली वस्तु का दर्शन लक्षण है। दर्शन—देखना। यह देखने का स्वभाव अन्दर त्रिकाल है। उसमें से केवलदर्शन की पर्याय त्रिकाल में से आती है। इसलिए जीव का लक्षण ज्ञान, दर्शन और चारित्र। चारित्र अर्थात् त्रिकाली वीतरागता। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, बापू! ऐसा लोगों को बेचारों को (सुनने को मिलता नहीं)। यह तो अब यहाँ जरा झुकाव हुआ, इसलिए सुनते हैं। नहीं तो यह तो... वीतराग का मार्ग ऐसा होगा? (ऐसा हो)। जैन वीतराग। उसमें तो छह काय की दया पालना, हें!

मुमुक्षु : ज्ञान की पर्याय को लक्षण कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात अभी कहाँ, यह बात तो हो गयी। यह तो साधारण बात है। यह बात अभी कहाँ है? यह बात तो बहुत काल से कही जाती है। यह तो अभी भी कहा गया है। यह प्रश्न अभी कहाँ है! यहाँ तो त्रिकाली को लक्षण कहा है। यह तो अभी दो-तीन दिन पहले आया था न? वह त्रिकाली का लक्षण है, उसका निर्णय पर्याय करती है। सूक्ष्म बात, बापू मार्ग! समझ में आया? यह बात आ गयी थी अपने उसमें से। बहुत बार आ गयी है, बापू! यह तो। आहाहा!

यहाँ लक्षण ज्ञान का पर्याय लक्षण है, इससे ज्ञात होता है परन्तु वह जानता क्या है? ज्ञान, दर्शन और चारित्र वीतरागता त्रिकाल है, उसे वह जानता है। जब वह लक्षण ज्ञान, दर्शन, चारित्र त्रिकाल है, उसका निर्णय पर्याय में हो, तब उसका लक्षण उसने जाना। आहाहा! कठिन बातें, बापू! समझ में आया? त्रिकाली लक्षण है, वह कहीं जानने का कार्य करता है? कार्य तो पर्याय में होता है। परन्तु यहाँ लक्षण उसका त्रिकाली यह है, ऐसा सिद्ध करके, भेद से जो शरीर के, जीव के देखता है, वह सब व्यवहार है, उसे उड़ा देते हैं। छोड़ दे यह दृष्टि। है सही वह सब। समझ में आया? यह चारित्र एक मिलाया इसमें इसमें अधिक, भाई! नहीं तो ज्ञान, दर्शन लक्षण तो सब जगह आता है। ज्ञान, दर्शन लक्खणो। परन्तु वह ज्ञान, दर्शन लक्षण के दो प्रकार—एक पर्याय में लक्षण, एक त्रिकाल में लक्षण। अब यहाँ त्रिकाली लक्षण की बात कहना चाहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

अरे! वीतरागमार्ग बापू! जिनेश्वरदेव त्रिलोक के नाथ... आहाहा! भगवान महावीर आदि तो मोक्ष पधारे, णमो सिद्धाणं में गये, भगवान णमो अरिहंताणं में विराजते हैं। सीमन्धर भगवान तीर्थंकरदेव जिनेश्वर साक्षात् णमो अरिहंताणं पद में विराजते हैं। शरीर है, वाणी है, चार अघाति कर्म बाकी है। समझ में आया? उसमें से आया हुआ यह तत्त्व है। भाई! जैनमार्ग को समझना, वह अलौकिक बात है। और यह समझा और जिसे यथार्थ जानने में आया, बेड़ा पार हो गया संसार का। आहाहा! एकाध, दो भव हों वे कहीं गिनती में नहीं हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भगवान! तेरा लक्षण तो दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। आहाहा! वह

नहीं जानता... अज्ञानी एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, मनुष्य और नारकी... ऐसे गतिभेद से जीव के भेद मानता है, वह त्रिकाली ज्ञान, दर्शन और चारित्र के लक्षण को नहीं जानता। आहाहा! कहो, समझ में आया? बापू! यह तो परमात्मा के घर की बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : त्रिकाली लक्षण वास्तव में वही सच्चा लक्षण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वही लक्षण है। '**उवओगलक्खणो णिच्चं**' आता है न भाई अपने २४ गाथा में नहीं? समयसार। '**उवओगलक्खणो णिच्चं**' नित्य उपयोग उसका त्रिकाली ज्ञान, दर्शन, वह उसका लक्षण है। भले उस लक्षण का निर्णय करे पर्याय, परन्तु लक्षण त्रिकाली वस्तु है। ध्रुव आनन्दकन्द प्रभु। आहाहा! उस सम्यग्दर्शन का विषय क्या है और सम्यक् किसे कहना, इसकी खबर नहीं। लोगों ने बेचारों ने सुना नहीं। आहाहा! और सम्यग्दर्शन बिना हो गये साधु और हो गयी प्रतिमा और हो गये व्रतधारी। थोथा है सब। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह दर्शन, ज्ञान और चारित्र वह गुण?

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण त्रिकाल। आहाहा!

नहीं जानता,... वह पर्याय में नहीं जानता, ऐसा। क्या कहा? वस्तु जो भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनवरदेव ने जो आत्मा देखा। यह कहा था न? 'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाल' सर्वज्ञ परमेश्वर की स्तुति करते हैं, प्रभु! वीतरागदेव त्रिलोकनाथ 'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाल, निज सत्ताए शुद्ध सौने पोखता हो लाल।' हे नाथ त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा! हमारे आत्मा की निज सत्ता को आप पवित्र और शुद्ध देखते हो। आहाहा! हमारा निज सत्ता से शुद्ध... निज अर्थात् अपनी सत्ता का अस्तित्व, वह भगवान आत्मा शुद्ध है। यह ज्ञान, दर्शन, चारित्रस्वरूप है वह। आहाहा! डाह्याभाई! ऐसी बातें हैं, भाई! 'निज सत्ताए शुद्ध...' हे नाथ! हे सर्वज्ञ परमेश्वर! प्रत्येक का आत्मा अपनी सत्ता से पवित्र का पिण्ड है, ऐसा आप देखते हो। उसे आत्मा कहना चाहते हो। आहाहा! हम इस प्रकार से जब शुद्ध को देखेंगे तो हम सम्यग्दृष्टि होयेंगे, ऐसा कहते हैं। तूने जैसा देखा, वैसा हम देखेंगे श्रद्धा में, ज्ञान में।

आहाहा! यह देखनेवाली है पर्याय। कार्य तो पर्याय में होता है न, कहीं गुण-द्रव्य में कार्य नहीं है। द्रव्य-गुण तो ध्रुव त्रिकाली है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि त्रिकाली ज्ञान, दर्शन और चारित्र, वह जीव का स्वरूप है। उसे अज्ञानी पर्यायबुद्धिवाले एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चौइन्द्रिय (देखते हैं)। आता है न? इच्छामि एकेन्द्रिया, दो इन्द्रिया, त्रिइन्द्रिया, चौइन्द्रिया... कुछ भान भी नहीं होता कि एकेन्द्रिय कौन? और मैं कौन हूँ? यह तो पर्यायबुद्धि की व्याख्या है। समझ में आया? अन्तर भगवान आत्मा... यह तो एक समय की दशा की बात है। वह कहीं पूर्ण आत्मा नहीं। एकेन्द्रिय में एकेन्द्रियपना है, वह कहीं आत्मा नहीं। अरे! आत्मा एक समय की पर्याय विकास है, वह भी पूर्ण आत्मा नहीं। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

दर्शन, ज्ञान, चारित्र लक्षण... 'नैव मनुते'। उसको गुणों की परीक्षा नहीं है। गुण की परीक्षा नहीं, ऐसा कहना है। आहाहा! ऐसा मार्ग अब गजब! यह लोगों ने कर डाला बेचारों ने, यह दया पालना, एकेन्द्रिय ऐसे करना और ऐसे करना, व्रत पालना। जैनधर्म ही यह नहीं है, यह तो अजैन धर्म है।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन के बाद तो व्रत करना पड़ेंगे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे? धूल करे? पश्चात् ज्ञान करता है। राग आवे, उसे जानता है वह तो। ज्ञान जानने का काम करे, राग का कर्तव्य करे? आहाहा! सम्यग्दर्शन में पूर्णानन्द का नाथ प्रभु जानने में, मानने में, वेदन में आया। तीन बोल कहे। यह तीन है सही न! आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु परमात्मस्वरूप से विराजमान आत्मा तो है। उसका लक्षण ज्ञान, दर्शन और चारित्र। चारित्र अर्थात् वीतरागता भरी हुई है, वह (चारित्र है)। वर्तमान पर्याय नहीं। चारित्र जो वीतरागी पर्याय प्रगट होती है, मोक्ष का मार्ग, वह पर्याय तो गुण में से आती है। वह गुण अन्दर चारित्रगुण वीतरागी गुण त्रिकाल है। उसकी खान भगवान आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं, बापू! क्या कहा?

दर्शन-ज्ञान-चारित्र लक्षण नहीं जानता अर्थात् उसको गुणों की परीक्षा नहीं है। आहाहा! जो कोई एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, गति और मनुष्य को ऐसा जीव को ही मानता

है, उसे जीव के गुणों के लक्षणों की खबर नहीं है। भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु ज्ञान, दर्शन और चारित्र से ऐसे गुणों से। चारित्र अर्थात् यह पर्याय से नहीं, गुणों से भरपूर भगवान है, उसे वह अज्ञानी जानते नहीं। आहाहा! पोपटभाई! ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं है नहीं, बापू! हमको तो खबर है, यहाँ ८७ वर्ष हुए। यहाँ तो ७० वर्ष से तो यह शास्त्र वाँचते हैं। दुकान के ऊपर शास्त्र वाँचे। स्थानकवासी थे न, हमारे पिताजी स्थानकवासी थे। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूयगडांग सब १८ वर्ष की उम्र से दुकान पर वाँचे हैं। जैन समाचार मँगवाते थे। वाडीलाल मोतीलाल का था। पुस्तकें रखते थे। आहा! यह बात जैनदर्शन सनातन जैनदर्शन है, उसके अतिरिक्त बात कहीं है नहीं। समझ में आया? यहाँ कहते हैं, आहाहा!

भावार्थ :— देह के ममत्व के मूल कारण... आहाहा! **(अपनी बड़ाई)...** शरीर अच्छा मिला और पैसे मिले तो हम बड़े हैं। धूल में भी बड़ा नहीं। बाहर में महत्ता कहाँ घुस गयी है तेरी? है? इस देह के ममत्व के कारण **(अपनी बड़ाई), पूजा...** दुनिया माने और पूजा (करे)। आहाहा! **लाभरूप...** पैसे का लाभ, परिवार का लाभ, पुत्र का लाभ, इज्जत का लाभ, अन्तर में राग होने का लाभ। आहाहा! **जो आर्त-रौद्रस्वरूप खोटे ध्यान...** है। आहाहा! यह आर्तध्यान और रौद्रध्यान झूठे ध्यान, उनसे रहित। ऐसे खोटे ध्यान से रहित भगवान आत्मा **निज शुद्धात्मा का ध्यान...** आहाहा! निज शुद्ध पवित्र भगवान त्रिकाली आनन्द का नाथ आत्मा अतीन्द्रियज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द की खान। एक-एक आत्मा, हों! आहाहा! ऐसा **निज शुद्धात्मा का ध्यान...** उसकी अन्तर में सन्मुखता, वह ध्यान। जिसकी पर्याय के ध्यान में ध्येय पकड़ में आये पूरा, उसे यहाँ ध्यान कहते हैं। आहाहा! **निज शुद्धात्मा का ध्यान उसके अभाव से...** त्रिकाली भगवान ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्दकन्द प्रभु के ध्यान अर्थात् एकाग्रता, सन्मुखता का अभाव। उसकी एकाग्रता का सन्मुखता का अभाव। आहाहा! शास्त्र, यह शास्त्र है न!

उसके अभाव से जीव ने उपार्जन किये... है न? शुद्ध जो ज्ञान, दर्शन लक्षण सम्पन्न परमात्मा स्वयं परमात्मा स्वयं भगवान है आत्मा। भगवत्स्वरूप ही आत्मा है।

पामर को बैठना कठिन पड़े। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जो भगवत्स्वरूप परमात्मा, जो परमात्मा पर्याय में हुए, ऐसा ही यह परमात्मा द्रव्य में और गुण में है। आहाहा! हें! प्राप्त की प्राप्ति है। कुँए में हो, वह हौज में आता है। अन्दर में पूर्णता हो तो पर्याय में आवे। अन्दर न हो तो कहाँ से बाहर से आती थी? समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, शुद्धात्मा के ध्यान का अभाव... आहाहा! त्रिकाली आनन्द का नाथ दर्शन, ज्ञान, चारित्र के स्वभाव के लक्षण से भरपूर, उसका जो ध्यान, उसका अभाव। उससे **उपार्जन किये जो शुभ-अशुभ कर्म, उनके उदय से उत्पन्न जो शरीर है,...** यह शरीर और यह सब धूल मिली, वह पूर्व में शुद्धात्मा के ध्यान के अभाव से उपार्जित कर्म... आहाहा! उससे मिला यह शरीरादि। आहाहा! शरीर **उसके भेद से भेद मानता है,...** आहाहा! **उसको दर्शनादि गुणों की गम्य नहीं है।** देखा! उसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र त्रिकाली आनन्दकन्द गम्य नहीं। आहाहा! देखो! यह शास्त्र, यह सिद्धान्त। यह परमात्मप्रकाश है। योगीन्द्रदेव १३०० वर्ष पहले हुए हैं, उन्होंने बनाया हुआ है। दिगम्बर सन्त तो केवली के मार्गानुसारी। आहाहा! केवलज्ञान की बातें करनेवाले। आहाहा!

उसको दर्शनादि गुणों की गम्य नहीं है। क्या कहते हैं? जिसे इस शुद्धात्मा के ध्यान का अभाव, उससे उपार्जित कर्म, उससे प्राप्त शरीरादि के भेद ये सब, उसे जाननेवाले को आत्मा ज्ञान, दर्शन, चारित्र के लक्षण सम्पन्न गुण है, इसकी उसे खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? **यद्यपि पाप के उदय से नरक-योनि,...** नरक में अनन्त बार गया, वह पाप के उदय से। आहाहा! अनन्त भव नरक के किये, भाई! जिसकी पीड़ा दस हजार वर्ष की स्थितिवाला पहला (नरक का) नारकी, आहाहा! यह चक्रवर्ती का पुत्र हो, तुरन्त विवाह किया हो, करोड़ों-अरबों पैसे एक दिन में खर्च किये हों और उसे विवाह के दिन कोई... आहाहा! जमशेदपुर की भट्ठी में जीवित डाले। यह तुम्हारे जमशेदपुर आया। नरभेरामभाई! कामाणी वहाँ रहते हैं न यह? रहते थे न? जमशेदपुर गये थे हम, भट्ठी-बट्ठी देखने गये थे। नरभेरामभाई सेठ साथ में थे। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि उस मनुष्य को वहाँ डाले और उसे पीड़ा हो, उससे अनन्तगुणी पीड़ा पहले नरक में दस हजार के पासड़े में है। आहाहा! भाई! तू भूल गया। ऐसे-ऐसे सातवें नरक

तक के एक-एक स्थिति के अनन्तभव। दस हजार स्थिति के अनन्त, दस हजार और एक समय के अनन्त, दस हजार और दो समय के अनन्त, ऐसे करते-करते तैंतीस सागर तक के लेना। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं। है?

पाप के उदय से नरक-योनि,... मिली। यह तो पर्याय में भेद है। आहाहा! **पुण्य के उदय से देवों का शरीर...** मिला। धूल। देव का शरीर वह पुण्य का उदय है। वह तो शरीर है, जड़। आहाहा! **और शुभाशुभ मिश्र से नर-देह...** यह मनुष्यपना मिला, वह शुभाशुभ के मिश्र से मिला है। शुभ और अशुभ दोनों मिश्र होकर। **मायाचार से पशु...** आहाहा! कपट... कपट। आहा! आड़ा शरीर है न? चूहा, बिल्ली, बिल्ला और बाघ को ऐसा आड़ा (शरीर है)। पूर्व में वह वक्रता बहुत की है। माया, कपट, कुटिल की वक्रता में जिसका शरीर आड़ा हो गया है। ऐसे भव भी इसने अनन्त किये हैं, भाई! यह आत्मा के भान बिना। आत्मा ऐसा अनन्त आनन्द का नाथ चारित्र, दर्शन, ज्ञान से भरपूर भरा हुआ प्रभु। गुण से, हों! उसके ज्ञान और उसके भान बिना ऐसे कर्म से उपार्जित में चार गति अनन्त बार मिली है, कहते हैं। पोपटभाई!

मुमुक्षु : यह सब भूल गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल मिली है अनन्त बार में। आहाहा!

अर्थात् इन शरीरों के भेद से जीवों की अनेक चेष्टायें देखी जाती हैं,... आहाहा! शरीर के भेद से स्त्री का शरीर, गधे का शरीर, मनुष्य का शरीर, देव का शरीर, नारकी का शरीर, उसकी चेष्टा भिन्न-भिन्न देखने में आती है। आहाहा! **परन्तु दर्शन ज्ञान लक्षण से सब तुल्य हैं।** आहाहा! समझ में आया? आहाहा! जिसकी शक्ति और सामर्थ्य दर्शन और ज्ञान है। दो डालते हैं भले। चारित्र साथ में वीतरागता है। **निश्चयनय से दर्शन-ज्ञान-चारित्र जीवों के लक्षण हैं,...** देखा! आहाहा! **दर्शन ज्ञान लक्षण से सब तुल्य हैं। उपयोग लक्षण के...** है न? **उपयोग लक्षण के बिना कोई जीव नहीं है।** आहाहा! **'उवओगलक्खणो णिच्चं'।** जानन-देखन उपयोग त्रिकाली, वह लक्षण त्रिकाली भगवान आत्मा का है। समझ में आया? **निश्चयनय से दर्शन-ज्ञान-चारित्र जीवों के लक्षण हैं, ऐसा जानकर ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, चाण्डालादि देह के भेद देखकर राग-द्वेष**

नहीं करना चाहिए। आहाहा! चाण्डाल का देह हो, एकेन्द्रिय का देह हो, देव का देह हो, नारकी का देह हो, वह तो सब परवस्तु है। उसे देखकर शरीर अनुकूल देखकर राग, प्रतिकूल देखकर द्वेष करना नहीं। समझ में आया? शरीर सुन्दर दिखे, वह तो मिट्टी-जड़ है। समझ में आया? उसे देखकर राग नहीं करना, ऐसा कहते हैं। भगवान तो ज्ञान, दर्शन लक्षण से भरपूर है न, यह जाननेवाला-देखनेवाला है न? उसे और ऐसा देखकर राग (नहीं करना)। समझ में आया? आहाहा! कील-बील लगती नहीं? कील लगे न लोहे की? फिर ऐसा कहे कि मेरी मिट्टी पकाऊ है, पानी छूने देना नहीं—ऐसा बोले। बोलनेमात्र। भान नहीं होता। मेरी मिट्टी पकाऊ है। कहे मिट्टी, और माने कि मेरा। धूल। कील लगे न? पानी छूने देना नहीं मुझे। क्यों? मेरी मिट्टी पकाऊ है। है न? तुम्हारे कुछ होगा या नहीं यह? हमारी गुजराती भाषा यह है, तुम्हारे हिन्दी में... चूल्हे में राख ही होती है सर्वत्र। यह मिट्टी है। बापू! यह तो जड़ है न, प्रभु! मिट्टी है न, अजीव है न! इसे देखकर तू माने कि अच्छा है और बुरा... आहाहा! कुबड़ा खराब शरीर को देखकर, आहाहा! रूपवान और सुन्दर देखकर अच्छा (माने)। बापू! अच्छा किसे कहना? भाई! यह तो सब शरीर के लक्षण जड़ के हैं। आहाहा!

ऐसा जानकर **देह के भेद देखकर राग-द्वेष नहीं करना चाहिए। सब जीवों के मैत्रीभाव करना,...** आहाहा! आते हैं न चार भाव? सत्वैषु मैत्री, गुणेषु प्रमोदं। सब भगवान है, किसी के प्रति द्वेष और बैर नहीं। आहाहा! सत्वैषु—अनन्त जीव, वे मित्र हैं। और द्रव्य साधर्मी, जो द्रव्यस्वभाव है उसका, सब जीवों का, इस अपेक्षा से तो वह जीव साधर्मी है। आहाहा! क्या कहा यह? जिसका द्रव्य—वस्तुस्वभाव है, ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति इत्यादि इस वस्तुस्वभाव से तो इस जीव का वह साधर्मी जीव है। यह द्रव्य ऐसा है और वह द्रव्य ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? इससे कहते हैं, **सब जीवों के मैत्रीभाव करना,...** आहाहा! इसकी निन्दा करनेवाला हो परन्तु वह तो निन्दा शरीर की। आत्मा की तो इसे खबर नहीं, निन्दा किस प्रकार करे? और बैरी विरोध हो, वह बैरी विरोध तो उसकी पर्याय में है। आहाहा! उसके प्रति भी जीव को मैत्री चाहिए। कोई प्राणी देखकर अप्रेम हो या द्वेष हो, ऐसा नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : मैत्रीभाव शुभराग है या वीतरागता?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्ञाता-दृष्टापना है। सब भगवान है, परमानन्द की मूर्ति है। मेरे साधर्मी हैं द्रव्य से। पर्याय में अन्तर है, वह तो है। यह अभी (बात नहीं है)।

मुमुक्षु : स्वरूप के लक्ष्य से सब साधर्मी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब साधर्मी हैं। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' श्रीमद् में आता है न! आहाहा! 'सर्व जीव है सिद्धसम, जो समझे वे होय।' बापू! यह वह है। भगवानस्वरूप सब है, सबके प्रति मैत्री चाहिए। चाहे वह विरोध करो, निन्दा करो। उसमें कुछ... हम कौन हैं, यह तो जानता नहीं। तू कौन है, उसे तू जानता नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यही तात्पर्य है। सर्व जीवों के मैत्रीभाव करना, यही तात्पर्य है। आहाहा! बहुत बात... उसमें चारित्र मिलाकर तो वीतरागता मिलायी है अन्दर। आहाहा! भगवान वीतरागस्वरूप ही है। द्रव्य जो है वस्तु है, वह तो वीतरागस्वरूप ही भगवान है, सभी आत्मायें। आहाहा! वह ज्ञानस्वरूप है, दृष्टास्वरूप है, ऐसे चारित्र अर्थात् वीतरागस्वरूप ही है। चारित्र उसका गुण है। पर्याय प्रगट हो, वह दूसरी बात है, मोक्षमार्ग वह। यह तो उसका गुण ही चारित्र है। आहाहा! हें! आहाहा! इस सब को मैत्री जानना, यह तात्पर्य है। आहाहा!

आज ऐसा आया था कि शुद्धात्मा के ध्यान के अभाव से बाँधे हुए कर्म। कल ऐसा आया था कि भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप के स्वाद के अभाव से और पुण्य और पाप के विषय के स्वाद के भाव से उपार्जित कर्म है। आहाहा! क्या कहा यह? भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद से भरपूर प्रभु है। उसका जिसे स्वाद नहीं, उस स्वाद बिना के प्राणी और उसे राग का स्वाद है, वह राग का स्वादिया नये कर्म बाँधकर चार गति में भटकता है। आहाहा! देखो, यह वीतरागमार्ग! आहाहा! आया था न कल? १०१ में, १०० में। आत्मा के स्वाद से विरुद्ध विषय का स्वाद। विषय शब्द से राग दया, दान, पुण्य, पाप सब विषय है, वह राग है। आहाहा! समझ में आया? उसका स्वादिया निजात्मा के स्वाद का जिसे अभाव है, और उसे राग और पुण्य-पाप के, दया, दान,

व्रत, काम, क्रोध के भाव शुभ-अशुभ का स्वादिया है, वह नये आठ कर्म बाँधता है और उसके कारण चार गति में भटकता है। आहाहा!

मुमुक्षु : कर्म के कारण से भटकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसके कारण से?

मुमुक्षु : कर्म के कारण से?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु भाव कहा न पहले। पहले भाव किये थे, तब कर्म हुए न? कर्म तो निमित्त है। स्वयं भाव विकार के स्वाद में आया। चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों, वह राग है, उसका स्वाद लेता है, वह जहर है। यह तो वीतरागमार्ग है, भाई!

मुमुक्षु : कर्म ने क्या किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म क्या दे? धूल। यह तो बोला जाता है कि कर्म ने शरीर दिया। शरीर के रजकण भिन्न हैं, कर्म के रजकण भिन्न है। भिन्न चीज़ भिन्न को दे? यह तो बोलने की बात है। आ गयी है बात कि इस पुण्य के कारण पैसे मिले। ए... पोपटभाई! पुण्य है वह तो सातावेदनीय के उदय के रजकण अलग हैं और पैसे के रजकण, वे अलग चीज़ हैं। ये पैसे के रजकण उस पुण्य ने दिये हैं? वह तो निमित्त कौन था, उसका ज्ञान कराया है। पैसे रजकण स्वयं के कारण से वहाँ आते हैं। पुण्य के रजकण तो वहाँ निमित्त है। परन्तु निमित्त ने-पुण्य ने लाकर वहाँ खींचे हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! बात-बात में अन्तर है। समझ में आया? कहो सेठ! यह पैसा-बैसा तुमको मिला, वह पुण्य के कारण मिला, ऐसा कहना वह व्यवहार है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : इसमें पुरुषार्थ कुछ काम नहीं करता?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी करता नहीं, राग में करे उल्टा। राग किया था। आहाहा! पैसा उसके कारण से आता है। आहाहा! और आता है, वह तेरे पास कहाँ आता है? वह तो उसमें रहता है। यहाँ नजदीक आया तो तू मानता है कि मेरे आये। वह तो ममता तेरे पास आयी है, वह चीज़ कहाँ आती है? चीज़ तो दूर रही। डाह्याभाई! अरे! वस्तु... वस्तु। आहाहा!

गाथा - १०३

अथ शरीराणि बादरसूक्ष्माणि विधिवशेन भवन्ति न च जीवा इति दर्शयति-

२२६) अंगइँ सुहुमइँ बादरइँ विहि-वसिँ होंति जे बाल।
जिय पुणु सयल वि तित्तडा सव्वत्थ वि सय-काल।।१०३।।

अङ्गानि सूक्ष्माणि बादराणि विधिवशेन भवन्ति ये बालाः।
जीवाः पुनः सकला अपि तावन्तः सर्वत्रापि सदाकाले।।१०३।।

अंगइं इत्यादि पदखण्डनारुपेण व्याख्यानं क्रियते। अंगइं सुहुमइं बादरइं अङ्गानि सूक्ष्मबादराणि जीवानां विहि-वसिं होंति विधिवशाद्भवन्ति अङ्गोद्भवपञ्चेन्द्रियविषयाकांक्षा -मूलभूतानि दृष्टश्रुतानुभूतभोगवाञ्छारुपनिदानबन्धादीनि यान्यपध्यानानि, तद्विलक्षणा यासौ स्वशुद्धात्मभावना तद्रहितेन जीवेन यदुपार्जितं विधिसंज्ञं कर्म तद्वशेन भवन्त्येव। न केवलमङ्गानि भवन्ति जे बाल ये बालवृद्धादिपर्यायाः तेऽपि विधिवशेनैव। अथवा संबोधनं [1]हे बाल अज्ञान। जिय पुणु सयल वि तित्तडा जीवाः पुनः सर्वेऽपि तत्प्रमाणा प्रत्यनन्ताः, क्षेत्रापेक्षयापि पुनरेकैकोऽपि जीवो यधपि व्यवहारेण स्वदेहमात्रस्तथापि निश्चयेन लोकाकाशप्रमितासंख्येय-प्रदेशप्रमाणः। क्व। सव्वथ वि सर्वत्र लोके। न केवलं लोके सय-काल सर्वत्र कालत्रये तु। अत्र जीवानां बादरसूक्ष्मादिकं व्यवहारेण कर्मकृतभेदं दृष्ट्वा विशुद्धदर्शनज्ञान लक्षणापेक्षया निश्चयनयेन भेदो न कर्तव्य इत्यभिप्रायः।।१०३।।

आगे सूक्ष्म बादर-शरीर जीवों के कर्म के सम्बन्ध से होते हैं, सो सूक्ष्म, बादर, स्थावर, जंगम ये सब शरीर के भेद हैं, जीव तो चिद्रूप है, सब भेदों से रहित है, ऐसा दिखलाते हैं-

सूक्ष्म और बादर शरीर या बालक आदि भेद अनेक।
कर्म जनित होते हैं लेकिन जीव सदा सब हैं उतने।।१०३।।

अन्वयार्थ :- [सूक्ष्माणि] सूक्ष्म [बादराणि] और बादर [अंगानि] शरीर [ये] तथा जो [बालाः] बाल, वृद्ध, तरुणादि अवस्थायें [विधिवशेन] कर्मों से [भवंति] होती हैं,

१. पाठान्तर - हे बाल अज्ञान=बाल हे अज्ञान

[पुनः] और [जीवाः] जीव तो [सकला अपि] सभी [सर्वत्र] सब जगह [सर्वकाले अपि] और सब काल में [तावंतः] उतने प्रमाण ही अर्थात् असंख्यातप्रदेशी ही है।

भावार्थ :– जीवों के शरीर व बाल वृद्धादि अवस्थायें कर्मों के उदय से होती हैं। अर्थात् अंगों से उत्पन्न हुए जो पंचेन्द्रियों के विषय उनकी वाँछा जिनका मूल कारण है, ऐसे देखे, सुने, भोगे हुए भोगों की वाँछारुप निदान बंधादि खोटे ध्यान उनसे विमुख जो शुद्धात्मा की भावना उससे रहित इस जीव ने उपार्जन किये शुभाशुभ कर्मों के योग से ये चतुर्गति के शरीर होते हैं, और बाल–वृद्धादि अवस्थायें होती हैं। ये अवस्थायें कर्मजनित हैं, जीव को नहीं हैं। हे अज्ञानी जीव, यब बात तू निःसंदेह जान। ये सभी जीव द्रव्य–प्रमाण से अनन्त हैं, क्षेत्र की अपेक्षा एक एक जीव यधपि व्यवहारनयकर अपने मिले हुए देह के प्रमाण हैं, तो भी निश्चयनयकर लोकाकाशप्रमाण असंख्यातप्रदेशी हैं। सब लोक में सब काल में जीवों का यही स्वरुप जानना। बादर सूक्ष्मादि भेद कर्मजनित होना समझकर (देखकर) जीवों में भेद मत जानो। विशुद्ध ज्ञान–दर्शन की अपेक्षा सब ही जीव समान हैं, कोई भी जीव दर्शन, ज्ञान रहित नहीं है, ऐसा जानना।।१०३।।

गाथा–१०३ पर प्रवचन

अब १०३। **आगे सूक्ष्म बादर-शरीर जीवों के कर्म के सम्बन्ध से होते हैं,...** अर्थात् व्यवहार भी सिद्ध करते हैं। अज्ञानी में ऐसा कुछ नहीं, सूक्ष्म शरीर और बादर शरीर और ऐकेन्द्रिय और दोइन्द्रिय और... वह है सही, परन्तु वह **सूक्ष्म बादर-शरीर जीवों के...** देखा! नारकी, मनुष्य, देव, एकेन्द्रिय हैं सही, व्यवहार है सही। यह परमेश्वर ने कहा है, वह है सही। परन्तु उसका आश्रय करनेयोग्य नहीं। त्रिकाल भगवान आनन्दकन्द का आश्रय करनेयोग्य है। यह वीतराग कहते हैं ऐसे बादर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, पर्याप्त जीव हैं पर्याय में। समझ में आया ? **सो सूक्ष्म, बादर, स्थावर, जंगम ये सब शरीर के भेद हैं, जीव तो चिद्रूप है,...** सूर्य चिद्रूप। ज्ञानरूपी नूर के तेज का पूर सूर्य है। आहाहा! है ? यह बादन, सूक्ष्म वह कुछ जीव है नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, पौष शुक्ल ९, बुधवार
दिनांक-२९-१२-१९७६, गाथा - १०३, १०४, प्रवचन-१७१

..... जीव माननेयोग्य नहीं। उसे जाननेयोग्य है कि है। क्यों? कर्म के निमित्त से होते सूक्ष्म-बादर शरीर के भेद, वे जीव में नहीं हैं, वह जीवस्वरूप नहीं, तथापि वे निमित्तरूप से हैं, ऐसा जाननेयोग्य है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया?

२२६) अंगइँ सुहुमइँ बादरइँ विहि-वसिँ होंति जे बाल।
जिय पुणु सयल वि तित्तडा सव्वत्थ वि सय-काल।।१०३।।

अन्वयार्थः—सूक्ष्म... एकेन्द्रिय आदि सूक्ष्म है न? यह शरीर के भेद हैं। भगवान तो अन्दर ज्ञायकस्वरूप चिद्रूप चिद्घन है। एक समय की पर्याय है। वह व्यवहार है, वह जाननेयोग्य है। आहाहा! परन्तु वस्तु जो है एक समय में चिद्घन, उसकी दृष्टि में वह आत्मा ही पूर्ण है, ऐसा प्रतीति में आवे। समझ में आया? आहाहा! **सूक्ष्म और बादर शरीर तथा जो बाल, वृद्ध, तरुणादि अवस्थायें...** आहाहा! **'विधिवशेन'** कर्म के निमित्त से वे सब दशायें हैं। बालपना, युवापना, वृद्धपना, वह सब कर्म के निमित्त से अवस्थायें हैं। वे जीव की नहीं, जीव का वह स्वरूप नहीं। आहाहा! समझ में आया?

धर्मी जीव ने सम्यग्दर्शन में पूर्ण ज्ञायकभाव ध्रुवस्वरूप है, वह जीव है—ऐसा उसे मानना चाहिए। आहाहा! यह भिन्न-भिन्न व्यवहार की बात करते हैं, कर्म के संयोग से। जैसे कि शुभ-अशुभभाव है, वह भी कर्मजनित संयोगीभाव है। यह बात लोगों को कठिन पड़ती है। व्यवहाररत्नत्रय है निश्चयरत्नत्रय सम्पन्न को, वह भी विकल्प और राग है, वह जीव का स्वरूप नहीं। धर्मी जीव को यह व्यवहार है, ऐसा जाननेयोग्य है। जान हुआ प्रयोजनवान कहा है, यह शैली है सर्वत्र। १२वीं गाथा। आहाहा! आदरनेयोग्य तो एक चिद्घन आनन्दकन्द प्रभु शुद्ध परमपवित्र परमात्मा है। यहाँ परमात्मप्रकाश है न! वह परमात्मस्वरूप ही स्वयं आदरणीय और वही जीव है। आहाहा!

यह शरीर के भेद, वे कर्म के निमित्त से विकार के भेद, वे सब जीवस्वरूप नहीं हैं। आहाहा! ऐसी बात। एक ओर व्यवहाररत्नत्रय को साधक कहे। उसके शरीर को भी

साधक कहे। उसे आहार-पानी दे, उसे साधक कहे। आयेगा, अभी आयेगा इसमें। पद्मनन्दिपंचविंशति। आहाहा! किस अपेक्षा से है? बापू! आहाहा! यहाँ तो आत्मा में होनेवाले दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, वह भी संयोगी, स्वभाव से विरुद्धभाव है, संयोगीभाव है। हें! आहाहा! स्वभावभाव नहीं। यह लोगों को कठिन पड़ता है। व्यवहार का लोप करते हैं, व्यवहार से होता है, ऐसा मानते नहीं, ऐसा कहते हैं। बात सच्ची है। बात उनकी सच्ची है यह कि व्यवहार से होता है—ऐसा मानते नहीं। यह बात सच्ची है। आहाहा!

इसी प्रकार शरीर के भेद से भेद मानना, वह भी व्यवहार है, परमार्थ नहीं। आहाहा! आहाहा! समझ में आया? ऐसे बादर, सूक्ष्म भेद से भेद जानना और बालवय, युवावय, वृद्धावस्था शरीर की, उससे भेद है, ऐसा जानना, वह ज्ञान है, परन्तु वह आत्मा ऐसा है (—ऐसा मानना नहीं)। आहाहा! जवान शरीर प्रस्फुटित हो पच्चीस वर्ष की उम्र का। वह क्या, वह तो जड़ की दशा है। वह तो कर्म के निमित्त से प्राप्त हुई उपादानशक्ति जड़ की है। हें! आहाहा! शरीर सुन्दर हो। युवक लिया न? जवानी हो ऐसे पच्चीस-तीस वर्ष की, पैंतीस वर्ष की जवान (दशा) पुष्ट शरीर। बापू! वह कहीं आत्मा है? प्रभु! वह कर्म की निमित्त की अवस्थायें संयोग से प्राप्त चीज़ है। आहाहा! धर्मी को उसे आत्मा माननेयोग्य नहीं है। आहाहा! उसे तो ज्ञायकस्वरूप भगवान... परमात्मप्रकाश है न, इसलिए यह सब बात परमात्मस्वरूप जो उसका है, वह आत्मा, उसके अतिरिक्त सब संयोगी चीज़ें प्राप्त चीज़ें जाननेयोग्य है, परन्तु वे आदरनेयोग्य है कि वे जीव की चीज़ें हैं, ऐसा माननेयोग्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग, भाई!

बाल, वृद्ध, तरुणादि... अर्थात् कि रोगी, निरोगी आदि। शरीर में निरोगी अवस्था हो, रोगी हो, रूपवान हो, कुबड़ी हो, युवा हो, वृद्ध हो, वह सब जड़ मिट्टी धूल की अवस्था है। भगवान की वह अवस्था नहीं। भगवान तो परमात्मप्रकाशस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? स्वयं परमस्वरूप जो त्रिकाली ज्ञायकभाव, वही धर्मी की दृष्टि में आदरणीय और जीवरूप से स्वीकार करनेयोग्य हो तो वह है। डाह्याभाई! ऐसी बात बहुत, भाई! व्यवहार से न माने और व्यवहार से लाभ होता है, ऐसा माने तो वह

समकिती, यह बात यहाँ उड़ जाती है, बापू! हें! क्योंकि आत्मा में जो कुछ दया, दान, व्रत, भक्ति और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का भाव, पंच महाव्रत का विकल्प आदि है, वह सब संयोगी भाव है, वह जीव का स्वरूप नहीं। उसमें जीव नहीं। उससे जीव प्राप्त होता नहीं। उसमें जीव नहीं तो जीव कहाँ से प्राप्त हो? ऐसी बात भारी कठिन। लोगों को बेचारों को कठिन पड़ता है। आहाहा!

ज्ञानबिम्ब प्रभु परमात्मस्वरूप भगवत्स्वरूप भगवानस्वरूप ऐसा जो पूर्ण स्वभावभाव, वह आत्मा। उसे आत्मा स्वीकार करनेवाला कर्म के निमित्त से संयोगी शरीरादि की अवस्थायें, बाल, युवक, वृद्ध, सूक्ष्म, बादर, एकेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय आदि... आहाहा! वह जीव नहीं। अरे! अन्दर व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प उठे, वह जीव नहीं। अब उससे लाभ होता है, ऐसा मानो तो सच्ची दृष्टि है, ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं। आज सब चलनेवाला है न वहाँ फलटन में। क्या हो, भाई! आहाहा!

व्यवहार, व्यवहार के स्थान में है; नहीं है, ऐसा नहीं है। व्यवहारनय का विषय है। परन्तु वह निश्चयनय के विषय को सहायता करे, (ऐसा नहीं है)। यह बात है। वस्तु नहीं? व्यवहार, व्यवहार के स्थान में है; निमित्त, निमित्त के स्थान में है, असत् नहीं। व्यवहार, व्यवहार के स्थान में असत् नहीं; है, 'है रूप से' सत् है। आहाहा! परन्तु वह जीव का स्वभाव नहीं, उसे आत्मा नहीं कहते। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात! लोगों को सीढ़ी कुछ चाहिए, ऐसा कहते हैं। सीढ़ी तो यही है। पूर्णानन्द के नाथ को स्वीकार कर प्रतीति करना, वह प्रथम सीढ़ी है। पश्चात् स्वरूप में स्थिर होना, वह दूसरी सीढ़ी है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि '**विधिवशेन**'। इस शरीर की अवस्था वृद्ध, जवान, बाल या सूक्ष्म और बादर, वह सब कर्म के निमित्त की अवस्थायें हैं। उपादान अपना। समझ में आया? परमाणु की अवस्था। आहाहा! वह जीव ऐसा माने कि यह मेरी अवस्था है, वह बड़ा भ्रम है। शरीर की अवस्था मेरी है, ऐसा माने, वह भ्रम है, अज्ञान है। अर्थात् अकेला ज्ञायकस्वरूप ध्रुव चैतन्य परमात्मप्रकाश, वही जीव। आहाहा! सदाकाल त्रिकाल सर्वक्षेत्र में वह अखण्ड प्रभु है। आहाहा! इसके अतिरिक्त यह सब अवस्थायें **कर्मों से**

होती हैं, और जीव तो सभी सब जगह... देखो! भगवान आत्मा... आहाहा! मणिरत्न जैसे करोड़ रुपये की कीमत का हो और ऐसे करोड़ों हों, उसी प्रकार भगवान आत्मा तो पूर्णानन्द रत्न चैतन्यरत्न है। वह सभी—सब जीव सर्वक्षेत्र में... आहाहा! और सर्वकाल में **उतने प्रमाण ही...** है। असंख्य प्रदेशी और अनन्त गुण प्रमाण। आहाहा! क्षेत्र भी उसका असंख्यप्रदेशी और उसके गुण जो पूर्ण हैं, वह अनन्त गुणपिण्ड, उसे यहाँ आत्मा कहा जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : पर्याय को गौण करके।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय को गौण करके। पर्याय है, वह व्यवहार है। व्यवहाररत्नत्रय है, वह व्यवहार है। एक समय की पर्याय भी व्यवहार, है अवश्य, जाननेयोग्य है, उसका अस्तित्व स्वीकारनेयोग्य है, परन्तु वह त्रिकाली आत्मा नहीं। आहाहा! ऐसा जो भगवान परमात्मस्वरूप... आहाहा! उसमें इसे भेद नहीं करना, कहते हैं। आहाहा! पर्याय के अस्तित्व और राग के अस्तित्व से जीव का भेद नहीं करना। अथवा किसी को ज्ञान का क्षयोपशम थोड़ा, किसी को अधिक, इससे वह जीव ऐसा है—ऐसा नहीं। समझ में आया? भगवान अन्दर चैतन्यरत्न वह तो पूर्णानन्द का नाथ... आहाहा! अरेरे! यह बात सुनने को मिलती नहीं। हें! क्या करे? और इसे एकान्त ठहरावे। व्यवहार से भी होता है तो अनेकान्त कहलाये। ऐसा अनेकान्त नहीं होता, भाई! आहाहा!

श्रीमद् कहते हैं न? एक वाक्यांश नहीं (आता)? अनेकान्त भी सम्यक् एकान्त ऐसे निजपद की प्राप्ति सिवाय... (अन्य हेतु से उपकारी नहीं), बहुत गम्भीर है उसमें। दूसरे प्रकार से उपयोगी नहीं। आहाहा! किसी समय इन्होंने शब्द कहे हैं परन्तु जरा यह दो भेद पड़े नहीं, इसलिए लोगों को गड़बड़ रह गयी। श्वेताम्बर और दिगम्बर का। परन्तु बाद में वह भी स्पष्ट कर डालते हैं। श्रुत के (शास्त्रों के) नाम दिये न? बीस दिये हैं। स्वयं स्पष्ट कर दिया। स्वयं तो एकावतारी होकर स्वर्ग में गये हैं। आहाहा! अनेकान्त अर्थात् लोग ऐसा कहते हैं न? निश्चय है, ऐसा भी मानो और व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा भी मानो, तो वह अनेकान्त है। उपादान से होता है, ऐसा मानो और निमित्त से भी मानो तो यह अनेकान्त है। ऐसा नहीं है। अनेकान्त भी सम्यक्

एकान्त ऐसे निजपद की—स्वरूप में ढलने के अतिरिक्त किसी प्रकार से हित की प्राप्ति है नहीं। आहाहा! सम्यक् एकान्त कहा है वहाँ। इस ओर, तब सम्यक् एकान्त की ओर ढला, स्वरूप की पूर्णता की प्राप्ति की प्रतीति हुई, तब अपूर्णता और राग है, उसका ज्ञान करे, तब उसे प्रमाणज्ञान कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? यह कहीं बड़ी पण्डिताई का काम नहीं इसमें बापू! आहाहा! (१९/५१ मिनिट तक।)

(नोंध :- यहाँ से लाईन की है वहाँ तक का प्रवचन का अंश है वह गाथा-१००, प्रवचन नं. १६८ का भूल से कैसेट में आ गया लगता है।) (१९-५१ से ४१.०४ तक का अंश)

.... यह राग और द्वेष के भाव को दूर करके, छोड़कर। आहाहा! स्त्री, पुत्र छोड़े और दुकान छोड़ी और धन्धा छोड़ा, इसलिए संसार छोड़ा, ऐसा नहीं है। जिसे संसार अर्थात् राग और द्वेष के भाव... आहाहा! उनसे दृष्टि छोड़ी। बात यह है कि पर्यायबुद्धि में जो राग-द्वेष दिखते हैं, उसकी बुद्धि छोड़कर। आहाहा! कान्तिभाई! ऐसा सूक्ष्म मार्ग भाई! वह तो दया पालो, अपवास करो, सामायिक की, हो गया धर्म। धूल भी नहीं, मर जानेवाला है। कहो, जादवजीभाई! आहाहा! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं यहाँ। जो रहा वह भगवान उपादेय है अन्दर। अन्दर चिदानन्द सच्चिदानन्द प्रभु 'सिद्ध समान सदा पद मेरो', ऐसी अन्दर चीज़ है। इसे खबर कहाँ है, सुनी है कहाँ? यह धूल-धमाका के समक्ष निवृत्त कहाँ है यह? आहाहा! और निवृत्त हो तो कदाचित् दया, दान और व्रत के परिणाम करे तो वह भी राग है। आहाहा! यह तो बहुत बार कहते हैं न! संसार के बीस घण्टे तो उसमें—पाप में जाते हैं। कमाने, खाने, भोग में और सोने में और नींद में। एकाध घण्टा समय मिले कुछ तो सुनने जाये तो कुगुरु एक घण्टा लूट ले। तुम यह करो तो धर्म होगा, व्रत करो धर्म होगा, तप करो तो (धर्म होगा), लूट डालते हैं मार्ग को। समझ में आया? आहाहा! श्रीमद् ने ऐसा कहा है, श्रीमद् ने ऐसा कहा है, हों! एक घण्टा मिले, जाये वहाँ कुगुरु लूट ले। तुम यह अपवास करते हो न, यह व्रत पालते हो न, (उससे) धर्म होगा। धूल भी नहीं, सुन न! ऐसे व्रत और तप तो अनन्त बार किये।

मुमुक्षु : सवेरे सामायिक करते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हमारे आया था न, तब? सामायिक करते हो? प्रौषध करते हो? अट्ठाई करते हो? हाँ, हो गया। (संवत्) १९९० के वर्ष में इकट्ठे हुए थे। फिर चलते-चलते बात आयी कि यह अनन्त रजकण का पिण्ड है, बापू! यह सोने की ईंट या यह शरीर। तब उसने प्रश्न किया कि महाराज! कितने परमाणुओं का आत्मा बना होगा? यह सामायिक और प्रौषध करनेवाले। ९० के वर्ष की बात है। उजमशीभाई थे, नहीं? वे रोचकावाले नहीं? रोचकावाले, नाम क्या? उजमशी? उसके मामा थे। नानचन्दभाई, बरवाळा के पास पालडी है न? कैसा गाँव? पानवी, पानवी नहीं? गये हैं न, उस गाँव में गये थे। उजमशी रोचकवाला थे न? यहाँ रहते, बोटाद रहते थे। वे मर गये अहमदाबाद में संथारा करके, खोटा। कुछ भान नहीं होता। उसके मामा थे। वे इकट्ठे हुए थे बहुत वर्ष पहले। तो ४०० लोग बाहर से आये थे, गाँव के लोग थे। पूछा, सामायिक करते हो? सामायिक, चोविहार करते हो? हाँ। प्रतिक्रमण करते हो? बस, बस। हो गया जाओ, हो गया धर्म। उसमें यह बात निकली कि बापू! यह शरीर तो अनन्त रजकण—परमाणुओं का पिण्ड है, यह आत्मा नहीं। स्वर्ण की ईंट भी अनन्त रजकणों का स्कन्ध है, वह आत्मा नहीं। तब कहे, यह आत्मा कितने रजकणों का बना होगा महाराज? यह सब (सामायिक करनेवाले)। अरे... भाई! रजकण है, वह तो जड़ हैं, उनसे बना है, ऐसा कहाँ है? यह तो अनन्त ज्ञान और आनन्द से भरपूर भगवान है अन्दर। आहाहा! अरे! यह बात सुनते कहाँ हैं?

यह यहाँ कहते हैं, **राग और द्वेष को दूर करके...** है? आहाहा! यह पुण्य और पाप के भाव, वह सब विकल्प और राग है। भाई! तुझे खबर नहीं। यह दया, दान, व्रत के भाव शुभ है, वह पुण्य है, उससे बन्धन होता है; वह कहीं धर्म नहीं। आहाहा! यह अन्तर में राग और द्वेष के विकल्प, कषाय के भाव हैं, उनसे दूर करके, हटकर। आहाहा! **सब जीवों को समान जानते हैं,...** सब जीव वीतरागस्वरूप से भरपूर हैं। आहाहा! मेरा नाथ भगवान भी मैं वीतरागस्वरूप से हूँ। आहाहा! वीतराग की मूर्ति प्रभु आत्मा है। अभी, हों! अन्दर में वीतरागमूर्ति प्रभु है। ऐसा राग से भिन्न पड़कर और अपने वीतरागस्वभाव में आने पर, सब जीव वीतरागस्वभाव से समान हैं, ऐसा इसे

प्रतीति में आवे, तब इसे समभाव हो। समभाव हो, वह वीतरागता हो, वीतरागता हो वह धर्म हो। आहाहा! समझ में आया? ऐसा धर्म कहाँ से निकाला? एक व्यक्ति ऐसा कहे। ऐसा नया धर्म? नया नहीं, अनादि का यही है। लोगों ने कृत्रिम करके बिगाड़ दिया वीतराग मार्ग को। आहाहा!

गुणों से समान सभी जीवों को जानता है, **वे साधु समभाव में विराजमान...** वीतरागभाव में, राग से रहित वीतरागभाव से जीव को समान जानता है, ऐसे सब जीवों को समान जानकर वीतरागभाव में विराजमान रहे। आहाहा! वह वीतरागभावी जीव **शीघ्र ही मोक्ष को पाते हैं।** वे अल्प काल में सिद्ध भगवान होंगे। आहाहा! समझ में आया? दूज उगी, वह पूर्णिमा होगी ही। इसी प्रकार जिसे परमात्मा आनन्द अपना स्वभाव, शुद्ध-बुद्ध चैतन्यघन, अभी आयेगा टीका में। वीतराग परमानन्दस्वरूप ऐसा जहाँ अन्दर भान हुआ, वह दृष्टि हुई, वह दूज उगी। वह दूज, दूज सम्यक्। सम्यग्दर्शनरूपी दूज, दूज उगी। उसका पूर्ण पूर्णिमा—केवलज्ञान में होगा उसे। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : सबको जाने वह समभाव या एक को जाने वह समभाव?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अपने को जाने तो समभाव हुआ, इसलिए सबको समान जाना। समझ में आया? आहाहा! जैसे अपने को राग-द्वेष रहित जाना, तब उसका अर्थ यह हो गया कि सब आत्मा राग-द्वेषरहित समान वीतरागस्वरूप प्रभु है, अभी। आहाहा! दृष्टि का विषय बताते हैं कि राग है, तो भी उससे भिन्न पड़कर दृष्टि में पूर्ण आनन्दकन्द भगवान ध्रुव चैतन्यस्वभाव नित्यानन्द आत्मा, वह दृष्टि में आवे, तब उसे समभाव प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन, वह समभाव का अंश है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें अब। वह तो इच्छामि, पडिकमणां इरिया ववरोविया तस्स मिच्छामि दुक्कडम। जाओ, हें! और तावकाय ठाणेणं माणेणं अप्पाणं वोसरे। कुछ खबर—भान नहीं होता, पहाड़े बोले उसकी भी खबर नहीं होती। आहाहा! वाणी है। तस्स मिच्छामि, वह तो वाणी जड़ है और विकल्प उठता है कि यह, वह तो राग है। अप्पाणं वोसरे। परन्तु कौन सा आत्मा? यह राग को छोड़ता हूँ और रागरहित मेरा चिदानन्द आत्मा, उसे ग्रहण करता हूँ। इसका नाम कायोत्सर्ग है।

मुमुक्षु : हमको कुछ समझ में नहीं आता था।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची। यह सब बात सब फेरफार हो गया। आहाहा! ओहोहो!

शीतल स्वभाव, वीतराग समभाव ऐसा जो गुण अपना, ऐसे गुण से सब जीव समान हैं। स्त्री, पुरुष, नपुंसक ये शरीर के चिह्न हैं, वे आत्मा में नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! सम्यग्दृष्टि को अपने पूर्ण गुण भासते हैं, वह आत्मा। इसी प्रकार सब आत्मा पूर्ण गुणसम्पन्न हैं, यह इसमें आ जाता है। आहाहा! लो। **मोक्ष को पाते हैं।**

भावार्थ :— वीतराग निजानन्द एकस्वरूप जो निज आत्मद्रव्य... देखो अब। यह आत्मद्रव्य कैसा है भगवान आत्मा? आत्मपदार्थ देह में भिन्न भगवान, यह देवालय—देह देवालय है, उसमें देव विराजता है। आहाहा! कैसा है देव? मेरा आत्मा, ऐसा कहते हैं। कामाणी! ऐसा सूक्ष्म है। कलकात्ता में वहाँ सुनायी दे, ऐसा नहीं है। कलकत्ता रहते हो? आहाहा! दृष्टान्त नहीं दिया था? शकरकन्द का दृष्टान्त नहीं दिया था? शकरकन्द है, यह शक्करिया, उसकी लाल छाल है, वह छिलका है, छिलका है, छिलका। उसे न देखो तो अन्दर है, वह शकरकन्द है। शक्कर अर्थात् चीनी की मिठास का पिण्ड है। शक्करिया, यह वैष्णव लोग नहीं खाते? माघ महीने में शिवरात्रि में। आहाहा! वह अधसेर का शकरकन्द हो, अधसेर, उसकी छाल तो जरा चवन्नी भार ही होती है पूरी। उस छाल को न देखकर अन्दर को देखे तो वह शक्कर की मिठास का पिण्ड है। उसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि पुण्य-पाप के भाव को न देखो, वह छाल है। आहाहा! कहा न? राग-द्वेष, वह छाल। और सामने वीतराग है। आहा! यह पुण्य-पाप के विकल्प की वृत्ति राग है, उसे न देखकर, उसे छोड़कर अन्तर में शकरकन्द है आत्मा। वीतरागी आनन्द का पिण्ड है। आहाहा! आहाहा! जिसके आनन्द की गन्ध इन्द्र को इन्द्राणी के भोग में नहीं। वह तो जहर की गन्ध है। समझ में आया? यह है, देखो! क्या कहा?

वीतराग निजानन्द... है? इसमें 'एक' शब्द पड़ा रहा है। निजानन्द एकस्वरूप, ऐसा चाहिए। स्वरूप है न? इसके बीच में 'एक' चाहिए। बहुत जगह 'एक' पड़ा रहा है। आहाहा! मोहरछाप लगायी है। वीतरागी निजानन्द—निज आनन्द, अपना आनन्द अन्दर वीतरागी निजानन्द भरा है। आहाहा! जैसे शकरकन्द शक्कर की मिठास का (पिण्ड

है), इसलिए शकरकन्द कहलाता है। शकरकन्द का अर्थ शक्कर की मिठास का पिण्ड; इसलिए उसे शकरकन्द कहा जाता है। इसी प्रकार यह भगवान आनन्द का कन्द है। अरे! कहीं सुनने को मिलता नहीं, वह कब विचार करे? आहाहा! राग-द्वेष, वह छिलका है, जैसे शकरकन्द के ऊपर लाल छाल (होती है; उसी प्रकार)। ऐसे राग-द्वेष रहित, अन्तर में राग-द्वेष को छोड़कर अन्तर में वीतरागी निजानन्द भगवान... अरे! ऐसा कैसे बैठे? आहाहा!

वीतराग निजानन्द... निजानन्द, निज आनन्द वीतरागी। आहाहा! यह शरीर, वाणी, मन तो एक ओर रखो। वह तो जड़ बेचारे उनके कारण से आये और उनके कारण से जायेंगे। आहाहा! वे कहीं तेरे नहीं, तुझमें नहीं, उनमें तू नहीं। मात्र जो राग और द्वेष के परिणाम पुण्य-पाप के होते हैं, वे तेरी पर्याय में हैं—अवस्था में हैं, वस्तु में नहीं। आहाहा! यह राग-द्वेष के विकल्प को उस ओर का आश्रय, लक्ष्य छोड़कर अन्तर में भगवान वीतराग निजानन्द एकस्वरूप... आहाहा! वीतराग... वह राग का आनन्द मानता है, पैसे में, भोग में, इज्जत में, कीर्ति में, मकान-बँगला में। वह तो राग का दुःख, राग में आनन्द मानता है। वह तो दुःख है। आहाहा! यह तो वीतरागी निजानन्दस्वरूप प्रभु आत्मा। आहाहा! वह यह कैसे बैठे?

कहते हैं कि प्रभु! तू कौन है? कहाँ तुझे जाने से तुझे दृष्टि में वह आवे? कि राग से छूटकर अन्दर में जा तो तेरा आत्मा दृष्टि में आवे। ऐसी बात है। आहाहा! ओहोहो! वीतराग निजानन्द—निज आनन्द, वीतरागी निजानन्द ऐसा जो स्वरूप, ऐसा निज आत्मद्रव्य, वह आत्मा है। आहाहा! आत्मद्रव्य वस्तु है, आत्मा भगवान, वह पुण्य और पाप के विकल्प से छूटकर वीतराग निजानन्द एकस्वरूप ऐसा आत्मद्रव्य... आहाहा! १००वीं गाथा है न! पूर्ण। आहाहा! प्रभु! तू पूण्र वीतरागी आनन्द से भरा है न, नाथ! आहाहा! तेरी गर्दन अन्यत्र कहाँ जाये? प्रभु! क्या करता है तू यह? आहाहा! यह छह लड़के बैठे हों और आमदनी कुछ हुई हो और उनका पिता बैठा हो बीच में, वे बातें करे अन्दर से। छह लड़के हैं इनके। आहाहा! किसके लड़के? बापू! यह दया, दान और व्रत का राग भी तेरा नहीं (तो) वे तो दूर रहे। आहाहा! कहो, आणन्दभाई! यह ऐसा सूक्ष्म है। आहाहा!

बाहर की चीज़ में तो कुछ आत्मा नहीं और बाहर की चीज़ आत्मा में नहीं। अब रही बात पुण्य और पाप के भाव। वे अनादि से हो रहे हैं। अब उसे कहते हैं कि वह ऊपर का छिलका है, इसलिए उसे छोड़ दे। (४१/०४ मिनिट तक)

....वीतरागी लहर की अन्दर दशा प्रगट होना। आहाहा! अज्ञानी लोग यह बाहर से आहार नहीं किया, उसे तप मानते हैं। समझ में आया? बात में बहुत अन्दर है।

मुमुक्षु : बहुत या सब?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब। है न, सब खबर है, बापू!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सा? बाहर में रोटियाँ नहीं खायीं, अमुक किया। अज्ञानी बाहर से देखते हैं। अन्तर वीतरागदशा का शुद्धोपयोग, वह तप है। यह आहार नहीं किया, वह तो विकल्प है। वह तो आहार जड़ इसे आनेवाला ही नहीं था। इसने अन्दर में आनन्द के नाथ को जगाकर... आहाहा! झिंझोड़कर भगवान को जगाया अन्दर से वीतराग पर्यायरूप से। आहाहा! जिसमें प्रचुर, मुनि भी उसे कहते हैं, पाँचवीं गाथा में है न? उसे जैन के मुनि कहते हैं कि जिन्हें प्रचुर आनन्द का स्वाद जिनकी दशा में आया है और जिनके अनुभव में आनन्द की मोहरछाप पड़ी है। यह पत्र में नहीं लगाते पोस्टमास्टर? इसी प्रकार जिसे आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द उछल निकला है अन्दर से। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के भरपूर... भरपूर। आहाहा! ज्वार आया है। समुद्र में जैसे पानी का ज्वार आता है—लहरें, उसी प्रकार जिसे अन्तर के आनन्द के नाथ में स्थिर होकर जिसकी वर्तमान पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार आता है, उसे मुनि कहा जाता है। आहाहा! बाकी सब थोथा है। समझ में आया? यह तो भाई पूरी दुनिया से अलग बात है, बापू! हें!

मुमुक्षु : लौकिक से लोकोत्तर उल्टी ही होवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी बात है, भाई! लोक के साथ मिलान खाता ही नहीं यह। आनन्दघनजी कहते हैं, ज्ञानी के अभिप्राय को लोक के साथ मिलान खाये तो वह

अभिप्राय सच्चा ही नहीं। दुनिया के साथ मिलान कैसे खाता है तुझे? आहाहा! दुनिया के साथ मिलान खाता ही नहीं यह। वीतरागी अभिप्राय को दुनिया के साथ मिलान खाता ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह तो सब लंघन है। वह आत्मा के आनन्द के स्वाद बिना की तपस्यायें सब लंघन है।

मुमुक्षु : श्रीगुरु लंघन कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रीगुरु लंघन कहते हैं, पाठ में है न! कषाय विषयाऽऽहारो.. त्यागो यत्र विधियते... लंघनकम् विदु। यह है न। सब कहाँ आधार देने जायें। सब खबर है। जिसमें इच्छा टूटी नहीं। निरिच्छा वीतरागी आनन्द जिसमें आया नहीं, उन सब अपवास को लंघन कहा जाता है। दूसरे प्रकार से कहें तो वह त्रागु करता है। यहाँ तो ऐसी बातें हैं, बापू! बदलकर बैठे हैं, कुछ कारण होगा या नहीं? आहाहा! उस सम्प्रदाय में तो यह बात है ही नहीं। पूरी दृष्टि ही विपरीत है। आहाहा!

यहाँ तो आचार्य महाराज ऐसा कहते हैं, जितने देह के भेद दिखायी दें, अरे! विकल्प के भेद दिखायी दें, आहाहा! वे हैं सही, जाननेयोग्य है, परन्तु वह जीव नहीं। भगवान तो अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ अनाकुल शान्तरस का कन्द प्रभु, उसे आत्मा कहते हैं। यह दया, दान, व्रत के विकल्प, वह आत्मा नहीं, वह तो अनात्मा है। आहाहा! बात है, भाई! आहाहा! अपूर्व बात रह गयी है न! अनन्त काल में मुनिपना भी लिया। दिगम्बर मुनि, हों! वस्त्रवाले तो कुलिंगी हैं। वे तो द्रव्यलिंगी भी नहीं, परन्तु दिगम्बर लिंग जो धारण करे, अट्ठाईस मूलगुण पालन करे, निरतिचार महाव्रत पाले, तो भी वह द्रव्यलिंगी है, वस्तु का भान नहीं अन्दर। आहाहा! ऐसी बातें, बापू! बहुत अन्तर। पोपटभाई! यहाँ वे...

मुमुक्षु : हमारा सबका अहो भाग्य!

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बात सच्ची। यह कहाँ है, बापू? हमको तो खबर है। पूरी दुनिया देखी है। काठियावाड़ गुजरात देखा परन्तु नौ-नौ हजार मील तीन बार हिन्दुस्तान देखा। नौ-नौ हजार मील तीन बार। आहाहा! बापू! मार्ग दूसरा है, भाई!

यहाँ कहते हैं, **जीवों का यही स्वरूप जानना। बादर सूक्ष्मादि भेद कर्मजनित**

होना समझकर (देखकर) जीवों में भेद मत जानो। विशुद्ध ज्ञान दर्शन की अपेक्षा सब ही जीव समान हैं,... देखो! अकेला दृष्टा और ज्ञाता त्रिकाली स्वभाव, ऐसे विशुद्ध दर्शन, ज्ञान स्वभाव से सब आत्मायें समान हैं। समझ में आया? कहो, वीरचन्दभाई! अपने वाँचनकार हैं वहाँ कलकत्ता में। वाँचना तो चारों ओर हो गया है यहाँ का अब, लन्दन में भी हो गया है। यहाँ का वाँचन है। प्रेमचन्द कोई है, लन्दन में वाँचते हैं। अमेरिका में वाँचते हैं। कर्नाटक में सर्वत्र हो गये। पुस्तकें बीस लाख हो गयी न। बहुत गाँव-गाँव में पहुँची हैं। अब कितने ही डालते हैं पानी में। परन्तु कितने ही। झीलती नहीं, झीलती नहीं। यह बात नहीं थी और कान में पड़ने पर... हाय... हाय...! ऐसे तो अनन्त बार छह-छह महीने के अपवास किये, दो-दो महीने के संथारा किये, अनन्त बार किये हैं, इसके बिना नौवें ग्रैवेयक जाये? अनन्त पुद्गलपरावर्तन किये हैं। वह सब राग की क्रिया पुण्य की, मानता है धर्म। मिथ्यात्व का पोषक है। वहाँ मिथ्याभ्रान्ति पुष्ट होती है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

विशुद्ध ज्ञान दर्शन की अपेक्षा सब ही जीव समान हैं, कोई भी जीव दर्शन, ज्ञान रहित नहीं है,... आहाहा! दृष्टाशक्ति परिपूर्ण। केवलज्ञान की पर्याय भी नहीं यहाँ। केवलज्ञान तो पर्याय है। यह तो त्रिकाली दृष्टा-ज्ञानस्वभाव परिपूर्ण, जिसमें से अनन्त केवलज्ञान और केवलदर्शन की पर्याय प्रगट हो, ऐसा जो दृष्टा-ज्ञाता त्रिकाली स्वभाव, इस अपेक्षा से सभी जीव समान हैं। समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यग्दर्शन का विषय दृष्टा-ज्ञाता परिपूर्ण ज्ञान-दर्शन से भरपूर पदार्थ, वह समकित का विषय है। समकित का विषय राग नहीं, निमित्त नहीं, पर्याय भी नहीं। समकित स्वयं पर्याय है। आहाहा! परन्तु उसका विषय पर्याय नहीं। त्रिकाली विशुद्धदर्शन—ज्ञानस्वभाव (वह उसका विषय है)। समझ में आया? आहाहा! **ऐसा जानना।**

गाथा - १०४

अथ जीवानां शत्रुमित्रादिभेदं यः न करोति स निश्चयनयेन जीवलक्षणं जानातीति प्रतिपादयति-

२२७) सत्तु वि मित्तु वि अप्पु परु जीव असेसु विएइ।
एक्कु करेविणु जो मुणइ सो अप्पा जाणेइ।।१०४।।

शत्रुरपि मित्रमपि आत्मा परः जीवा अशेषाा अपि एते।
एकत्वं कृत्वा यो मनुते स आत्मानं जानाति।।१०४।।

सत्तु वि इत्यादि। सत्तु वि शत्रुरपि मित्तु वि मित्रमपि अप्पु परु आत्मा परोऽपि जीव असेसु वि जीवा अशेषा अपि एइ एते प्रत्यक्षीभूताः एक्कु करेविणु जो मुणइ एकत्वं कृत्वा यो मनुते शत्रुमित्रजीवितमरणलाभादिसमताभावनारुपवीतरागपरमसामायिकं कृत्वा योऽसौ जीवानां शुद्धसंग्रहनयेनैकत्वं मन्यते सो अप्पा जाणेइ स वीतरागसहजानन्दैकस्वभावं शत्रुमित्रादिविकल्प-कल्लोलमालारहितमात्मानं जानातीति भावार्थः।।१०४।।

आगे जो जीवों के शत्रु-मित्रादि भेद नहीं करता है, वह निश्चयकर जीव का लक्षण जानता है, ऐसा कहते हैं-

शत्रु मित्र या अपने और पराये सब ही चेतनरूप।
एक समान मानता है जो वही जानता आत्म स्वरूप।।१०४।।

अन्वयार्थ :- [एते अशेषा अपि] ये सभी [जीवाः] जीव हैं, उनमें से [शत्रुरपि] कोई एक किसी का शत्रु भी है, [मित्रप् अपि] मित्र भी है, [आत्मा] अपना है, और [परः] दूसरा है। ऐसा व्यवहार से जानकर [यः] जो ज्ञानी [एकत्वं कृत्वा] निश्चय से एकपना करके अर्थात् सबमें समदृष्टि रखकर [मनुते] समान मानता है, [सः] वही [आत्मनं] आत्मा के स्वरुप को [जानाति] जानता है।

भावार्थ :-इन संसारी जीवों में शत्रु आदि अनेक भेद दिखते हैं, परंतु जो ज्ञानी सबको एक दृष्टि से देखता है-समान जानता है। शत्रु, मित्र, जीवित, मरण, लाभ, अलाभ आदि सबों में समभावरुप जो वीतराग परमसामायिकचारित्र उसके प्रभाव से

जो जीवों को शुद्ध संग्रहनयकर जानता है, सबको समान मानता है, वही अपने निज स्वरुप को जानता है। जो निजस्वरुप, वीतराग सहजानंद एक स्वभाव तथा शत्रु-मित्र आदि विकल्प-जाल से रहित है, ऐसे निजस्वरुप को समताभाव के बिना नहीं जान सकता।।१०४।।

गाथा-१०४ पर प्रवचन

अब कहते हैं, सब जितने भेद हैं, उन्हें सबको बताते हैं कि वह तेरा स्वरूप नहीं। **आगे जो जीवों के शत्रु-मित्रादि भेद नहीं करता है,...** आहाहा! शत्रु कौन और मित्र कौन? आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन उपशम हो या क्षायिक?

पूज्य गुरुदेवश्री : चाहे वह उपशम समकित हो। उपशम हो, क्षयोपशम हो, क्षायिक हो, चाहे जो समकित हो।

मुमुक्षु : अभी क्षायिक तो नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी क्षयोपशम है, उसका विषय परिपूर्ण वस्तु है। वह तो काल की अपेक्षा से भेद है, उसके विषय की अपेक्षा से भेद नहीं। क्षयोपशम समकिती हो या उपशम हो या क्षायिक हो, उसका विषय परिपूर्ण दर्शन-ज्ञाता है। वह तो उसे टिकने की अपेक्षा से भेद है, उसके विषय में भेद नहीं। बहुत सूक्ष्म बात है। यह सब बहुत प्रश्न हो गये हैं सब। यह तो ४२ वर्ष से चलता है भाई! यह तो। आहाहा!

आगे जो जीवों के शत्रु-मित्रादि भेद नहीं करता है, वह निश्चयकर जीव का लक्षण जानता है,... आहाहा! शत्रु कौन और मित्र कौन? निश्चय से तो विकारी परिणाम शुभाशुभ, वह अनिष्ट है और वस्तु का त्रिकाली स्वभाव, वह इष्ट है। आहाहा! शत्रु-मित्र बाहर में है कौन? यह कहते हैं। १०४।

२२७) सत्तु वि मित्तु वि अप्पु परु जीव असेसु विएइ।
एक्कु करेविणु जो मुणइ सो अप्पा जाणेइ।।१०४।।

अन्वयार्थ :— ये सभी जीव हैं, उनमें से कोई एक किसी का शत्रु भी है, मित्र भी है, अपना है, और दूसरा है। ऐसा व्यवहार से जानकर... यह तो व्यवहार है, जाननेयोग्य है। **जो ज्ञानी निश्चय से एकपना करके अर्थात् सबमें समदृष्टि रखकर...** आहाहा! समभाव से पूर्ण स्वरूप जो तेरा और दूसरे को भी समभाव से तू पूर्ण स्वरूप देख। शत्रु-मित्र की दृष्टि छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **समान मानता है,... निश्चय से एकपना करके अर्थात् सबमें समदृष्टि रखकर समान मानता है, वही आत्मा के स्वरूप को जानता है।** आहाहा! प्रवचनसार में लिया है यह। जितना विकारीभाव है, दया, दान, व्रत, तप का विकल्प, वह सब अनिष्ट है। क्योंकि वह नाश होनेयोग्य है और विकार जहर है। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञानघन आनन्दकन्द की परिणति प्रगट हो, वह इष्ट है। परमात्मा को पूर्ण इष्ट प्रगट हुआ है केवली को, पूर्ण अनिष्ट नाश हुआ है। प्रवचनसार में है पहले भाग में। समझ में आया? आहाहा!

भावार्थ :— इन संसारी जीवों में शत्रु आदि अनेक भेद दिखते हैं, परन्तु जो ज्ञानी सबको एक दृष्टि से देखता है... आहाहा! सब समान आनन्दकन्द प्रभु हैं। आहाहा! आनन्द की वेलडी के आनन्दकन्द प्रभु हैं सब। आहाहा! उसमें दुःख कहाँ और राग कहाँ और शत्रु-मित्र उसमें है कहाँ? आहाहा! **संसारी जीवों में शत्रु आदि अनेक भेद दिखते हैं, परन्तु जो (सम्यग्दृष्टि) ज्ञानी सबको एक दृष्टि से देखता है—समान जानता है। शत्रु, मित्र, जीवित, मरण, लाभ, अलाभ आदि सबों में समभावरूप जो वीतराग परमसामायिकचारित्र...** आहाहा! सम्यग्दर्शन अनुभव आनन्द का होने के बाद सामायिक अर्थात् स्वरूप में रमणता, साम—आयक अर्थात् समता का आय—लाभ, वीतरागपने का लाभ, उसका (नाम) सामायिक। सामायिक है न? **परमसामायिकचारित्र...** आहाहा! जिसे पूर्णानन्दस्वरूप प्रगट उसका अनुभव दृष्टि में हुआ है और पश्चात् जिसे समताभाव का आय अर्थात् वीतरागी परिणाम का लाभ हुआ है, अतीन्द्रिय आनन्द के उग्र स्वाद में आया है, उसे सामायिक कहा जाता है। अरे... अरे! बात में अन्तर। यह तो सामायिक दो घड़ी की और णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं हो गयी सामायिक। धूल भी नहीं सामायिक, सुन न! आहाहा! है?

समभावरूप जो वीतराग परमसामायिकचारित्र उसके प्रभाव से... आहाहा!

समभाव की व्याख्या की। सबको समान किस प्रकार देखे? कब देखे? कैसे देखें? आहाहा! **समभावरूप जो वीतराग परमसामायिकचारित्र उसके प्रभाव से जीवों को शुद्ध संग्रहनयकर एक जानता है,...** 'एक' शब्द पड़ा रहा है। **सबको समान मानता है, वही अपने निज स्वरूप को जानता है।** आहाहा! **जो निजस्वरूप, वीतराग सहजानन्द एक स्वभाव...** कैसा है भगवान आत्मा का स्वभाव? निजस्वरूप वीतराग सहजानन्द एकस्वभाव। वीतरागी स्वभावी आनन्दरूपी स्वभाव। **तथा शत्रु-मित्रादि विकल्प-जाल से रहित है,...** आहाहा! यह विशेष कहा जायेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १०५

अथ योऽसौ सर्वजीवान् समानान्न मन्यते तस्य समभावो नास्तीत्यावेदयति-

२२८) जो णवि मण्णइ जीव जिय सयल वि एक्क-सहाव।
तासु ण थक्कइ भाउ समु भव-सायरि जो णाव।।१०५।।

यो नैव मन्यते जीवान् जीव सकलानपि एकस्वभावान्।
तस्य न तिष्ठति भावः समः भवसागरे यः नौः।।१०५।।

जो णवि इत्यादि। जो णवि मण्णइ यो नैव मन्यते। कान्। जीव जीवान् जिय हे जीव। कतिसंख्योपेतान्। सयल वि समस्तानपि। कथंभूतान्न मन्यते। एक्क-सहाव वीतराग-निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा सकलविमलकेवलज्ञानादिगुणैर्निश्चयेनैक-स्वभावान्। तासु ण थक्कइ भाउ समु तस्य न तिष्ठति समभावः। कथंभूतः। भव-सायरि जो णाव संसारसमुद्रे यो नावस्तरणोपायभूता नौरिति। अत्रेदं व्याख्यानं ज्ञात्वा रागद्वेषमोहान् मुक्त्वा च परमोप-शमभावरुपे शुद्धात्मनि स्थातव्य-मित्यभिप्रायः।।१०५।।

आगे जो सब जीवों को समान नहीं मानता, उसके समभाव नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं-

सभी जीव हैं एक स्वभावी ऐसा जो नहिं माने जीव।
भवसागर तारक नौका सम तो उसको समभाव नहीं।।१०५।।

अन्वयार्थ :- [जीव] हे जीव, [यः] जो [सकलानपि] सभी [जीवान्] जीवों को [एकस्वभावान्] एक स्वभाववाले [नैव मन्यते] नहीं जानता, [तस्य] उस अज्ञानी के [समःभावः] समभाव [न तिष्ठति] नहीं रहता, [यः] जो समभाव [भवसागरे] संसार-समुद्र के तैरने को [नौः] नाव के समान है।

भावार्थ :-जो अज्ञानी सब जीवों को समान नहीं मानता, अर्थात् वीतराग निर्विकल्पसमाधि में स्थित होकर सबको समान दृष्टि से नहीं देखता, सफल ज्ञायक परम निर्मल केवलज्ञानादि गुणोंकर निश्चयनय से सब जीव एक से हैं, ऐसी जिसके श्रद्धा नहीं है, उसके समभाव नहीं उत्पन्न हो सकता। ऐसा निस्संदेह जानो। कैसा है समभाव, जो संसार समुद्र से तारने के लिये जहाज के समान है। यहाँ ऐसा व्याख्यान

जानकर राग-द्वेष-मोह को तजकर परमशांतभावरुप शुद्धात्मा में लीन होना योग्य है।।१०५।।

वीर संवत् २५०३, पौष शुक्ल १०, गुरुवार
दिनांक-३०-१२-१९७६, गाथा - १०५, प्रवचन-१७२

परमात्मप्रकाश, १०५ गाथा। **आगे जो सब जीवों को समान नहीं मानता, उसके समभाव नहीं हो सकता,...** सूक्ष्म भाव है, भगवान! यहाँ परमात्मा कहते हैं, योगीन्द्रदेव हैं मुनि दिगम्बर सन्त। जो कोई आत्मा अपना आत्मा वीतरागस्वरूप से है। पूर्ण समभाव अविकारी स्वभाव से भरपूर भगवान पूर्ण है आत्मा। राग-द्वेष हैं वे तो, दया, दान और राग-द्वेष हैं, वे कहीं आत्मा नहीं; वे तो अनात्मा हैं, राग है। आहाहा! भगवान जिनवरदेव ने जिसे आत्मा कहा, वह आत्मा तो सहजानन्दस्वरूप... कैसे है, बीच में क्या बातें करते हैं? ध्यान रखना चाहिए। समझ में आया? क्या कहा? सूक्ष्म बात, भगवान!

मुमुक्षु : आत्मा भगवान ने कैसा कहा है? सहजानन्दस्वरूप।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! नवतत्त्व हैं, उसमें भगवान ने आत्मा किसे कहा? कैसे आत्मा को आत्मा कहा? आहाहा! कहते हैं कि वह आत्मा जो वस्तु भगवान, वह शरीर, वाणी, मन से तो भिन्न, कर्म से भी भिन्न, और यह दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव जो पुण्य हैं, उससे भिन्न; हिंसा, झूठ, चोरी, विषय भोग-वासना पाप है, उससे भिन्न। आहाहा! एक समय की ज्ञान की पर्याय जो दिखती है, सूक्ष्म बात, प्रभु! एक समय में ज्ञान के क्षयोपशम की अवस्था जो दिखती है, उससे भिन्न। आहाहा! वह तो पर्याय है, एक अंश है। भगवान उससे पूर्णानन्द सहजात्मस्वरूप सहजानन्द सहज वीतरागस्वरूप की मूर्ति प्रभु है। आहाहा! ऐसा जिसे अन्दर में—दृष्टि में समभाव प्रगट हुआ नहीं, वह अज्ञानी दूसरे जीव को भी अपना आत्मा है, ऐसा वह नहीं मानता दूसरे को। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा!

कहते हैं, **सब जीवों को समान नहीं मानता,...** आहाहा! सब भगवान आत्मायें अनन्त हैं। निगोद के जीव, शकरकन्द का एक राई जितना रजकण लो, उसमें असंख्य

तो शरीर हैं, उसमें अनन्त आत्मायें हैं, एक शरीर में। परन्तु वे आत्मा कैसे हैं? आहाहा! निगोद की पर्याय को लक्ष्य में न लो, कहते हैं। हें! आहाहा! उसका जो द्रव्य-वस्तु है, उसे दृष्टि में ले। तू तेरी दृष्टि में तेरे स्वभाव को ले। सम्यग्दर्शन में चौथे गुणस्थान में भगवान पूर्णानन्दस्वरूप 'सिद्ध समान सदा पद मेरो', आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात, भाई! वर्तमान पर्याय है, इतना तो नहीं। पर्याय समझ में आती है? ज्ञान का उघाड़ जो विकास पर्याय में है, ग्यारह अंग का ज्ञान हो, परन्तु वह पर्याय—अवस्था है, उसमें कहीं पूरा आत्मा नहीं है।

जिसे सम्यग्दर्शन का विषय कहते हैं, सम्यग्दर्शन अभी तो चौथा गुणस्थान। आहाहा! उसका विषय कहें तो परमात्मा कहते हैं, वह तो पूर्णानन्दस्वरूप है न, प्रभु! सिद्ध है, वह भी एक समय की पर्याय है और यह तो ऐसी अनन्त पर्याय का गुण और अनन्त गुण का पिण्ड आत्मतत्त्व है। परमात्मप्रकाश है न! दिगम्बर सन्त १३०० वर्ष पहले हुए। आहाहा! यह परमात्मप्रकाश का वर्णन करते हैं।

प्रभु! एक बार सुन, भाई! तेरा स्वरूप ही परमात्मस्वरूप है। आहाहा! अरिहन्त और सर्वज्ञ परमेश्वर जो परमात्मपद को प्राप्त हुए, वह तो पर्याय है। समझ में आया? वह परमात्मा अरिहन्तपद है, वह पर्याय; केवलज्ञान है, वह पर्याय है। आहाहा! ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड ज्ञान है और ऐसे अनन्तगुण का पिण्ड, वह आत्मा है। आहाहा! ऐसी जिसे विकल्प की—राग की वृत्ति टूट गयी है और निर्विकल्प दृष्टि में ऐसा आत्मा जिसे अनुभव में नहीं आया, वे जीव सब मिथ्यादृष्टि हैं। समझ में आया? मिथ्या अर्थात् झूठी दृष्टि और सम्यग्दर्शन अर्थात् सच्ची दृष्टि। तो सच्ची दृष्टि किसे परमात्मा कहते हैं? कि प्रभु! तू पूर्ण शक्ति का पिण्ड आनन्द रसकन्द है। आहाहा! कहा था न दृष्टान्त? शकरकन्द का दृष्टान्त नहीं दिया था?

शकरकन्द है न? शक्करकन्द, शक्करिया। सेर, अधसेर का पूरा। उसकी लाल छाल है, वह कहीं शकरकन्द नहीं है। लाल छाल बिना की जो चीज़ है, वह शकरकन्द अर्थात् चीनी की मिठास का पिण्ड है। आहाहा! उसी प्रकार भगवान आत्मा पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के विकल्प हैं, वे तो छिलके—ऊपर की छाल है। उस छिलके के पीछे प्रभु सहजानन्दमूर्ति अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय

वीतरागस्वभाव और अतीन्द्रिय ज्ञान का पिण्ड है। ऐसा पूर्णस्वरूप जिसे दृष्टि में—अनुभव में आया नहीं, जिसने उस विकल्प को तोड़कर राग की एकता तोड़ी... है, ऊपर अपने आ गया है। **वीतराग परमसामायिकचारित्र उसके प्रभाव से जीवों को...** आहाहा! सम्यग्दर्शनरूपी समभाव, सम्यग्दर्शन वह समभाव है, वह वीतरागी पर्याय है। बापू! यह इसने कभी देखा नहीं न, भाई! वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन—सत्यदर्शन, सत्यदर्शन वह वीतरागी पर्याय है। उस वीतरागी पर्याय का विषय जो है, आहाहा! वह पूर्ण वीतरागमूर्ति अनन्त आनन्द का कन्द है। ऐसी जिसे दृष्टि में आत्मा को इस प्रकार से समभाव से... आहाहा! जाना नहीं, देखा नहीं, वह दूसरे जीव को ऐसा नहीं मानता। सूक्ष्म बात है, भगवान! बहुत सूक्ष्म, बापू! यह तो वीतरागमार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर जिनवरदेव साक्षात् परमात्मा विराजते हैं महाविदेह में। महावीर भगवान आदि तो सिद्धपद हो गये, वे तो णमो सिद्धाणं में मिल गये। सीमन्धर परमात्मा महाविदेह में णमो अरिहंताणं पद में विराजते हैं। आहाहा! उनकी यह वाणी है। सन्त जगत को उनकी वाणी कहते हैं। आहाहा!

प्रभु! एक बार सुन न प्रभु! तू तेरा स्वरूप भगवानस्वरूप ही है अभी। अरेरे! प्रभुस्वरूप ही तेरा अभी है। अभी हों, अन्दर। यदि प्रभुस्वरूप भगवानस्वरूप न हो तो पर्याय में भगवानपना अरिहन्तपना आयेगा कहाँ से? समझ में आया? आहाहा! छोटी पीपर जो छोटी पीपर होती है छोटी, वह रंग से काली, कद में छोटी परन्तु शक्ति से चौंसठ पहरी चरपराहट और हरा रंग पड़ा है अन्दर। वास्तव में तो पीपर उसे कहते हैं कि जो चौंसठ पहर चरपरा रस है अन्दर और पूर्ण हरा रंग है, उसे पीपर कहते हैं। आहाहा! भाई! सूक्ष्म बात है, प्रभु! अनन्त काल से परिभ्रमण करते सम्यग्दर्शन बिना इसने दया, दान, व्रत, भक्ति आदि अनन्त बार किये। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' आता है न? छहढाला में आता है। 'पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' आहाहा! आत्मा वह कौन है? महाप्रभु पूर्णानन्द है। आहाहा! जैसे शकरकन्द शक्कर की मिठास का पिण्ड है। भले इतना क्षेत्र थोड़ा हो, उसी प्रकार इस आत्मा का क्षेत्र शरीरप्रमाण हो परन्तु उसका स्वभाव है, वह तो पूर्ण आनन्द और पूर्ण वीतरागस्वरूप से विराजमान है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, **जो जीव सब जीवों को समान नहीं मानता,...** आहाहा! जो अपना भगवान आत्मा वीतरागी निर्विकल्प आनन्द का कन्द है, ऐसा जिसने सम्यग्दर्शन में जाना, माना और अनुभव किया... आहाहा! वह जीव सब जीवों को पूर्णानन्द के नाथरूप से देखता है। उसकी पर्याय और रागादि है, उसे जाने सही, परन्तु चीज़ जो है अन्दर, आदरणीय उसे मानता है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! समझ में आया? यह कहते हैं देखो! **उसके समभाव नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं—** १०५ गाथा।

२२८) **जो णवि मण्णइ जीव जिय सयल वि एक्क-सहाव।**
तासु ण थक्कइ भाउ समु भव-सायरि जो णाव।।१०५।।

आहाहा! योगीन्द्रदेव १३०० वर्ष पहले दिगम्बर सन्त हुए। आत्मज्ञानी, ध्यानी, अनुभवी। आत्मा के आनन्द को अनुभव करनेवाले, वे जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा!

अन्वयार्थ :— हे जीव... शब्दार्थ है न अन्दर? **जो सभी जीवों को एक स्वभाववाले नहीं जानता,...** आहाहा! गजब बात है! यह एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय या अनन्त काई, लील-फूग समझते हो? यह काई। काई होती है न पानी के ऊपर? उसमें एक-एक टुकड़े में असंख्य शरीर हैं और एक-एक शरीर में अनन्त जीव हैं। आहाहा! परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि वह जीव कहना किसे? कि जो वीतरागस्वरूप से भरपूर चिदानन्द सहजानन्दमूर्ति प्रभु, उसे जिसने समभाव से अनुभव किया और देखा, वे सब जीव को वीतरागस्वरूप देखते हैं। आहाहा! पर्याय में भले भूल हो, उसे जाने। समझ में आया? परन्तु उसका स्वभाव जो, मेरा स्वभाव जो वीतरागमूर्ति अविकारी स्वभाव से भरपूर कन्द है, दल है। आहाहा! समभाव का दल है प्रभु। वह ज्ञानस्वभाव के नूर के तेज का पूर है प्रभु। अरे! कैसे (जँचे) ? इसे कभी महत्ता भासित ही नहीं हुई। आहाहा! समझ में आया?

इसकी—भगवान आत्मा की महिमा को वीतराग पूरी नहीं कह सके। समझ में आया?

जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में
कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब।

वाणी द्वारा चैतन्य की बात कितनी अन्दर आवे। वाणी जड़, भगवान चैतन्य अरूपी प्रभु। आहाहा!

जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में
कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब।

पूर्ण स्वरूप किस प्रकार कहना? आहाहा!

'कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब, उस स्वरूप को अन्य वाणी...' दूसरे की वाणी, त्रिलोक के नाथ की वाणी भी जहाँ पूर्ण स्वरूप को न कह सके। आहाहा! तो अन्य वाणी उस स्वरूप को क्या कहे? 'अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब।' वह अनुभवगम्य रहा। आहाहा! जन्मघूँटी में मिले हुए गुड़ और शक्कर का स्वाद, परन्तु जिसे बड़ी उम्र में कहे कि बापू! स्वाद कैसा था वह? बहुत मीठा था, मीठा था। घी का स्वाद जन्म घुट्टी में देते हैं न? घी दे तो रेच हो जाये। अन्दर सवा नौ महीने... वह घी का स्वाद कैसा था? केले जैसा मीठा? शक्कर जैसा मीठा? घी—केला जैसा मीठा? घी, घी जैसा। यह तो वह का वह हुआ। आहाहा! जिसके—घी के स्वाद को जानने पर भी दूसरे पदार्थ के साथ मिलान नहीं किया जा सकता, कहा जा सके ऐसा कोई पदार्थ नहीं। तो यह तीन लोक का नाथ आत्मा, घी जैसी जड़ चीज़... आहाहा! उसके स्वाद को जानने पर भी दूसरे पदार्थ के साथ तुलना करके कह सके, ऐसा स्वाद नहीं है। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा! पूर्णानन्द और पूर्ण ज्ञान, आनन्द अनन्त गुण का पूर्णरूप ऐसा चैतन्य, उसका जिसे सम्यग्दर्शन में स्वाद आया। अभी तो सम्यग्दर्शन, हों! चारित्र-फारित्र तो कहीं रहा। बापू! वह तो चीज़ ही अलग है। जिसे उस सम्यग्दर्शन में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद-आस्वाद आया, वह किस प्रकार कहे? कैसा स्वाद है? बापू! कोई बहुत अलौकिक वेदन है! आहाहा! उस वेदन की पर्याय में भी जो ज्ञात हुआ है... आहाहा! प्रभु! वीतराग का मार्ग बहुत अलौकिक है। ऐसा मार्ग अन्यत्र सर्वज्ञ वीतराग जिनेश्वर के सिवाय कहीं नहीं है। आहाहा! और इसकी जो चीज़ है, भगवान ने कही हुई, अलौकिक चीज़ है, बापू!

यहाँ कहते हैं, **हे जीव! जो सभी जीवों को एक स्वभाववाले...** एक स्वभाव, आनन्दस्वभाव, ज्ञायकस्वभाव, वीतरागस्वभाव... आहाहा! सब भगवान परमात्मस्वरूप एक स्वभावी आत्मा है। जैसा मेरा वीतरागस्वभावी आत्मा है, वैसे सब आत्मायें वीतरागस्वभावी हैं। आहाहा! ऐसा जो नहीं जानता... आहाहा! ऐसी व्याख्या कैसी? ऐसा मार्ग कैसा? भाई! बापू! मार्ग अलग है। वीतराग का मार्ग कोई अलौकिक है। समझ में आया? इसने अनन्त काल में अनन्त परिभ्रमण किये। स्वर्ग के भव अनन्त किये। पुण्य अनन्त बार किये हैं। नरक में जितने भव किये, उससे असंख्यगुणे अनन्त स्वर्ग के किये हैं। ऐसा भगवान के ज्ञान में आया है। क्या कहा यह? नरक है न? नीचे नारकी। महापीड़ा, जिसकी पीड़ा का पार नहीं होता, भगवान!

यहाँ कहा था न एक बार? नहीं? राजा का—चक्रवर्ती का कुँवर हो, विवाह किया हो। अरबों रुपये खर्च किये हों। उस दिन उसे कोई जीवित जमशेदपुर की भट्टी में डाले, उसे कितना दुःख होगा? उससे अनन्त गुणा दुःख प्रभु! पहली नरक में दस हजार वर्ष की स्थिति में है। आहाहा! बापू! तू भूल गया प्रभु! ऐसे अनन्त दुःख नरक के अनन्त भव किये और इससे अनन्तगुणे स्वर्ग के किये, ऐसा भगवान कहते हैं। तो स्वर्ग के किये, वे पुण्य करके जाते होंगे या पाप करके जाते होंगे? व्रत, तप, भक्ति, पूजा अनन्त बार ऐसी की है कि जिसके कारण स्वर्ग में गया। नरक से स्वर्ग के असंख्यगुने भव (किये) परन्तु वह कुछ चीज़ नहीं, वस्तु नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि समभाव। वीतरागस्वरूपी प्रभु... भाई! जरा सूक्ष्म बात है। अकेला आत्मा का स्वरूप सबका वीतरागस्वरूपी समभावस्वरूपी विराजमान है। ऐसी जिसे दृष्टि नहीं, उस अज्ञानी को समभाव नहीं रह सकता। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं, देखो! **जो सभी जीवों को एक स्वभाववाले...** एक स्वभाव, आहाहा! गाथा यह गाथा है न! चैतन्य हीरा अन्दर प्रभु, चैतन्य के प्रकाश के नूर के तेज का पूर प्रभु, ऐसा जो एक स्वभावी भगवान आत्मा, ऐसे सबको एक स्वभावी जो नहीं जानता। क्योंकि अपने को एक स्वभावी जाना नहीं, इसलिए दूसरे सबको भी वह एक स्वभावी नहीं जानता। आहाहा! देवीदासभाई! ऐसा है। पोरबन्दरवाले आ गये, देवीदास।

पोरबन्दरवाले थे न सेठ। देवीदास सेठ थे गाँव के पोरबन्दर के। आहाहा! भाई! मार्ग प्रभु तेरा अलग है, भाई!

यह पर्यायदृष्टि भी तेरा स्वभाव नहीं। आहाहा! दया, दान, व्रत, तप का विकल्प है, वह तो तेरा स्वभाव नहीं... आहाहा! एक समय की पर्याय का भी तेरा स्वभाव नहीं। तेरा स्वभाव तो एक स्वरूपी। है शब्द? एक स्वभाव। भाई! बातें दूसरी है, यह तो वीतराग की, तीन लोक के नाथ जिनवरदेव का पुकार जनता के समक्ष है। आहाहा! भगवान! तू एक स्वभावी वस्तु है न! एक स्वभाव अर्थात्? ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव, शान्तस्वभाव, ईश्वरस्वभाव, भगवानस्वभाव, प्रभुत्वस्वभाव,... आहाहा! स्वच्छत्वस्वभाव ऐसा एकरूप त्रिकाल स्वभाव। आहाहा! यह वह क्या चीज़ है? भाई! ऐसे एक स्वभाव को जिसने सम्यग्दर्शन में जाना नहीं, अनुभव नहीं किया, जिसकी दृष्टि में वह तत्त्व आया नहीं। वह दूसरे सब जीवों को एक स्वभावी नहीं जान सकता। समझ में आया? डाह्याभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह इस प्रकार जाने तो पर को जानेगा, ऐसा कहते हैं। अपने को एक स्वभावी वस्तु आनन्दकन्द प्रभु, अरे... बापू! वस्तु... सर्वज्ञ परमेश्वर को जो पर्याय प्रगटी, वह तो एक समय की दशा है। केवलज्ञान भी एक समय रहता है। पर्याय है न! दूसरे समय दूसरा ऐसा का ऐसा भले केवलज्ञान, परन्तु दूसरे समय दूसरी, तीसरे समय तीसरी पर्याय होती है। वह गुण नहीं, वह ध्रुव नहीं। आहाहा! ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड जिसमें—प्रभु में पड़ा है। आहाहा! एक ज्ञानगुण में ऐसी अनन्त पर्याय पड़ी है। एक आनन्दगुण में, अतीन्द्रिय आनन्द जो सर्वज्ञ को—परमात्मा को वीतरागदेव को प्रगट हुआ, वह एक समय की आनन्द की दशा, ऐसा अनन्त आनन्द का पिण्ड प्रभु आत्मा है। आहाहा! अरे! इसे आत्मा किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और धर्म हो गया इसे? आहाहा! समझ में आया? ऐसा अनन्त वीर्य जो भगवान को प्रगट हुआ, अनन्त वीर्य है न परमात्मा को? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य। तो अनन्त वीर्य जो पुरुषार्थ प्रगट हुआ है, वह तो एक समय की दशा है। ऐसा अनन्त

पुरुषार्थ का पिण्ड प्रभु आत्मा वीर्य है अन्दर है। आहाहा! वीर्य रेत नहीं, हों! वीर्य—बल अन्दर। आहाहा!

मुमुक्षु : नेमिनाथ भगवान क्षायिक समकिती थे?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षायिक हो या उपशम हो, सब एक ही है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। वह तो राग है। वह आत्मा नहीं। वह तो विकल्प है, उसका आत्मा वह नहीं। वह तो विकल्प है, राग है, पुण्य है; वह आत्मा नहीं, वह आत्मा में नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! बहुत कठिन। यह है ही नहीं, अभी चलता नहीं। अभी तो सब गड़बड़ बातें चलती हैं। सब खबर नहीं अभी की? आहाहा! वह तो राग का विकल्प है, वह आत्मा नहीं। वह तो—विकल्प तो आत्मा का शत्रु है। आहाहा! वह आत्मा नहीं। आत्मा तो रागरहित स्वरूप पूर्णानन्द है, उसे आत्मा माना है। आहाहा! वह होता है, वह जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं। आदरनेयोग्य तो त्रिकाली भगवान वीतरागमूर्ति प्रभु है, वह आदरणीय है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा! एक समय की क्षयोपशम की पर्याय भी आदरणीय नहीं। राग की तो क्या बात करना? हें! आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं, केवलज्ञान की जो पर्याय है, वह भी नाशवान है। क्योंकि वह एक समय की दशा है, पर्याय है, गुण नहीं, ध्रुव नहीं। आहाहा! अरे! कभी सुना न हो। केवलज्ञान पर्याय है, नाशवान है—ऐसा कहा। नियमसार ३८ गाथा। ३८ गाथा में (कहा है कि) केवलज्ञानादि पर्यायें हैं, वे नाशवान हैं। क्योंकि एक समय रहकर बदल जाती है और भगवान आत्मा त्रिकाल ध्रुव है, अविनाशी है। आहाहा! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म, बापू! मार्ग ऐसा है। लोगों ने स्थूल में कल्पित कर डाला है।

मुमुक्षु : आत्मा के ध्रुवस्वभाव की बात करते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ध्रुवस्वभाव की बात चलती है। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् है न? तत्त्वार्थसूत्र, दसलक्षणी पर्व में बहुत वाँचन किया जाता है। कल्पना से वाँचे,

वस्तुस्थिति क्या है, (उसकी खबर नहीं होती)। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्; सत् द्रव्य लक्षणं। नयी पर्याय उपजे, पुरानी पर्याय जाये, ध्रुवपने रहे। यहाँ ध्रुव की व्याख्या अभी चलती है। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय की स्थापना तो ध्रुव में होती है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव में है न! ध्रुव अन्दर पूरी चीज़ है। चैतन्यधातु आनन्दसागर भगवान। अरे! कैसे बैठे? दो सिगरेट पीवे, तब पाखाने में दस्त उतरे ऐसे तो अपलक्षण। अब उसे ऐसा भगवान कैसे बैठे? माप करना आवे कहाँ से उसे? आहाहा!

सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनवरदेव ऐसा कहते हैं कि जीव का स्वरूप जिसे जीव कहते हैं, वह तो एक स्वभावी आनन्दकन्द है, ध्रुवस्वरूप है। आहाहा! पर्याय में अल्पज्ञता और रागादि, वह वस्तु भिन्न है। समझ में आया? अभी तो आत्मतत्त्व कितना, उसकी यहाँ बात चलती है। हें

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रमाण में पर्याय सम्मिलित होती है; इसलिए वह आदरणीय नहीं है। वह अधिकार हो गया है। ध्रुव है, ध्रुव जो त्रिकाल जो परमानन्द की मूर्ति, वही समकितदृष्टि को उपादेय है और पर्याय है, उसका ज्ञान करे, तब प्रमाण होता है। उस प्रमाण में दो आये। त्रिकाली वस्तु आयी और पर्याय आयी। दो आये, इसलिए सद्भूतव्यवहारनय का विषय हो गया। बहुत सूक्ष्म बात है। अपने बहुत बार आ गया है। प्रमाणज्ञान में... नयचक्र में है सिद्धान्त में, प्रमाण में... नयचक्र ग्रन्थ / शास्त्र है, प्रमाण में पर्याय का निषेध नहीं आता, इसलिए वह पूज्य नहीं है। बात आ गयी है। निश्चय में पर्याय का निषेध है और अकेला त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु दृष्टि में है, इसलिए वह पूज्य है। आहाहा! प्रमाण में दूसरी पर्याय को मिलाकर ज्ञान डबल होता है, तथापि वह पूज्य नहीं है। आश्रय के लिये नहीं है। पूज्य ही नहीं, सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। बहुत सूक्ष्म बात, बापू! पंचाध्यायी में प्रमाणज्ञान को सद्भूतव्यवहार कहते हैं। दो मिले न? द्रव्य और पर्याय—दो; इसलिए प्रमाण हो गया। प्रमाण हो गया व्यवहारनय का विषय। अकेला त्रिकाली भगवान जहाँ दृष्टि में आवे निश्चय में, वह

आदरणीय है। आदर करती है पर्याय, परन्तु पर्याय आदर करती है त्रिकाली का। आहाहा! समझ में आया?

एक न्याय से तो संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय है न भाई! उसे भी ऐसा कहा है न कि संवर हितकारी है। वह प्रगट करने की अपेक्षा से (बात है)। अपेक्षा अलग है। उस श्रद्धा में वह पर्याय भी आती है, यह। ज्ञानप्रधान श्रद्धा में। समझ में आया? द्रव्य और संवर, निर्जरा की पर्याय और आस्रव, उस पर्याय की श्रद्धा तो आती है न! परन्तु श्रद्धा की पर्याय है, वह भिन्न है। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! श्रद्धा की पर्याय इसकी श्रद्धा करती है अभेदरूप से। तथापि वह पर्याय द्रव्य में मिल नहीं जाती। श्रद्धा की पर्याय। आहाहा! विषय बहुत सूक्ष्म है, बापू! हें! यह तो अपने बहुत बार चर्चित हो गया है। आत्मधर्म में आ गया है, बहुत आ गया है।

यहाँ तो परमात्मा त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि में—ॐकार की ध्वनि में... भगवान की वाणी ऐसी नहीं होती, क्योंकि वीतराग हो गये, पूर्णस्वरूप उनकी वाणी में होता है, ॐ एकाक्षरी ध्वनि होती है। 'ओंकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे' भगवान तीन लोक के नाथ तीर्थंकर अनन्त हुए और परमात्मा बीस विहरमान विराजते हैं। महाविदेह में बीस विहरमान नहीं? विहरमान तीर्थंकर विराजते हैं, लाखों केवली विराजते हैं। उन तीर्थंकरों की ध्वनि इच्छा बिना होती है। ॐ, ऐसी ध्वनि निकलती है। गणधर ॐ ध्वनि सुनकर अर्थ विचारते हैं और उसमें से शास्त्र रचते हैं।

मुमुक्षु : वह भाषा तो अर्धमागधी हो न!

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अर्धमागधी भाषा व्यवहार है। वह जरा सूक्ष्म बात है। तुमको बैठना कठिन है। भगवान की वाणी ॐ होती है अकेली। अर्धमागधी कही है, वह तो भेदवाली कही है। वह तो देवकृत है। वह तो ठीक, वह सब समझने जैसी बात है। यह लोगों ने सुना न हो और उन्हें खबर न हो। अर्धमागधी तो जड़ की भाषा है, वह तो भेदवाली है। उनकी वाणी तो ॐ है। 'ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' देखो न, अपने इसमें आया है। इसमें है न? मैं भाषा समझता नहीं तुम्हारी। 'मुख ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' यह बनारसीदास (कृत) है। 'रचि आगम

उपदेशे भविक जीव संशय निवारे।' आता है, उन लोगों में आता नहीं। उनके तो कृत्रिम बनाये हुए शास्त्र है न! नये बनाये हुए हैं, कहीं भगवान के कहे हुए नहीं है। यह बात सूक्ष्म है। इसमें है यह। बनारसीदास। अपने (संवत्) १९९५ के वर्ष में प्रकाशित किया है। बनारसीदास में है। उसका कारण है कि जहाँ वीतरागस्वभाव है, वहाँ ऐसी भेदवाली वाणी नहीं होती। ॐ ध्वनि इच्छा बिना। स्वपरप्रकाशक वाणी निकलती है। आहाहा! वे तो वीतराग हैं। उन्हें मैं बोलूँ ऐसी इच्छा नहीं है। इच्छा तो मर गयी है, वह तो बारहवें गुणस्थान में वीतराग हुए तब। वीतराग तो तेरहवें में हुए। उनकी वाणी ऐसी हो सकती ही नहीं। भेदवाली वाणी व्यवहारवाले को हो, निश्चयवाले को भेदवाली वाणी होती नहीं। आहाहा! यह सूक्ष्म बातें। एक-एक बात में अन्तर है। आहाहा!

यहाँ तो इतना कहते हैं, **एक स्वभाववाले नहीं जानता, उस अज्ञानी के समभाव नहीं रहता,...** आहाहा! है? गाथा आ गयी है बहुत अच्छी, भाई! आहाहा! आत्मा तो विकल्प रहित, रागरहित है। राग होता है, वह तो पर्याय में है, वस्तु में नहीं। जिस वस्तु की प्रतीति और श्रद्धा करनी है, उस वस्तु में अल्पज्ञता नहीं। राग तो बाहर रह गया। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु एक स्वरूप विराजमान चैतन्य भगवान, ऐसी जिसे दृष्टि वीतरागस्वभाव की हुई नहीं, वह दूसरे जीवों को वीतरागस्वभाव से नहीं जान सकता। उसका आत्मा भी वीतरागस्वभाव है सब। पर्याय में भूल है, वह व्यवहार हो गया। वह तो जाननेयोग्य हुआ, आदरनेयोग्य तो यह है। आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसी बातें अब। एक तो धन्धे के कारण निवृत्त न हो बेचारा। पूरे दिन कमाना... कमाना... कमाना... भोग विषय के, स्त्री, पुत्र। बीस घण्टे, बाईस घण्टे उसमें जाते हैं। एकाध-दो घण्टे मिलें, वहाँ सुनने जाये, वहाँ सत्य क्या है, यह मिलता नहीं बेचारे को। आहाहा! लुट जाता है। जगत चला जाता है, भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, जो कोई जिसे एक स्वभावी भगवान अपना है, ऐसे जो सब जीव एकस्वभावी हैं, ऐसा नहीं जानता, उस अज्ञानी को समभाव नहीं रहता। अन्दर सम्यग्दर्शन का स्वभाव उसे नहीं रहता। आहाहा! समझ में आया? कहो, सेठ! ऐसी बातें हैं यह। घर में वाँचना। परमात्मप्रकाश तो होगा घर में। घर में तो होता है न। **नहीं रहता, जो समभाव...** कैसा है समभाव? पूर्णानन्द के नाथ की दृष्टि होना समभाव, वह सम्यग्दर्शन,

वह समभाव है। सम्यग्दर्शन, वह समभाव है और ऐसे समभाव से भरपूर पूरा भगवान आत्मा है। ऐसे सब आत्मा समभाव से भरपूर हैं। ऐसा जो नहीं जानता, उस अज्ञानी को समभाव नहीं रहता। वह समभाव कैसा है? **संसार-समुद्र के तैरने को नाव के समान है।** संसार—भवसिन्धु तिरने के लिये वह नाव समान है। विशाल भवसिन्धु, चौरासी के अवतार। आहाहा! चौरासी लाख योनियाँ हैं न? एक-एक योनि में अनन्त अवतार किये हैं। आहाहा! विशाल भवसिन्धु समुद्र है। उसे तिरने के लिये यह समभाव नाव है। पूर्णानन्द के नाथ की प्रतीति का जो समभाव सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, भले उसे रागादि हो, वे हेयरूप से होते हैं। समझ में आया? आहाहा! सम्यग्दृष्टि को छियानवें हजार स्त्रियाँ भी होती हैं, तीर्थंकर को। परन्तु वह तो राग है तो हेय है। समझ में आया? अन्दर में भगवान पूर्णानन्द का नाथ, वह समभाव से आदरणीय है। एक ही उपाय है। आहाहा! **भव-समुद्र... भवसागर के तैरने को नाव के समान है।** आहाहा!

भावार्थ :— जो अज्ञानी सब जीवों को समान नहीं मानता,... किस प्रकार? आहाहा! **अर्थात् वीतराग निर्विकल्पसमाधि में स्थित होकर...** जरा यह बात है सूक्ष्म, बापू! वीतराग निर्विकल्प शान्ति जो है, उसमें स्थिर होकर जानता है। जरा बात सूक्ष्म है। निर्विकल्प अर्थात् रागादि का विकल्प है, उसे तोड़कर सम्यग्दर्शन में निर्विकल्प समाधि में स्थिर हो। उस समाधि में **स्थित होकर सबको समान दृष्टि से नहीं देखता,...** आहाहा! इस प्रकार, हों! डाह्याभाई! राग के विकल्प से भिन्न पड़कर और निर्विकल्प शान्ति—समाधि, समाधि अर्थात् समभाव, वीतरागी समभावरूपी समाधि में स्थिर होकर जो सब जीव को समान मानता नहीं अज्ञानी। आहाहा!

मुमुक्षु : निर्विकल्प है न वह।

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्विकल्प है न दृष्टि। दृष्टि निर्विकल्प समाधि है न, शान्ति। सम्यग्दर्शन वह निर्विकल्प है। सम्यग्दर्शन वह विकल्प नहीं। विकल्प से भिन्न पड़कर अन्तर अनुभव करे, तब सम्यग्दर्शन है, वह निर्विकल्प है।

मुमुक्षु : यह तो बराबर है, समाधि में स्थिर रहकर....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें स्थिर रहकर। बराबर है। उसमें रहा, वह समान जाना,

ऐसा कहा। अपना स्वभाव जाना तो उसे सबको समान ही जानने का रहा। आहाहा! ऐसे धारणा करके रखी, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात है।

यह तो मार्ग, बापू! केवली परमात्मा... आहाहा! जिन्हें सौ-सौ इन्द्र पिल्ले की भाँति व्याख्यान में सुने। गलुडिया समझे न? पिल्ला, तुम्हारे पिल्ला। इन्द्र शकेन्द्र बत्तीस लाख विमान का स्वामी है, एकावतारी है। एक भव में मोक्ष जानेवाला सौधर्म इन्द्र है। ऐसे सौ इन्द्र भगवान के पास समवसरण में जाते हैं। बाघ और नाग जाये समवसरण में ऐसे सुने। वह वाणी कैसी होगी, बापू! समझ में आया? आहाहा! वह वाणी ऐसी होती है। आहाहा! यह वार्ता कथा नहीं कोई। यह तो दिव्यध्वनि भगवान की, आवाज दिव्यध्वनि है। उसमें आया है कि प्रभु! तू एक बार **वीतराग निर्विकल्पसमाधि में स्थित होकर...** आहाहा! सम्यग्दर्शन वह है कि जिसमें विकल्परहित होकर निर्विकल्प वीतरागी शान्ति में स्थिर होता है, तब उसे आत्मा पूर्णानन्द ज्ञात होता है। आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसी बातें अब। मार्ग ऐसा है, बापू! वीतराग स्वरूप जिनवर का स्वरूप है। अनन्त जिनवर हो गये, वर्तमान जिनवर विराजते हैं, अनन्त जिनवर होंगे, उन सबकी कथनी यह है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' ऐसी बातें है, भाई!

सकल ज्ञायक परम निर्मल केवलज्ञानादि गुणोंकर निश्चयनय से... देखो! अब आत्मा कैसे हैं सब? अपना आत्मा कैसे जाना कैसा? और सब आत्मा कैसे हैं? **सकल ज्ञायक परम निर्मल केवलज्ञानादि गुणोंकर निश्चयनय से सब जीव एक से (समान) हैं,...** आहाहा! है? यह तो निर्विकल्प समाधि में दृष्टि स्थिर होती है, तब उसे जानने में यह होता है कि जैसा मैं हूँ, वैसे सब हैं। ऐसा उसके ज्ञान में वर्तता है इतना। कैसे हैं सब आत्मा? और कैसा स्वयं अपने को जाना है सम्यग्दर्शन में? **सकल ज्ञायक परम निर्मल केवलज्ञान...** केवलज्ञान की पर्याय नहीं। केवलज्ञान, अकेला ज्ञान, अकेला आनन्द, अकेली श्रद्धा, अकेली स्थिरता, अकेली वीतरागता। ऐसे अनन्त गुणों का पिण्ड प्रभु। आहाहा! माप करना कहाँ से आवे, बापू! हें! यह चीज़ ऐसी है, उसका माप करना आवे तो सम्यग्दृष्टि हो गया। सम्यग्दृष्टि हुआ तो हो गया, मोक्ष का दरवाजा तैयार हो गया। अल्प काल में उसकी मोक्ष की दशा होनेवाली है। आहाहा! सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, इसकी लोगों को कीमत ही नहीं है। आहाहा!

श्रेणिक राजा क्षायिक समकित पाये। भले क्षायिक पाये, भले क्षयोपशम हो, वह तो क्षायिक पाये, तीर्थंकरगोत्र उपार्जित किया। कुछ त्याग नहीं, स्त्री, पुत्र, राजपाट का राग था। परन्तु समकित में निर्मलता आत्मा यह है, ऐसी दृष्टि होने से, आहाहा! जिन्हें पहले नरक का आयुष्य बँध गया था। मुनि की असातना, दिगम्बर सन्त की असातना की थी न! मुनि ध्यान में बैठे थे। वह श्रेणिक बौद्ध था। पश्चात् एक सर्प मरा हुआ, वह गर्दन में डाला और उनकी रानी चेलना समकिती थी और यह था बौद्ध। इसलिए रानी को कहे तेरे गुरु को मैं सर्प डाल आया हूँ, निकाल डाला होगा। चेलना समकिती थी, आत्मज्ञानी थी, आत्मभान था। आहाहा! यह जो कहते हैं, वैसा ज्ञान था अन्दर। आहाहा! अन्नदाता! मेरे गुरु ऐसे नहीं होते। तुमने सर्प डाला, वे निकाल डालें, ऐसा नहीं होता। वे तो वीतराग आनन्द में मस्त होंगे। मुनि तो वीतरागी आनन्द में मस्त होंगे। तब कहे, चलो तुम। दोनों चले। आता है न, फोटो में आता है।

चेलना रानी जाती है। करोड़ों चींटियों ने छिद्र किया। स्वयं आनन्द में, अनन्त आनन्द की मस्ती में हैं। मुनि तो अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त हैं। यह उपसर्ग है या नहीं, उसकी उन्हें खबर नहीं। मुनिदशा किसे कहते हैं, बापू! वह तो वीतरागी अलौकिक दशा है! आहाहा! इस प्रकार निकालकर कहती है, देखो यह! स्वामिन्! यह देखो, यह चींटियाँ हैं परन्तु ये (मुनि) आनन्द में स्थित हैं। ओहोहो! ऐसा मार्ग! वीतराग का ऐसा मार्ग! प्रभु! मुझे धर्म सुनाओ। परन्तु वह नरक का आयुष्य बँध गया, तैंतीस सागर का सातवें नरक का। उसमें वे वहाँ समकित प्राप्त हुए। उसे समझाया कि प्रभु! तेरा आत्मा आनन्द का नाथ है। यह अल्पज्ञ, वह भी तेरी चीज़ नहीं, रागादि तेरी चीज़ नहीं, तू तो पूर्णानन्दस्वरूप है। आहाहा! ऐसी जहाँ अन्तर्दृष्टि खिल गयी है न! सातवें नरक का आयुष्य था, उसे तोड़कर चौरासी हजार (वर्ष) का रह गया। क्योंकि उसमें से घी निकालकर पूड़ी नहीं होती, वह तो खाना ही पड़ेगा। या सूखने देना चाहिए, या अधिक घी डाले, परन्तु लड्डू तो वह का वह रहेगा। इसी प्रकार नरक का आयुष्य बँध गया, वह अब टूटता नहीं, स्थिति घटायी। परन्तु समकित आत्मज्ञान को प्राप्त हुए... आहाहा! यह कहते हैं, ऐसा भान अन्तर में हो गया। भगवान की सभा में गये हैं, तीर्थंकरगोत्र बाँधा है। श्रेणिक राजा ने तीर्थंकरगोत्र (बाँधा)। विकल्प आया शुभराग, उसमें तीर्थंकरगोत्र

बँध गया। अभी नरक में है। वहाँ से निकलकर... अभी ढाई हजार वर्ष हुए। साढ़े इक्यासी हजार वर्ष बाकी हैं। निकलकर पहले तीर्थंकर होनेवाले हैं, आगामी चौबीसी के। समकित था, त्याग नहीं, व्रत नहीं, तप नहीं। कुछ नहीं। सच्चे व्रत, हों! वे नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : अन्दर का त्याग हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर हो गया पूरा संसार अभाव हो गया। आहाहा! उदयभाव विकल्प-राग हे, वह मैं नहीं, मैं तो आनन्दकन्द हूँ। आहाहा! ऐसी बात, बापू! लोगों को श्रद्धा और समकित क्या है, (इसकी खबर नहीं)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अज्ञानी, सब अज्ञानी थे। वह अज्ञानी था। स्वर्ग में गया वह। उसे कुछ लाभ नहीं, आत्मा का कुछ लाभ नहीं। स्वर्ग मिला, धूल मिली, वह धर्मी नहीं। वह धर्म प्राप्त करने के बाद। तब तक मिथ्यादृष्टि था। आहाहा! यहाँ तो समकिती हो, वह राग से स्वर्ग में जाये तो वह दुःख है। अरे! क्या हो? बापू! बातों में बहुत अन्तर, बहुत अन्तर है। सम्प्रदाय में ऐसी बात है नहीं। वह तो हमने सब देखा, इक्कीस वर्ष देखा है न। आहाहा! यह बात है ही नहीं, है ही नहीं। हमारे गुरु थे, बहुत वैरागी। कषाय मन्द, निर्दोष आहार-पानी ले, हों! ऐसे हीराजी महाराज। उनके लिये पानी की बूँद कहीं बनायी (प्रासुक की) हो और खबर पड़े तो ले नहीं। ऐसी क्रिया बहुत ऊँची थी। हीराजी महाराज। आहार लेने की क्रिया, पानी की, परन्तु इस वस्तु की कुछ खबर नहीं। कहते कि इस प्रमाण हम पालते हैं। पाँचवें काल में साधु भगवान ने कहे, तो हम नहीं हों तो कौन होगा? ऐसा करके कहते थे। हम तो सब पचास वर्ष पहले से सुनते हैं। अरे... भाई! मार्ग अलग, भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, कैसा है यह आत्मा? **सकल ज्ञायक परम निर्मल...** सकल अर्थात् तीन काल—तीन लोक के द्रव्य, गुण, पर्याय को जानने की शक्तिवाला प्रभु आत्मा। ज्ञायक है न? परम निर्मल केवलज्ञान। केवलज्ञान अर्थात् पर्याय नहीं। अकेला ज्ञान। परम सकल ज्ञान, अकेला दर्शन। आदि है न? केवलज्ञान, आनन्द आदि वीर्य, अनन्तगुण लेना। **केवलज्ञानादि गुणोंकर निश्चयनय से सब जीव एक से हैं,...** आहाहा! **ऐसी**

जिसके श्रद्धा नहीं है,... आहाहा! जिसकी सम्यग्दर्शन-श्रद्धा में सकल ज्ञायक अनन्त केवलज्ञानादि अनन्त गुण से भरपूर भगवान है, ऐसी जिसे श्रद्धा नहीं, **उसके समभाव नहीं उत्पन्न हो सकता।** आहाहा! उसे समभाव, वीतरागीभाव उत्पन्न नहीं हो सकता। आहाहा! मार्ग अलग, बापू! आहाहा! यह मार्ग अलग।

ऐसा निःसन्देह जानो। है? जिसे आत्मा भी बापू! यह विश्वास कहाँ से लाना? यह तो पुण्य-पाप के विकल्प में फँस गया है और उसमें ही सब माना, वह तो अज्ञानी मूढ़ है। आहाहा! एक समय की पर्याय को भी अपनी माने तो मूढ़ है। आहाहा! राग की तो कहाँ बात करना, परन्तु आत्मा पूर्ण स्वभाव सकल केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप निश्चयनय से परिपूर्ण प्रभु है। ऐसी आत्मा की जिसे श्रद्धा नहीं, उसे समभाव नहीं हो सकता। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! परन्तु समझ में आये ऐसी है। कहीं बहुत ऐसी भाषा कठिन नहीं है, भाषा तो सादी है। भाव भले (गम्भीर है)। आहाहा! समझ में आया? जिसकी श्रद्धा में भगवान परिपूर्ण आत्मा अपना है, ऐसा ही भगवान सब एक स्वभावी है, ऐसी श्रद्धा नहीं, उस अज्ञानी को समभाव नहीं रह सकता। आहाहा! ऐसी बात होगी? भाई! यह तो वीतराग का मार्ग ऐसा है, प्रभु!

कैसा है समभाव? सम वीतराग पर्याय। सम्यग्दर्शन की पर्याय, वह वीतरागी पर्याय है और उसमें पूरे परिपूर्ण स्वभाव की प्रतीति और भान आया है। यद्यपि उस श्रद्धा की पर्याय में द्रव्य नहीं आता। यह और सूक्ष्म बात। द्रव्य उसमें नहीं आता। परिपूर्ण द्रव्य है, उसका यहाँ ज्ञान आता है। परिपूर्ण है, ऐसी उसकी श्रद्धा आती है। वह वस्तु नहीं आती, वस्तु वस्तुरूप से रही। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जो सम्यग्दर्शन, समभाव, सम्यक्भाव जिसे नहीं, वह अज्ञानी है। **कैसा है समभाव, जो संसार समुद्र से तरने के लिये जहाज के समान है।** आहाहा! संसारसिन्धु को तिरना हो, उसे यह सम्यग्दर्शन समभाव जहाज समान है। आहाहा! समुद्र तिरने को जहाज चाहिए न! भवसिन्धु। आहाहा! चैतन्यसिन्धु भगवान और संसार भवसिन्धु। कल कहा था न?

'कहै विचिक्षण पुरुष सदा मैं एक हौं।' देखो! यह एक आया न? सम्यग्दृष्टि ऐसा जानता है कि मैं सदा एकस्वरूपी भगवान वीतरागमूर्ति हूँ।

कहै विचिक्षण पुरुष सदा मैं एक हौं,
अपने रससौ भर्‌यौ अनादि टेक हौं,

महा आनन्द और ज्ञान के रस से भरपूर भगवान अनादि मेरे रस से परिपूर्ण भरा हुआ मैं भगवान। 'मोहकर्म मम नांहि नांहि भ्रमकूप है' यह मिथ्यात्व और राग, द्वेष, मोह कर्म वह बड़ा भ्रम का कुँआ है।

मोहकर्म मम नांहि नांहि भ्रमकूप है,
सुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है।

(समयसार नाटक, जीवद्वार, काव्य ३३)

कहो, डाह्याभाई! आहाहा! अरे... भगवान! तेरी क्या बात करना? बापू! तुझे तेरी खबर नहीं होती। तुझे तेरी कीमत नहीं होती। 'परख्या माणेक मोतियां, परख्या हेम कपूर, पण एक न परख्यो आत्मा, त्यां (रह्यो) दिग्मूढ़।' आहाहा! सबकी परीक्षायें की। हीरा की, माणेक की और अमुक की और ढींकणा की। आहाहा! परन्तु प्रभु अन्दर आत्मा अनन्त आनन्द के रसकन्द से भरपूर प्रभु एक स्वभावी वीतरागस्वभाव... आहाहा! उसकी इसने कभी (पहिचान नहीं की)। अनन्त काल में क्रियाकाण्डी साधु अनन्त बार हुआ, परन्तु इस वस्तु को उसने पहिचानकर जाना नहीं, भव घटे नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ ऐसा व्याख्यान जानकर... यह सब इस प्रकार जानकर करना क्या अब? **राग-द्वेष-मोह को तजकर...** अन्दर में रागादि विकल्प है, उसका लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा! **परमशान्तिभावरूप शुद्धात्मा में लीन होना योग्य है।** आहाहा! कैसा है भगवान आत्मा? परमशान्तभावरूप शुद्धात्मा। अकषायस्वरूप। उसमें लीन होनेयोग्य है। रागादि छोड़कर अन्तर स्वरूप में लीन (होकर) सम्यग्दर्शन पाने के योग्य है। इस जगत को करनेयोग्य हो तो यह करने का है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १०६

अथ जीवानां योऽसौ भेदः स कर्मकृत इति प्रकाशयति–

२२९) जीवहँ भेउ जि कम्मकिउ कम्मु वि जीउ ण होइ।
जेण विभिण्णउ होइ तहँ कालु लहेविणु कोइ।।१०६।।

जीवानां भेद एव कर्मकृतः कर्म अपि जीवो न भवति।
येन विभिन्नः भवति तेभ्यः कालं लब्ध्वा कमपि।।१०६।।

जीवहं इत्यादि। जीवहं जीवानां भेउ जि भेद एव कम्म–किउ निर्भेदशुद्धात्मविलक्षणेन कर्मणा कृतः, कम्मु वि जीउ ण होइ ज्ञानावरणादिकर्मैव विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावं जीवस्वरुपं न भवति। कस्मान्न भवतीति चेत्। जेण विभिण्णउ होइ तहं येन कारणेन विभिन्नो भवति तेभ्यः कर्मभ्यः। किं कृत्वा। कालु लहेविणु कोइ वीतरागपरमात्मानुभूतिसहकारिकारणभूतं कमपि कालं लब्ध्वेति। अयमत्र भावार्थः। टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकशुद्धजीवस्वभावाद्विलक्षणं मनोज्ञामनोज्ञस्त्रीपुरुषादिजीवभेदं दृष्ट्वा रागाधपध्यानं न कर्तव्यमिति।।१०६।।

आगे जीवों में जो भेद हैं, वह सब कर्मजनित हैं, ऐसा प्रगट करते हैं–

कर्म जनित हैं भेद सभी पर कर्म जीव नहिं हुआ कभी।
इसीलिए निज काल प्राप्त कर जीव पृथक् हो उनसे शीघ्र।।१०६।।

अन्वयार्थ :– [जीवानां] जीवों में [भेदः] नर–नारकादि भेद [कर्मकृत एव] कर्मों से ही किया गया है, और [कर्म अपि] कर्म भी [जीवः] जीव [न भवति] नहीं हो सकता। [येन] क्योंकि वह जीव [कमपि] किसी [कालं] समय को [लब्ध्वा] पाकर [तेभ्यः] उन कर्मों से [विभिन्नः] जुदा [भवति] हो जाता है।

भावार्थ :–कर्म शुद्धात्मा से जुदे हैं, शुद्धत्मा भेद–कल्पना से रहित है। ये शुभाशुभकर्म जीव का स्वरुप नहीं हैं, जीव का स्वरुप तो निर्मल ज्ञान दर्शन स्वभाव है। अनादि काल से यह जीव अपने स्वरुप को भूल रहा है, इसलिये रागादि अशुद्धोपयोग से कर्म को बाँधता है। सो कर्म का बंध अनादि काल का है। इस कर्मबंध से कोई एक जीव वीतराग परमात्मा की अनुभूति के सहकारी कारणरुप जो सम्यक्त्व की उत्पत्ति का समय उसको पाकर उन कर्मों से जुदा हो जाता है। कर्मों से छूटने का यही उपाय है, जो

जीव के भवस्थिति समीप (थोड़ी) रही हो, तभी सम्यक्त्व उत्पन्न होता है, और सम्यकत्व उत्पन्न हो जावे, तभी कर्म-कलंक से छूट जाता है। तात्पर्य यह है कि जो टंकोत्कीर्ण ज्ञायक एक शुद्ध स्वभाव उससे विलक्षण जो स्त्री, पुरुषादि शरीर के भेद उनको देखकर रागादि खोटे ध्यान नहीं करने चाहिये।।१०६।।

वीर संवत् २५०२, पौष शुक्ल ११, शुक्रवार
दिनांक-३१-१२-१९७६, गाथा - १०६, प्रवचन-१७३

परमात्मप्रकाश, गाथा १०६। गाथा बोल ली गयी है। **आगे जीवों में जो भेद हैं, वह सब कर्मजनित हैं, ऐसा प्रगट करते हैं—** क्या कहना चाहते हैं? अनन्त आत्मायें हैं जगत में, उनकी जो भेददशा शरीर की, वर्ण की, गन्ध की, गुणस्थान आदि, वह सब कर्म के निमित्त के संग से सब भेद है। वस्तुरूप से तो पूर्णानन्दस्वरूप है। प्रत्येक आत्मा पूर्ण वीतराग समभाव से भरपूर प्रभु है। उसका तात्पर्य यह सबका। सब श्लोक बहुत आये कि सबको एक जानो, समान जानो, पर्यायभेद है, उसे लक्ष्य में लो, परन्तु वह आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आश्रय तो अन्दर वस्तु जो चिदानन्द ध्रुवस्वरूप, वह परमात्मस्वरूप सब आत्मायें हैं, तो तेरा परमात्मस्वरूप है, वहाँ दृष्टि दे। यह कहने का तात्पर्य यह है। समझ में आया? आहाहा! एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में आत्मा पूर्ण आनन्द, पूर्ण गुणसम्पन्न, वह परमात्मस्वरूप ही है। ऐसे सब आत्मायें परमात्मस्वरूप हैं।

मुमुक्षु : तो जगत में परमात्मा बहुत हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : परमात्मा अनन्त हैं। उसके सामने तो यह बात है। एक ही आत्मा सर्वव्यापक शुद्ध परमात्मा है, ऐसा नहीं है। संग्रहनय से यह पहले आ गया है, प्रत्येक की सत्ता भगवान आत्मा की शुद्ध और परिपूर्ण परमात्मस्वरूप है। इस प्रकार सब आत्मा हैं, ऐसा जाननेवाला अपनी दृष्टि को त्रिकाली स्वभाव पर लगाता है। आहाहा! उसका सार तो यह है कि स्वचैतन्य वस्तु ज्ञायकभाव जो पर्याय में अव्यक्त है, प्रगट नहीं, वस्तु में व्यक्त है। आहाहा! ऐसा जो भगवान एक समय में प्रगट परमात्मस्वरूप

ही आत्मा है, उस पर इसे अन्तर्मुख दृष्टि करनी पड़ेगी, यदि इसे आत्मा का स्वीकार करना हो तो। समझ में आया? आहाहा!

यह आत्मा परमात्मस्वरूप ही विराजमान सब है।...क्या कहते हैं? **जीवों में जो भेद हैं,...** यह तो निमित्ताधीन के भेद हैं। कर्म के निमित्त के आधीन भेद हैं। इसलिए कर्मस्वरूप आत्मा में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु है, वह तो चिदानन्द भगवानस्वरूप परमात्मा सब समान हैं। जो भेद दिखते हैं, वे कर्म के निमित्त के संग से दिखते हैं। तथापि कर्म है, वह वस्तु में नहीं। इससे उसके संग से भेद हैं, वह भी वस्तु में नहीं। आहाहा! ऐसी बात, भाई! हें! आहाहा! नर, नारकादि भेद, १०६ गाथा।

अन्वयार्थ :— जीवों में नर-नारकादि भेद कर्मों से ही किया गया है... कर्मों से का अर्थ अपनी पर्याय में अपने से भेद है, परन्तु कर्म निमित्त हैं। समझ में आया? समझ में आता है? वस्तु तो अखण्डानन्द प्रभु है। परन्तु भेद दिखता है, वह परद्रव्य के संग से दिखता है, ऐसा कहते हैं। इसलिए कर्मजनित कहा गया है। पर के संग से हुआ है न! स्वसंग है, वह तो असंग चैतन्यमूर्ति है। आहाहा! यह बैठना, कैसे बैठे इसे? यह सब समान है, समान है—ऐसा कहकर इसे अन्तर स्वभाव में दृष्टि देना है। जहाँ भगवान परिपूर्ण परमात्मस्वरूप विराजमान आत्मा है। आहा! यह बाह्य की विविधताओं से लक्ष्य छुड़ाकर, अन्दर में पर्याय के भेद से भी विविधता है, उसका लक्ष्य छुड़ाकर एकरूप चैतन्य है, वहाँ दृष्टि कराने को यह बात की जाती है। और यह ऐसा है। आहाहा! कठिन काम है, लोगों को बाहर से दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, कर डाला है न। यह भेदवाली बात है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

अभेद चिदानन्द प्रभु आत्मा वह स्वभाव से सब आत्मायें समान हैं, ऐसा जिसे दृष्टि में आता है, उसकी दृष्टि त्रिकाली स्वभाव के स्वीकार में आती है। समझ में आया? ऐसा धर्म। क्या करना? करना यह, ऐसा कहते हैं। जहाँ परिपूर्ण परमात्मस्वरूप स्वयं विराजता है अन्दर। आहाहा! वह बाह्यदृष्टि, निमित्तदृष्टि, भेददृष्टि छोड़कर अभेद भगवान आत्मा चिदानन्द पूर्ण है, वहाँ दृष्टि दे, फिर उसमें स्थिर हो तो तुझे परमात्मपद प्राप्त होगा। समझ में आया? यह उसका उपाय है। आहाहा! क्या कहते हैं, देखो!

कर्मों से ही किया गया है, और कर्म भी जीव नहीं हो सकता। सिद्ध यह करना है। परद्रव्य के संग से भेद पड़े, वह परद्रव्य वस्तु में नहीं, इसलिए भेद भी वस्तु में नहीं। आहाहा! शैली तो देखो! समझ में आया? अरे! यह बात पूरी सब गुम हो गयी और यह करो और यह करो और यह करो। जो करना का जिसमें है नहीं, वह तो ज्ञाता-दृष्टा से भरपूर भगवान है। ज्ञान और दर्शन के स्वभाव से चैतन्यरूप प्रभु पूर्ण है। उसे पूर्णरूप से प्रतीति करके स्थिर होना, वह उसकी क्रिया है। इस अपूर्णदशा के विकल्प और जो अल्पदशा, वह तो आश्रय करनेयोग्य नहीं, ऐसा सिद्ध करने को सब आत्मा समान है। इसलिए समान है। तू पूर्णानन्द है वहाँ दृष्टि दे। डाह्याभाई! ऐसा है, भाई! मार्ग जैन वीतराग, वीतरागमार्ग बहुत अलौकिक है। अभी तो जैनधर्म के नाम से अजैन धर्म चलाया है। अरे रे! क्या हो, भाई! आहाहा!

अब कहते हैं, और यह कर्म भी जीव में नहीं। क्या कहते हैं? भगवान आत्मा एकस्वरूपी वस्तु है, सामान्य अभेद वीतरागमूर्ति प्रभुरूप से आत्मा तो है, परन्तु जो यह भेद दिखता है, वह परद्रव्य के संग से भेद दिखता है। अब परद्रव्य जब स्वरूप में नहीं तो संग का भेद है, वह भी स्वरूप में नहीं। आहाहा! पोपटभाई! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं। आहाहा! अरे! दुनिया में बेचारे हैरान... हैरान हो जाते हैं, देखो न! ओहो!

कर्म भी जीव नहीं हो सकता। क्योंकि वह जीव किसी समय को पाकर... आहाहा! काललब्धि जो सहकारी कारण को प्राप्त करके। समझ में आया? काललब्धि अर्थात् जिस समय में उसे वह प्राप्ति होने का काल है, उसमें काल है, वह निमित्त सहकारी कारण है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : सहकारी कारण तो बहुत हैं, काल को क्यों कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह निमित्त है, यहाँ काल है न! उसकी काल की प्राप्ति की पर्याय है, उसमें काल निमित्त है। प्रत्येक द्रव्य को उस-उस समय की पर्याय प्राप्ति का उसे काल है। समझ में आया? उसमें यह कालद्रव्य निमित्त है। यह द्रव्यसंग्रह में कहा है कि काललब्धि निमित्त है, परन्तु है हेय। उपादेय तो भगवान आत्मा का जो शुद्धस्वभाव है, उसे परिणति में उपादेय करना, वह स्वकाल अपना है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसी बातें बहुत सूक्ष्म है न, भाई ! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का कहा हुआ मार्ग बहुत सूक्ष्म, गूढ़ और मर्म (वाला है)। आहाहा !

कहते हैं कि वस्तु भगवान आत्मा प्रत्येक समान होने पर भी जो कुछ भेद दिखता है नारकी का, मनुष्य का, यह वर्ण का—ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि, यहाँ यह है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि जो वर्ण का यहाँ यह है, कल दोपहर में आया था, उसमें वर्ण, रंग, गन्ध, रस, स्पर्श आया था। वर्ण, राग आदि आया था न ? समझ में आया ? गुणस्थानादि भेद निर्जरा अधिकार में। यह वर्ण, रंग, गन्ध, रस, स्पर्श वहाँ था। वह भी इसमें नहीं। इसी प्रकार गुणस्थानभेद इसमें नहीं, तथा रागादि इसमें नहीं। ऐसी जो चीज़ भगवान सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा, जिसमें एक समय की पर्याय का भी जिसमें अभाव है। आहाहा ! यह समान समभाव स्वभावस्वरूप प्रभु, इस प्रकार सब आत्मा समान होने पर भी भेद क्यों दिखता है ? कि परद्रव्य के संग से भेद दिखता है। वह भेद स्वद्रव्य के संग से तोड़ा जा सकता है। समझ में आया ? आहाहा ! सूक्ष्म, बहुत सूक्ष्म। आहाहा ! देखो !

काल **समय को पाकर...** ऐसा लिया न ? '**कालं लब्धवा**' है ? पाठ में है न यह तो। '**कालु लहेविणु कोइ।**' काल को पाकर। जिस समय उसे सम्यग्दर्शन आदि प्राप्त करने का काल है, ऐसे काल को पाकर। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! **उन कर्मों से जुदा हो जाता है।** क्योंकि परद्रव्य है, वह स्वद्रव्य में नहीं, कर्म और परद्रव्य के संग से भेद है, इसलिए कर्म पृथक् पड़ सकते हैं, परद्रव्य है इसलिए। इसलिए वे भेद भी भिन्न पड़ सकते हैं, नाश हो सकते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा मार्ग, इसलिए लोगों को ऐसा लगता है।

मुमुक्षु : धर्म कैसे करना, यह आप कहते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या करने का आता नहीं यह ? इसके लिये तो कहा जाता है कि वस्तु परिपूर्ण है, वहाँ दृष्टि करनी है। यह धर्म। आहाहा ! बात-बात में सार, इस शास्त्र का सार वीतरागता है। तो वीतरागता प्रगट कैसे हो ? कि स्वद्रव्य के आश्रय से। आहाहा ! पूरा झुकाव स्वद्रव्य के आश्रय की पूरी बात है। 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो।' छहढाला में है न ? 'छोडी जगत द्वंद्व फंद निज आतम उर ध्यावो।' वस्तु यह कहना चाहते हैं। आहाहा !

भगवान जहाँ परिपूर्ण तेरा तत्त्व पड़ा है न अन्दर। एक पर्याय की वर्तमान दशा के व्यक्त पर्याय के पीछे, पर्याय की अपेक्षा से उसे अव्यक्त कहते हैं परन्तु वस्तु की अपेक्षा से प्रगट व्यक्त आनन्द का सागर अस्तिरूप से विराजता है। आहाहा! अरे! समझ में आया? अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय समकित—श्रद्धा त्रिकाली, अतीन्द्रिय वीर्य, अतीन्द्रिय स्वच्छता, पवित्रता आदि से भरपूर भगवान परिपूर्ण स्वरूप, समभावस्वरूप से विराजमान है। आहाहा! समझ में आया? उसके ऊपर दृष्टि देने के लिये सब जीव समान हैं, ऐसा कहकर भेद की दृष्टि छुड़ाई और अपनी भेद की दृष्टि है, वह कर्म के संग से (हुई है), इसलिए कर्म का संग छूट सकता है। परद्रव्य है, ऐसा कहते हैं। स्वसंग के आश्रय में परद्रव्य का संग छूट सकता है। आहाहा! ऐसा कठिन लगे लोगों को, इसलिए रास्ता ऐसा कर दिया दूसरा। मूल मार्ग रह गया। आहाहा!

समय को पाकर उन कर्मों से जुदा हो जाता है। परद्रव्य है। वस्तु स्वरूप वह परद्रव्य नहीं। पर कर्म है, वह परद्रव्य है। वस्तु है, वह स्वद्रव्य है। और परद्रव्य के संग से भेद दिखता है तो जब परद्रव्य छूट जाता है और स्वद्रव्य का आश्रय लेता है, तब भेद भी छूट जाता है। आहाहा! कहो, सेठ! ऐसी बातें हैं। कभी सुनी नहीं इतने वर्षों में। आहाहा! ऐसा मार्ग प्रभु! तेरा, क्या कहे? आहाहा! समभाव—वीतरागभाव का समुद्र प्रभु है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र, अतीन्द्रिय वीतराग समभाव का समुद्र। आहाहा! अतीन्द्रियज्ञान का समुद्र। जो गुण से लो तो वह समुद्र प्रभु है। आहाहा! ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है और ऐसे ही सब आत्मायें हैं। आहाहा! इससे जब ऐसे स्वभाव से परिपूर्ण प्रभु सब आत्मा है तो तुझे अब कहाँ देखना है? कर्म के संग से भेद दिखते हैं, उस कर्म का स्वभाव में तो अभाव है और कर्म का परद्रव्य है तो परद्रव्य के संग से भेद सबका अभाव हो सकता है। आहाहा! बात, यह बात!

स्वद्रव्य का आश्रय लेने में परद्रव्य के संग से भेद दिखाई दें, उस परद्रव्य का अभाव है; इसलिए परद्रव्य के संग से (हुआ) भेद भी छूट जाता है। आहाहा! कठिन बातें ऐसी। वह तो ऐसा सीधा था, दया पालो, व्रत पालो, अपवास करो। वे कहें, मन्दिर बनाओ और भक्ति करो और यात्रा करो। सीधी बात थी, लो! वह सब उल्टा था, इसने

सरल माना था। कहा है न आगमपद्धति? परमार्थ वचनिका में आगमपद्धति सरल है, इसे शुभक्रिया। वह पद्धति सरल है, इसलिए माना। परन्तु अध्यात्म का व्यवहार भी जानता नहीं। आहाहा! अध्यात्म का व्यवहार तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है। आहाहा! वह अध्यात्म का व्यवहार है। रागादि, वह अध्यात्म का व्यवहार है। वह तो पर आगमपद्धति का व्यवहार छोड़नेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? अध्यात्म सन्देश का व्याख्यान आया है न, वह लोगों को उल्टा लगा है, इन पण्डितों को कि यह एकान्त है, एकान्त है। उन्हें खबर भी नहीं कि यह परमार्थ वचनिका किसकी है और क्या है। आहाहा! क्या हो?

यहाँ परमात्मा मुनि द्वारा परमात्मा ही कहते हैं। आहाहा! भगवान! जब तू परिपूर्ण ज्ञायकस्वभाव और आनन्द से भरपूर चीज़ ही अस्ति है, ऐसी सत्ता तेरी है और इस प्रकार से सत्ता सब आत्माओं की है तो कर्म के संग से भेद दिखता है तो कर्म तेरी चीज़ नहीं, कर्म तेरा स्वरूप नहीं, कर्म में तू नहीं, कर्म तुझमें नहीं। आहाहा! इसलिए वस्तु के स्वभाव की परिपूर्णता का आश्रय लेकर कर्म और भेद सब छूट जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। '**कालु लहेविणु**' ऐसा शब्द है। काल प्राप्त करके। काललब्धि का अर्थ यह है। मूल तो पुरुषार्थ से स्वभावसन्मुख जाता है तब उस काल में वह भाव पकता है, उसे काललब्धि कहा जाता है। मोक्षमार्गप्रकाशक में ऐसा लिया है न? काललब्धि और भवितव्यता कोई अलग वस्तु नहीं है। जिस काल में जो कार्य हो उसका नाम काललब्धि। और जिस काल में जो भाव हो, वह उसकी भवितव्यता। आहाहा! और वह तब होता है कि जो कारण जिनेश्वर ने कहे हैं, उस कारण को अंगीकार करे तो कार्य होता, होता और होता ही है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह काललब्धि आ गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह काललब्धि तब होती है। तेरा स्वभाव भगवान ने ऐसा कहा, भगवान ने ऐसा कहा कि तू परिपूर्ण स्वरूप है, उसकी दृष्टि—सम्यग्दर्शन कर, उसका ज्ञान कर और उसमें रमणता, वह कारण कर, तो वह कारण जिसने किये, उसे काललब्धि-भवितव्यता हो गयी और कर्म का उपशम है, इसलिए वह पुरुषार्थ अन्दर

में करता है। आहाहा! यह बड़ी चर्चा तो पहले से चली है हमारे। (संवत्) १९७६ के वर्ष से। वास्तविक चर्चा १९८३ से हुई। क्योंकि यह पुस्तक बाहर (संवत्) १९८२ में हाथ आयी, मोक्षमार्गप्रकाशक। इसलिए १९८३ में बड़ी चर्चा हुई। दामोदर सेठ को एक ऐसा कहे कि काललब्धि और यह है, इसके बिना नहीं होता। कहा, परन्तु काललब्धि है, वह क्या चीज़ है? मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी ऐसा कहते हैं, काललब्धि कोई वस्तु नहीं। जिस काल में कार्य हो, वह काललब्धि। तब वह कहे कि टोडरमल केवली हो गया? ऐसा उसने कहा। सब चर्चा (हो गयी है)। यह तो (संवत्) १९८३ के वर्ष। १७+३३=५०। पचास वर्ष हुए, लो। अर्ध सैकड़ा। बड़ी चर्चा की थी। हमारे तो पहले से यह सब चलता है न, सम्प्रदाय में से। काललब्धि जब होने का होगा, तब होगा। होने का होगा तब होगा, यह बराबर परन्तु कब? यह स्वभाव की दृष्टि करे तब। तब होनेवाला होगा, तब वह होगा, ऐसा निर्णय इसे तब होता है। समझ में आया? आहाहा! परन्तु ऐसी किसे अन्दर में पड़ी हो? आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, देखो! **'कालु लहेविणु' कर्मों से जुदा हो जाता है।** क्योंकि कर्म भिन्न चीज़ है, और दूसरी वस्तु है, तो भिन्न हो सकती है। भिन्न है, वह भिन्न हो जायेगी। आहाहा! और स्वभाव की अभिन्नता में पूर्णता है, वह रह जायेगी। आहाहा! समझ में आया? ऐसी सूक्ष्म बात है, इसलिए लोगों को (कठिन लगती है)। निवृत्ति नहीं मिलती एक तो संसार के पाप के कारण पूरे दिन। ओहो! कमाना, स्त्री, पुत्र, पाप में पड़ा है पूरे दिन, बीस घण्टे, बाईस घण्टे। एकाध घण्टा मिले, वहाँ सुनने जाये, उसमें सब गप्प गोला सुने वापस। सत्य तत्त्व क्या है, यह तो सुनने को मिलता नहीं बेचारे को। आहाहा! भले वह पाँच-पचास लाख पैदा करता हो और धूल करता हो, स्त्री, पुत्र, उसमें क्या, परन्तु वह तो सब पाप ही है।

मुमुक्षु : दान करे तो धर्म हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : दान, धूल में भी दान किसका दान? गाय मारकर कुत्ते को दूध पिलाने जैसा है यह। इसी प्रकार पाप करके दान करे। इष्टोपदेश में ऐसा है, इष्टोपदेश में। पाप करके फिर दान (दे)। किसका दान तेरा? और दान में हो तो राग की मन्दता

हो तो शुभभाव है, वह कोई धर्म नहीं। पाँच-दस लाख, बीस लाख दिये हों तूने पूरे। करोड़, पाँच करोड़ दे दिये हों तो भी वह धर्म नहीं। राग की मन्दता रखी हो, दिखाने के लिये नहीं, जगत में प्रसिद्धि के लिये नहीं। दुनिया मुझे दानी गिने, ऐसे भाव से न हो। आहाहा! यह सब शर्तें हैं। तब उसे शुभभाव हो, वह पुण्य है, वह बन्धन है। आहाहा!

मुमुक्षु : रुपया देकर बन्धन?

पूज्य गुरुदेवश्री : रुपया कहाँ इसके बाप के थे? इसके थे ही कब? वे तो जड़ के हैं। इसके बाप के नहीं थे, इसके थे? जादवजीभाई! किसके रुपये हैं? वे तो जड़ के हैं, वह तो अजीव है, पुद्गल है, वह तो मिट्टी है। मिट्टी के रुपये, वे तेरे हो गये? आहाहा! यहाँ तो वहाँ तक कहते हैं कि भेद भी तेरी चीज़ में नहीं। भेद भी कर्म के संग से उत्पन्न हुआ है, इसलिए वह भेद छोड़नेयोग्य है। आहाहा! भावार्थ। यह तो अध्यात्म शास्त्र है, भाई! पूर्णानन्द परमात्मा के श्रीमुख से निकली हुई वाणी की यह सब ध्वनि है। ओहोहो!

भावार्थ :— कर्म शुद्धात्मा से जुदे हैं,... कर्म वस्तु है। भगवान है आत्मा, वैसे कर्म भी वस्तु है। परन्तु वह कर्म आत्मा से भिन्न चीज़ है, भिन्न है। इसकी नहीं, इसमें नहीं। आहाहा! **शुद्धात्मा भेद-कल्पना से रहित है।** देखो! भगवान आत्मा...! कर्म भिन्न है और कर्म के भिन्न से जो भेद दिखते हैं, शुद्धात्मा उससे भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहते हैं कि कर्म शुद्धात्मा से भिन्न है, पृथक् हैं। तब कर्म के संग से भेद दिखते हैं वे? वे **शुद्धात्मा भेद-कल्पना से रहित है।** आहाहा! आहाहा! चैतन्य चिन्तामणि रत्न भगवान परमात्मा तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव का कथन कैसा होता है? भाई! आहाहा! वह कोई साधारण व्यक्ति नहीं, वह भगवान पूर्णानन्द प्रभु है। आहाहा! उनकी वाणी में... यह सन्त तो आड़तियारूप से माल देते हैं, परन्तु माल तो भगवान के घर का है। आहाहा! समझ में आया?

कर्म शुद्धात्मा से जुदे हैं,... आहाहा! **शुद्धात्मा भेद-कल्पना से रहित है।** ... जो सम्यग्दर्शन का विषय, जो सम्यग्दर्शन उसका आश्रय ले, ऐसा जो भगवान, वह शुद्धात्मा तो भेद कल्पना से रहित है। क्योंकि कर्म रहित है, कर्म से पृथक् है और कर्म पृथक् हैं

तो पृथक् के निमित्त के संग से भेद है, वह शुद्धात्मा से भिन्न है। जैसे कर्म भिन्न हैं, वैसे उसके निमित्त से भेद हुआ, वह शुद्धात्मा से भेद भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? **वे शुभाशुभकर्म जीव का स्वरूप नहीं है,...** शुभाशुभकर्म के निमित्त से पड़ी हुई गति स्वर्गादि, नरकादि वह सब जीव का स्वरूप नहीं। आहाहा! **जीव का स्वरूप तो निर्मल ज्ञान-दर्शन स्वभाव है।** आहाहा! अकेला ज्ञान—जानना और देखना। ऐसा ज्ञाता-दृष्टा के स्वभाववाला भगवान तो है। वह पर्याय जितना भी नहीं, तो भेद है, वह भी निमित्त के आश्रय से है, वह भेद उसमें नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! संसारी और सिद्ध भी निमित्त के भेद से भेद है, वस्तु में है नहीं। आहाहा!

जीव का स्वरूप तो निर्मल ज्ञान-दर्शन स्वभाव है। स्वभाव है। उसका तो स्वभाव ही जानना-देखना ऐसा त्रिकाल स्वभाव ही भगवान है। आहाहा! सब आत्मायें भगवान देह में जानने-देखने के स्वभावस्वरूप प्रभु है। आहाहा! किसी का करना या किसी से लेना, वह उसका स्वरूप नहीं है। आहाहा! **अनादि काल से यह जीव अपने स्वरूप को भूल रहा है,...** देखो! ज्ञान-दर्शन स्वरूप से विराजमान प्रभु को अनादि काल से अज्ञानी 'अपने को आप भूलकर हैरान हो गया', अपनी चीज़ को अनादि से भूला है। आहाहा! देखो, वापस भूल अपनी कही। वह कर्म निमित्त से कहा था, परन्तु भूल तो अपनी है। समझ में आया? आहाहा!

अनादि काल से यह जीव... अपना ज्ञान-दर्शनस्वभाव स्वरूप होने पर भी **भूल रहा है,...** आहाहा! ज्ञान-दर्शनस्वभाव, ऐसा न जानकर उसे रागवाला और अल्पज्ञ और पर के संगवाला (मानकर) वह अनादि काल से इस प्रकार भूल गया है। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए रागादि अशुद्धोपयोग से कर्म को बाँधता है।** आहाहा! अपना ज्ञान-दर्शन, ज्ञातास्वभाव, दृष्टास्वभाव को भूलकर **रागादि अशुद्धोपयोग से कर्म को बाँधता है।** आहाहा! अशुद्धोपयोग शब्द से शुभ और अशुभ राग दोनों अशुद्धोपयोग है। दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, वह शुभरागरूपी अशुद्ध उपयोग है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयवासना वह, अशुभरागरूप अशुद्धोपयोग है। दोनों अशुद्धोपयोग है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! भगवान की वाणी आती होगी, वीतराग की साक्षात्! आहाहा! हें! ओहो! कितने न्याय लेकर वाणी आवे, आहाहा! गम्भीर-गम्भीर वस्तु।

कहते हैं, भगवान! एक बार सुन। तू यह स्त्री और पुरुष, आदमी और नारकी और तिर्यंच और यह सब भूल जा। यह तो कर्म के संग से उत्पन्न हुए सब भाव, स्वभाव के संग से उत्पन्न हुए ये भाव नहीं हैं। आहाहा! भूल गया है। ज्ञान, दर्शन, निर्मल ज्ञान, दर्शन, ऐसे स्वभाव से भरपूर भगवान, वह आत्मा, उसे अनादि से भूल रहा है। उसे अनादि से भूला है; इसलिए क्या हुआ? रागादि अशुद्धोपयोग उत्पन्न हुआ। शुद्धोपयोगस्वरूप त्रिकाल है, उसे भूल गया, तब रागादि अशुद्धोपयोग उत्पन्न हुआ। आहाहा! समझ में आया? रागादि अशुद्धोपयोग से उपयोग उत्पन्न हुआ, उससे कर्म बाँधे, उससे कर्म बाँधता है। आहाहा!

सो कर्म का बन्ध अनादि काल का है। आहाहा! इस प्रकार अशुद्धोपयोग भी अनादि का और उसका निमित्त बन्धन, वह भी अनादि का है। आहाहा! तथा शुद्धोपयोगस्वरूप त्रिकाली भी अनादि का है ऐसा का ऐसा। आहाहा! समझ में आया? उसे भूला न? है, उसे भूला न? आहाहा! ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसा त्रिकाली स्वभाव भगवान निर्मलानन्द आत्मा का है। उसे भूला तब... भूला अर्थात्? है, उसे भूला और नहीं, उसे अपना माना। आहाहा! समझ में आया? इसलिए यह बात लोगों को ऐसी लगती है कि यह सोनगढ़ की बात है। ऐसा कि भगवान ने कहाँ (कहा है)? यह तो सोनगढ़ एकान्त मानता है। यह किसकी बात है? आहाहा!

मुमुक्षु : सोनगढ़ में ही ऐसा कथन होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कथन होता है परन्तु, परन्तु है या नहीं अन्दर? तुम उद्घाटन कहते थे न? तो है, उसका उद्घाटन (होता है)। आहाहा! यह तो सर्वज्ञभगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा की यह वाणी है। उसका तो यह स्पष्टीकरण होता है, तो स्पष्टीकरण होता है, इसलिए जहर डाला अन्दर (-ऐसा अज्ञानी कहते हैं)। अरे... प्रभु! आहाहा! यह तो इसका स्पष्टीकरण होता है।

प्रभु! तू एकरूप है न त्रिकाल ज्ञान, दर्शन और आनन्द। उसे चीज़ कहा जाता है। उस चीज़ में यह भेद क्यों दिखता है? कि परद्रव्य के संग से दिखता है और परद्रव्य तो तुझमें है नहीं। इसलिए उससे भिन्न हो सकता है, भिन्न हो सकता है तो भेद से भी भिन्न

पड़ सकता है। आहाहा! समझ में आया? न्याय से तो इसे देखना पड़ेगा। आहाहा! गाथा बहुत (ऊँची)। एक के बाद एक गाथा उत्कृष्ट आती है। गजब बात है परमात्मप्रकाश! समयसार, परमात्मप्रकाश गजब बात है!! समयसार का तो यहाँ प्रकाशित होता है, सोनगढ़ में प्रकाशित, उसमें भी समयसार नाम दिया है। जिनसन्देश, जिनसन्देश यहाँ छपता है। आया था न? परसों बताया था। नहीं? भाई लिखते हैं। जैन में एक समयसार। फिर और उसे उपनिषद में ले गये कि उपनिषद में भी ऐसा है (उपनिषद में कहाँ है?)। कोई लिखता है, नहीं? जिनसन्देश। जैनसन्देश तो अपना कैलाशचन्द्रजी का, यह जिनसन्देश यहाँ सोनगढ़ में प्रकाशित होता है। उसमें डाला है कि जैन में पुस्तक हो तो एक समयसार। ऐसा आया। बताया था न परसों, नहीं? आहाहा!

समयसार अर्थात् भगवान आत्मा। समय अर्थात् आत्मा, उसका सार अर्थात् कर्म और राग-द्वेष और भेद से रहित, वह समयसार। समझ में आया? आहाहा! अरे! ऐसा मनुष्यपना मिला, भाई! यह भव के अभाव का अवसर है। उसमें यह चीज़ नहीं समझे तो कब करेगा भाई? दुनिया की इज्जत और मान में फँस जायेगा। क्रियाकाण्ड करे और लोग माने, ओहो! गजब धर्म। इससे कहीं वहाँ धर्म नहीं होगा। समझ में आया?

सो कर्म का बन्ध अनादि काल का है। इस प्रकार कर्म का बन्ध भी अनादि का है। आहाहा! अशुद्धोपयोग भी अनादि का है, शुद्ध ज्ञान-दर्शन का स्वभाव भी अनादि का है और अशुद्धोपयोग से कर्म का बन्धन भी अनादि का है। ऐसे तीनों आये। समझ में आया? **इस कर्मबन्ध से कोई एक जीव...** यह कर्मबन्ध है न? भगवान तो अबन्धस्वरूप है। आहाहा! **'जो पस्सदि अप्पाणं'** आया न? १४-१५ गाथा (समयसार)। अबद्ध, अबद्धस्पृष्ट है प्रभु तो। ज्ञाता-दृष्टा है, इसका अर्थ ही कि अबद्धस्पृष्ट है। राग से बँधा हुआ नहीं, राग को छुआ-स्पर्शा भी नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : मात्र जाननेवाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मात्र जाननेवाला, देखनेवाला। आहाहा!

इस कर्मबन्ध से कोई एक जीव... कोई एक जीव ऐसा। **वीतराग परमात्मा की अनुभूति के...** वीतराग परमात्मा अपना स्वभाव, उसकी अनुभूति। स्वभाव की परिपूर्णता

में दृष्टि जाने पर वीतराग परमात्मा की पर्याय में अनुभूति प्रगट होती है। आहाहा! उसके **सहकारी कारणरूप जो सम्यक्त्व की उत्पत्ति का समय...** ऐसा। आहाहा! वीतराग परमात्मा की अनुभूति, वह तो अपनी अपने से ही हुई है, ऐसा कहते हैं। वस्तु वीतरागस्वरूप है, उसकी वीतरागी अनुभूति अपने से हुई है। उसका नाम सम्यग्दर्शन, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है? **सम्यक्त्व की उत्पत्ति का समय...** आहाहा! **कोई एक जीव वीतराग परमात्मा की अनुभूति के सहकारी...** निमित्त **कारणरूप जो सम्यक्त्व की उत्पत्ति का समय...**

.... अल्पज्ञ की क्रीड़ा में रमा है अनादि से। आहा! 'राग की रमतुं मेल, (छोड़) कटक आव्युं किनारे।' वह आता है न? राणपुर का। 'राणा रमतुं मेल कटक आव्युं किनारे', आत्मा राग की क्रीड़ा छोड़ अब, काल आया नजदीक। आहाहा! स्वभाव की प्राप्ति के लिये काल नजदीक है प्रभु तुझे, ऐसा कहते हैं। इसमें सूझ पड़े नहीं, सूझ-सूझ। इसलिए बेचारा सर्वत्र दूसरा करके... यह एकान्त है, एकान्त है।

मुमुक्षु : जैन में गाली देने की रीति....

पूज्य गुरुदेवश्री : बापू! ऐसा नहीं होता, भाई! आहाहा! भगवान! यह तो सत्य है, प्रभु! इसे गाली नहीं दी जाती। भाई! माता को स्त्री नहीं कहा जाता, इसी प्रकार सत् को असत्य नहीं कहा जाता, भाई! आहाहा! इसका चमत्कार तुझे भासित न हो; इसलिए एकान्त है, ऐसा कहकर गाली देता है। भगवान... भगवान! आहाहा!

कर्मबन्ध से कोई एक जीव वीतराग परमात्मा की अनुभूति... देखो! छूटने का यह एक उपाय। कर्म से छूटने का, राग से छूटने का उपाय यह—वीतराग परमात्मा की अनुभूति। आहाहा! आत्मा वीतराग और परमात्मा है, उसकी अनुभूति। वह पर्याय हुई। आहाहा! आत्मा वीतराग परमात्मा ही है। आहाहा! उसकी अनुभूति, इसका अनुभव होना, वह पर्याय है। आहाहा! ओहोहो! अकेले न्याय भरे हैं। आहाहा! प्रभु! इसमें अभिमान किसका? इसमें उघाड़ का अभिमान और राग का (अभिमान कि) हम राग करते हैं। बापू! वह वस्तु नहीं है।

जब आत्मा परिपूर्ण स्वभाव से सब भगवान हैं, ऐसा जिसे जानने में आया, उसे

परिपूर्ण स्वभाव का आश्रय लेकर, वीतराग परमात्मा का आश्रय लेकर, क्योंकि वीतराग परमात्मा परिपूर्ण स्वयं है, ऐसे सब भगवान वीतराग परिपूर्ण आत्मा है। आहाहा! तो अपने निज वीतराग परमात्मा की अनुभूति लेकर... आहाहा! उसका आश्रय करके जो अनुभूति सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण जो काल, तब अनुभूति हुई, तब काल को सहकारी कहने में आता है। आहाहा!

उसको पाकर उन कर्मों से जुदा हो जाता है। आहाहा! समकित की उत्पत्ति का काल, वह सहकारी निमित्त है और उपादान वीतराग परमात्मा का स्वभाव, उसकी अनुभूति, वह उपादानकारण है। आहाहा! मूलकारण है। आहाहा! उससे **कर्मों से जुदा हो जाता है। कर्मों से छूटने का यही उपाय है,...** आहाहा! है ? वीतराग परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा... सारांश लिया यह सब। सबको समान जानने का सरांश क्या ? कि स्वयं वीतराग परमात्मस्वरूप विराजमान है, उसकी अनुभूति करना। आहाहा! उसका आश्रय लेना। पर का आश्रय छोड़ना। आहाहा! निमित्त का, राग का और अल्पज्ञता का आश्रय छोड़ना। छोड़ना, यह नास्ति से कथन है, वह छूट जाता है। कब ? कि वीतराग परमात्मा की अनुभूति करने से अल्पज्ञ का, राग का और निमित्त का (आश्रय) छूट जाता है। आहाहा! क्या शैली वीतराग की! ऐसी बात, बापू! कहीं एक अक्षर सच्चा नहीं। जिनवरदेव त्रिलोकनाथ, उसमें भी यह दिगम्बर धर्म। आहाहा! ईश्वरचन्दजी! आहाहा! ऐसी यह शैली देखो तो सही! आहा! हें! मीठी मधुर दशा जिसकी है, कहते हैं। आहाहा!

भगवान! तू वीतराग परमात्मस्वरूप है न! उसके आश्रय से तो वीतराग अनुभूति परिणति प्रगट होती है। आहाहा! अरे भाई! तेरे ज्ञान में बात धार तो सही कि यह वस्तु तो यह है। समझ में आया ? लाख दूसरी बातें होती हों, आहाहा! वस्तु है, वह तो परिपूर्ण वीतराग परमात्मस्वरूप ही है। अब जो कर्म है, वे परद्रव्य हैं, उनके संग से यह सब भेद दिखता है। संग तूने किया। संग एव आता है न ? संग से नहीं, संग एव, तूने संग किया। श्लोक आता है न ? कौन सी गाथा वह ? निमित्त परसंग एव। स्फटिकमणि का दृष्टान्त। आहाहा! भाई थे न यहाँ, बंसीधरजी इन्दौरवाले। उन्होंने कहा, बात बहुत अच्छी। परसंग एव। पर से नहीं परन्तु पर का संग किया इसलिए। तब यहाँ थे, उन्होंने

स्वीकार किया था। बात तो... आहाहा! परन्तु वापस बाहर जाये वहाँ बदल जाये। अरर! गंगा किनारे गंगाराम हो जाये, जमुना किनारे जमुनाराम। आहाहा!

कहते हैं, आत्मा स्वयं वीतराग परमात्मस्वरूप ही विराजमान है। उसका स्वभाव ही वीतराग परमात्मस्वरूप है। अरे! यह बात कैसे बैठे? पामर को जरा दया का राग करे, हिंसा में द्वेष करे, उसमें ही उसे मजा आता है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा वीतराग परमात्मस्वरूप है, (ऐसा) परमात्मा फरमाते हैं। तेरा स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा! अभी, हों! ऐसे वीतराग परमात्मस्वरूप का जहाँ आश्रय लिया; है, उसे स्वीकार किया; है, उसका स्वीकार किया; है, उसका सत्कार किया। आहाहा! तब उसे वीतराग परमात्मा की अनुभूति प्रगट हुई। उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग भगवान का है, भाई! आहा!

कर्मों से छूटने का यही उपाय है,... आहाहा! वीतराग परमात्मस्वरूप ही प्रभु आत्मा का स्वभाव है। उसका आश्रय लेकर अनुभूति हो, वीतरागीदशा हो, सम्यग्दर्शन के काल में अनुभूति हो, वह कर्म को छोड़ने का उपाय है। आहाहा! यह उपवास किये और पच्चीस अपवास किये और पचास अपवास किये तो निर्जरा (हुई)। धूल में भी निर्जरा नहीं, सुन न! वह तो विकल्प है। आहाहा! भाई! तेरी चीज़ की महत्ता तुझे आयी नहीं। आहाहा! पामरता में टूट गया तू। तेरी प्रभुता अन्दर पड़ी है पूरी। आहाहा!

सर्वज्ञ जिनवरदेव फरमाते हैं, प्रभु! तेरी वीतराग परमात्मस्वरूप, वह तेरी शक्ति और तेरा तत्त्व है। आहाहा! ऐसे तत्त्व को परद्रव्य का तूने संग करने से जो भेद पड़े हैं गति आदि के भाव, वह सब तेरा स्वरूप नहीं है। आहाहा! भगवान! तू वीतराग परमात्मस्वरूप है न! आहाहा! उसका आश्रय लेकर अनुभूति सम्यग्दर्शन के काल में हो। आहाहा! वह आनन्द की दशा प्रगट हो, वीतरागी सम्यग्दर्शन पर्याय प्रगट हो, वह कर्म को छोड़ने का उपाय है। कहो, समझ में आया? यह तो समझ में आये ऐसी बात है। भाषा तो सादी है, भाई! भाव तो है, वह है। आहाहा!

कर्मों से छूटने का यही उपाय है, जो जीव के भवस्थिति समीप (थोड़ी) रही हो,... यह काल की बात करते हैं जरा। '**कालु लहेविणु**' है न? जिसे अब भव थोड़े रहे

हों, भवस्थिति अल्प रही। आहाहा! परन्तु वह 'भवस्थिति आदि नाम लई, छेदो नहीं आत्मार्थ' श्रीमद् में आता है न! यहाँ तो एक समझाते हैं इसे। अनन्त-अनन्त भव में अब भवस्थिति जिसे थोड़ी रही। आहाहा! जिसके स्वभाव के पुरुषार्थ के समक्ष भवस्थिति थोड़ी रही है अब। आहाहा! जिसे वीतराग परमात्मा के स्वभाव की अनुभूति के समक्ष... आहाहा! भव के अभाव की स्थिति जहाँ प्रगट हुई है अन्दर, उसे अब भव थोड़े रहे हैं। समझ में आया? आहाहा!

भवस्थिति समीप (थोड़ी) रही हो, तभी सम्यक्त्व उत्पन्न होता है,... यह निमित्त से सहकारीकारण का कथन है। आहाहा! **और सम्यक्त्व उत्पन्न हो जाये,...** आहाहा! वीतराग परमात्मस्वरूपी विराजमान भगवान आत्मा है, उसकी सम्यक् प्रतीति और अनुभूति उत्पन्न हो जाये, स्वयं करे ऐसा। **सभी कर्म-कलंक से छूट जाता है।** आहाहा! सब कर्म-कलंक से छूट जाता है। आहाहा! इसका उपाय यह एक है। एक समय की वर्तमान पर्याय है, उसके पीछे पूरा तत्त्व वीतरागी परमात्मस्वरूप आत्मा है। उसका जिसने आश्रय लेकर अनुभूति करके सम्यक्त्व प्रगट किया, वह कर्म को छोड़ने का यह एक ही उपाय है, दूसरा कोई उपाय है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, पौष शुक्ल १२, शनिवार
दिनांक-०१-०१-१९७७, गाथा - १०६, १०७, प्रवचन-१७४

परमात्मप्रकाश, १०६ गाथा पूरी हुई। १०७, आगे ऐसा कहते हैं....

मुमुक्षु : दो लाईन बाकी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हो गया पूरा। यह हो गया, सब आ गये। टंकोत्कीर्ण आ गया था। यह तो उसमें आ गया।

वह तो यह कहना है, जितने कर्मजनित भेद हैं, वे जीवस्वरूप नहीं। प्रत्येक जीव का स्वरूप पूर्ण आनन्द और द्रव्यस्वभाव से वीतरागस्वरूप प्रत्येक आत्मा है। अपने को जब पर से, भेद से, पर से, राग से भिन्न जानता है, वह आत्मा, ऐसे ही सब आत्मा हैं, ऐसा जानने से भेद के प्रति लक्ष्य से राग-द्वेष हों, वे इसे नहीं होते। क्या कहा? कि यह आत्मा... यह १६वीं गाथा है। सोलहवान सोने के दृष्टान्त से। प्रत्येक जीव पूर्णानन्द है, एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय, नारकी से लेकर देव सब जीव जो है, जिसे जीव कहते हैं, वह तो अनाकुल आनन्दकन्द वीतरागसमूह का पिण्ड है। ऐसे ही सब जीव हैं। आहाहा! ऐसा जिसे अपना स्वभाव शुद्ध अखण्ड अभेद वह आत्मा—ऐसा जिसने जाना, उसने अपने में भी जो पर्यायभेद है, वह जाननेयोग्य रहे, आदरनेयोग्य नहीं रहा। इसी प्रकार दूसरे जीव को भी इस प्रकार से पूर्ण शुद्ध है, ऐसा जानने से, उसे भेदवाली दशा से उसे यह ठीक है या अठीक है ज्ञेयभेद, उसके कारण से उसे राग-द्वेष नहीं होता। निर्बलता के कारण से राग-द्वेष हो, वह अलग बात है। परन्तु भेद—यह स्त्री का शरीर और यह पुरुष का शरीर और यह मनुष्य का शरीर और यह नारकी का शरीर, ऐसे जो भेद से उसे प्रेम से जो राग-द्वेष होता था, वह राग-द्वेष ज्ञानी को अपने पूर्ण स्वभाव को देखने से और दूसरे सभी आत्मा भी पूर्ण हैं, ऐसा जानने से, उसके भेद के लक्ष्य से जो राग-द्वेष होते थे, वे राग-द्वेष उसे नहीं होते। समझ में आया?

मुमुक्षु : आप तो ऐसा कहते हो कि स्वरूप में लीन हो, तब ही राग-द्वेष नहीं होते।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वरूप में लीन न हो तो उसे पर के कारण राग-द्वेष नहीं है। राग-द्वेष निर्बलता के कारण हों, वह अलग चीज है और पर की अनुकूलता और प्रतिकूलता, सुन्दरता और असुन्दरता, ठीक और अठीक, ऐसे ज्ञेय को जानकर राग-द्वेष हों, वह मिथ्या राग-द्वेष है। समझ में आया? आहाहा! स्त्री के शरीर, पुरुष के शरीर, नारकी का शरीर, देव का शरीर, वह सब भिन्न-भिन्न चीज़ जड़ की है वह तो, वह कहीं आत्मा नहीं। आहाहा!

जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप वीतरागमूर्ति प्रभु मैं हूँ—ऐसे ही सब भगवानस्वरूप वे जीव विराजते हैं। आहाहा! वे मेरे साधर्मी हैं। डाह्याभाई! आहाहा! भेद है, वह अपने को जैसे जाननेयोग्य है, वैसे दूसरे के भेद भी जाननेयोग्य है। उसमें ठीक-अठीक करनेयोग्य नहीं है। ऐसी बात है। समझ में आया? आहाहा!

गाथा - १०७

अतः कारणात् शुद्धसंग्रहेण भेदं मा कार्षीरिति निरुपयति-

२३०) एक्कु करे मण बिण्णि करि मं करि वण्ण-विसेसु।
इक्कइँ देवइँ जेँ वसह तिहुयणु एहु असेसु।।१०७।।

एकं कुरु मा द्वौ कुरु मा कुरु वर्णविशेषम्।
एकेन देवेन येन वसति त्रिभुवनं एत्द अशेषम्।।१०७।।

एक्कु करे इत्यादि पदखण्डनारुपेण व्याख्यानं क्रियते। एक्कु करे सेनावनादिवज्जीव-जात्यपेक्षया सर्वमेकं कुरु। मण बिण्णि करि मा द्वौ कार्षीः। मं करि वण्णविसेसु मनुष्यजात्यपेक्षया ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रादि वर्णभेदं मा कार्षीः, यतः कारणात् इक्कइं देवइं एकेन देवेन अभेद-नयापेक्षया शुद्धैकजीवद्रव्येण जे येन कारणेन वसह वसति। किं कर्तृ। तिहुयणु त्रिभुवनं त्रिभुवनस्थो जीवराशिःएहु एषः प्रत्यक्षीभूतः। कतिसंख्योपेतः। असेसु अशेषं समस्तं इति। त्रिभुवनग्रहणेन इह त्रिभुवनस्थो जीवराशिर्गृह्यते इति तात्पर्यम्। तथाहि। लोकस्तावदयं सूक्ष्म-जीवैर्निरन्तरं भृतस्तिष्ठति। बादरैश्चाधारवशेन क्वचित् क्वचिदेव त्रसैः क्वचिदपि। तथा ते जीवाः शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शक्त्यपेक्षया केवलज्ञानादिगुणरुपास्तेन कारणेन स एव जीवराशिः यधपि व्यवहारेण कर्मकृतस्तिष्ठति तथापि निश्चयनयेन शक्तिरुपेण परमब्रह्मस्वरुपमिति भण्यते, परमविष्णुरिति भण्यते, परमशिव इति च। तेनैव कारणेन स एव जीवराशिः केचन परब्रह्ममयं जगद्वदन्ति, केचन परमविष्णुमयं वदन्ति, केचन पुनः परमशिव-मयमिति च। अत्राह शिष्यः। यधेवंभूतं जगत्संमतं भवतां तर्हि परेषां किमिति दूषणं दीयते भवद्भिः। परिहारमाह। यदि पूर्वोत्कनयविभागेन केवलज्ञानादिगुणापेक्षया वीतरागसर्वज्ञ-प्रणीतमार्गेण मन्यन्ते तदा तेषां दूषणं नास्ति, यदि पुनरेकः पुरुषविशेषो व्यापी जगत्कर्ता ब्रह्मादिनामास्तीति मन्यन्ते तदा तेषां दूषणम्। कस्माद् दूषणमिति चेत्। प्रत्यक्षादिप्रमाण-बाधितत्वात् साधकप्रमाणप्रमेयचिन्ता तर्के विचारिता तिष्ठत्यत्र तु नोच्यते अध्यात्मशास्त्रत्वा-दित्यभिप्रायः।।१०७।। इति षोडशवर्णिकासुवर्णदृष्टान्तेन केवलज्ञानादिलक्षणेन सर्वे जीवाः समाना भवन्तीति व्याख्यानमुख्यतया त्रयोदशसूत्रैरन्तरस्थलं गतम्। एवं मोक्षमोक्षफलमोक्ष-मार्गादिप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये चतुर्भिरन्तरस्थलैः शुद्धोपयोगवीतरागस्वसंवेदनज्ञान-परिग्रहत्यागसर्वजीवसमानताप्रतिपादनमुख्यत्वेनैक-चत्वारिंशत्सूत्रैर्महास्थलं समाप्तम्।

आगे ऐसा कहते हैं, कि तू शुद्ध संग्रहनयकर जीवों में भेद मत कर–

सदा एक ही देखो दो या वर्ण भेद से मत देखो।
क्योंकि एक देव के जैसे त्रिभुवन में रहते सब जीव।।१०७।।

अन्वयार्थ :– [एकं कुरु] हे आत्मन्, तू जाति की अपेक्षा सब जीवों को एक जान, [मा द्वौ कार्षीः] इसलिये राग और द्वेष मत कर, [वर्णविशेषम्] मनुष्य जाति की अपेक्षा ब्राह्मणादि वर्ण–भेद को भी [मा कार्षीः] मत कर, [येन] क्योंकि [एकेन देवेन] अभेदनय से शुद्ध आत्मा के समान [एतद् अशेषम्] ये सब [त्रिभुवनं] तीनलोक में रहनेवाली जीव–राशि [वसति] ठहरी हुई है, अर्थात् जीवपने से सब एक हैं।

भावार्थ :– सब जीवों की एक जाति है। जैसे सेना और वन एक है, वैसे जाति की अपेक्षा सब जीव एक हैं। नर–नारकादि भेद और ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्रादि वर्ण–भेद सब कर्मजनित हैं, अभेदनय से सब ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्रादि वर्ण–भेद सब कर्मजनित हैं, अभेदनय से सब जीवों को एक जानो। अनंत जीवोंकर वह लोक भरा हुआ है। उस जीव राशि में भेद ऐसे हैं–जो पृथ्वीकायसूक्ष्म, जलकायसूक्ष्म, अग्निकायसूक्ष्म, वायुकायसूक्ष्म, नित्यनिगोदसूक्ष्म, इतरनिगोदसूक्ष्म–इन छह तरह के सूक्ष्म जीवोंकर तो यह लोक निरन्तर भरा हुआ है, सब जगह इस लोक में सूक्ष्म जीव हैं। और पृथ्वीकायबादर, जलकायबादर, अग्निकायबादर, वायुकायबादर, नित्यनिगोद–बादर, इतरनिगोदबादर और प्रत्येकवनस्पति–ये जहाँ आधार है वहाँ हैं। सो कहीं पाये जाते हैं, कहीं नहीं पाये जाते, परंतु ये भी बहुत जगह हैं। इस प्रकार स्थावर तो तीनों लोकों में पाये जाते हैं, और दोइंद्रि, तेइंद्री, चौइंद्री, पंचेद्री तिर्यंच ये मध्यलोक में ही पाये जाते हैं, अधोलोक–ऊर्ध्वलोक में नहीं। उसमें से दोइंद्री, तेइंद्री, चौइन्द्री जीव कर्मभूमि में ही पाये जाते हैं, भोगभूमि में नहीं। भोगभूमि में गर्भज पंचेद्री सैनी थलचर या नभचर ये दोनों जाति–तिर्यंच हैं। मनुष्य मध्यलोक में ढाई द्वीप में पाये जाते हैं, अन्य जगह नहीं, देवलोक में स्वर्गवासी देव–देवी पाये जाते हैं, अन्य पंचेद्री नहीं, पाताललोक में ऊपर के भाग में भवनवासीदेव तथा व्यंतरदेव और नीचे के भाग में सात नरकों के नारकी पंचेद्री हैं, अन्य कोई नहीं और मध्यलोक में भवनवासी व्यंतरदेव तथा ज्योतिषीदेव ये तीन जाति के देव और तिर्यंच पाये जाते हैं। इस प्रकार त्रसजीव किसी जगह हैं,

किसी जगह नहीं हैं। इस तरह यह लोक जीवों से भरा हुआ है। सूक्ष्मस्थावर के बिना तो लोक का कोई भाग खाली नहीं हैं, सब जगह सूक्ष्मस्थावर भरे हुए हैं। ये सभी जीव शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर शक्ति की अपेक्षा केवलज्ञानादि गुणरुप हैं। इसलिए यद्यपि यह जीव-राशि व्यवहारनयकर कर्माधीन है, तो भी निश्चयनयकर शक्तिरुप परब्रह्मस्वरुप है। इन जीवों को ही परविष्णु कहना, परमशिव कहना चाहिए। यही अभिप्राय लेकर कोई एक ब्रह्ममयी जगत् कहते हैं, कोई एक विष्णुमयी कहते हैं, कोई एक शिवमयी कहते हैं। यहाँ पर शिष्य ने प्रश्न किया, कि तुम भी जीवों को परब्रह्म मानते हो, तथा परमविष्णु, परमशिव मानते हो, तो अन्यमतवालों को क्यों दूषण देते हो? उसका समाधान-हम तो पूर्वोक्त नयविभागकर केवलज्ञानादि गुण की अपेक्षा वीतराग सर्वज्ञप्रणीत मार्ग से जीवों को ऐसा मानते हैं, तो दूषण नहीं है। इस तरह वे नहीं मानते हैं। वे एक कोई पुरुष जगत् का कर्ता-हर्ता मानते हैं। इसलिए उनको दूषण दिया जाता है, क्योंकि जो कोई एक शुद्ध-बुद्ध नित्य मुक्त है, उस शुद्ध-बुद्ध को कर्ता-हर्तापना हो ही नहीं सकता, और अच्छा है वह मोह की प्रकृति है। भगवान् मोह से रहित हैं, इसलिए कर्ता-हर्ता नहीं हो सकते। कर्ता-हर्ता मानना प्रत्यक्ष विरोध है। हम तो जीव राशि को परमब्रह्म मानते हैं, उसी जिवराशि से लोक भरा हुआ है। अन्यमती ऐसा मानते हैं, कि एक ही ब्रह्म अनंत रूप हो रहा है। जो वही एक सब रूप हो रहा होवे, तो नरक निगोद स्थान को कौन भोगे? इसलिए जीव अनंत हैं। इन जीवों को ही परमब्रह्म, परमशिव कहते हैं, ऐसा तू निश्चय से जान।।१०७।।

इस प्रकार सोलहवानी के सोने के दृष्टान्त द्वारा केवलज्ञानादि लक्षण से सब जीव समान हैं, इस प्रकार व्याख्यान की मुख्यता से तेरह दोहा-सूत्र कहे। इस तरह मोक्षमार्ग, मोक्षफल और मोक्ष इन तीनों को कहनेवाले दूसरे महाधिकार में चार अन्तरस्थलों का इकतालीस दोहों का महास्थल समाप्त हुआ। इसमें शुद्धोपयोग, वीतरागस्वसंवेदनज्ञान, परिग्रहत्याग और सब जीव समान हैं, ये कथन किया।

गाथा-१०७ पर प्रवचन

१०७। **आगे ऐसा कहते हैं, कि तू शुद्ध संग्रहनयकर जीवों में भेद मत कर—** अनन्त आत्मा के संग्रह को एकरूप देखकर उसमें भेद न मान—जीव में भेद न मान। समझ में आया? भेद हैं, वे सब कर्मजनित के संयोग से भेद हैं। वह तो अजीव का

स्वरूप है। आहाहा! उस अजीव को जाननेयोग्य है, परन्तु अजीव में आदरनेयोग्य यह ठीक है और यह अठीक है, यह उसमें रहता नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह कहते हैं, देखो! १०७।

२३०) **एक्कु करे मण बिण्णि करि मं करि वण्ण-विसेसु।**
इक्कइँ देवइँ जेँ वसह तिहुयणु एहु असेसु।।१०७।।

अन्वयार्थ :— हे जीव! **हे आत्मन्!...** गजब बात है, भाई! यह परमात्मप्रकाश है। आहाहा! **हे आत्मन्! तू जाति की अपेक्षा सब जीवों को एक जान,...** आहाहा! जैसा अपना आत्मा ज्ञायकभाव से पूर्ण स्वरूप है, वह जीव है, इसी प्रकार सब भगवान आत्मायें ज्ञायक और आनन्द के स्वभाव से परिपूर्ण हैं, वे जीव हैं। इस प्रकार सब जीवों को वीतरागभाव से देख और वे वीतरागस्वरूप हैं, ऐसा देख। ऐसा कहते हैं क्या कहा यह? कि इस आत्मा को भी परम वीतरागभाव से वीतरागस्वरूप देख। पर्याय की वीतरागपर्याय से वीतरागस्वरूप देख, वह पूर्ण स्वरूप है। ऐसे सब भगवान आत्मा को तेरी वीतरागपर्याय से वे पूर्ण वीतरागस्वरूप हैं, ऐसा देख। आहाहा! क्योंकि ज्ञान का स्व-परप्रकाशकस्वभाव है तो स्व को ऐसा जैसा जाने, वैसा पर को भी परप्रकाशक में ऐसा वह जानता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? इस शरीर की सुन्दरता और भेद तथा नाना और रोगीष्ट यह सब भेद कहीं जीव के नहीं हैं। यह तो आ गया था न? कल आ गया था यह। कर्म के भेद हैं वे, और कर्म हैं वे आत्मा से भिन्न चीज़ है। आहाहा! तो उस कर्म के कारण पड़े हुए भेद जीव से भिन्न हैं। इस प्रकार अपने को जैसे कर्म के कारण से पड़े हुए भेद जीव से भिन्न हैं, वैसे सभी आत्माओं के स्वभाव में समान होने पर भी कर्म से भिन्न पड़ी हुई चीज़, स्त्री, पुरुष, नारकी, एकेन्द्रिय और दोइन्द्रिय, सबको तू जीव न मान। आहाहा! उसे जाननेयोग्य है ऐसा जान। व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा कहा है न? आहाहा! ऐसी बात है, बापू!

यह परमात्मप्रकाश है। जो कुछ आत्मा में पूर्णस्वरूप भगवान, वह आत्मा, ऐसा जिसने जाना, उसे जो कुछ बाकी अपूर्णता, रागादि रहे, वे जाननेयोग्य हैं। अस्तिरूप से जाननेयोग्य हैं, आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा! ऐसे सब आत्मा को भगवानस्वरूप जो

देखता है, वह अपने को भगवानस्वरूप से देखा, उस प्रकार से सबको देखता है, इसलिए उसमें से जो कर्म के कारण से भेद दिखते हैं, उसे जाननेयोग्य जाने, आदरनेयोग्य नहीं। आदरनेयोग्य भगवान आत्मा है। यहाँ आत्मा आदरनेयोग्य है, ऐसा उसका आत्मा शुद्ध, वह आदरनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? वीतरागमार्ग की गम्भीरता अलौकिक है। यह कहते हैं।

हे आत्मन्! तू जाति की अपेक्षा सब जीवों को एक जान, इसलिए राग और द्वेष मत कर,... देखा! आहाहा! सर्व जीव जहाँ परमात्मस्वरूप जाने, उसे फिर राग-द्वेष करने का रहा नहीं। आहाहा! परचीज़ की अनेकता के भिन्नता के भाव को देखकर 'यह ठीक है'—ऐसा राग करना रहा नहीं और 'यह अठीक है'—ऐसा द्वेष करना रहा नहीं। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा स्वयं अल्पज्ञदशा में भी अल्पज्ञदशा में, आहाहा! पूर्णस्वरूप हूँ—ऐसा जो देखता है। आहाहा! देखो तो सही! हें! आहा! अल्पज्ञ पर्याय की दशा में अल्पज्ञ पर्याय में यह पूर्ण है, ऐसा जो देखता है, वह वीतरागी पर्याय से वीतरागभाव को देखता है। आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार सभी आत्मायें भगवान परमानन्द से भरपूर, कहेंगे अभी। **इसलिए राग और द्वेष मत कर,...** आहाहा! क्योंकि यह जो भेद है, वह कर्मजनित है, वह ज्ञेय है। वस्तु जो है आत्मा और उसका आत्मा, वह आदरणीय है।

यह कहा है न? सभी आत्मायें शुद्ध हैं, इस प्रकार आदरणीय हैं। उनमें से भी पंच परमेष्ठी हैं, वे आदरणीय हैं। उसमें से भी अरिहन्त और सिद्ध दो आदरणीय हैं, उसमें से भी सिद्ध एक आदरणीय हैं। उसमें से भी भगवान आत्मा, वह आदरणीय है, एक अपना। आहाहा! समझ में आया? यह ऐसी बातें हैं। वीतराग की बातें जगत से अलग है, भाई! आहाहा! तुझे तेरा भगवान आत्मा परिपूर्ण यदि भासित हो तो वैसे ही सब भगवान आत्मा परिपूर्ण हैं, (ऐसा) तुझे भासे तो राग-द्वेष करने का कुछ नहीं रहता। आहाहा! समझ में आया?

यह लक्ष्मीवाला है और यह गरीब है और यह रूपवान है और यह काला है, यह सब नहीं रहता। यह तो सब भेद कर्म के भेद में जाते हैं। वह आदरणीय नहीं रहता।

ठीक-अठीक में वह रहता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने काम (किया है न)! यह १६वीं गाथा चलती है। सोलहवान सोना जैसे पूर्ण है, सोलहवान सोना, अर्थात्? सोलहवान कहते हैं न? सोलहवान। इसी प्रकार पूर्ण भगवान सोलह शक्ति से पूर्ण परमात्मा हैं सब।

अल्पज्ञ होने पर भी अल्पज्ञ को गौण करके, अभाव करके पूर्णानन्द है, उसे देखता है। आहाहा! जिसकी दृष्टि में परमात्मा पूर्ण स्वयं है, ऐसा भासित होता है, है पर्याय अल्पज्ञ... आहाहा! तथापि जिसे सर्वज्ञस्वरूपी भगवान हूँ, ऐसा भासित होता है, उसकी दृष्टि वीतराग हो गयी। आहाहा! सम्यग्दर्शन कहो या वीतरागदृष्टि कहो। समझ में आया? यह सब भगवान आत्मा सुन्दर और असुन्दर शरीर, नारकी, देव के शरीर, चींटी और कौवे के शरीर, रोगी और अरोगी शरीर की दशायें, वे सब ज्ञानी को जाननेयोग्य में राग-द्वेष करनेयोग्य नहीं।

अज्ञानी को अपना पूर्णस्वरूप जानता नहीं और ऐसे ही सब पूर्णस्वरूप हैं, उसे जानता नहीं और सामनेवाले की अल्पज्ञता देखकर दीन होता है, वह उसे दीन मानता है और शरीर आदि की अनुकूलता देखकर उसे महन्त मानता है, वे सब मिथ्यादृष्टि राग-द्वेष के करनेवाले हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? मार्ग वीतराग का, भाई! आहाहा! देखो! यह वीतरागता! जिसका स्वभाव ही वीतरागस्वरूप है परिपूर्ण, उसे वीतरागपर्याय से जिसने माना और जाना, वही वीतरागपर्याय से सभी पूर्ण वीतरागस्वरूप हैं, ऐसा जिसे जानने में आया, उसे निमित्त के कारण से भेद पड़ी हुई चीज़ को जाननेयोग्य माने, परन्तु यह ठीक है या अठीक है, यह उसमें रहता नहीं। आहाहा! डाह्याभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

जवान शरीर, सुन्दर शरीर, वह तो जड़ की दशा है, वह आत्मा की नहीं। अपनी तरह जड़ की दशा है, ऐसी दूसरी सबके कर्म के निमित्त से हुई दशायें हैं। आहाहा! अरे! इसमें अल्पज्ञपना और राग हुआ, वह भी कर्म के कारण से है। वस्तु में परिपूर्णता है। आहाहा! ओहो! परमात्मप्रकाश में... यह १६वीं गाथा है। पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण सब। करते-करते १६वीं गाथा में पूर्ण कर देंगे। आहाहा!

पर्याय में अल्पज्ञता विद्यमान होने पर भी और पर्याय में राग-द्वेष और संयोगों में भिन्न-भिन्नता होने पर भी, उस अस्तित्व का स्वीकार न करके, आहाहा! पूर्ण अस्तित्व का जो स्वीकार पूर्णानन्द का नाथ भगवान, उसका जहाँ स्वीकार आता है, तब सब पूर्णानन्द से भरपूर भगवान हैं। आहाहा! इसके साथ रमण करूँ या इसके साथ विषय लूँ, यह बात नहीं रहती। वह तो भगवान है न! आहाहा! हें! आहाहा! स्त्री और पुरुष आदि के भेद तो जड़ के और कर्म के कारण से हैं। वे कहीं आत्मा की चीज़ नहीं। आहाहा! समझ में आया? इससे धर्मी को... यह १५वीं गाथा चलती है, उसका योगफल यह किया कि यह सब समान हैं, समान हैं, क्या चलता है यह? पहले कहे, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय नहीं; त्रस, स्थावर नहीं; स्त्री-पुरुष नहीं; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि नहीं। क्या कहते हैं यह? भाई! यह तो भेद सब वीतरागस्वरूप विराजमान आत्मा में अल्पज्ञ में जो वीतरागता भासित हुई, वह अल्पज्ञ पर के प्रकाश से जानने का रहता है उसे, बस! समझ में आया? क्या कहा यह?

यह तो आत्मा की ज्ञानपर्याय स्वपरप्रकाशक स्वरूप है। इसलिए जिसे पर्याय में ज्ञायक ही भासित होता है, यह तो अपने १७-१८ (गाथा, समयसार) में आ गया। ज्ञान की पर्याय का स्वभाव... भाई! यह तो गम्भीर बात है, प्रभु! आहाहा! जिसकी वर्तमान ज्ञान की एक समय की पर्याय में ज्ञायक ही ज्ञात होता है। आहाहा! अर्थात् कि परिपूर्ण वस्तु है, वह ज्ञात होती है। आहाहा! परन्तु अज्ञानी की दृष्टि वहाँ नहीं है, इसलिए वह पर्याय में परिपूर्ण ज्ञात होता है, ऐसा न मानकर, पर्याय ज्ञात होती है और राग ज्ञात होता है, ऐसा मानता है। आहाहा! क्या कहा यह? ज्ञान की पर्याय का स्व-परप्रकाशकस्वभाव प्रत्येक आत्मा का है। बराबर है? अब जब स्वप्रकाशक आत्मा है पर्याय में ऐसा भासित हुआ; है, तथापि भासित नहीं हुआ, समझ में आया? ज्ञान की पर्याय में विद्यमान चीज़ प्रभु सर्वज्ञ पूर्णानन्द प्रभु वह पर्याय में स्वपरप्रकाशक का स्वभाव होने से पर्याय में स्वप्रकाशक पूरा आत्मा आता है। आहाहा! परन्तु अज्ञानी को उस पर दृष्टि नहीं, इसलिए यह ज्ञात होता है, वह मैं नहीं; ज्ञात होता है, वह राग और पर्याय ज्ञात होती है—ऐसा मानता है। आहाहा! समझ में आया? यह सब १६ गाथा से चला आ रहा है, सब समान समान है। क्या है परन्तु यह? आहाहा!

भाई! तेरी पर्याय में ज्ञायक ज्ञात होता है, ऐसा स्वरूप ही है। अब ज्ञायक है, ऐसी दृष्टि हुई अन्दर... आहाहा! उसकी वर्तमान पर्याय में ज्ञायक पूरा जहाँ ज्ञात हुआ, ज्ञात तो होता था, परन्तु वहाँ दृष्टि नहीं थी। समझ में आया? आहाहा! परन्तु वह ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हुआ, जाननेवाला ज्ञात होता है, वह ज्ञात हुआ। वह परिपूर्ण वस्तु है, ऐसा पर्याय में ज्ञात हुआ। आहाहा! अब उसमें परप्रकाशक भाव रह गया। स्वप्रकाशक तो यह आया। अब परप्रकाश में भी सब आत्मायें समान हैं, ऐसा वह जानता है। और जो भेद है, उसे भी परप्रकाश में जानता है। परन्तु वह जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं। वह जो परिपूर्ण पर्याय में स्वयं जाना और पर जाने, वह तो आदरनेयोग्य हुए। समझ में आया? आहाहा! हें! यह १५ गाथा से चलता है, यह १६वीं है। यहाँ पूरा करेंगे अब यह। सब समान, समान। आहाहा!

देखो, है? **'वर्णविशेषम्'। मनुष्य जाति की अपेक्षा ब्राह्मणादि वर्ण-भेद को...** जो अपने पहले आ गया था, वर्ण, रागादि, उस वर्ण में रंग, गन्ध, रस था। रंग, गन्ध का वर्ण था कि वह आत्मा में नहीं है। यह वर्ण जाति का है। ब्राह्मण, क्षत्रिय वह। **'वर्णविशेषम्'** अपने पहले आया था न? नहीं? समयसार में, समयसार में। वर्ण, रागादि, गुणस्थानादि भेद, उस वर्ण में यह नहीं। वहाँ वर्ण में रंग, गन्ध, रस, स्पर्श थे। गाथा यह आयी है न! यहाँ वर्ण में **मनुष्य जाति की अपेक्षा ब्राह्मणादि वर्ण-भेद को भी मत कर...** यह ब्राह्मण है और यह क्षत्रिय है और यह बनिया है और यह चाण्डाल है। आहाहा! वस्तु की पूर्णता यदि तुझे तेरी भासित हो तो तुझे सब जीवों की पूर्णता भासित हो और उसका भेद जो यह वर्णादि है, वह कुछ आत्मा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? जिस चीज़ का जीव में अभाव है कर्म का, कर्म का जीव—भगवान में अभाव है तो कर्म के कारण से हुए भावों का भी जीव में अभाव है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी सूक्ष्म व्याख्या। बापू! मार्ग सूक्ष्म है, भाई! वीतरागमार्ग। क्या हो? जानने में न आवे उसे यह एकान्त लगे, एकान्त लगे। प्रभु! एकान्त ही है। स्वपर्याय जहाँ एक में एकान्त में आयी, एक ही धर्म में पूर्णानन्द में आयी, तब उसे सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन होता है। तब उसे पर्याय आदि के भेद और दूसरे के भेद जाननेयोग्य रहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

वर्ण-विशेष मत कर। आहाहा! यह ब्राह्मण है और यह क्षत्रिय है। लो, तीर्थंकर होते हैं, वे क्षत्रिय ही होते हैं। जितने तीर्थंकर होते हैं, वे क्षत्रिय होते हैं। कोई बनिया, ब्राह्मण तीर्थंकर नहीं होता। आहाहा! तो कहते हैं कि यह भेद ही लक्ष्य में न ले। क्षत्रिय और ब्राह्मण लक्ष्य में ही न ले। आहाहा! भगवान आत्मा कहाँ ब्राह्मण या क्षत्रिय है? वह तो कर्मजन्य के प्रकारों के भेद हैं। आहाहा! परद्रव्य जो इसका नहीं, ऐसे द्रव्य के वे भेद हैं। आहाहा! समझ में आया? तेरी चीज़ में तो भेद नहीं और तेरी चीज़ से दूसरी चीज़ में भी तू भेद न देख आत्मा में। आहाहा! डाह्याभाई! ऐसी चीज़ है। वे लोग, ईश्वरकर्ता है और एक ही व्यापक है, (ऐसा मानते हैं), उनका यहाँ निषेध करके एक-एक भगवान पूर्णानन्द है, उसकी सिद्धि करके सब अनन्त हैं पूर्णानन्दस्वरूप भगवान, ऐसा जानकर, आहाहा! जो उसमें नहीं ऐसे जो कर्म, उस कर्म के कारण से पड़े हुए भेद, वे स्वरूप में नहीं है। आहाहा! वे जानने‌योग्य है पर्याय में, बस! आदरनेयोग्य तो तीन लोक का नाथ परमात्मा अपना और दूसरे के आत्मायें भी इस प्रकार से आदरनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि परप्रकाश में भी पर दूसरे पूर्ण हैं, ऐसा परप्रकाश में आ जाता है। और बाकी जो रहा परप्रकाशक जो अपूर्णता और कर्म के भेद, वे भी जानने में आ जाते हैं। आहाहा!

क्योंकि... 'एकेन देवेन' है? **'एकेन देवेन' अभेदनय से शुद्ध आत्मा के समान...** एक देव। आहाहा! दिव्य शक्तिवन्त भगवान केवलज्ञान आदि शक्तिवाले परमात्मा सब। आहाहा! एक देव हैं वे सब। जाति की अपेक्षा से, हों! संख्या अपेक्षा से, ऐसा नहीं। **अभेदनय से शुद्ध आत्मा के समान... 'एकेन देवेन'** आहाहा! **'एतद् अशेषम्' ये सब तीन लोक में रहनेवाली जीव-राशि... 'त्रिभुवनं'** आहाहा! **तीन लोक में रहनेवाली जीव-राशि... 'वसति' ठहरी हुई है,...** पूरे लोक में शिवस्वरूप भगवान विराजता है, कहते हैं। आहाहा! यहाँ भी अनन्त भगवान हैं, यहाँ, क्षेत्र। अनन्त जीव हैं न! आहाहा! भवसिन्धु, पानी का सिन्धु, इसी प्रकार यह भगवान का सिन्धु है। पूरा भगवान सिन्धु से भरपूर लोक है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! **तीन लोक में रहनेवाली जीव-राशि ठहरी हुई है, अर्थात् जीवपने से सब एक हैं।** आहाहा!

भावार्थ :— सब जीवों की एक जाति है। आहाहा! द्रव्यस्वभाव, सत्

चैतन्यस्वभाव उस सबकी एक जाति है। एक रूप है, एक जाति है। आहाहा! कहो, अक्षर के अनन्तवें भाग विकास निगोद के जीव को, उसे न देख। पर्यायबुद्धि को न देख, पर्याय से न देख। आहाहा! वे सब शक्ति से केवलज्ञानकन्द हैं, भगवत्स्वरूप हैं। आहाहा! अभव्य का जीव भी स्वरूप से भगवतस्वरूप है। समझ में आया? श्रीमद् में नहीं आता? 'सर्व जीव है सिद्धसम।' तब उसमें कौन से निकाल दिये? अभव्य निकाल दिये? पर्याप्त, अपर्याप्त सब... सर्व जीव भगवान सिद्धस्वरूप विराजते हैं। आहाहा! तुझे किसे स्त्री, पुरुष और देव, नारकी मानना है? आहाहा! समझ में आया?

सब जीवों की एक जाति है। जैसे सेना और वन एक है,... सेना, लश्कर की सेना, सेनारूप से एक कहलाती है? भले व्यक्ति अलग-अलग हों, सेना तो एक कहलाती है न। उसी प्रकार वनरूप से अनेक कहलाये। भले वृक्ष अनेक हों वहाँ। वन, वन कहने पर सभी वृक्ष उसमें आ गये एकरूप से। **वैसे जाति की अपेक्षा सब जीव एक हैं।** आहाहा! सेना में कोई वृद्ध हो, जवान हो, सब होते हैं न। अरे! अठारह-अठारह वर्ष के भी सेना में होते हैं, सैनिक व्यक्ति। सेना के लिये रखते हैं। अपने यहाँ नहीं था? बाबूभाई का पुत्र सैनिक में जाता था न! अभी उसमें है। बाबूभाई त्रिभुवन, भावनगर। उनका पुत्र है न दूसरे नम्बर का। वह सेना में जाता है। छोटी उम्र का, तब का सेना में है। अभी तो (बहुत) वर्ष हो गये। वह अठारह वर्ष का हो परन्तु लम्बा शरीर और जवान हो तो लश्कर में रखे। तथापि वह व्यक्तिरूप से जैसे एक हैं छोटे-बड़े; उसी प्रकार जातिरूप से अन्दर का भगवान आत्मा तो एक ही है। वनरूप से कहने पर छोटे-बड़े वृक्ष पीपल, नीम सब हों, उन्हें वन कहा जाता है। वन में भिन्न-भिन्न हैं, उसे न देख। वन है पूरा। इसी प्रकार छोटे-बड़े वृक्ष हो, तथापि ऐसा न देख, वन है। इसी प्रकार सेना में छोटे-बड़े शरीरवाले जवान, वृद्ध आदि हों, ऐसा न देख। सेना।

इसी प्रकार जीव में एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय आदि भेद हों, वस्तुरूप से तो आत्मा भगवानरूप से एक ही जाति है सब। आहाहा! विद्यमान पर्याय और राग को अविद्यमान कर दे और अविद्यमान जो पर्याय में है, उसे विद्यमान कर। आहाहा! क्या कहा यह? पर्याय में अल्पज्ञता के भेद और राग के भेद होने पर भी वह विद्यमान चीज़ है, उसे अविद्यमान कर, वह तुझमें नहीं है और तू जो अविद्यमान पर्याय में है, उसे अब

विद्यमान कर कि यह भगवान पूर्णानन्द प्रभु है। आहाहा! ऐसा स्वरूप भारी कठिन, इसलिए लोग... वह लोग सोनगढ़वाले तो द्रव्यानुयोग ही वाँचते हैं। परन्तु द्रव्यानुयोग मुख्य वस्तु यह है। मोक्ष का मार्ग उसमें है।

मुमुक्षु : मोक्षमार्ग का कथन....

पूज्य गुरुदेवश्री : मुख्य उसमें है। लिखा नहीं भाई ने? टोडरमलजी ने। मोक्ष का मार्ग तो द्रव्यानुयोग में मुख्य है और सभा में मुख्य उपदेश तो यह होना चाहिए। ऐसा मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है। परन्तु उन्हें भी उड़ाते हैं। प्रभु! क्या करता है तू? भाई! अरे... प्रभु! ऐसा शोभा नहीं देता, भाई! आहाहा! ऐसा कहना शोभा नहीं देता, नाथ!

मुमुक्षु : सब भगवान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान है, नाथ! तू प्रभु है न। आहाहा! वीतरागता रेलमछेल की है। वीतरागी भगवान, मुनि भी वीतरागता की रेलमछेल करते हैं।

जहाँ आगे भेदों से उदास हुआ है और जहाँ पूरी चीज़ है, उसका आदर किया है। आहाहा! क्या कहा यह? पर्याय आदि, रागादि, जाति आदि, बाहर के वर्ण आदि के भेद हैं, उन्हें गौण करके जो वस्तु है, उसे दृष्टि में विद्यमान की है। आहाहा! वह वीतरागता प्रगट हुई है। वह सब वीतरागता के झुकाव हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! क्योंकि भगवान स्वयं जिनस्वरूप है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म।' लो, यहाँ यह आया। 'यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' आहाहा! श्रीमद् में भी संक्षिप्त (वचनों में) बहुत (कहा है)। वह तो एकावतारी हो गये। ओहो! एक भव में मोक्ष जानेवाले हैं। भले गृहस्थाश्रम में थे। आहाहा! 'शेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे', कुछ राग बाकी लगता है, हटता नहीं है। 'इसलिए देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे...' आहाहा!

यह प्रश्न (संवत्) १९७७ में लोगों ने किया था कि ऐसा होता है? गृहस्थाश्रम में इतना अधिक जोर दे? अब सुन न। कहा, श्रुतज्ञान में तो अनन्त सब ज्ञात होता है। श्रुतज्ञान क्या न जाने? श्रुतज्ञान में सर्व जानते हैं तो उसमें यह न ज्ञात हो उसे स्वयं को? मैं एक भव में मोक्ष जानेवाला हूँ। स्वरूप में स्थिर होकर पूर्णानन्द की प्राप्ति (होगी)।

मुझे बीच में एक भव मनुष्य का है। मनुष्य का। देव का नहीं गिना जाता। समझ में आया? आहाहा! श्रुतज्ञान की इतनी ताकत है कि कब मोक्ष जायेगा, उसका भी इसे निर्णय आ जाता है। हें! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **नर-नारकादि भेद...** मनुष्य, नारकी, देव और तिर्यंच यह सब भेद **और ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शुद्रादि वर्ण-भेद सब कर्मजनित हैं,...** आहाहा! तेरे द्रव्य से भिन्न द्रव्य के यह सब प्रकार हैं। आहाहा! समझ में आया? तेरी जो चीज़ है, उससे कर्म तो दूसरी चीज़ है। उसके यह सब भेद हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग, आहा! अरे! **कर्मजनित हैं, अभेदनय से सब जीवों को एक जानो।** ओहोहो! वापस बात भी जो जैन परमेश्वर ने व्यवहार देखा, वह बात करके, उसका निषेध करते हैं। सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, नरक, नारकी ऐसे भेद तो भगवान ने देखे हैं न व्यवहार के? अन्यमति में ऐसे भेद हैं कहाँ? आहाहा! कर्म और कर्म के भेद और भगवान अभेद, आहाहा! ऐसा कहकर... आहाहा!

अनन्त जीवोंकर वह लोक भरा हुआ है। आहाहा! क्योंकि वह चीज़ ही पर है, उसके सब प्रकार हैं, तुझमें कहाँ आये वे? और उसमें भी कहाँ आया वह? आहाहा! समझ में आया? क्या कहा यह? तुझमें द्रव्यकर्म है ही नहीं। वह द्रव्य अर्थात् कर्म, वह चीज़ भी परवस्तु है। अब परवस्तु से हुए भेद पर हैं। इसलिए परजीव में वे नहीं और इस जीव में वे नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **अनन्त जीवोंकर वह लोक भरा हुआ है।** आहाहा! चौदह ब्रह्माण्ड, चौदह राजूलोक, अनन्त परमात्मस्वरूप भगवान से विराजमान है सब। आहाहा!

उस जीव-राशि में भेद ऐसे हैं... अब जीवराशि के भेद बतलाते हैं। **जो पृथ्वीकायसूक्ष्म...** सूक्ष्म पृथ्वीकाय है न? यहाँ, यहाँ सर्वत्र पूरे लोक में सूक्ष्म पृथ्वीकाय। एक टुकड़े में असंख्य शरीर और एक-एक शरीर में एक-एक जीव। पूरे लोक में पृथ्वीकायसूक्ष्म है, देखो! यह चीज़ सर्वज्ञ के ज्ञान में आयी हुई पर्याय और व्यवहार का वर्णन करके, वह आत्मा में नहीं है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात कहाँ है? पृथ्वीकाय और जल ऐसा है व्यवहार से भी सर्वज्ञ के अतिरिक्त? आहाहा! **जलकायसूक्ष्म...**

पानी के जीव सूक्ष्म हैं यहाँ। यहाँ पृथ्वी है और वहाँ पानी है। सूक्ष्मजल, सूक्ष्मजल के काय। **अग्निकायसूक्ष्म....** अग्निकाय का सूक्ष्म अग्नि यहाँ भी है, ऐसे पूरे लोक में है। आहाहा! **वायुकायसूक्ष्म...** सूक्ष्म वायु। यह पवन है, वह बादरवायु है। अन्दर सूक्ष्मवायु है सब जगह पूरे लोक प्रमाण। **नित्यनिगोदसूक्ष्म...** नित्यनिगोद है। वे सब तो प्रत्येक कहे, प्रत्येक। यह नित्यनिगोदसूक्ष्म। कायम नित्यनिगोद पर्यायवाला वह सूक्ष्म जीव भी सब लोक में है। आहाहा! **इतरनिगोदसूक्ष्म...** वह भी पूरे लोक है। इतर अर्थात नित्य में से निकलकर वापस फिर से निगोद में जाये, उसे इतरनिगोद कहते हैं। **इन छह तरह के सूक्ष्म जीवोंकर तो यह लोक निरन्तर भरा हुआ है,...** आहाहा! वह एक आत्मा कहता है न वेदान्त, सर्वव्यापक। यहाँ तो ऐसे अनन्त आत्मा पूर्णानन्द से भरपूर पूरे लोक में है। आहाहा! कितने ही यह कहते हैं न? यह समयसार वेदान्त के ढाला में ढाला है। परन्तु वेदान्त में यह बात कब थी? आहाहा! **यह लोक निरन्तर भरा हुआ है, सब जगह इस लोक में सूक्ष्म जीव हैं।** पूरे लोक में। सिद्ध भगवान है, वहाँ भी यह पाँचों ही सूक्ष्म जीव हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, नित्यनिगोद। सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ भी यह है। आहाहा!

और पृथ्वीकायबादर,... यह तो पूरे लोक में भरे हैं, अब पृथ्वीकायबादर, वह पूरे लोक में नहीं होता। समझ में आया? **जलकायबादर...** जलकायबादर यह समुद्र जो दिखता है, यह बादरपानी। **अग्निकायबादर, वायुकायबादर, नित्यनिगोदबादर...** वापस देखा? आहाहा! यह अमुक स्थान में ही होते हैं, आधार होता है वहाँ। वे सूक्ष्म हैं, वे पूरे लोक में होते हैं। आहाहा! **इतरनिगोदबादर...** वे भी आधार हों, वहाँ होते हैं। **और प्रत्येकवनस्पति...** यह नीम, पीपल। **ये जहाँ आधार है वहाँ हैं।** उस सूक्ष्म को कोई आधार की आवश्यकता नहीं। वह तो पूरे लोक में भरे हैं, खचाखच। इस अँगुल के असंख्यवें भाग में अनन्त जीव यहाँ भगवानस्वरूप विराजते हैं। आहाहा! कहो, इस अँगुल का असंख्यवाँ भाग, हों! वहाँ अनन्त सूक्ष्म जीव विराजते हैं। प्रत्येक भगवानस्वरूप है। आहाहा! यह विशालदृष्टि। समझ में आया? सब धर्म समान हैं, यह विशालदृष्टि, ऐसा लोग कहते हैं। विशालदृष्टि है या एकान्तदृष्टि है? आहाहा!

श्रीमद् ने तो समभाव की व्याख्या करते हुए ऐसा भी कहा, समभाव आता है न?

क्या श्लोक ? 'समदर्शिता, विचरे उदयप्रयोग।' समदर्शिता की व्याख्या श्रीमद् ने की है कि समदर्शिता अर्थात् सबको समान मानना यह ? नहीं। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को कुदेव, कुगुरु, कुशाास्त्ररूप से बतलावे। इस समभाव में यह विसमभाव नहीं। सुदेव, सुगुरु, सुशास्त्र को बराबर बतलावे। आहाहा! समझ में आया ? यह समभाव है। सब समान मानना, यह तो मूर्खता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : आपने तो कहा, सब जीव समान हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह किस प्रकार से ? वह तो स्वभाव की अपेक्षा से। परन्तु धर्म सब समान हैं वेदान्त और यह सब, ऐसा कहाँ है ? समझ में आया ? एक न्याय बदलने से पूरा न्याय बदल जाता है।

कहते हैं, समभाव में तो सब कहे। देव को देव सिद्ध करे, सत्देव को। सत्शास्त्र को सत्शास्त्र कहे, सद्गुरु को सद्गुरु से पहिचान करावे। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को उत्थापे। यह समभाव है। समझ में आया ? आहाहा! छद्मस्थ है, इसलिए जरा यह नहीं, ऐसा होने पर ऐसा विकल्प उठता है, परन्तु वह विकल्प तो जाननेयोग्य रहा है। समझ में आया ? यह खोटा है। रागी है न, इसलिए जरा, यह है यह, वहाँ राग का अंश है। यह नहीं, यह खोटा है, (यह द्वेष का अंश है)। तथापि उस समभाव में रहकर, यह विकल्प उठता है। समझ में आया ? आहाहा! ऐसी बातें हैं।

जहाँ आधार हो, वहाँ बादर हो, ऐसा कहना है। सूक्ष्म है, उसे आधार की आवश्यकता नहीं है। चौदह राजूलोक में ठसाठस भरे हैं। हीरा होता है न मजबूत ? तो उसमें वहाँ अन्दर सूक्ष्म जीव हैं। यह दीवार है न ? दीवार। संगमरमर की दीवार के अन्दर में अनन्त सूक्ष्म जीव हैं। संगमरमर की जाति से अलग जाति। आहाहा! पूरे लोक में है न! आहाहा! देखो! यह लकड़ी है, इसके अन्दर में भी है। यह अँगुली है, इसके अन्दर में अनन्त है।

मुमुक्षु : रोटी के टुकड़े में ?

पूज्य गुरुदेवश्री : रोटी के टुकड़े में क्या, सब क्षेत्र में है। रोटी में नहीं। परन्तु रोटी जहाँ है, वहाँ उसके स्थान में अनन्त जीव हैं। रोटी में, ऐसा नहीं, रोटी के

क्षेत्र में। आहाहा! ऐसा तो मार्ग तो देखो! आहाहा! वीतराग परमेश्वर, लोगों को बेचारों को मिल नहीं न! फिर यह ऐसा लगे कि अरे! एकान्त है, एकान्त है। आहाहा! लिखते हैं, शाहूजी को लिखते हैं, तुम हमको सबको कहते हो परन्तु वहाँ भी सलाह दो न कि ऐसा खोटा करते हैं एकान्त का। ऐसा। बापू! कहाँ है, भाई? एकान्त किसे कहना?

यहाँ तो भगवान एकान्त में परमात्मस्वरूप ज्ञात होता है, कहते हैं। इस निश्चयनय के विषय में तो यह एकान्त ही है। आहाहा! व्यवहारनय का विषय मिलावे, तब अनेकान्त होता है परन्तु अनेकान्त तो दो मिले, इसलिए अनेकान्त हुआ। इससे पर्याय द्रव्य में है, ऐसा अनेकान्त नहीं हुआ। पर्याय, पर्याय में है—ऐसा जानकर द्रव्य में नहीं, ऐसा अनेकान्त हुआ है। इसी प्रकार व्यवहार, व्यवहार में है, ऐसा रखकर निश्चय में नहीं, ऐसा अनेकान्त हुआ है। परन्तु व्यवहार, व्यवहार से भी निश्चय होता है और निश्चय से भी होता है, यह अनेकान्त, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्या हो? वे कहते थे, आये थे न वे, जुगलकिशोर दिल्ली से। जुगलकिशोर न? मुखत्यार, जुगलकिशोर मुखत्यार। यह जुगलकिशोर कोटा के, वे अलग हैं। वे मुखत्यार थे। पानी अग्नि के कारण गर्म हुआ, यह दृष्टइष्ट है, प्रत्यक्ष दिखता है और तुम उसका निषेध करते हो। ऐसा कहते हैं। दृष्टइष्ट। भगवान! यह पानी गर्म हुआ है, वह तो अपनी पर्याय से हुआ है, अग्नि तो उसे स्पर्शी भी नहीं है। आहाहा! जिसकी पर्याय में अग्नि की पर्याय का अभाव है। वह अभाव है, उसके कारण पानी गर्म होगा? आहाहा! ऐसी बातें कठिन पड़े। यह तो अन्दर सूक्ष्मपने है, उसका स्पष्टीकरण है। इसलिए यह सब लिखकर जहरवाला पुस्तक कर डाला, ऐसा लिखा है। बापू! ऐसा नहीं है, भाई! तुझे न जँचे, इसलिए ऐसा हो गया? आहाहा!

सो कहीं पाये जाते हैं, कहीं नहीं पाये जाते,... कौन? बादर। सूक्ष्म हैं, वे पूरे लोक में हैं। और बादर कहीं हों और कहीं न हों। **परन्तु ये भी बहुत जगह हैं।** बहुत जगह है बादर। पूर्ण सर्वत्र नहीं। सूक्ष्म हैं, वे पूरे लोक में हैं। ठसाठस भरे हुए हैं भगवान सब। आहाहा! वह कहे कि ईश्वर एक है। यदि दूसरा ईश्वर हो तो मतभेद होता है। बरसाते हो या नहीं बरसाते? लो, ऐसी चर्चा। एक ईश्वर कहे कि बरसात

बरसाओ। इसलिए ईश्वर एक ही है, दो नहीं। वर्षा बरसाने का कौन बरसावे? अनन्त ईश्वर है स्वभाव से, शक्ति से, सामर्थ्य से। आहाहा! आहाहा!

इस प्रकार स्थावर तो तीनों लोगों में पाये जाते हैं,... है न? भले वे पूर्ण रीति से प्राप्त करें और बादर किसी-किसी जगह हैं, परन्तु हैं तीनों लोक में। बादर भी तीन लोक में है। तीन लोक के पूरे क्षेत्र में नहीं। समझ में आया? और स्थावर जो सूक्ष्म है, वह तीन लोक में पूरे सम्पूर्ण लोक में हैं। देखो! यहाँ वापस तीन इकट्ठे किये, इकट्ठे किये अर्थात् तीन लोक इकट्ठे किये। पूरे लोक में बादर हैं, ऐसा नहीं, तीन लोक में हैं। मध्य तिरछे में कहीं-कहीं हैं। मध्य में भी हैं, ऊर्ध्व में भी हैं और अधो में भी हैं। आहाहा!

पश्चात् **दोइन्द्री...** ईयल आदि। **त्रीन्द्रिय, चौइन्द्री, पंचेन्द्री तिर्यंच, ये मध्यलोक में ही पाये जाते हैं,...** वे बादर हैं, वे तीन लोक में थोड़े-थोड़े होते हैं। और यह है, वे **मध्यलोक में ही पाये जाते हैं,...** बस, बीच के लोक में। **अधोलोक, ऊर्ध्वलोक में नहीं।** दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, वे अधोलोक में नहीं, ऊर्ध्वलोक में नहीं। **उनमें से दोइन्द्री, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्री जीव कर्मभूमि में ही पाये जाते हैं,...** कर्मभूमि है न यह, इसमें होते हैं। **भोगभूमि में नहीं।** जुगलिया में नहीं। भोगभूमि में जुगलिया है न? देवकुरु, उत्तरकुरु वहाँ दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय नहीं है। आहाहा!

भोगभूमि में गर्भज पंचेन्द्री सैनी थलचर... भोगभूमि जुगलिया। **गर्भज पंचेन्द्री सैनी थलचर या नभचर ये दोनों जाति-तिर्यंच हैं।** तिर्यंच होते हैं वहाँ। देवकुरु, उत्तरकुरु। हरिवंश, कुरुवंश है न छह? वहाँ **पंचेन्द्री सैनी थलचर या नभचर ये दोनों जाति-तिर्यंच हैं।** इतने हैं। **मनुष्य मध्यलोक में ढाई द्वीप में पाये जाते हैं, अन्य जगह नहीं,...** लो। नभचर कहा न। स्थलचर और नभचर दो हैं वहाँ भोगभूमि में।

देवलोक में स्वर्गवासी देव-देवी पाये जाते हैं,... देवलोक में देव-देवी है। **अन्य पंचेन्द्री नहीं,...** मनुष्य और तिर्यंच वहाँ नहीं है। **पाताललोक में ऊपर के भाग में भवनवासीदेव तथा व्यन्तरदेव और नीचे के भाग में सात नरकों के नारकी पंचेन्द्री है, अन्य कोई नहीं...** वहाँ कोई मनुष्य और देवादि है नहीं। **मध्यलोक में भवनवासी**

व्यन्तरदेव तथा ज्योतिषीदेव ये तीन जाति के देव और तिर्यंच पाये जाते हैं। इस प्रकार त्रसजीव किसी जगह हैं, किसी जगह नहीं हैं। आहाहा! **इस तरह यह लोक जीवों से भरा हुआ है।** आहाहा! **सूक्ष्म स्थावर के बिना तो लोक का कोई भाग खाली नहीं है, सब जगह सूक्ष्मस्थावर भरे हुए हैं।**

ये सभी जीव... अब, आहाहा! **शुद्धपारिणामिक परमभाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर शक्ति की अपेक्षा केवलज्ञानादि गुणरूप हैं।** लो। सब जीव शुद्ध द्रव्यदृष्टि से... आहाहा! शुद्ध पारिणामिक सहजभाव से अनन्त केवलज्ञानादि गुणरूप विराजमान हैं। आहाहा! केवलज्ञान पर्याय नहीं। केवलज्ञानादि गुणरूप सब विराजमान हैं। परमभाव ग्राहक स्वभाव। आहाहा! इस प्रकार सब जीवों को समान जान। इस प्रकार शक्ति के स्वभाव की अपेक्षा से। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, पौष शुक्ल १३, रविवार
दिनांक-०२-०१-१९७७, गाथा - १०७, १०८, प्रवचन-१७५

यह परमात्मप्रकाश है। १०७ गाथा चलती है न? यहाँ आया है। जगत में एकेन्द्रिय से लेकर पंचेनिद्रय आदि अनन्त जीव हैं। वे सब जीव, उनका—प्रत्येक जीव का स्वभाव है, वह परमआनन्द और परमशान्ति और परमज्ञानस्वभाव है। इससे **ये सभी जीव शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक...** उसका जो शाश्वत् शुद्ध ध्रुव परमस्वभावभाव सहजभाव की दृष्टि से देखें तो **शक्ति की अपेक्षा केवलज्ञानादि गुणरूप हैं।** केवलज्ञान—एकरूप ज्ञान, एक आनन्द, एक शान्ति एकरूप, ऐसे गुणरूप प्रत्येक आत्मा है। आहाहा!

यह आत्मा है, वह अनन्त गुण का निधान है। पर्यायबुद्धि से अनादि काल से भटकता है। एक समय की अवस्था और उसमें होते राग-द्वेष के आधीन होकर चार गति में अवतार करके दुःखी यह है। उस दुःख से मुक्त होना हो तो उसे अनन्त ज्ञान से भरपूर भगवान... यह सूक्ष्म बात है, भाई! अन्तर आत्मा अनन्त आनन्द का गर्भ है अन्दर, वस्तु है। आहाहा! अनन्त शान्ति, अनन्त आनन्द... शान्ति अर्थात् वीतरागता, अनन्त स्वच्छता, अनन्त ईश्वरता ऐसे अनन्त गुणसम्पन्न भगवान आत्मा है। प्रत्येक का। आहा! यह बात बैठना... समझ में आया? और यह दृष्टि होने से उसका कल्याण हो, ऐसा है। बाकी लाख क्रियाकाण्ड करे, दया, व्रत, भक्ति और पूजा, वह सब शुभभाव भव का कारण है। भव के अभाव का कारण भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त शक्ति का सागर है वह। कैसे जँचे? कभी नजर की नहीं।

एक समय की वर्तमान दशा के पीछे एक ध्रुवतत्त्व वस्तु स्वयं है, उसकी इसने अनन्त काल में नजर नहीं की। साधु हुआ, पंच महाव्रत लिये, पालन किये, ऐसा अनन्त बार किया। परन्तु यह वस्तु अन्दर है आनन्दकन्द प्रभु साक्षात् परमब्रह्म भगवान आत्मा... आहाहा! उसका इसे माहात्म्य और उसकी इसे महिमा सूझ में आयी नहीं। हें! आहाहा! उसे इस शरीर, पर्याय और राग की महत्ता और महिमा नजर में आयी है। आहाहा!

इसलिए यहाँ कहते हैं, सर्व जीव शक्ति की अपेक्षा से—उसके स्वभाव की अपेक्षा से—उसके गुण की सामर्थ्य की अपेक्षा से, आहाहा! **केवलज्ञानादि गुणरूप हैं।** आहाहा!

जैसे छोटी पीपर को उसके स्वभाव से देखें तो उसका चौसठ पहरी शक्ति का स्वभाव है। छोटी पीपर कद से छोटी, रंग से काली, परन्तु उसका स्वभाव चौसठ पहरी अर्थात् रुपया-रुपया उसमें चरपरा रस भरा है। आहाहा! वास्तविक पीपर तो उसे कहते हैं कि जो चौसठ पहरी चरपरा रस और हरे रंग से भरपूर तत्त्व, उसे वास्तव में पीपर कहते हैं। उसका रंग काला और कद से छोटी, वह कहीं उसका मूल स्वरूप नहीं है। समझ में आया?

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा इसकी पर्याय में... कहेंगे अभी, व्यवहारनय से, है? यहाँ आयेगा। **इसलिए यद्यपि यह जीव-राशि व्यवहारनयकर कर्माधीन है,...** आहाहा! अर्थात् क्या? उसकी वर्तमान पर्याय—अवस्था में द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान चाहिए भाई इसे। यह तत्त्व की दृष्टि समझने के लिये तो इसे द्रव्य क्या, गुण क्या, पर्याय क्या, (यह समझना चाहिए)। द्रव्य अर्थात् आत्मा जो अनन्त गुण का पिण्ड, वह द्रव्य। और गुण अर्थात् उसकी शक्ति जो ज्ञान, दर्शन पूर्ण, वह उसका गुण और वर्तमान होती हालत—दशा, वह उसकी पर्याय। वह पर्याय व्यवहारनय से कर्म के आधीन—परद्रव्य है, उसके आधीन होकर, वह आधीन होना, वह इसका धर्म है। क्या कहा यह? पर्याय का... बात तो वीतराग की सूक्ष्म है, भाई! लोग बाहर से मानकर बैठे हैं कि यह धर्म है। वह धर्म नहीं, बापू! धर्म सूक्ष्म चीज़ है, भाई!

भगवान पूर्णानन्द का नाथ अनन्त गुण से विराजमान सब भगवान आत्मा है। परमब्रह्म है, परमविष्णु है, परमशंकर अर्थात् परमसुखरूप है। आहाहा! उसके सत्त्व को उस प्रकार से न जानकर, अनादि से व्यवहारनयकर, है? **कर्माधीन है....** आहाहा! उसकी वर्तमान पर्याय अर्थात् अवस्था, कर्म जो जड़ है, उनके वश हुई इसकी दशा है। आहाहा! वह कर्म ने इसे वश नहीं किया। इसकी अपनी पर्याय का—अवस्था का एक धर्म ऐसा है, धर्म अर्थात् इसकी योग्यता कि जो निमित्त के आधीन होना। निमित्त इसे आधीन करता नहीं। आहाहा! समझ में आया? निमित्त क्या और यह क्या? ऐसी बातें अब। भगवान! मार्ग वीतराग का जिनेश्वरदेव का मार्ग कोई अपूर्व अलौकिक है। वाड़ा में पड़े, उन्हें इसकी खबर नहीं होती। समझ में आया?

इस भगवान आत्मा में दो प्रकार। एक, वस्तु से परमब्रह्म परमानन्दस्वरूप स्वयं है और अनादि से वर्तमान दशा में कर्म जड़ है, उसके आधीन होकर विकार भाव जो

उत्पन्न हुए हैं, वे हैं इसकी दशा में। समझ में आया? यह कहा, पराधीन है। देखा! परन्तु पराधीन अर्थात् कर्म ने इसे पराधीन किया है, ऐसा नहीं। स्वयं निमित्त के आधीन अनादि से स्वभाव का भान नहीं। आहाहा! मैं एक परमब्रह्म आनन्द का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र हूँ। आहाहा! 'शुद्ध चेतनासिन्धु हमारो रूप है।' आहाहा! भगवान आत्मा... देह को भूल जा, भगवान! देह तेरी नहीं, कर्म तेरे नहीं, अन्दर पुण्य और पाप के विकल्प हों, प्रभु! वे तेरे नहीं, तुझमें नहीं। आहाहा! एक समय की वर्तमान पर्याय जो है, वह स्वयं पर के आधीन होती है, वह तेरा स्वरूप नहीं। आहाहा! तुझमें है। समझ में आया? यह तो वीतराग जिनवरपरमात्मा केवलज्ञानी का मार्ग सूक्ष्म है, भाई! प्रभु! इसने अनन्त काल में इसकी प्रभुता इसे भासित नहीं हुई। इसे निमित्ताधीन होना, यह वस्तु का इसने भास किया है। तो वह है सही। परन्तु वह संसार है, वह सब परिभ्रमण है। आहाहा!

४७ नय में आया न? भाई! ईश्वरनय। एक इसका ईश्वरनय का धर्म है, उसका यह स्वामी है आत्मा। आहाहा! एक ओर ऐसा कहे कि विकार का स्वामी कर्म है। ७३ गाथा। वह दूसरी अपेक्षा है वहाँ। वस्तु है चिदानन्द भगवान आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का चौसला है, वह तो दल है, परम आनन्दस्वरूप है, परमज्ञानस्वरूप है, परम शान्ति... शान्ति... शान्ति... ऐसी परम शान्ति के सागररूप आत्मा है, ऐसी इसे दृष्टि अनादि से नहीं है, इसलिए वह पर्याय में स्वलक्ष्य को न लेकर, पर्याय में परलक्ष्य के कारण, आहाहा! ऐसे कारण अब। परलक्ष्य के कारण पराधीन हुआ है। कहो, समझ में आया? वह मिथ्यादृष्टि जिसे सम्यक् चैतन्यमूर्ति भगवान परमानन्द का नाथ भगवानस्वरूप परमात्मा सब आत्मायें हैं। आहाहा! यह सब शरीर, वाणी, मन और यह सब तो फासफूस, जगत की हड्डियों की चमक है। आहाहा! समझ में आया?

प्रभु अन्दर आत्मा तो शक्ति से—स्वभाव से—सामर्थ्य से—गुण से—सत्व से—सत् है, उसका सत्व। आहाहा! उसका कस है। आहाहा! वह तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त वीतरागता के स्वभाव का पिण्ड प्रभु है। उसकी दृष्टि कराने के लिये इसे कहते हैं कि तू भगवान परमब्रह्म है न प्रभु! उसका स्वीकार कर न! तेरा कल्याण होगा। तू संसार से तिरेगा—निकल जायेगा। आहाहा! परन्तु

ऐसी चीज़ की शक्ति का इसे अन्तर में भरोसा नहीं आता। बाहर की चीज़ का इसे भरोसा है। हें! एक बुखार चढ़ा हो, उसे एक कुनैन लेंगे तो बुखार मिट जायेगा, ऐसा इसे भरोसा है। रोटियाँ खाऊँगा तो भूख मिट जायेगी, ऐसा उसका भरोसा है। अन्दर देखता नहीं कि कैसे रोटियाँ जाती हैं और क्या होता है ? हें! आहाहा!

मुमुक्षु : यह उसमें कहाँ घुस जाता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तथापि इसे यह भरोसा कि यह भूख मेरे इसके कारण से मिटेगी, इसके कारण से बुखार जायेगा, अमुक खाऊँगा तो ऐसा होगा, पानी पीऊँगा तो प्यास मिट जायेगी, आहाहा! उसका भरोसा। परन्तु भगवान तीन लोक के नाथ आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्द सर्वज्ञ जिनवरदेव ने कहा हुआ... लोग सच्चिदानन्द कहते हैं स्वामी नारायण में, वह सब अलग वस्तु है। यह माँगने आते हैं न भाई! हम तो उस बोटाद के साथ हैं न स्वामीनारायण का घर साथ में है, उसमें उन्हें वे साधु आते हैं, सच्चिदानन्द—ऐसा बोले। सच्चिदानन्द किसे कहना, यह (खबर नहीं होती)। भगवान सच्चिदानन्द होगा कोई।

यह तो सत्... सत्... है चिदानन्द—ज्ञान और आनन्द का पूर्ण स्वरूप। भाई! तुझे कभी जँचा नहीं। तू कितना और कैसा और कहाँ है, इस बात की तुझे खबर नहीं। इसलिए तेरी खबर सब पर में गयी। बेखबरो हुआ। बेखबर अर्थात्? डबल खबर होगी? बेखबर अर्थात् खबररहित। अरे! प्रभु स्वयं आनन्द का नाथ पूर्ण आनन्द का, आहाहा! समझ में आया? ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द का स्वभाव सागर, उसे आत्मा कहते हैं। वह आत्मा अनादि से वर्तमान पर्याय अर्थात् व्यवहारनय से कर्म के, पर के आधीन होकर चार गति में भटकता है। समझ में आया? कहा न?

ईश्वरनय अर्थात् पर्याय में इसका धर्म है। धर्म अर्थात् इसकी योग्यता है कि निमित्त के आधीन होना। आहाहा! अथवा आत्मा में एक अशुद्धनय का एक धर्म है। अशुद्ध आता है न, भाई! पीछे, ४७ नय में। अनेकरूप दिखना, वह अशुद्धनय का विषय है। भगवान अनेकरूप देखे पर्यायवाला और रागवाला और अशुद्धवाला और भेदवाला। आहाहा! ऐसा भी एक अशुद्धनय का इसका एक धर्म है। ज्ञानचन्दजी! इसका स्वयं का, हों! पर के कारण नहीं। आहाहा! वह पर्याय का ऐसा इसका अनेकपना भासित होना,

ऐसा एक इसका पर्याय का धर्म है। परन्तु वह वास्तविक इसका त्रिकालीस्वरूप नहीं है। आहाहा! त्रिकाली अनन्त आनन्द के धाम के निधान को देखे बिना इसका सम्यग्दर्शन होता नहीं। इसे सत्य जैसी चीज़ है, वैसा द र्शन नहीं होता। जैसा सत्य है, उसके ऊपर इसे भरोसा नहीं आता और उसके बिना इसे जन्म-मरण का अन्त नहीं आता। आहाहा! देवीदासजी! आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, बापू! जरा सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! बाहर से यह क्रिया दया पालन की, व्रत किये, अपवास किये, यात्रायें कीं और भक्ति की, इसलिए धर्म हुआ, यह तीन काल में धर्म नहीं। वह तो शुभभाव पुण्य की क्रिया है। आहाहा! वह भी निमित्त के आधीन होकर अपनी पर्याय में करता है, वह इसका स्वामी जीव स्वयं है। आहाहा! परन्तु उसका स्वामीपना छोड़कर त्रिकाल आनन्द के नाथ का स्वामीपना करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! ऐसा धर्म कैसा होगा यह? जिनवर का धर्म ऐसा होगा? जिनवर में तो छहकाय की दया पालना और व्रत करना और अपवास करना (यह होता है)। अरे, भगवान! तुझे खबर नहीं, भाई! वह तो सब शुभराग की बातें हैं, वह धर्म नहीं। आहाहा! बापू! धर्म का मुख बड़ा है। आहाहा! बड़ा प्रभु अनन्त आनन्द का, यह कहते हैं। देखो! आहाहा!

तो भी... कर्म के आधीन पर्याय में होने पर भी **निश्चयनयकर शक्तिरूप परमब्रह्मस्वरूप है।** आहाहा! इसकी शक्ति और सामर्थ्य, जैसे पीपर का कहा, लाख करोड़ पीपर हो परन्तु एक-एक पीपर में अन्दर में चौसठ पहरी चरपरा रस पड़ा है। चौसठ पहरा अर्थात्? चौंसठ पैसा अर्थात् सोलह आना अर्थात् एक रुपया अर्थात् पूरा। आहाहा! उस पीपर में पूरा-पूरा सोलह आना रुपया रस पड़ा है तो उसे घूंटे, तब बाहर आता है, प्रगट होता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त आत्मायें है। जैसे लाख-करोड़ पीपर हो, वैसे अनन्त आत्मायें हैं। प्रत्येक आत्मा परमब्रह्मस्वरूप है। आहाहा! अन्यमति कहते हैं परमब्रह्म, वह नहीं, हों! वे तो परमब्रह्मस्वरूप व्यापक को परमब्रह्म कहते हैं। वह नहीं। यह तो सर्वज्ञ जिनवरदेव ने परमेश्वर ने केवलज्ञान में देखा है। समझ में आया? यह तो कहा था एक बार, नहीं?

'प्रभु तुम जाणग रीति'... सर्वज्ञ परमेश्वर को कहते हैं

प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाल,
निज सत्ता से शुद्ध सबको पेखता हो लाल....

हे त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर जिनराज! आप ज्ञान में तीन काल और तीन लोक जानते हो। ऐसे इस आत्मा को निज सत्ता अर्थात् अपने अस्तित्व से शुद्ध और पवित्र है, ऐसा आत्मा आप देखते हो। आहाहा! भगवान आत्मा अकेला पवित्रता—ज्ञानपवित्र, दर्शन पवित्र, आनन्द पवित्र ऐसी पूर्ण गुण की अनन्त गुण की राशि, अनन्त गुण का गोदाम... आहाहा! यह मुम्बई में बड़े गोदाम नहीं होते? एक बार माल लेने गये थे। वह क्या कहलाता है? केसर... केसर। केसर के डिब्बे। बड़े गोदाम। माल लेने जाते थे न, पालेज से दुकान से। यह १९६४-६५-६६ की बातें। संवत्—१९६४-६५-६६। अन्तिम ६८। बड़ा गोदाम। ओहोहो! डिब्बे, हजारों केसर के डिब्बे। तब तो सस्ती थी न। अब महँगी हो गयी, कहते हैं। यह तो अनन्त गुण का गोदाम भगवान आत्मा। अनन्त डिब्बियाँ वहाँ होती नहीं कुछ। आहाहा! हें! आहाहा!

अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द ऐसा स्वभाव, अनन्त गुण का डिब्बा स्वयं अनन्त गुण का गोदाम है आत्मा। आहाहा! अरे! इसकी महिमा कैसे बैठे? आहाहा! जहाँ सिगरेट एक-दो पीवे वहाँ ऐसा क्या कहलाता है वह? मजे में आ जाये ऐसे मानो। लज्जत-लज्जत। तुम्हारे शब्द भूल जाते हैं। सिगरेट पीवे तो लज्जत आ जाये। अर..र..र! पामरता, तेरी भिखारी दशा तो तू देख। तम्बाकू की बीड़ी (पी) वहाँ जायका चढ़ गया। अरर..र...! यह चाय जहाँ आधा सेर सवेरे... मस्तिष्क ताजा हो गया। अरे भगवान! क्या हुआ तुझे यह? बापू! तू कौन है? कहाँ तू तेरी तृप्ति मानकर बैठा है, प्रभु! आहाहा!

निश्चयनयकर शक्तिरूप परमब्रह्मस्वरूप... प्रभु आत्मा है। आहाहा! निश्चय अर्थात् सत्यदृष्टि से देखें तो। ऐसा। व्यवहार अर्थात् उपचारिक दृष्टि से देखें तो वह कर्म के आधीन है। आहाहा!

मुमुक्षु : करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करने का नहीं? अन्दर है, ऐसा मानना, वह करना नहीं? माना है कब? ऐसा है, ऐसी मान्यता, वही धर्म—सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! लोगों को क्या सम्यग्दर्शन और क्या उसका विषय और वह चीज़

कितनी, कुछ खबर नहीं होती और यह चलती नहीं अभी तो सम्प्रदाय में तो यह, स्थानकवासी में कहे, सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो, कन्दमूल छोड़ो, अपवास करो। मन्दिरमार्गी में यह भक्ति करो, यात्रा करो, सिद्धचक्र की पूजा करो। दिगम्बर में यह वस्त्र छोड़ो और यह छोड़ो। अरे भगवान! आहाहा!

मुमुक्षु : दिगम्बर धर्म सच्चा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह धर्म, परन्तु कौन सा? यह आत्मा जो विकल्प की वृत्ति रहित परमब्रह्म भगवान, वह दिगम्बर आत्मा है, उसकी दृष्टि करना, वह दिगम्बर धर्म है। समझ में आया? है?

यह जैसे चौंसठ पहरी पीपर चरपराई से भरी हुई है, तब घूँटे तब चौंसठ पहरी चरपराई बाहर आती है न? आयी कहाँ से? घूँटने से आयी? घूँटने से आवे तो कोयले घूँट डाले न! उसमें थी, वह आयी। प्राप्त की प्राप्ति है। आहाहा! यह चौंसठ पहरा चरपरा रस अन्दर में पूर्ण भरा है। भले कद में छोटी और रंग में काली, तथापि उसका सामर्थ्य तो अन्दर पूर्ण है। इसी प्रकार यह भगवान आत्मा, आहाहा! पर्याय में—इसकी अवस्था में राग, द्वेष और विकार भासित होता है। है, तथापि वस्तुरूप से है, उसमें चौंसठ पहरा अर्थात् रुपया-रुपया आनन्द, पूर्णस्वरूप, पूर्ण सर्वआनन्द, सर्वज्ञान, सर्वश्रद्धा, सर्वअनुभव अन्तर शक्ति, हों! ऐसी सर्व सम्पूर्ण अन्दर शक्तियाँ पड़ी हैं। आहाहा! उसकी विद्यमान को विद्यमान को विद्यमानरूप से अन्दर में अनुभव करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और इसका नाम धर्म है। समझ में आया? ऐसा धर्म कहाँ से? और कितने ही कहते हैं, ऐसा धर्म सोनगढ़ ने नया निकाला है। अरे! नया नहीं, बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! अनादि का वीतरागमार्ग, बापू!

मुमुक्षु : प्रगट तो यहाँ से हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रगट, वह तो उद्घाटन किया, परन्तु माल तो यह है या नहीं? सेठ भी कहते नहीं? उद्घाटन किया, ऐसा सेठ कहते हैं। आहाहा! यह अन्तिम गाथा है इसमें। सोलहवान सोना है, वह पूर्णानन्द प्रभु आत्मा है, उसे बतलानेवाली यह अन्तिम १६वीं गाथा है। पन्द्रह गाथायें हो गयी हैं, यह १६वीं है। १०७। १०७ के बाद दूसरा अधिकार लेंगे। २१४ गाथा है अन्तिम अधिकार की। पहले की १२३ हो गयीं।

दूसरे की यह १०७, १०७ बाकी है, अब दूसरे अधिकार की। आहाहा! नीचे है, आयेगा बाद में। आहाहा!

इन जीवों को ही परमविष्णु कहना,... विष्णु कोई जगत में व्यापक दूसरा आत्मा है, ऐसा नहीं। यह भगवान ही परम विष्णु है। आहाहा! अनन्त गुण में व्यापक ऐसा भगवान आत्मा, उसे यहाँ आत्मा को परम विष्णु कहते हैं परमात्मा। कोई विष्णु जगत का कर्ता है, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! समझ में आया? अरिहन्त और परमात्मा सर्वज्ञ जिनवर हुए, अनन्त सिद्ध हुए, अरिहन्त भी लाखों केवली महाविदेह में विराजते हैं। तीर्थंकर बीस हैं। केवली लाखों हैं, सिद्ध अनन्त हैं। वह सब दशा को प्राप्त हुए कहाँ से? वह अन्दर में है, उसमें से आयी थी। प्राप्त की प्राप्ति है। है, उसमें से आती है। आहाहा! इसकी खबर नहीं होती और धर्म करो, धर्म करो। कहाँ धर्म पड़ा है कहीं? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! सम्मेदशिखर की यात्रा करो, धर्म होगा। वह सम्मेदशिखर तो यह है।

अनन्त अनन्त गुण का सागर भगवान आत्मा... आहाहा! समझ में आया? उसमें जा न! उसमें आरूढ़ हो, इसका नाम यात्रा है। आहाहा! देव परमात्मा देव तेरा अन्दर विराजता है। उस देव के दर्शन कर तो तुझे यात्रा होगी। आहाहा! ऐसी बातें अब। दुनिया से अलग। पालीताणा यात्रा करके आये थे न, तम्बोली। तुम्हारे पिता। फिर यहाँ कहा, यात्रा-बात्रा वह पुण्य है; धर्म नहीं। भड़क गये। वह तो तुम्हारी माँ के कारण सब रहा था। आहाहा! वे भड़के थे। स्वाध्यायमन्दिर में आये थे न? मौके से आया अधिकार ऐसा। बापू! यह पालीताणा, गिरनार और सम्मेदशिखर की यात्रा वह तो अशुभभाव से बचने के लिये शुभभाव है। कहीं धर्म है और उससे कल्याण होगा, (ऐसा नहीं है)।

मुमुक्षु : परन्तु यात्रा करके आवे, वहाँ तक के पाप तो धुल जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी पाप धुलते नहीं। मिथ्यात्व का बड़ा पाप है, वह पाप धुलता होगा वहाँ? आहाहा! मिथ्याश्रद्धा—मिथ्यात्व बड़ा पाप। मिथ्यात्व बड़ा संसार, मिथ्यात्व बड़ा पाप, मिथ्यात्व बड़ा आस्रव। आहाहा! उसे धोने के लिये तो भगवान पूर्णानन्द के नाथ का... यह अपने आ गया न दोपहर में, नहीं? त्रिकाली आनन्द के नाथ का अवलम्बन लेने से निजपद की प्राप्ति होती है, भ्रान्ति का नाश होता है, ऐसा आया

था। आया था ? समयसार। आहाहा ! मिथ्यात्व का—भ्रमणा का नाश तो, परमात्मा स्वयं आनन्दकन्द नाथ में जाने से उसका आलम्बन लेने से मिथ्यात्व का नाश होता है। भगवान साक्षात तीन लोक के नाथ समवसरण में विराजते हैं अभी महाविदेह में, उनकी शरण में जाये तो वहाँ कुछ मिथ्यात्व का नाश हो, ऐसा नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? क्योंकि वे तो परद्रव्य हैं। परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाने से तो तुझे राग ही होगा। भले शुभ हो। आहाहा ! शुभ होता है। धर्मी को भी आत्मा का भान हो, उसे अशुभ से बचने के लिये शुभ होता है। परन्तु वह शुभ धर्म नहीं है। व्यवहार है। व्यवहार होता है परन्तु वह व्यवहार पुण्य का कारण है। आहाहा ! भगवान आत्मा ! आहाहा ! अरे ! यह चोट लगना, बापू ! यह कहीं कम साधारण बात नहीं। हें !

परमब्रह्मस्वरूप, आहाहा ! इस जीव को परमविष्णु कहा जाता है। भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उस आत्मा को विष्णु कहा जाता है। कोई विष्णु कर्ता जगत का है, ऐसा है नहीं। आहाहा ! परमविष्णु। परमशिव। शिव अर्थात् शंकर। यह परमशिव आत्मा है। कोई शंकर दूसरा है, ऐसा नहीं। आहाहा ! तू ही ब्रह्मा, तू ही विष्णु, तू ही शंकर। आहाहा ! कैसे जँचे ? थोड़ी साधारण बात में जहाँ वह हो जाये, आहाहा ! यह आता है भक्तामर में। तू ही ब्रह्मा, तू ही विष्णु। है न ? संस्कृत के प्रोफेसर है न। आहाहा !

कहते हैं, परमशिव। णमोत्थुणं में आता है। शिवमयल। णमोत्थुणं में आता है न ? णमोत्थुणं, अरिहंताणं, भगवंताणं, ऐ संघवी ? णमोत्थुणं में आता है पीछे ? शिवमयल का अर्थ शिवम, ऐसा होता है। शिवमयल, अचलं। शिवमं अचलं, यह आता है। रोग रहित। णमोत्थुणं में आता है। वह शिव अर्थात् यह। आहाहा ! निरुपद्रव चीज़ है। परम आनन्द का नाथ पूर्ण शुद्धता का पिण्ड प्रभु, उसे यहाँ शिव कहा जाता है। कोई दूसरा शंकर है और पार्वती का पति है, वह (बात) यहाँ नहीं है। समझ में आया ? यहाँ तो जिनवरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा वीतराग साक्षात् महाविदेह में सीमन्धर (भगवान विराजते हैं)। इसकी लोग टीका करते हैं, लो। भगवान है न महाविदेह में है, ऐसा लेख नहीं लिखना चाहिए। ऐसा होता है, बापू ? कोई नागपुर का व्यक्ति है। बड़ा लेख आया है जैनमित्र में। यह सब स्वर्ग और नरक, सब कुछ है नहीं, सब कल्पनायें हैं। अररर ! गजब ! ऐसे लेख ! ऐसे खगोल, भूगोल के साथ मिलावे। भाई ! खगोल, भूगोल छोड़ न

एक ओर। आहाहा! वीतराग परमात्मा कहते हैं, उस बात में फेरफार कहीं नहीं है। समझे? तेरी नजरों में फेरफार है, भाई! वह तो सब स्वर्ग, नरक कुछ नहीं। जगत का अन्त आ जाता है, ऐसा कहता है। यहाँ समुद्र हुआ, वह अन्त आ गया। अरे.. प्रभु! महाविदेह और सीमन्धर भगवान, ऐसा कितने ही कहते हैं, वह सब कल्पनायें हैं, ऐसा कहता है। अर र र! प्रभु! यह तू क्या करता है? ऐसा? ऐसा जैनमित्र में नहीं डालना चाहिए। वह स्वतन्त्र कोई नास्तिक पत्र में डाले, वह अलग बात। यह जैनमित्र निकलता है न? सूरत। ऐसे में नहीं डालना चाहिए?

जैन में तो जैन की बात जो परमात्मा, उसकी अस्ति की बात डालना चाहिए। अत्यन्त नास्तिक। अरे! ऐसी बात। वह तो यहाँ तक कहता है कि इस समुद्र को ऐसे देखते हैं बाद में तो अन्त आ जाता है। वहाँ और द्वीप और वीप कुछ नहीं। अर र र! अरे! तुझे खबर नहीं, बापू! यह जहाज आदि जाते हैं, उनकी दिशायें बदल जाती हैं, इससे आगे नहीं जा सकते, इसलिए तुझे खबर नहीं कि आगे क्या है। समझ में आया? आहाहा! बहुत कठिन आया है कल। जैनमित्र ऐसा? बहुत नास्तिक... नास्तिक। भगवान नहीं और महाविदेह नहीं और सीमन्धर भगवान नहीं। मोक्ष क्या? यह आत्मा की दशा। मोक्ष फिर कहीं है न सिद्धशिला पर (वह कुछ नहीं)। भगवान! सब है, बापू, तुझे खबर नहीं, भाई! आहाहा!

वह शिव तू है। है? **यही अभिप्राय लेकर कोई एक ब्रह्ममयी जगत कहते हैं,...** कोई एक ब्रह्ममय सब होकर एक ब्रह्म आत्मा है, ऐसा कहता है जगत, वह झूठी बात है। ब्रह्म स्वयं ही आत्मा परमब्रह्म है। एक-एक आत्मा परमब्रह्म है। सब होकर परमब्रह्म व्यापक है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! **विष्णुमयी कहते हैं,...** दूसरा कोई विष्णु नहीं। भगवान आत्मा स्वयं विष्णु है। **कोई एक शिवमयी कहते हैं।**

यहाँ पर शिष्य ने प्रश्न किया कि तुम भी जीवों को परमब्रह्म मानते हो, तथा परमविष्णु, परमशिव मानते हो, तो अन्यमतवालों को क्यों दूषण देते हो? तुम तो परमब्रह्म, परमविष्णु, परम शिव भगवान आत्मा आनन्द का नाथ विराजता है अन्दर भगवान, उसे परमब्रह्म विष्णु और शिव कहते हो तो दूसरे कहते हैं, उन्हें तुम दूषण क्यों देते हो?

उसका समाधान—हम तो पूर्वोक्त नयविभागकर केवलज्ञानादि गुण की अपेक्षा वीतराग सर्वज्ञप्रणीत मार्ग से... आहाहा! गुरु कहते हैं, हम तो पूर्वोक्त—पूर्व में कहा, वह नयविभाग निश्चयनय की अपेक्षा से (कहते हैं)। पर्याय में संसार है, दुःख है, इस बात को गौण करके निश्चयनय की अपेक्षा से केवलज्ञान, पूर्णज्ञान, पूर्ण आनन्दगुण की अपेक्षा **वीतराग सर्वज्ञप्रणीत मार्ग से...** यहाँ तो त्रिलोक के नाथ वीतराग ने कहा हुआ मार्ग... आहाहा! भगवान ने दिव्यध्वनि द्वारा परमेश्वर वीतराग की दिव्यध्वनि द्वारा मार्ग आया। है न सर्वज्ञप्रणीत? सर्वज्ञ ने कहा हुआ। उनके मार्ग से **जीवों को ऐसा मानते हैं, तो दूषण नहीं है।** इस प्रकार से आत्मा है, ऐसा मानना दूषण नहीं। परन्तु सब व्यापक है, एक है—ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! अनादि जगत के तत्त्व ऐसे के ऐसे हैं। किसी ने उन्हें किया नहीं, कोई उनका कर्ता नहीं। जगत ऐसा का ऐसा अनादि तत्त्व, अनन्त आत्मायें, अनन्त रजकण। ओहोहो!

इस तरह वे नहीं मानते हैं। इस प्रकार अन्यमति नहीं मानते। हम तो इस आत्मा को परमब्रह्म, विष्णु आदि स्वभाव और शक्ति से कहते हैं। इस प्रकार अन्य नहीं मानते। **वे एक कोई पुरुष जगत का कर्ता-हर्ता मानते हैं।** वह कोई नहीं, कर्ता-हर्ता है नहीं। ब्रह्मा, है न? उत्पन्न करे, विष्णु रक्षण करे, शंकर संहार करे। यह तो उत्पाद-व्यय-ध्रुव शक्ति को ऐसे तीन आरोप करके बातें की है। बाकी तो आत्मा के प्रत्येक में उत्पाद-व्यय-ध्रुव उसकी शक्ति है। नयी अवस्था का उत्पन्न होना, पुरानी अवस्था का व्यय होना, ध्रुवतारूप से कायम रहना। तत्त्वार्थसूत्र, उमास्वामी। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। इन तीन के विशेषण ब्रह्मा, विष्णु, महेश सिद्ध कर दिये। समझ में आया? आहाहा!

इसलिए उनको दूषण दिया जाता है... है? **क्योंकि जो कोई एक शुद्ध-बुद्ध नित्य मुक्त है, उस शुद्ध-बुद्ध को कर्ता-हर्तापना हो ही नहीं सकता, और इच्छा है वह मोह की प्रकृति है। भगवान मोह से रहित हैं, इसलिए कर्ता-हर्ता नहीं हो सकते।** जगत का कर्ता हो, वह तो इच्छा हुई। इच्छा हुई तो दोष है। ऐसे भगवान नहीं हो सकते। आहाहा! **कर्ता-हर्ता मानना प्रत्यक्ष विरोध है। हम तो जीवराशि को परमब्रह्म मानते हैं,...** आहाहा! जैसे लाख रत्न हो, करोड़ रत्न एक प्रकार के, वे सब सोलहवान सोने के प्रकाश के पुंज हैं। इसी प्रकार यह अनन्त आत्मायें रत्न हैं, चैतन्यरत्न। आहाहा! प्रत्येक भिन्न है। कोई

तत्त्व किसी में मिल नहीं जाता। तथा कोई तत्त्व किसी को करता नहीं। आहाहा!

अरे! ऐसा अवसर मिला और नहीं करे तो यह कब करेगा? भाई! नरक और निगोद में अनन्त बार रहा। एकेन्द्रिय में अनन्त पुद्‌गलपरावर्तन किये। आहाहा! निगोद में। मनुष्यपना मिलना मुश्किल है, उसमें फिर पंचेन्द्रियपना आयुष्य लम्बा, दीर्घ आयुष्य, निरोगता, उसमें भी जैन सम्प्रदाय, उसमें भी जैन सम्प्रदाय की सत्य बात ऐसी मिलना महामुश्किल है। समझ में आया? उसे करने योग्य तो यह है। ऐसा परमब्रह्म भगवान है, अन्दर में उसका स्वीकार करना चाहिए। आहाहा! पर्यायबुद्धि छोड़कर भगवान आत्मा केवलज्ञान; केवल अर्थात् अकेला ज्ञान; वह केवलज्ञान पर्याय नहीं। अकेला ज्ञानसामान्य, अकेला दर्शनसामान्य, अकेला आनन्द एकरूप, अकेला वीर्यसामान्य, ऐसे अनन्त गुण सामान्य शक्ति के—स्वभाव के सामर्थ्यरूप है, उसकी दृष्टि करके उसका अनुभव करना, वह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया?

अनुभव चिन्तामणि रत्न, अनुभव है रसकूप,
अनुभव मार्ग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप॥

यह ऐसे आत्मा का अनुभव, उसे अनुसरकर आनन्द का वेदन करना। आहाहा! वह अनुभव मोक्ष का मार्ग। ऐसा परमब्रह्म भगवान आत्मा का अनुभव—वेदन पर्याय में करना। जो राग का वेदन अनादि का है, वह जहर का वेदन है। आहाहा! समझ में आया? यह विषयों में और भोग में जो आनन्द है, वह तो जहर का आनन्द है।

मुमुक्षु : उसका नमूना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नमूना नहीं। यह कहता है वह रजनीश। भोगानन्द में भी आनन्द का अनुभव है। अरे... चल चल! आहाहा! था तो बहुत वह सेठ के उसमें—तारणपंथ में था वह। रजनीश नहीं? सब बदल गया, फिर गया। सब फिर गया पूरा। जैनदर्शन को पूरा बदल डाला। आहाहा! कोई कर्ता है। ऐसा देखता है, एक फोटो आया था। सर्वव्यापक हो नहीं मानो। धूल भी नहीं। फोटो आया था एक बार। उस रजनीश का तो नहीं कहते थे अपने? जादूगर है न? के. लाल बड़ा जादूगर अपना बनिया है। बहुत लाखों पैदा किये। जादूगर, वह जादूगर। यहाँ दो-तीन बार—चार बार आ गया है। इन्दौर में आया था, यहाँ आया था, राजकोट में आया था। बड़ा जादूगर,

जवान व्यक्ति। पचास-इक्यावन वर्ष की उम्र है। परन्तु जगत को ऐसी जादू की चालाकी हाथ की है। लाखों पैदा करता है, लाखों रुपये। वह हमारे पास आया था वहाँ राजकोट। महाराज! श्वेताम्बर जैन है। महाराज! हमारा सब धतंग है। हमारे पास क्या करे ? सब हमारा धतंग है यह। मर जायेगा, कहा ऐसे धतंग के पैसा पैदा करके। पूर्व का पुण्य... दो-तीन पुस्तकें दी थीं। फिर दी, दो-तीन पुस्तकें दी थीं। है नरम व्यक्ति। वह ऐसा कहता था कि रजनीश मुझे बुलाने आया था, बडोदरा में मोटर भेजी थी। यह तो जादूगर, हिन्दुस्तान का जोरदार, हमारे पास तीन-चार बार आ गया था। आहाहा!

मुमुक्षु : चमत्कार....

पूज्य गुरुदेवश्री : चमत्कार कब था, हाथ की चालाकी है। चमत्कार धूल में भी नहीं। आहाहा! वह तो हमारे पास बताया था, यहाँ पण्डितजी थे हिम्मतभाई, डोरी का। वह तो चालाकी। बाकी कुछ नहीं होता, धूल। यहाँ बताया था थोड़ा। आया था। व्यक्ति—नरम व्यक्ति है परन्तु ऐसी पुण्याई लेकर आया है तो महिमामण्डित हो गया। वह ऐसा कहता था कि वडोदरा में मेरी जादूगरी की विशेषता और माहात्म्य में मुझे लेने आये थे, मोटर लेकर आये थे रजनीश। मैं नहीं गया। कहो, रजनीश को जादूगर से कुछ लेना है। आहाहा!

भगवान तीन लोक का नाथ पूर्णानन्द प्रभु यहाँ है, यहाँ से निकाल न, यहाँ निकले ऐसा है। यह खान है अन्दर। आहाहा! चैतन्यनिधान। देखो! यह कहते हैं न, देखो! आहाहा! **भगवान मोह से रहित हैं, इसलिए कर्ता-हर्ता नहीं हो सकते। कर्ता-हर्ता मानना प्रत्यक्ष विरोध है। हम तो जीव-राशि को परमब्रह्म मानते हैं, उसी जीवराशि से लोक भरा हुआ है।** आहाहा! यहाँ अनन्त आत्मायें हैं, यहाँ, सूक्ष्म। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति इस जगह अनन्त हैं। ऐसे पूरे लोक में हैं। सूक्ष्मरूप से आत्मा अनन्त है। आहाहा! वह सब परमब्रह्म है, परमात्मा है। आहाहा! वह कहे, एक परमात्मा है। यहाँ कहते हैं, अनन्त परमात्मा हैं। शक्ति और स्वभाव की सामर्थ्य से सब भगवान परमात्मा हैं। एक पंक्ति में बैठनेवाले सब समान हैं। आहाहा!

हम तो जीव-राशि को परमब्रह्म मानते हैं, उसी जीवराशि से लोक भरा हुआ है। अन्यमती ऐसा मानते हैं, कि एक ही ब्रह्म अनन्तरूप हो रहा है। ब्रह्म एक है, वह

अनन्तरूप हुआ है। अंश है उसका। पर्याय दिखती है न? पर्याय को देखता है, अर्थात् भगवान है, उसका यह पर्याय अंश है। परन्तु पूरा द्रव्य है वह? आहाहा! अंश को देखता है यह और अंश में लीनता अनादि की है। इसलिए मानो यह अंश है, वह पूर्णानन्द प्रभु कोई है, उसका यह अंश है। यह पूर्णानन्द प्रभु आत्मा है, उसका यह पर्याय अंश है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन का विषय... यह सब कह-कहकर सार तो यह कहना चाहते हैं कि तू त्रिकाली है, वहाँ दृष्टि कर। उसका आश्रय ले, वहाँ शरण में जा, तब तुझे सम्यग्दर्शन होगा। तब तुझे धर्म की शुरुआत होगी। आहाहा! ऐसा है, भाई! इसके बिना सब व्रत, तप और मुनिपना लेकर बैठे, (वह सब) थोथा है, सब बिना एक के (शून्य हैं)। समझ में आया? है?

जो एक सबरूप हो रहा है, ऐसा कहते हैं। **तो नरक निगोद स्थान को कौन भोगे?** बापू, नरक और निगोद है, भाई! आहाहा! उस पर्याय का भोगना एक ही ब्रह्म हो तो भोगे कौन? आहाहा! **इसलिए जीव अनन्त हैं। इन जीवों को ही परमब्रह्म, परमशिव कहते हैं, ऐसा तू निश्चय से जान।** वास्तव में उसे ऐसा जान। भगवान पूर्णानन्दस्वरूप वर्तमान पर्याय का नाथ भगवान पूर्ण है। आहाहा! वह पर्याय उसका स्वीकार करे पूर्ण का, तब उसे सम्यग्दर्शन का—धर्म का पहला सोपान शुरु होता है। समझ में आया?

इस प्रकार सोलहवानी के सोने के दृष्टान्त द्वारा... सोलहवान सोना। इसी प्रकार प्रत्येक आत्मा सोलहवान अर्थात् पूर्ण आनन्दकन्द स्वरूप है, ऐसा। **केवलज्ञानादि लक्षण से सब जीव समान हैं, इस व्याख्यान की मुख्यता से तेरह दोहा-सूत्र कहे।** तेरह कहे। **इस तरह मोक्षमार्ग, मोक्षफल और मोक्ष, इन तीनों को कहनेवाले दूसरे महाधिकार में चार अन्तरस्थलों का इकतालीस दोहों का महास्थल समाप्त हुआ।** लो! **उसमें शुद्धोपयोग...** कहा। आहाहा! भगवान आत्मा का जो शुद्धोपयोग है, पुण्य और पाप के भाव, दया, दान, व्रत के, वे सब अशुद्धोपयोग हैं, वह मलिन है। भगवान आत्मा अन्दर में अपना शुद्धोपयोग प्रगट करे, वह धर्म है। शुभभाव धर्म नहीं, अशुभभाव धर्म नहीं, शुद्धोपयोग वह धर्म है। आहाहा! मुनि भी पहले शुद्धोपयोग अंगीकार करते हैं, ऐसा

पाठ शास्त्र में है। मोक्षमार्गप्रकाशक। शुद्धोपयोग का नाम मुनिपना। यह पंच महाव्रत, वह कोई मुनिपना नहीं। आहाहा! समझ में आया? मोक्षमार्गप्रकाशक में है। मुनि शुद्धोपयोग वीतरागी परिणाम (को अंगीकार करते हैं)। दया, दान, व्रत के परिणाम तो राग परिणाम हैं। यहाँ भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप पूर्ण परमब्रह्म के आश्रय से होनेवाले परिणाम, वे शुद्धोपयोग हैं। वह शुद्धोपयोग, धर्म है। वीतरागमार्ग में शुद्धोपयोग, धर्म है और शुद्धोपयोग, वह जैनशासन है। आहाहा! समझ में आया? यह १४-१५ गाथा में कहा, समयसार।

जो कोई इस भगवान आत्मा को अबद्धस्पृष्ट जाने, सामान्य को जाने, भेदरहित अभेद को जाने, आहाहा! विकाररहित निर्विकारी पूर्णानन्द को जाने, ऐसा जो भाव, वह शुद्धोपयोग, वह जैनशासन। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें! परन्तु ऐसा धर्म कहाँ से? अपने जैन में तो छहकाय की दया पालना। पृथ्वीकाय और अपकाय, एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिया, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिया... आता है न संघवी? इच्छामि पडिकमणा में नहीं? तस्स मिच्छामि दुक्कडम्। बापू! यह तो सब व्यवहार की बातें हैं, भाई! आहाहा! तावकाय माणेणं ठाणेणं जाणेणं। क्या उसमें? ...अप्पाणं वोसरे। श्रीमद् कहते हैं न? पूरे आत्मा को छोड़ देता है। श्रीमद् में आता है। आहाहा! यह तो आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु पूर्ण शुद्ध का आश्रय लेकर अशुद्ध आत्मा को छोड़ता है, उसका नाम अप्पाणं वोसरे हैं। आहाहा! कल आया था न? अनात्मा का परिहार। आहाहा!

शुद्ध भगवान आत्मा, जिसका अस्तित्व ही पवित्र है और जिसका अस्तित्व पूर्ण है। आहाहा! ऐसा पूर्ण और पवित्रता पूर्ण, उसका आश्रय लेना, इसका नाम निज स्वरूप का अवलम्बन, इसका नाम धर्म है। आहाहा! यह शुद्धोपयोग। **वीतरागस्वसंवेदनज्ञान...** इस शुद्धोपयोग को ही कहते हैं। वीतरागस्वसंवेदनज्ञान। आहाहा! वह आचरण की अपेक्षा से वीतरागता थी। यहाँ रागरहित स्वसंवेदनज्ञान। पुण्य-पाप के विकल्प नहीं, वह सब बन्धन। भगवान आत्मा का रागरहित वीतरागी स्व—अपना सं—प्रत्यक्ष वेदन। वीतरागी पर्याय में वेदन होना, वह धर्म है। आहाहा! ऐसा धर्म! इसीलिए कहते हैं, निश्चय है। परन्तु निश्चय अर्थात् सत्य, ऐसा सत्य है।

परिग्रहत्याग... रागादि परिग्रह का त्याग। आहाहा! **और सब जीव समान हैं, ये कथन किया।** लो। सब जीव समान हैं, यह कहा।

गाथा - १०८

अत ऊर्ध्वं 'परु जाणंतु वि' इत्यादि सप्ताधिकशतसूत्रपर्यन्ते स्थलसंख्याबाहिर्भूतान् प्रक्षेपकान् विहाय चूलिकाव्याख्यानं करोति इति-

२३१) परु जाणंतु वि परम-मुणि पर-संसग्गु चयंति।
पर-संगइँ परमप्पयहँ लक्खहँ जेण चलंति।।१०८।।

परं जानन्तोऽपि परममुनयः परसंसर्गं त्यजन्ति।
परसंगेन परमात्मनः लक्ष्यस्य येन चलन्ति।।१०८।।

परु जाणंतु वि इत्यादि पदखण्डनारुपेण व्यचाख्यानं क्रियते। परु जाणंतु वि परद्रव्यं जानन्तोऽपि। के ते। परम-मुणि वीतरागस्वसंवेदनज्ञानरताः परममुनयः। किं कुर्वन्ति। पर संसग्गु चयंति परसंसर्गं त्यजन्ति निश्चयेनाभ्यन्तरे रागदिभावकर्मज्ञानावरणादि-द्रव्यकर्मशरीरादि-नोकर्म च बहिर्विषये मिथ्यात्वरागादिपरिणता-संवृतजनोऽपि परद्रव्यं भण्यते। तत्संसर्गं परिहरन्ति। यतः कारणात् पर-संगइँ [?] पूर्वोक्तबाह्याभ्यन्तर परद्रव्यसंसर्गेण परमप्पयहं वीतरागनित्या-नन्दैकस्वभावपरमसमरसीभावपरिणतपरमात्म-तत्त्वस्य। कथंभूतस्य। कक्खहं लक्ष्यस्य ध्येय-भूतस्य धनुर्विधाभ्यासप्रस्तावे लक्ष्यरुपस्यैव जेण चलंति येन कारणेन चलन्ति त्रिगुप्तिसमाधेः सकाशात् च्युता भवन्तीति। अत्र परमध्यानाविधातकत्वान्मिथ्यात्वरागादिपरिणामस्तत्परिणतः पुरुषरुपो वा परसंसर्गस्त्यजनीय इति भावार्थः।।१०८।।

आगे 'पर जाणंतु वि' इत्यादि एक सौ सात दोहा पर्यंत तीसरा महाधिकार कहते हैं, उसी में ग्रंथ को समाप्त करते हैं-

परम मुनीश्वर पर को जाने तुरत तजें पर का संसर्ग।
परमात्मा का ध्यान चलित होने में कारण है पर-संग।।१०८।।

अन्वयार्थ :- [परममुनयः] परममुनि [परं जानंतोऽपि] उत्कृष्ट आत्मद्रव्य को जानते हुए भी [परसंसर्ग] परद्रव्य जो द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म उसके सम्बन्ध को [त्यजंति] छोड़ देते हैं। [येन] क्योंकि [परसंगेन] परद्रव्य के सम्बन्ध से [लक्ष्यस्य] ध्यान करने योग्य जो [परमात्मनः] परमपद उससे [चलंति] चलायमान हो जाते हैं।

भावार्थ :- शुद्धोपयोगी मुनि वीतराग स्वसंवेदनज्ञान में लीन हुए परद्रव्यों के

साथ सम्बन्ध छोड़ देते हैं। अंदर के विकार रागादि भावकर्म और बाहर के शरीरादि ये सब परद्रव्य कहे जाते हैं। वे मुनिराज एक आत्मभाव के सिवाय सब परद्रव्य का संसर्ग (सम्बन्ध) छोड़ देते हैं। तथा रागी, द्वेषी, मिथ्यात्वी, असंयमी जीवों का सम्बन्ध छोड़ देते हैं। इनके संसर्ग से परमपद जो वीतरागनित्यानंद अमूर्तस्वभाव परमसमरसीभावरुप जो परमात्मतत्त्व ध्यावने योग्य है, उससे चलायमान हो जाते हैं, अर्थात् तीन गुप्तिरुप परमसमाधि से रहित हो जाते हैं। यहाँ पर परमध्यान के घातक जो मिथ्यात्व रागादि अशुद्ध परिणाम तथा रागी-द्वेषी पुरुषों का संसर्ग सर्वथा त्याग करना चाहिये, यह सारांश है।।१०८।।

गाथा-१०८ पर प्रवचन

आगे 'परु जाणंतु वि' इत्यादि एक सौ सात दोहा पर्यन्त तीसरा अधिकार कहते हैं,... लो। है न? १०७। १०७ हुए यह, १०७ रहे दूसरे भाग के। पहले भाग के १२३ हो गये हैं।

२३१) परु जाणंतु वि परम-मुणि पर-संसग्गु चयंति।
पर-संगइँ परमप्पयहँ लक्खहँ जेण चलंति।।१०८।।

अन्वयार्थ :— परममुनि... धर्मात्मा **उत्कृष्ट आत्मद्रव्य को जानते हुए...** आहाहा! देखो! इसका नाम मुनि। उत्कृष्ट बात लेनी है न? **परममुनि... 'परं जानंतोऽपि'** उत्कृष्ट भगवान आनन्द के नाथ को अनुभव करता हुआ। आहाहा! **परद्रव्य जो द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म उसके सम्बन्ध को छोड़ देते हैं।** आहाहा! आत्मा के आनन्द का स्वीकार करने के पश्चात् भी अन्दर स्वरूप में स्थिर होने के लिये... आहाहा! मुनिराज परद्रव्य को छोड़ते हैं, स्वद्रव्य को ग्रहते हैं, द्रव्यकर्म को छोड़ते हैं, भावस्वरूप भगवान आत्मा को ग्रहते हैं, भावकर्म को छोड़ते हैं अर्थात् रागादि को छोड़ते हैं, निर्विकारी स्वभाव को ग्रहते हैं। नोकर्म को छोड़ते हैं, निमित्त सब, अकेला आनन्द का नाथ जिसे दृष्टि में ग्रहते हैं। आहाहा! उसे (पर सम्बन्ध को) छोड़ देते हैं।

क्योंकि परद्रव्य के सम्बन्ध से... आहाहा! चाहे तो भगवान तीन लोक के नाथ,

परन्तु परद्रव्य का सम्बन्ध करने से राग होता है। आहाहा! **परद्रव्य के सम्बन्ध से ध्यान करनेयोग्य जो परमपद उससे चलायमान हो जाते हैं।** भाषा देखो! कहते हैं कि राग का और परद्रव्य का संसर्ग करने से उसकी ओर लक्ष्य करने से स्वरूप में से चलायमान होते हैं। आहाहा! स्वरूप जो अपना, उसका अवलम्बन लेकर स्थिर होना, दृष्टि करके स्थिर होना, ऐसा स्वद्रव्य में न रहकर, परद्रव्य का जो संसर्ग करता है, वह वस्तु में से चलायमान हो जाता है, वस्तु में से हट जाता है। आहाहा! कहो, वीतराग कहते हैं कि हमारा आश्रय करने जायेगा तो तेरे स्वरूप में से चलायमान हो जायेगा। आहाहा! परद्रव्य में आया या नहीं यह ? विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, पौष शुक्ल १३, सोमवार
दिनांक-०३-०१-१९७७, गाथा - १०८, १०९, प्रवचन-१७६

परमात्मप्रकाश, १०८ गाथा, उसका भावार्थ। **शुद्धोपयोगी मुनि...** विशेष द्रव्य के ध्येय को पूर्ण प्राप्त करने की जिसे भावना (वर्तती है), उसे यहाँ मुनि कहते हैं। सम्यग्दर्शन को ध्येय है द्रव्य, परन्तु अभी स्थिरता की कचास है। परद्रव्य की ओर के झुकाव में उसके विकल्प आते हैं। यहाँ स्वद्रव्य का जिसे ध्येय है, साधनेयोग्य तो ध्येय जो चैतन्यस्वभाव परमात्मस्वरूप, वह जिसने लक्ष्य में, ध्येय में लिया है, ऐसा जो समकिती, उसे परद्रव्य के संग से जो रागादि हों, वह उसे छोड़नेयोग्य है। परद्रव्य का संग छोड़नेयोग्य है और परद्रव्य के संग से राग (होता है), वह भी छोड़नेयोग्य है। ऐसा तो सम्यग्दृष्टि मानता है। परन्तु अब यहाँ तो मुनि की बात ली है। आहाहा!

शुद्धोपयोगी मुनि... देखो, वहाँ से शुरु किया है यहाँ। मुनि हैं, वे शुद्धोपयोगी होते हैं। भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञान का सागर, जिसने अपने शुद्धोपयोग में ध्येय बनाया है, आहाहा! ऐसा जो शुद्धोपयोगी मुनि। अब देखो यहाँ बात तो ऐसी की है। यह पंच महाव्रत और व्यवहारिक क्रिया है, वह कहीं मुनिपना नहीं। निश्चय से तो यति की—मुनि की बाह्य क्रिया जितनी है पंच महाव्रतादि, उसका तो द्रव्यस्वभाव में अभाव है। समझ में आया? अलिंगग्रहण में यह कहा है, यति की बाह्यक्रिया का जिसमें अभाव है। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द और पूर्णज्ञानस्वभाव वस्तु में यति की बाह्य क्रिया का (अभाव है)। पक्षी आया, दरवाजा खुला रह गया है। कबूतर।

जिसका उपयोग, शुद्धोपयोग में ध्येय पूर्ण स्वरूप है, ऐसी जिसे शुद्धोपयोग में जमावट आचरण की हुई है। यह आचरण। वे कहते हैं न, सम्यग्दर्शन और ज्ञान का यहाँ क्या काम है? वह कहाँ धर्म है। यह आचरण बाह्य की क्रिया, वह धर्म है। ऐसा नहीं, भाई! यह मुनि के जो बाह्य आचरण पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण आदि तो वस्तु के स्वरूप में है नहीं। इसलिए उसे साधना है और उससे साध्य होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान का स्वभाव परमात्मस्वरूप आत्मा

विराजता है, उसे जिसने ध्येय में लेकर, शुभ और अशुभ परिणाम जो है, उनसे भिन्न पड़कर, जिसे शुद्धोपयोग प्रगट हुआ है। आहाहा! वह मुनि **वीतराग स्वसंवेदनज्ञान में लीन हुए...** आहाहा! वह रागरहित वीतराग स्वसंवेदनज्ञान। अपने से ज्ञान वेदन में जानने में आवे, ज्ञानस्वरूपी भगवान ज्ञान के वेदन में आवे, आहाहा! वह उसमें लीन हुए। **परद्रव्यों के साथ सम्बन्ध छोड़ देते हैं।** यह अपेक्षा। स्वरूप वीतरागस्वरूपी भगवान आत्मा वीतरागी ज्ञानस्वरूप आत्मा त्रिकाल, उसकी पर्याय में वीतरागी स्वसंवेदन उपयोग को प्रगट करके, आहाहा! जो उसमें लीन है, उसे परद्रव्य का संसर्ग नहीं होता।

मुमुक्षु : प्रत्यक्ष में तो ऐसा ही दिखता है संयोग।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या दिखता है?

मुमुक्षु : संयोग।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं, इसके लिये तो इनकार करते हैं यहाँ। जितना परद्रव्य की ओर का संसर्ग होता है, उतना स्वरूप के ध्येय से अस्थिरता से चलायमान हो जाता है। यह बात ऐसी, बापू! मार्ग... आहाहा!

भगवान आत्मा एक समय में परमात्मस्वरूप है। प्रभु! तुझे खबर नहीं। तू परमात्मस्वरूप ही तेरा है। द्रव्यस्वभाव कहो, परमात्मस्वरूप कहो, ध्येय ध्रुव ध्येय कहो ध्रुव को, आहाहा! वह परिपूर्ण वस्तु है। उसके संग में जिसे जाना है, आहाहा! उसे परद्रव्य का संसर्ग छोड़ना चाहिए। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात! उसकी विधि यह है। ओहोहो!

परद्रव्यों के साथ सम्बन्ध छोड़ देते हैं। अब परद्रव्य किसे कहना, यह बात वर्णन करते हैं। बापू! मार्ग वीतरागी, यह मोक्ष का मार्ग, भाई! महाअलौकिक है। यह वीतराग में जो है, इसके अतिरिक्त कहीं है नहीं। आहाहा! क्योंकि जहाँ द्रव्य और पर्याय दो जहाँ नहीं माने, अकेला द्रव्य को माना, वहाँ पर्याय वीतरागी नहीं हो सकती, अकेली पर्याय को मानी, वह किसके आधार से हुई, उसे इसने माना नहीं। आहाहा! समझ में आया? पूर्ण वीतरामूर्ति प्रभु आत्मा... आहाहा! ऐसे वीतरागी को वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान में लीन होकर अन्दर में... आहाहा! **परद्रव्यों के साथ सम्बन्ध छोड़ देते हैं। अन्दर के**

विकार रागादि भावकर्म... वह भी परद्रव्य है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, तप का विकल्प राग है, वह भी परद्रव्य है। ऐसी बात है, भाई! समझ में आया? अरे! चौरासी लाख के अनन्त अवतार में दु:खी होकर परिभ्रमण में पिल गया है। उसे यह रास्ता तोड़ने का मार्ग, भगवान पूर्णानन्द प्रभु को ध्येय में लेकर शुद्धोपयोग प्रगट करके जो वीतरागी परिणाम में लीन है, आहाहा! अर्थात् कि स्वद्रव्य के स्वभाव की सन्मुख में जो लीन है, उसे परद्रव्य का संसर्ग नहीं होता। छोड़ता नहीं, वह छोड़ा है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

अन्दर के विकार रागादि भावकर्म... आहाहा! दया का भाव, भक्ति का भाव, परमात्मा की पूजा का भाव, यात्रा का भाव, महाव्रत का भाव, वह सब राग है। समझ में आया? उस रागादि भावकर्म को छोड़कर। आहाहा! **बाहर के शरीरादि ये सब परद्रव्य कहे जाते हैं।** यह शरीर, वाणी, मन, वे सब परद्रव्य हैं। आहाहा! जिसे स्वद्रव्य का—असंग का संग जिसे करना है, आहाहा! उसे बाहर के संग को छोड़ना पड़ेगा, ऐसी बातें है, भाई! लोगों को लगे, दूसरा क्या हो? भाई! मार्ग तो यह है। अभी तो यह बाहर के आचरण करे, वह धर्मीजीव है और धर्म करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परन्तु प्रभु! यह बाहर के आचरण हैं, वह सब राग है, ऐसा कहा न? परद्रव्य है। आहाहा! आनन्दकन्द भगवान से विकल्प उठे, वह सब दु:खरूप जहर है। आहाहा! उस जहर को अमृत के सागर में डुबकी मारता हुआ जहर को छोड़ देता है। आहाहा! समझ में आया?

वे मुनिराज एक आत्मभाव के सिवाय... देखो! आहाहा! आत्मभाव स्वभावभाव, ध्रुवभाव, सहजात्मस्वरूप स्वाभाविक वस्तु जो सहज आनन्दस्वरूप, ऐसे आत्मस्वभाव को छोड़कर। आहाहा! उसके अतिरिक्त **सब परद्रव्य का संसर्ग (सम्बन्ध) छोड़ देते हैं।** आहाहा! अनाकुल वीतरागी स्वरूप परमात्मा स्वयं अन्दर है। उसके अतिरिक्त दूसरे परद्रव्य का संसर्ग मुनिराज छोड़ देते हैं। सम्यग्दृष्टि स्वद्रव्य के संसर्ग से परद्रव्य के त्यागरूप, सम्यक् हुआ है परन्तु अभी परद्रव्य की अस्थिरता नहीं छूटी। समझ में आया? आहाहा! यह यहाँ कहते हैं, जिसे एकदम ध्रुव को ध्येय में लेकर स्थिर होना है, और अल्पकाल में जिसे आनन्द की दशा पूर्ण मोक्ष की प्राप्त करनी है... आहाहा! उसे तो भगवान आत्मस्वभाव के अतिरिक्त किसी परद्रव्य का संसर्ग करनेयोग्य नहीं।

आहाहा! देव-गुरु और शास्त्र का भी संसर्ग करनेयोग्य नहीं। आहाहा! क्योंकि वह परद्रव्य है। प्रभु! तेरा स्वद्रव्य भिन्न है। आहाहा!

मुमुक्षु : संसर्ग बिना ज्ञान किस प्रकार हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका परिचय करना, उसकी ओर लक्ष्य करना। उस (परद्रव्य का लक्ष्य) छोड़ देना, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : सत्संग बिना ज्ञान किस प्रकार हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्संग, वह सत्संग यह। आत्मस्वभाव, वह सत्, उसका संग वह सत्संग है। आहाहा! भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, आत्मा सच्चिदानन्द आत्मा। सत् ज्ञान और आनन्द का सागर वह स्वयं सत् है, उसका संग करना, वह सत्संग है। बाहर का सत्संग है, वह तो विकल्प हो, तब बाहर में होता है। परन्तु वह विकल्प है। आहाहा! ऐसा मार्ग इसे सुनने को मिलता नहीं। आहाहा! है?

एक आत्मभाव, **एक आत्मभाव के सिवाय...** आहाहा! अनाकुल वीतराग आनन्दमूर्ति भगवान आत्मा वह इसका आत्मभाव। आहाहा! इसके अतिरिक्त। **सब परद्रव्य का संसर्ग (सम्बन्ध) छोड़ देते हैं।** आहाहा! एक बात। **तथा रागी, द्वेषी, मिथ्यात्वी, असंयमी जीवों का सम्बन्ध छोड़ देते हैं।** आहाहा! जिसकी दृष्टि मिथ्यात्व है, पुण्य की क्रिया में धर्म मानता है, दया, दान, व्रत, तप के भाव, वह शुभराग, उसमें धर्म मानता है, उससे धर्म होगा, ऐसा मानता है, ऐसे मिथ्यादृष्टियों का संसर्ग नहीं करना, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **रागी, द्वेषी, मिथ्यात्वी, असंयमी...** ऐसे परद्रव्य के लोलुपी, विषय के लोलुपी। आहाहा! उसे स्वविषय सन्मुख के ध्यान के लिये उन्हें छोड़ देना। आहाहा! समझ में आया? मार्ग, बापू! धर्म—वीतरागमार्ग की धर्म कथा बहुत अलौकिक है। आहाहा! यह तो बाहर से यह करो, यह करो, वह धर्मकथा। वह धर्मकथा नहीं है, वह तो विकथा है। जिसमें राग का करना और राग से लाभ हो, वह कथा विकथा है। आहाहा! समझ में आया? यह तो धर्मकथा—वीतरागी कथा है। आहाहा!

कहते हैं कि आत्मभाव के अतिरिक्त दया, दान रागादि भाव, वह परद्रव्य; शरीरादि परद्रव्य; आहाहा! और रागी, द्वेषी मिथ्यात्वी का संग छोड़ देता है। आहाहा!

क्योंकि विपरीतता डालेगा। उसका ऐसा होता है, उसमें एकान्त हो जाता है, अकेले आत्मा के आश्रय से ही लाभ होता है, यह एकान्त हो जाता है। राग से भी थोड़ा लाभ होता है। ऐसी विपरीतता घुसा डालेगा। ऐसे मिथ्यादृष्टि का संसर्ग छोड़ देना। पोपटभाई! आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि स्त्री, पुत्र मिथ्यादृष्टि हों उनका, सम्यग्दृष्टि को शुद्धोपयोग में जाने के लिये उनका भी संसर्ग छोड़ देना। समझ में आया? देवीलालजी! ऐसी बात है। आहाहा! तीन लोक के नाथ जिनवरदेव ऐसा फरमाते हैं, भाई! आहाहा!

इनके संसर्ग से परमपद जो... राग का विकल्प है, उसका संसर्ग और मिथ्यादृष्टि असंयमी का संसर्ग। आहाहा! **परमपद जो वीतरागनित्यानन्द...** आहाहा! भगवान अपना परमपद जो है, वह वीतराग नित्यानन्द। है? वीतराग नित्यानन्द। शाश्वत् आनन्द का सागर भगवान। आहाहा! वीतरागी नित्यानन्द प्रभु। आहा! अरे! भगवान आत्मा तो वीतरागी नित्यानन्द स्वरूपी है। आहाहा! वह अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, हों! विषय का आनन्द तो जहर है, दु:ख है, स्वरूप का घात करता है। आहाहा! भगवान आत्मा वीतराग नित्यानन्द 'एक' शब्द है भाई इसमें। 'एक' पड़ा रहा। एक का अर्थ अमूर्त स्वभाव किया है, अमूर्त क्या है। पाठ में—टीका में एक है। यह सब जगह एक छोड़ देते हैं। परन्तु एक में कीमत है। वीतराग परमानन्द एकस्वरूप है। उसमें भेद नहीं, ऐसा कहना है। आहाहा! इस देह में भगवान आत्मा वीतरागी नित्यानन्दस्वरूपी एकस्वरूपी आत्मा है। जिसमें भेद भी नहीं। आहाहा! पर्याय का भी भेद नहीं। समझ में आया? यह तो परमात्मा की बात है, बापू! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ की आज्ञा का यह हुकम है। उससे विपरीत कहे तो वह भगवान की आज्ञा में नहीं। आहाहा! रागादि से पर की भक्ति से धर्म हो, दया, दान, व्रत और तप के भाव से धर्म हो, वह वीतरागमार्ग का विरोधी है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा है।

वीतराग परमानन्द नित्यानन्द **अमूर्तस्वभाव...** अमूर्तस्वभाव लिया है। अमूर्त है न, एकरूप। है तो एक शब्द संस्कृत में। **परमसमरसीभावरूप जो परमात्मतत्त्व...** आहाहा! देखा! यह परमात्मस्वरूप अन्दर वस्तु जो द्रव्यस्वरूप, परमात्मा स्वयं परमात्मस्वरूप, शाश्वत् नित्यस्वरूप, उसे यहाँ परमात्मस्वरूप अन्दर, कैसा है? **परमपद जो वीतराग-**

नित्यानन्द अमूर्तस्वभाव परमसमरसीभावरूप... परमसमरसी वीतरागस्वरूप। आहाहा! अकेला समतारस का कन्द प्रभु। परमसमरसी। परमसमरसी स्वभाव। आहाहा! ऐसे रूप जो परमात्मतत्त्व। यह परमात्मतत्त्व अर्थात् अपना द्रव्य, हों! भगवान परमात्मा हुए, वे तो पर्याय में परमात्मा हुए। यह तो तेरा तत्त्व द्रव्यस्वरूप ही ऐसा है। आहाहा! अरे! वीतरागमार्ग में वीतरागता की कीमत है। हें! राग की और पर के संसर्ग से हुए विकार की कीमत नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जो परमात्मतत्त्व... आहाहा! क्या कहते हैं? राग और पर मिथ्यात्वी आदि के सन्सर्ग से, **इनके संसर्ग से...** इतनी बात।

परमपद जो वीतरागनित्यानन्द अमूर्तस्वभाव परमसमरसीभावरूप जो परमात्म-तत्त्व ध्यावनेयोग्य है, उससे चलायमान हो जाते हैं,... आहाहा! वीतराग परमानन्द नित्यानन्द परमात्मस्वरूप जो ध्यानेयोग्य अर्थात् ध्यान में लेनेयोग्य है। वह इस परद्रव्य के संसर्ग से उसमें से चलायमान हो जाता है। आहाहा! स्वद्रव्य के संसर्ग में रहने में परद्रव्य का संसर्ग इसे छोड़ना पड़ेगा, ऐसा कहते हैं। क्योंकि स्वद्रव्य के संसर्ग से परद्रव्य का संसर्ग करने से चलायमान हो जाता है। आहाहा! दया, दान, व्रत, तप का विकल्प है, वह भी राग है। वह वीतरागी परमानन्द स्वभाव में संसर्ग में उसका परिचय होने पर चलायमान हो जाता है, स्वरूप में से हट जाता है। आहाहा! ऐसी बातें अब। इसलिए लोगों को ऐसा लगता है, सोनगढ़ का एकान्त है, ऐसा कहते हैं, प्रभु! बापू! यह सोनगढ़ का है या यह तो भगवान का है? आहाहा! परन्तु यह बात स्पष्टीकरण में नहीं थी और आयी, इसलिए लोगों को ऐसा लगा अन्दर से। आहाहा! समझ में आया?

स्वद्रव्य के संसर्ग में से, वीतरागी नित्यानन्द परमपद ऐसा प्रभु आत्मा, उसे परद्रव्य के संसर्ग से स्वद्रव्य में से चलायमान हो जाता है। इसलिए उसे परद्रव्य का संसर्ग छोडना और स्वद्रव्य का संसर्ग विशेष करना। आहाहा! समझ में आया? टीका में आया है, भाई! टीका... अर्थ में नहीं आया। जैसे बाणवाला लक्ष्य ऊपर है न? जिसके ऊपर बाण लगाना है, उसके लक्ष्य ऊपर बाण मारता है न ऐसे। वह लक्ष्य में से बाण डालना है, वह यदि पर के ऊपर लक्ष्य जाये तो यह लक्ष्य छूट जाता है। पाठ में है। जो बाण हाथ में हो, जहाँ लक्ष्य है ऐसे डालने का है, वहाँ यदि लक्ष्य न रहे और पर की ओर लक्ष्य जाये तो वहाँ से चलायमान हो जाये। आहाहा! बाण वहाँ जा सकता

नहीं। आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा लक्ष्य में और ध्येय में लेने योग्य तो यह एक भगवान है। समझ में आया? उस बाण को, है न?

'लक्खहं लक्ष्यस्य' लक्ष्य करने का लक्ष्य **'ध्येयभूतश्य'**। ध्येय सामने यह पत्ते के ऊपर डालना है या इसके ऊपर डालना है। **'धनुर्विद्याभ्यासप्रस्तावे लक्ष्यरूपस्यैव जेण चलंति'** उसके लक्ष्य में से चलित हो जाये तो वहाँ बाण नहीं लगता। आहाहा! आचार्यों ने भी... इसी प्रकार जो लक्ष्य है, ध्रुव चैतन्य का,परमात्मतत्त्व परम वीतरागी नित्यानन्द प्रभु का लक्ष्य धर्मी को है—ध्येय। वह यदि परद्रव्य का संग करे तो वहाँ से चलायमान हो जायेगा। आहाहा! वह ध्येय में नहीं रह सकेगा। ऐसी बात है। कहो, सेठ! ऐसी बात तो सुनी भी न हो। कहीं नहीं। भगवान क्या कहते हैं? अरे... प्रभु! आहाहा! त्रिलोकनाथ का विरह पड़ा, भगवान की उपस्थिति नहीं, केवलज्ञान की उत्पत्ति का काल नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : अवधिज्ञान किसी को नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अवधि, मनःपर्यय ज्ञानी भी कोई नहीं। यह सब झगड़े खड़े हुए।

यहाँ तो परमात्मा पंचम काल के जीव के लिये भी... आहाहा! तेरा भगवान है और वह ध्येय है लक्ष्य में (लेने) योग्य, बाकी दूसरे सब लक्ष्य छोड़नेयोग्य है। हें! आहाहा! धनुर का अभ्यास करनेवाला जहाँ बाण मारना हो, उसका वह लक्ष्य नहीं छोड़ता और लक्ष्य छोड़े तो वहाँ बाण नहीं जा सकता, चलायमान हो जायेगा। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा नित्यानन्द वीतरागस्वरूपी प्रभु परमपद का जिसे ध्येय है, आहाहा! स्वद्रव्य का जिसे ध्येय है, वह परद्रव्य के लक्ष्य में जायेगा तो उस ध्येय से चलायमान हो जायेगा। आहाहा!

अब यहाँ (लोग) कहते हैं कि देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति से मुक्ति हो और व्यवहाररत्नत्रय से निश्चय होता है। इतना अधिक अन्तर है, भाई! ज्ञानचन्दजी! ऐसा है, भाई! आहा! वीतराग का हुकम तो यह है। समझ में आया? आहाहा! क्या बात, क्या बात!! आहाहा! एक स्वद्रव्य परमपद वीतरागस्वरूप के ध्येय के अतिरिक्त जितने परपदार्थ राग और देव-गुरु-शास्त्र, स्त्री,.... कुटुम्ब-परिवार तो अशुभ के निमित्त हैं, वे

तो अलग रहे। आहाहा! परन्तु देव-गुरु और शास्त्र की ओर भी यदि तेरा लक्ष्य जायेगा तो ध्येय में से चलायमान हो जायेगा। आहाहा! वे कहे, उनसे लाभ होगा, यहाँ कहते हैं, उनके संसर्ग से चलायमान हो जायेगा। ज्ञानचन्दजी! ऐसी बात है, भगवान! आहाहा! भाई! तुझे न बैठे, परन्तु प्रभु तो ऐसा कहते हैं। हें!

मुमुक्षु : परसन्मुख गया तो चलायमान ही हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : चलायमान ही हुआ, वहाँ (लक्ष्य) नहीं रहा। स्थिरता करनी है वहाँ ध्येय में, वहाँ नहीं रहा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! गाथा, वह गाथा है न! एक-एक गाथा चढ़ती जाती है। आहाहा! संसार में भी जिसे लक्ष्मी, इज्जत आदि बढ़ती जाती हो न, कोई कहे कि चढ़ती कमाई को तोड़ना नहीं, ऐसा कहते हैं। लड़के बढ़ते हों, अच्छी जगह विवाह होता हो, पैसे पैदा होते हों, दुकान जमती हो, उसमें से कोई कहे कि हमारे यह छोड़ना है। तो कहे, चढ़ती कमाई को तोड़ना नहीं, ऐसा कहते थे। समझ में आया? वह चढ़ती कमाई कहाँ था। वह तो चढ़ती कमाई ध्रुव में जाना अन्दर आगे, वह चढ़ती कमाई है। हें! उसका अभी ज्ञान भी ठिकाने बिना का है, वह अन्दर जाये किस प्रकार? जिसके ज्ञान में ऐसा है कि यह राग की क्रिया करने से धर्म होगा, वह पर से हटे किस प्रकार? आहाहा! और निमित्त से मुझे लाभ होगा, ऐसा माननेवाला पर से हटेगा किस प्रकार? ज्ञानचन्दजी! आहाहा! ऐसी बात है, भाई! दो बातें हुई कि जो आत्मा के अतिरिक्त परद्रव्य से लाभ होगा, (ऐसा माने) वह तो पर से हटेगा नहीं और आत्मा के अतिरिक्त व्यवहाररत्नत्रय से लाभ होगा, वह वहाँ से हटेगा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार परद्रव्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परद्रव्य है। यहाँ तो... नियमसार में तो निर्मल पर्याय को परद्रव्य कहा है। क्योंकि पर्याय के ऊपर लक्ष्य जायेगा तो वहाँ विकल्प होगा, नयी पर्याय प्रगट नहीं होगी। आहाहा! समझ में आया? **'जीवादिबहित्तच्चमं हेयम्'** यह श्लोक है न ऊपर? इस ओर है। (परमागममन्दिर में) भगवान के दर्शन किये, पश्चात् यह श्लोक ऐसे नीचे है नियमसार का, ३८वीं गाथा। **'जीवादिबहित्तच्चमं**

हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा' आहाहा! संवर, निर्जरा की पर्याय हेय है। क्योंकि पर्याय के ऊपर लक्ष्य जायेगा तो उसमें से नयी पर्याय नहीं आयेगी। आहाहा! कहो, वीरचन्दभाई! यह पर्याय निर्मल परद्रव्य है। क्योंकि पर्याय में लक्ष्य जायेगा तो द्रव्य का ध्येय छूट जायेगा। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : निर्मल पर्याय.... ध्रुव तो उपादेय है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव उपादेय पर्याय में। पर्याय हेय है, उस पर्याय में ध्रुव उपादेय है। डाह्याभाई! आहाहा! त्रिकाली परमपद कहा न?

परमपद जो वीतरागनित्यानन्द अमूर्तस्वभाव परमसमरसीभावरूप जो परमात्मतत्त्व... वह ध्येय है, वह लक्ष्य है, मति-श्रुतज्ञान का ध्येय और लक्ष्य वहाँ है। आहाहा! आहाहा! उसमें से यदि परद्रव्य का राग... इसका अर्थ यह है कि पर्याय के ऊपर लक्ष्य जायेगा तो भी तुझे इस ध्येय से (तू) छूट जायेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्यायसहित द्रव्य का तो ध्येय करना न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेले द्रव्य का ध्येय करना, पर्याय का नहीं। समझ में आया? नौ तत्त्व में ऐसा आता है कि संवर, निर्जरा, मोक्ष की श्रद्धा करना, पर्याय की श्रद्धा करना। वह तो श्रद्धा की पर्याय में ज्ञानप्रधान से कथन है। आहाहा! बाकी श्रद्धा करनेवाली पर्याय है, वह संवर, निर्जरा को श्रद्धा करती है, वह पर्याय उसमें—द्रव्य में मिल नहीं जाती। डाह्याभाई! आहाहा! यह तो यहाँ बहुत बार कहा है कि जो निर्मल पर्याय जो ध्येय में है अन्दर, वह ध्येय पर्याय में आता नहीं। मात्र पर्याय का लक्ष्य वहाँ जाता है। समझ में आया? परन्तु लक्ष्य जहाँ जाता है, वह चीज़ कहीं पर्याय में नहीं आती। उस सम्बन्धी की श्रद्धा और ज्ञान पर्याय में आता है। आहाहा! ऐसी बात लोगों को, वह सामायिक सवेरे उठकर करे, णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, तिक्खुत्तो... लोगस्स... नमोत्थुणं हो गयी सामायिक, लो। आहाहा! अरे... बापू! समताभाव ऐसा वीतरागी परमानन्द... कहा न? परमसमरसीभाव ऐसा परमात्मतत्त्व, उसे जिसने ध्येय में लिया नहीं, उसे समताभाव सामायिक हो सकता ही नहीं। आहाहा! नाम सामायिक दो, वस्तु नहीं। आहाहा!

परमसमरसीभाव वीतरागस्वभाव अकेला समता का—समता अकषाय का शान्तरस का इन्द्र, रसेन्द्र, शान्तरस का इन्द्र भगवान पूर्ण समरसीभाव को दृष्टि में लेकर स्थिरता हो, उसे सामायिक होती है। उसे वीतरागी स्वभाव है, वैसा वीतरागी परिणाम का लाभ होता है। वह सामायिक—समता का आय अर्थात् लाभ। आहाहा! यह तो कुछ भान भी नहीं होता, इसके अर्थ की खबर नहीं होती। विहुयरयमला। नहीं कहा था एक बार? लोगस्स में आता है न? विहुयरयमला। आता है न? अर्थ की खबर नहीं होती। पश्चात् लींबड़ी में दशाश्रीमाली और विशाश्रीमाली को विरोध हुआ। उसमें दशाश्रीमाली की वृद्ध महिला थी। सामायिक करने बैठी। घड़ी रखकर। उसमें यह आया लोगस्स पाठ। वह बोली, विसा रोई मळ्या। दशाश्रीमाली की महिला और विसा के साथ विरोध। लोगस्स में बोली, विहा रोई मळ्या। परन्तु विहा रोई मळया, इसमें कहीं आया अपना? आपसी विवाद लोगस्स में कहाँ से आया? अपने भी लोगस्स है, हों! दिगम्बर में भी है, परन्तु वह चलता नहीं और प्रचार उन लोगों में अधिक है। लोगस्स है, 'लोगस्स उज्जोयगरे धम्मतित्थयरे जिणे' सामायिक में पाठ है अपने दिगम्बर में, पाठ है, पुस्तक है। परन्तु वह प्रचलित नहीं, श्वेताम्बर में वह पाठ प्रचलित है। उसमें पाठ है। उसमें विहुयरयमला (आता है)।

हे नाथ! आपने वि—विशेष हुए अर्थात् टाले हैं, रज अर्थात् कर्म और मल—रागादि परिणाम को। यह परमात्मा जिनवरदेव सिद्ध हुए, वह आपने विहुय अर्थात् विशेष हुई अर्थात् धुई अर्थात् टाले हैं। आहाहा! जैसे पक्षी को धूल हो और पंख फिरावे और रज छूट जाये, इसी प्रकार आपने जागृत दशा प्रगट करके, प्रभु! विहुय टाले, रज—कर्म की रज और मल—दया, दान के विकल्प जो मैल उसे आपने टालकर वीतरागी हुए हो प्रभु! आहाहा! खबर भी कहाँ बेचारे को। ऐसा का ऐसा एक घड़ी, दो घड़ी को चले दुकान में। होली सुलगती है पूरे दिन।

मुमुक्षु : उपाश्रय में कहीं पूरे दिन बैठा जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु एक-दो घड़ी भी क्या है, उसमें तो इसे समझना पड़ेगा या नहीं? दुकान में बाद में जाये। एक घड़ी, दो घड़ी किया, अब दुकान में। यह धर्म

हो गया। धूल भी नहीं धर्म, सुन न! शान्तिभाई! आहाहा!

यहाँ तो एक वस्तु त्रिकाली आनन्द का नाथ परम स्वभावभाव, वह ध्येय है। अर्थात् लक्ष्य में लेनेयोग्य है। लक्ष्य में उसका लक्षण लेनेयोग्य है। आहाहा! ज्ञान। आहाहा! उसमें लक्ष्य में रहना है, उसका साधन अन्दर में स्थिर होना है, उसे परद्रव्य के संसर्ग से तो वह चलायमान हो जायेगा। आहाहा! गजब बातें की हैं न! स्वद्रव्य के संसर्ग में—संग में रहनेवाले को परद्रव्य का संसर्ग छोड़े तब होता है। आहाहा! परद्रव्य के दो प्रकार लिये। पुण्य-पाप के भाव, वे परद्रव्य रागादि। आहाहा! शरीरादि परद्रव्य और मिथ्यात्वी, असंयमी, अज्ञानियों ने परद्रव्य, उन सबका संग छोड़ना। आहाहा! पोपटभाई! पेढ़ी पर कमाता हो अधिक और लड़के को कमाना है, उसकी महिमा करे तो दूसरे को ऐसा हो जाये कि अपने को भी ऐसा करना तो अपनी महिमा होगी। होली सुलगती है वहाँ। होशियार लड़के की महिमा हो तो दूसरे लड़के को ऐसा हो, उसके बड़े भाई जैसा हम करें तो अपनी महिमा हो। होली सुलगने जैसी है सब। हें! आहाहा!

यह तो भगवान तीन लोक का नाथ आत्मा जिसने अन्दर साधा, उसे साधनेयोग्य प्रत्येक जीव को है। और साधने जैसा परद्रव्य नहीं, साधने जैसा राग नहीं, साधने जैसी पर्याय नहीं—ऐसा कहते हैं यहाँ। हें! आहाहा! लो, सेठ! यह उद्‌घाटन। सेठ कहते हैं न, इस मार्ग का उद्‌घाटन, बापू ऐसा है, भाई! आहाहा! यह वीतरागता का। भाई! मार्ग ऐसा है। तेरे जन्म, जरा, मरण के दु:ख को टालने का मार्ग तो यह है। दूसरे प्रकार से सन्तोष मानकर मनायेगा, (तो) हाथ नहीं आयेगा, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : बाहर में कुछ करने का तो बताओ?

पूज्य गुरुदेवश्री : करने का क्या बतावे? बाहर का करना, राग आता है तो भगवान की भक्ति आदि के ऊपर लक्ष्य जाता है, परन्तु वह लक्ष्य छोड़नेयोग्य है। अन्दर वीतरागभाव को साधने के लिये वह भाव छोड़नेयोग्य है। उसकी दृष्टि में तो पक्का करे। आहाहा! ऐसा उपदेश, इसलिए लोगों को—नये लोग हों उन्हें ऐसा लगे, अकेला सामायिक, प्रौषध और प्रतिक्रमण किये हों, उसे धर्म माना हो, उन्हें ऐसा लगे यह...

मुमुक्षु : हमारा सब खोटा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सब खोटा अधर्म है। आहाहा! भाई आये हैं न? छोटाभाई।

अर्थात् तीन गुप्तिरूप परमसमाधि से रहित हो जाते हैं। आहाहा! ... प्रभु के ध्यान में जो परम गुप्ति है, उसमें से यदि परद्रव्य का संग करे, आहाहा! समझ में आया? ऐसा स्वरूप है, ऐसा यह पहले ज्ञान तो करे। ऐसा का ऐसा चल निकले धर्म करते हैं, धर्म करते हैं। धूल भी धर्म नहीं, बापू! तुझे खबर नहीं। अरे! जिन्दगी जाती है, मरण के समीप देह जाती है। जितनी मरण की अवधि लेकर आया है, उसके समीप देह जाती है। अरे! देह छूटने का काल, बापू! थोड़ा रहा है तुझे। पच्चीस, पचास, साठ, सत्तर निकले, उसे तो अब बहुत थोड़ा रहा। उसमें यदि यह नहीं किया तो बापू! तूने कुछ नहीं किया। यह तेरा मनुष्यपना व्यर्थ गया भाई! आहाहा! समझ में आया? दुनिया महिमा करेगी। पाँच-पचास लाख, दो करोड़, पाँच करोड़ इकट्ठे किये हों। ओहोहो! अपना होशियार लड़का। होशियार तो समझने जैसा हो।

मुमुक्षु : कर्मी है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्मी कहलाये, कर्मी कहलाये। कर्म का करनेवाला पापी, ऐसा। कर्मी कहें उसे या धर्मी कहें? हमारे लड़के कर्मी जगी हैं। कर्म करनेवाले—पाप करनेवाले जगे हैं। आहाहा!

यहाँ तो जैसे धनुष के बाण का लक्ष्य जहाँ है, वहाँ लक्ष्य होना चाहिए। यदि उस लक्ष्य में से ऐसे जाये तो ध्येय छूट जायेगा। इसी प्रकार भगवान आत्मा का ध्येय, धर्मी का ध्येय त्रिकाली आत्मा परमात्मस्वरूप है। आहाहा! उसमें से जितना परद्रव्य का संसर्ग होगा, उतना उसे विकल्प उठेगा। आहाहा!

यहाँ पर परमध्यान के घातक जो मिथ्यात्व रागादि अशुद्ध परिणाम... है? परमध्यान। भगवान आत्मा में ऐसा जो ध्यान। भगवानस्वरूप चिदानन्द वीतराग प्रभु आत्मा का जो ध्यान, उसका घातक **मिथ्यात्व रागादि अशुद्ध परिणाम...** उसके घातक विपरीत श्रद्धा, राग-द्वेष उसके घातक हैं, इसलिए उन्हें छोड़ना। आहाहा! **तथा रागी-द्वेषी पुरुषों का संसर्ग सर्वथा त्याग करना चाहिए,...** आहाहा! यह उसे सारांश कहते हैं। आहाहा! यह १०८ हुई।

गाथा - १०९

अथ तमेव परद्रव्यसंसर्गं त्यागं कथयति-

२३२) जो सम-भावहँ बाहिरउ तिं सहुं मं करि संगु।
चिंता-सायरि पडहि पर अण्णु वि डज्झइ अंगु।।१०९।।

यः समभावाद् बाह्यः तेन सह मा कुरु संगम्।
चिंतासागरे पतसि परं अन्यदपि दह्यते अङ्गः।।१०९।।

यो इत्यादि। जो यः कोऽपि सम-भावहं बाहिरउ जीवितमरणलाभालाभादि समभावानुकूलविशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावज्ञानपरमात्मद्रव्यसम्यक्श्रद्धानज्ञाननुष्ठानरुपसमभावबाह्यः। तिं सहुं मं करि संगु तेन सह संसर्गं मा कुरु हे आत्मन्। यतः किम्। चिंता-सायारि पडहि रागद्वेषादिकल्लोलरुपे चिन्तासमुद्रे पतसि। पर परं नियमेन। अण्णु वि अन्यदपि दूषणं भवति। किम्। डज्झइ दह्यते व्याकुलं भवति। किं दह्यते। अंगु शरीरं इति। अयमत्र भावार्थः। वीतराग-निर्विकल्पसमाधिभावनाप्रतिपक्षभूतरागादि-स्वकीयपरिणाम एव निश्चयेन पर इत्युच्यते। व्यवहारेण तु मिथ्यात्वरागादिपरिणतपुरुषः सोऽपि कथंचित्, नियमो नास्तीति।।१०९।।

आगे उन्हीं परद्रव्यों के संबंध को फिर छुड़ाने का कथन करते हैं-

समताभाव विहीन बाह्य वस्तु का संग करो न कभी।
वही डुबाये चिन्तोदधि में नित्य जलाता है तन भी।।१०९।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो कोई [समभावात्] समभाव अर्थात् निजभाव से [बाह्य] बाह्य पदार्थ हैं, [तेन सह] उनके साथ [संगम्] संग [मा कुरु] मत कर। क्योंकि उनके साथ संग करने से [चिंतासागरे] चिंतारुपी समुद्र में [पतसि] पड़ेगा, [परं] केवल [अन्यदपि] और भी [अंगः] शरीर [दह्यते] दाह को प्राप्त होगा, अर्थात् अंदर से जलता रहेगा।

भावार्थ :- जो कोई जीवित, मरण, लाभ, अलाभादि में तुल्यभाव उसके संमुख जो निर्मल ज्ञान दर्शन स्वभाव परमात्म द्रव्य उसका सम्यक् श्रद्धान ज्ञान आचरणरुप निजभाव उसरुप समभाव से जो जुदे पदार्थ हैं, उनका संग छोड़ दे। क्योंकि उनके संग से चिंतारुपी समुद्र में गिर पड़ेगा। जो समुद्र राग-द्वेषीरुपी कल्लोलों से व्याकुल है। उनके

संग से मन में चिंता उत्पन्न होगी, और शरीर में दाह होगा। यहाँ तात्पर्य यह है, कि वीतराग निर्विकल्प परमसमाधि की भावना से विपरीत जो रागादि अशुद्ध परिणाम वे ही परद्रव्य कहे जाते हैं, और व्यवहारनयकर मिथ्यात्वी रागी-द्वेषी पुरुष पर कहे गये हैं। इन सबकी संगति सर्वदा दुःख देनेवाली है, किसी प्रकार सुखदायी नहीं है, ऐसा निश्चय है।।१०९।।

गाथा-१०९ पर प्रवचन

१०९। **आगे उन्हीं परद्रव्यों के सम्बन्ध को फिर छुड़ाने का कथन करते हैं:—**

२३२) **जो सम-भावहँ बाहिरउ तिं सहुं मं करि संगु।**
चिंता-सायरि पडहि पर अण्णु वि डज्झइ अंगु।।१०९।।

आहाहा! **अन्वयार्थ :— जो कोई समभाव अर्थात् निजभाव से बाह्य पदार्थ हैं,...** भगवान समभाव वीतरागस्वरूप है। उससे जितने बाह्य पदार्थ हैं, आहाहा! **उनके साथ संग मत कर।** आहाहा! भगवान फरमाते हैं, प्रभु! तेरा समभाव जो वीतरागभावरूपी आत्मा, उसके संग के अतिरिक्त परसंग को छोड़ दे। आहाहा! ओहोहो! **क्योंकि उनके साथ संग करने से चिन्तारूपी समुद्र में पड़ेगा,...** चिन्तारूपी विकल्प उठेंगे, सब चिन्ता। आहाहा! शास्त्र को पढ़ना, भगवान की भक्ति। आहाहा! चिन्ता के सागर में डूब जायेगा, प्रभु! आहाहा! वीतरागसागर में न जाकर चिन्तासागर में चला जायेगा। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का लोगों को ऐसा लगे, हों! समय नहीं मिलता। मुश्किल से घण्टे भर का समय हो तो सुनने जाये। बाकी तो होली पूरे दिन। स्त्री, पुत्र, कमाना, खाना, विषयभोग और नींद तथा कितनी ही विकथा। हो गया, उसमें समय जाये। घण्टा भर मिला तो सवेरे, शाम बैठे। वहाँ सुनानेवाले समझने जैसे हों, वहाँ सुने। यह सब। आहाहा! यह बात इसे कहाँ रुचे? तेरा स्वरूप अन्दर वीतराग परमसमरसभाव से भरपूर, शान्त रसेन्द्र भगवान, अकषाय स्वभाव का इन्द्र, वीतरागभाव का इन्द्र। आहाहा! यह बात इसे ध्येय में द्रव्य आया है, वह कैसे बैठे? बापू! इसे विचार करके बैठाना पड़ेगा। समझ में आया?

चिन्तारूपी समुद्र में... 'पतसि' आहाहा! यह विकल्प का जाल उठेगा, परद्रव्य सम्बन्धी लक्ष्य करेगा वहाँ। आहाहा! **केवल और भी शरीर दाह को प्राप्त होगा,...** आहाहा! अन्दर कषाय होने से शरीर भी अन्दर जलेगा अग्नि से।

भावार्थ :— जो कोई जीवित, मरण, लाभ, अलाभादि में तुल्यभाव उसके संमुख जो निर्मल ज्ञानदर्शन स्वभाव परमात्मद्रव्य... आहाहा! जीवत्व शरीर का या देह छूटना या लाभ पैसा आदि का, पुत्र का या अलाभ, उसमें समभाव **उसके संमुख जो निर्मल ज्ञानदर्शन स्वभाव परमात्मद्रव्य...** आहाहा! **उसका सम्यक् श्रद्धान...** आहाहा! क्या कहते हैं? समभाव के सन्मुख तो द्रव्यस्वभाव हो तब, ऐसा कहते हैं। समभाव की सन्मुखता द्रव्य के ऊपर है। यह द्रव्य कैसा है? कि **निर्मल ज्ञानदर्शन स्वभाव परमात्मद्रव्य उसका सम्यक् श्रद्धान...** आहाहा! हें!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लाये किसलिए? बापू! यह पानी नहीं, भाई! तब वह बनिया जरा ऐसा कि इसमें तो समुद्र भरा है पानी का। तेज... तेज... तेज... तेज। इतना भले हो परन्तु ऐसी चमक... चमक... चमक होती है। अरे... सेठ! यह समुद्र भरा हो तो मेरी पछेड़ी छुए और डूबे तो मानूँ। सेठ कहे, पटेल! यह पछेड़ी को डुबोबे, ऐसा पानी नहीं। ऐसा पानी तो झबेरी की नजर में दिखायी दे, ऐसा पानी है। आहाहा! उसका पानी तो नजरों में जिसे कीमत है, उसे पानी दिखता है। उसकी कीमत चमक। आहाहा! इसी प्रकार यह भगवान का पानी अन्दर वीतरागस्वरूप, वह तो सम्यग्दृष्टि को दिखता है। उसके ऊपर दृष्टि पड़े और ज्ञान हो, उसे ज्ञात होता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, देखो! **निर्मल ज्ञानदर्शन स्वभाव परमात्मद्रव्य उसका सम्यक् श्रद्धान...** देखा! व्यवहार नहीं। त्रिकाली भगवान की सम्यक्श्रद्धा, आहाहा! उसका ज्ञान—सम्यग्ज्ञान, उसका आचरण। लो, उसका आचरण। भगवान परमात्मद्रव्य का आचरण। यह लोग आचरण आचरण अर्थात् यह छोड़कर आचरण महाव्रत आदि। भगवान आनन्द का कन्द वीतराग समभावरसी प्रभु की श्रद्धा सम्यक्, उसका ज्ञान

सम्यक् और उसका आचरण सम्यक्। उसका आत्मा में आचरण वह। आहाहा! **आचरणरूप निजभाव...** तीनों **उसरूप समभाव से जो जुदे पदार्थ हैं,...** ऐसा जो अन्दर समभाव, उससे जितने भिन्न पदार्थ हैं, **उसका संग छोड़ दे।** आहाहा!

भगवान समरसीस्वरूपी त्रिकाली की सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान और आचरण अन्दर ऐसा जो समभाव, वह मोक्षमार्ग, वह तीनों समभाव हैं, वीतरागभाव हैं। आहाहा! उससे अन्य चीज़ें सब हैं, (उनका) संग छोड़ दे। **क्योंकि उनके संग से चिन्तारूपी समुद्र में गिर पड़ेगा।** विकल्प की जाल—चिन्ता उठेगी। आहाहा! भगवान का स्मरण करने जायेगा तो भी चिन्ता उठेगी। समझ में आया? दूसरे भगवान का। अपने भगवान को छोड़कर दूसरे भगवान के (स्मरण में) चिन्ता—विकल्प उत्पन्न होगा। आहाहा! ऐसा कथन दिगम्बर सन्त खुल्ला करके रखते हैं। आहाहा! दुनिया को बैठे, न बैठे। पागल कहो या न कहो, जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसी कहो, परन्तु मार्ग तो यह है। आहाहा! **और समुद्र राग-द्वेषरूपी कल्लोलों से व्याकुल है।** वह चिन्तारूपी समुद्र राग-द्वेष से व्याकुल है, कहते हैं। आहाहा! **उनके संग से मन में चिन्ता उत्पन्न होगी,...** आहाहा! **और शरीर में दाह होगा।** आहाहा!

यहाँ तात्पर्य यह है कि वीतराग निर्विकल्प परमसमाधि की भावना से विपरीत जो रागादि अशुद्ध परिणाम वे ही परद्रव्य कहे जाते हैं,... लो! आहाहा! अपना वीतरागी -स्वभाव निर्विकल्प समाधि मोक्षमार्ग से विपरीत रागादि अशुद्ध परद्रव्य **और व्यवहारनयकर मिथ्यात्वी रागी-द्वेषी पुरुष पर कहे गये हैं। इन सबकी संगति सर्वदा दुःख देनेवाली है...** आहाहा! **किसी प्रकार सुखदायी नहीं है, ऐसा निश्चय है।** लो, विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ११०

अथैतदेव परसंसर्गदूषणं दृष्टान्तेन समर्थयति-

२३३) भल्लाहँ वि णासंति गुण जहँ संसग्ग खलेहिं।
वइसाणरु लोहहँ मिलिउ तें पिट्टियइ घणेहिं।।११०।।

भद्राणामपि नश्यन्ति गुणाः येषां संसर्गः खलैः।
वैश्वानरो लोहेन मिलितः तेन पिट्टयते घनैः।।११०।।

भल्लाहं वि इत्यादि। भल्लाहं वि भद्राणामपि स्वस्वभावसहितानामपि णासन्ति गुण नश्यन्ति परमात्मोपलब्धिलक्षणगुणाः। येषां किम्। जहँ संसग्ग येषां संसर्गः। कै सह। खलेहिं परमात्म-पदार्थप्रतिपक्षभूतैर्निश्चयनयेन स्वकीयबुद्धिदोषरुपैः रागद्वेषादिपरिणामैः खलैर्दुष्टैर्व्यवहारेण तु मिथ्यात्वरागादिपरिणतपुरुषैः अस्मिन्नर्थे दृष्टान्तमाह। वइसाणरु लोहहं मिलिउ वैश्वानरो लोह-मिलितः। तें तेन कारणेन पिट्टियइधणेहिं पिट्टनक्रियां लभते। कैः धनैरिति। अत्रानाकुलत्व-सौखविधातको येन दृष्टश्रुतानुभूतभोगकांक्षारुपनिदानबन्धाधपध्यानपरिणाम एव परसंसर्ग-स्त्याज्यः। व्यवहारेण तु परपरिणतपुरुष इत्याभिप्रायः।।११०।।

आगे परद्रव्य का प्रसंग महान् दुःखरुप हैं, यह कथन दृष्टांत से दृढ़ करते हैं-

भद्र पुरुष के भी सब गुण हों नष्ट दुष्ट नर के संग से।
यथा लौह का संग करने से अग्नि प्रताड़ित हो घन से।।११०।।

अन्वयार्थ :- [खलैः सह] दुष्टों के साथ [येषां] जिनका [संसर्गः] संबंध है, वह [भद्राणाम् अपि] उन विवेकी जीवों के भी [गुणाः] सत्य शीलादि गुण [नश्यन्ति] नष्ट हो जाते हैं, जैसे [वैश्वानरः] आग [लोहेन] लोहे से [मिलितः] मिल जाती है, [तेन] तभी [घनैः] घनों से [पिट्टयते] पीटी-कूटी जाती है।

भावार्थ :- विवेकी जीवों के शीलादि गुण मिथ्यादृष्टि रागी द्वैषी अविवेकी जीवों की संगति से नाश हो जाते हैं। अथवा आत्मा के निजगुण मिथ्यात्व रागादि अशुद्ध भावों के संबंध से मलिन हो जाते हैं। जैसे अग्नि लोहे के संग में पीटी कूटी जाती है। यधपि आग को घन कूट नहीं सकता, परंतु लोहे की संगति से अग्नि भी कूटने में आती है, उसी तरह दोषों के संग से गुण भी मलिन हो जाते हैं। यह

कथन जानकर आकुलता रहित सुख के घातक जो देखे, सुने, अनुभव किये भोगों की वाँछारुप निदानबंध आदि खोटे परिणामरुपी दृष्टों की संगति नहीं करना, अथवा अनेक दोषोंकर सहित रागी-द्वेषी जीवों की भी संगति कभी नहीं करना, यह तात्पर्य है।।११०।।

वीर संवत् २५०२, पौष शुक्ल १४, मंगलवार
दिनांक-०४-०१-१९७७, गाथा - ११०, १११, प्रवचन-१७७

.... अपना आनन्दस्वभाव आत्मा, उसके संसर्ग में आनन्द की उत्पत्ति होती है और आत्मा के अतिरिक्त परद्रव्य, राग पुण्य-पाप के भाव, वे भी परद्रव्य हैं और आत्मा के अतिरिक्त दूसरे द्रव्य, वे भी परद्रव्य हैं व्यवहार से। उनका संसर्ग करने से दुःख होता है। आहाहा! यह कहते हैं।

२३३) भल्लाहँ वि णासंति गुण जहँ संसग्ग खलेहिं।
वइसाणरु लोहहँ मिलिउ तें पिट्टियइ घणेहिं।।११०।।

अन्वयार्थ :— दुष्टों के साथ... दुष्ट के अर्थ दो—शुभ-अशुभराग विकार, वह भी दुष्ट है। आहाहा! उसका संसर्ग अर्थात् उसकी एकताबुद्धि, वह दोष का कारण है। समझ में आया? पुण्य और पाप के भाव, शुभ-अशुभराग, वह दुष्ट है। आहाहा! उसका संसर्ग अर्थात् एकताबुद्धि स्वभाव के गुण के घात का कारण है। ऐसी बात है। अर्थ में करेंगे। **दुष्टों के साथ जिनका सम्बन्ध है, वह उन विवेकी जीवों के भी... 'भद्राणाम् अपि'** ऐसा कहते हैं। भद्र जीव है विवेकी, तथापि विकार और पर आत्मायें मिथ्यादृष्टि आदि का संसर्ग नुकसानकारक है। **सत्य शीलादि गुण नष्ट हो जाते हैं,... विवेकी जीवों के भी सत्य शीलादि गुण नष्ट हो जाते हैं,...**

जैसे... 'वैश्वानरः' अर्थात् **आग लोहे से मिल जाती है, तभी घनों से पीटी-कूटी जाती है।** अग्नि जब लोहे में प्रवेश करे तो उसके ऊपर घन पड़ते हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव राग के संसर्ग में आवे, वह राग लोहा है। भगवान ज्ञानस्वरूपी भगवान चैतन्यअग्नि है। वह राग के संसर्ग में आवे तो पिटता है। चार गति के दुःख से पिटता है। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :— विवेकी जीवों के.... विवेकी अर्थात् राग से भिन्न पड़ा आत्मा भगवान, ऐसा जिसे भान है—भेदज्ञानी, वह विवेकी। अपना स्वभाव शुद्धचैतन्य आनन्दघन, उसे जिसने राग से भिन्न किया है। चाहे तो व्यवहाररत्नत्रय का देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग या पंच महाव्रत का राग, उससे जिसने विवेक अर्थात् भिन्न किया है आत्मा को। आहाहा! उससे जिसने आत्मा का भेदज्ञान किया है। आहाहा! यह तो एकदम तत्त्व की बात है न, परमात्मप्रकाश है न! स्वयं परमात्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूपी भगवान... आहाहा! यह राग चाहे तो शुभराग हो या अशुभराग हो, विकल्प—राग, आहाहा! उससे जिसने भगवान आत्मा को भिन्न किया है। आहाहा! ऐसी बात सूक्ष्म पड़े भाई लोगों को, क्या हो? समझ में आया? सूक्ष्म बात है, विजय! आहाहा!

अन्तर भगवान आत्मा, सर्वज्ञ परमेश्वर ने अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा है, ऐसा देखा है और ऐसा है। आहाहा! अरे! वह कहाँ कभी अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान की मूर्ति प्रभु आत्मा है, उसे जिसने राग से भिन्न जाना है, उसका नाम विवेकी, उसका नाम धर्मी कहने में आता है। आहाहा! उस धर्मी जीव को भी शीलादिगुण, उसके शीलादि, ब्रह्मचर्य (आदि)। अन्तर ब्रह्म अर्थात् आत्मा, ब्रह्म अर्थात् आत्मा का चरण अन्दर रमण आनन्द के साथ क्रीड़ा, ऐसा जो ब्रह्मचर्य। आहाहा! ऐसे शीलादि गुण **मिथ्यादृष्टि रागी-द्वेषी अविवेकी जीवों की संगति से नाश हो जाते हैं।** जिसकी दृष्टि ही विपरीत है, राग को अपना मानता है, पुण्य और पाप के विकल्प राग, वह आत्मा का स्वभाव नहीं, तथापि उसे अपना मानता है, वह मिथ्यादृष्टि जीव है। आहाहा! समझ में आया? चाहे तो वह अरबोंपति हो और कोई साधु भी दिगम्बर हो, परन्तु जिसने राग और द्वेष को अपना माना, वह मिथ्यादृष्टि है। उसकी दृष्टि सच्ची नहीं। क्योंकि राग और द्वेष वह विकार और दोष है। भगवान आत्मा आनन्दकन्द प्रभु निर्दोष तत्त्व है। उसे निर्दोष तत्त्व के साथ सदोष को एकत्व माना, वह अविवेकी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझ में आया? फिर से। आहाहा!

यह आत्मा वस्तु है, वह तो परमानन्द का कन्द प्रभु अनाकुल आनन्द की गाँठ है आत्मा तो। अरे! इसे कहाँ खबर है? समझ में आया? यह तो कहा नहीं था शकरकन्द

का दृष्टान्त देकर ? शकरकन्द है न ? शकरकन्द। उसकी एक लाल छाल को लक्ष्य में से छोड़ दो तो वह शकरकन्द शक्कर की मिठास का पिण्ड ही है वह। उस शकरकन्द कहते हैं न! आहाहा! शक्कर की मिठास का वह पिण्ड है। इसी प्रकार यह भगवान आत्मा, शरीर, वाणी, मन तो जड़ हैं, वे तो पर हैं, वे कहीं आत्मा नहीं और आत्मा के नहीं। परन्तु उसमें जो कुछ दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम होते हैं, वह भी एक शुभराग का लाल छिलका है। आहाहा! हिंसा, झूठ, विषयभोग वासना का राग, वह तो पाप राग है। परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति, तप का विकल्प भी पुण्यराग है, शुभराग है। उस राग के छिलके को न देखो तो भगवान तो आनन्दकन्द, जैसे शकरकन्द है, उसी प्रकार आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है। कहाँ, सुने कहाँ बेचारे ? आहाहा! समझ में आया ? कहो, यह तो दृष्टान्त समझ में आता है या नहीं ? दृष्टान्त में से सिद्धान्त (समझना चाहिए)। आहाहा!

यह देह तो जड़ पर है। वाणी पर है। वह तो अजीवतत्त्व है। उसमें जो दया, दान, व्रत के परिणाम हों, वे आस्रवतत्त्व अथवा भावबन्धतत्त्व है। आहाहा! उसे न देखकर, अन्दर को देखो तो भगवान तो अनाकुल शान्तरस का समुद्र है। अरे! यह कहाँ देखे ? आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : शक्तिरूप से समुद्र है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शक्ति—सामर्थ्य है। सामर्थ्य है, वह उसका स्वभाव ही है। शक्ति का अर्थ क्या ? सामर्थ्य है वह। अतीन्द्रिय आनन्द की ही उसकी सामर्थ्य है। शक्ति अर्थात् क्या ? समझ में आया ? आहाहा! शक्ति अर्थात् उसका स्वभाव, स्वभाव अर्थात् उसका सत्त्व, सत्त्व अर्थात् उसकी शक्ति का स्वभाव। अतीन्द्रिय आनन्द उसका स्वभाव है। आहाहा! उसे आत्मा कहते हैं। बीच में पुण्य और पाप की वृत्तियाँ उठती हैं, वह तो विकार है, दुःख है, जहर है। आहाहा! अरे! इसे कहाँ खबर है ? उनसे भिन्न पड़कर जिसने आत्मा आनन्दमूर्ति को जाना, अनुभव किया, उसे यहाँ विवेकी धर्मात्मा कहा जाता है। आहाहा! ऐसा धर्म गजब, भाई! समझ में आया ?

ऐसे विवेकी जीवों को उसका संसर्ग नहीं करना। एक बात। यह तो परद्रव्य की

अपेक्षा। अब विवेकी जीवों को... आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! यह तो धर्म की बात है। यह कहीं लौकिक व्यापार और धन्धा और बड़ी धमाल चले, (ऐसी नहीं है)। आहाहा! पोपटभाई! यह तुम्हारे करोड़ों रुपये की धमाल चले। पचास-पचास लाख, करोड़ और दो करोड़ और दस-दस लाख की आमदनी धूल है, सब जहर है। समझ में आया? यह तो आत्मा की आमदनी, अतीन्द्रिय आनन्द की आमदनी को यहाँ लाभ कहते हैं। आहाहा! बनिया लिखते हैं, नहीं? नूतन वर्ष के दिन। लाभ सवाया (ऐसा) दरवाजे के ऊपर लिखते हैं। किसका लाभ? धूल का? आहाहा! वह तो धूल के लाभ के लिये लिखते हैं।

भगवान अन्दर विराजता है। सर्वज्ञ जिनवर वीतराग देव ने जिसे प्रगट किया, वह शक्तिरूप स्वभाव सब भगवान आत्माओं में विराजता है। आहाहा! शक्ति का अर्थ उसका सामर्थ्य ही वह है। अतीन्द्रिय आनन्द उसका सामर्थ्य है, अतीन्द्रिय ज्ञान उसका सामर्थ्य है, अतीन्द्रिय वीर्य—पुरुषार्थ उसका सामर्थ्य है, अतीन्द्रिय सत्ता उसका सामर्थ्य है। आहाहा! अरेरे!

मुमुक्षु : अतीन्द्रिय सत्ता कैसी होती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परमाणु की सत्ता है, वह इन्द्रियग्राह्य है। यह तो अतीन्द्रिय है। परमाणु, वह जड़ है, उसकी सत्ता है वह रूपी-जड़ है। सत्ता—अस्तित्व। और यह तो अतीन्द्रिय सत्ता है। आहाहा! समझ में आया? जिसका अस्तित्व अतीन्द्रियपने है। आहाहा! अरे! यह बात अभी तो लोगों ने गुम कर डाली है। अभी तो धर्म में आता नहीं, संसार के पाप में पचा पूरे दिन स्त्री, पुत्र, धन्धा, कमाना, पाप का पोषण करनेवाला है। अब वह धर्म के नाम से आवे, तब उसे दया, दान, व्रत, और तप को धर्म मनावे। आहाहा! समझ में आया? वह भी मिथ्यादृष्टि है, कहते हैं। आहाहा! जिसका सामर्थ्य और शक्ति है, उसकी जिसे प्रतीति और पर से विवेक नहीं, उन सबको यहाँ अविवेकी मिथ्यादृष्टि कहा गया है। आहाहा! अरे! ऐसी बातें कहाँ? समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं, **विवेकी जीवों के...** विवेकी अर्थात् राग से भिन्न पड़े हुए तत्त्व का अनुभव करनेवाले। आहाहा! **शीलादि गुण...** उसके ब्रह्मचर्य अर्थात् आत्मा के आनन्द का गुण। जो शान्ति प्रगट हुई है अतीन्द्रिय आनन्द, जिसे राग से भिन्न पड़कर

प्रगट हुई है, ऐसे धर्मात्मा को भी **मिथ्यादृष्टि रागी द्वेषी अविवेकी जीवों की संगति से नाश हो जाते हैं।** आहाहा! मूढ़ जीव तो यह बातें करेंगे।

मुमुक्षु : परद्रव्य से क्या होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परद्रव्य से व्यवहार से परद्रव्य उसे कहा। निश्चय से परद्रव्य तो मिथ्यात्व और राग-द्वेष, वह परद्रव्य है। समझ में आया? आहाहा! परद्रव्य जो मिथ्यादृष्टि है, वह बात ऐसी करेंगे कि यह क्या सब धर्म की बातें करते हैं, दिखावा जैसी। कुछ दिखता नहीं न धर्म? वे सब मूढ़ जीव ऐसा कहेंगे। इसलिए ऐसे का संग छोड़ दे। आहाहा! हें! लो, धर्म-धर्म करे, पूरे दिन निवृत्त। सुन न अब। तू पाप में निवृत्त है, यहाँ पाप से भिन्न में निवृत्त हैं। हें! आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं तत्त्व की—वस्तु की स्थिति क्या है। उसकी मर्यादा में, भगवान की मर्यादा में तो अतीन्द्रिय आनन्द और शान्ति है। आहाहा! वह राग के पार है, वह राग में प्रविष्ट नहीं होता। राग आत्मा में प्रविष्ट नहीं होता, आत्मा राग में नहीं जाता, ऐसी चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? यह तो भाई! सर्वज्ञ वीतराग जैन परमेश्वर का मार्ग है। बापू! यह कहीं ऐरे-गैरे कायर का नहीं। आहाहा! ओहो! यह तो अलग शैली है, बापू! आहाहा!

मिथ्यादृष्टि... जिसकी दृष्टि राग और पुण्य के ऊपर और बाहर के संयोग के ऊपर पड़ी है, वह मैं हूँ, ऐसा माना है, परन्तु भगवान अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु परमात्मस्वरूप शक्ति से—सामर्थ्य से विराजता है, उसकी जिसे प्रतीति नहीं, उसका जिसे भरोसा और विश्वास नहीं और जगत के पदार्थ तथा राग-द्वेष आदि का जिसे भरोसा है, वे सब मिथ्या—झूठी पापदृष्टिवाले हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे **मिथ्यादृष्टि रागी द्वेषी अविवेकी...** जिसे राग से भिन्न का भान ही नहीं कि कोई भगवान अन्दर है। आहाहा! ऐसे **जीवों की संगति से नाश...** आत्मा की शान्ति और आनन्द का नाश होगा। यह तो निमित्त से कथन है न! उसका प्रेम करेगा और संसर्ग में आयेगा तो तेरी शान्ति का नाश होगा। क्योंकि वह सब होली सुलायेंगे जहाँ-तहाँ। ऐसा करना, ऐसा करना, दुनिया की सेवा करना, देश की सेवा करना। पैसे इकट्ठे करना, फिर दान में देना। यह करना नहीं और आत्मा... आत्मा की बातें करना। ऐसा करेंगे मूर्ख। समझ में आया? ऐसी बातें हैं, भाई! पोपटभाई! यह तो दुनिया से अलग प्रकार है, भाई! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : अज्ञानी कहे कि पाप करे तो मन्दिर में धोने जाये, हम तो पाप ही नहीं करते।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्दिर में जाये वह पुण्य है, वह भी पाप है। संसार का धन्धा तो अकेला पाप है। आहाहा! पूरे दिन दुकान पर गद्दी पर बैठे और ध्यान रखे। आज दिन के पाँच हजार पैदा हुए, दस हजार हुए और धूल हुई।

मुमुक्षु : इसके बिना चलता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल बिना ही चलता है। स्वतत्त्व ने दूसरे तत्त्व के अभाव से टिका रखा है। लॉजिक से—न्याय से समझोगे या नहीं कुछ?

मुमुक्षु : वह तो तत्त्व की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तत्त्व... इस अँगुली ने इस अँगुली के बिना टिकाये रखा है। यह अँगुली इस अँगुली से अस्ति है और इससे नास्ति है, तब यह टिकी है। इसी प्रकार भगवान आत्मा स्वभाव से अस्ति है और पर से उसमें नास्ति है, तब वह टिक रहा है। आहाहा!

तब हुआ था बहुत वर्ष पहले। बोटाद में पूछा था यह, हरजीवनभाई ने। हरजीवन। नागरभाई के भाई हैं न वहाँ समढियाळा। तब खेत की आमदनी की, दस हजार की बारह महीने में। अब तो सब बढ़ गया। कीमत भी बढ़ गयी न। तब उसने पूछा था। स्वामीनारायण थे वे। उनके छोटे भाई को यहाँ प्रेम, जैन का प्रेम। प्रेम सही, यहाँ आवे, सुने। (वह कहे), महाराज! आप कहते हो पैसे बिना, पैसे बिना। परन्तु पैसे बिना कुछ चलता है हमारे?

मुमुक्षु : सवेरे के पहर में सब्जी लाने के लिये पैसा चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी सब्जी पैसे से नहीं मिलती। वह तो परमाणु है, वे आनेवाले हों तो आते हैं।

मुमुक्षु : पैसे के बिना कोई देगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे के बिना देता है। पैसा-पैसा कहाँ घुस गया है अन्दर?

आहाहा! एक चीज़ में दूसरे चीज़ का तो अभाव है। सब्जी में पैसे का अभाव और पैसे में सब्जी का अभाव। आहाहा! अरे! इसे कहाँ तत्त्व की खबर है। कहो, सेठ! उसने तब पूछा था। कौन सा वर्ष था? (संवत्) २०१० के वर्ष। २०१० के वर्ष, नहीं? पंचकल्याणक, वेदी प्रतिष्ठा। तेईस वर्ष हुए। म्युनिसीपलटी के मकान में व्याख्यान चलता था। लोग तो आते थे। नाम, इसलिए लोग बहुत भरते थे परन्तु समझे कौन अन्दर? जयनारायण। आहाहा! वे हरजीवनभाई बोले थे। मैंने कहा, बापू! एक तत्त्व ने अपने अस्तित्व से दूसरे के नास्तित्व को टिकाये रखा है। इसलिए दूसरे के अभाव से वह टिक रहा है। हें! आहाहा! कुछ लॉजिक-न्याय से समझेगा या ऐसा का ऐसा अन्ध... यह कुछ चले यहाँ तत्त्व में? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **अविवेकी जीवों की संगति से नाश होता है। अथवा...** देखो! अब अन्दर निश्चय लेते हैं। **आत्मा के निजगुण...** आहाहा! **मिथ्यात्व रागादि अशुद्ध भावों के सम्बन्ध से मलिन हो जाते हैं।** यह निश्चय परसंग। भगवान सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि गुण से भरपूर प्रभु, उसे राग की एकताबुद्धि से उसके गुण का नाश पर्याय में होता है। अरे! ऐसी बातें अब। एक-एक बात में अन्तर। भाई! तेरा मार्ग अलग है, नाथ! भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! कहते हैं कि प्रभु तो आनन्दकन्द सच्चिदानन्द प्रभु सत्-सत् है आत्मा, सत् है त्रिकाल। और उसमें ज्ञान और आनन्द से भरपूर वह वस्तु है। आहाहा! जैसे शकरकन्द, वह शक्कर की मिठास का पिण्ड है, उसी प्रकार भगवान अमृत अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है। आहाहा! अरे! यह कब देखने जाये? फुर्सत कहाँ है? समझ में आया? ऐसे आत्मा को राग से एकत्व मानना, वह इसे मिथ्यात्व का दोष लगेगा, कहते हैं। आहाहा!

रागादि अशुद्ध भावों के संसर्ग से... संसर्ग अर्थात् एकताबुद्धि। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! बापू! मार्ग अलग। वीतराग त्रिलोकनाथ जिनवरदेव परमेश्वर जिन्होंने एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक देखे, जाने, उन भगवान की वाणी इच्छा बिना खिरी, वह यह वाणी है। आहाहा! कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन न! तेरा स्वरूप अनाकुल अतीन्द्रिय ज्ञान, आनन्द से भरपूर, उसे यदि राग के संसर्ग में ले जायेगा एकताबुद्धि, तो मिथ्यात्व होगा। आहाहा! कहो, देवीलालजी! ऐसी बातें हैं।

सम्प्रदाय में तो कुछ मिले, ऐसा नहीं है कहीं। वे तो कहें, दया पालो, भक्ति करो, पूजा करो, यात्रा करो, मन्दिर स्थापित करो।

मुमुक्षु : वह झट समझ में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या धूल समझ में आता है? वहाँ समझना था क्या? आहाहा! वह तो परवस्तु स्वतन्त्र है, वह कहीं इसकी की हुई होती है, ऐसा नहीं है। और राग होता है, वह तो विकार और दोष है। आहाहा!

यहाँ तो आचार्य ऐसा कहते हैं कि प्रभु आत्मा जो निराकुल आनन्दस्वरूप, उसे यदि राग की एकताबुद्धि में ले जायेगा तो मिथ्यात्व होगा। तेरा स्वभाव राग के संसर्ग में जायेगा और एकताबुद्धि होगी तो मिथ्यात्व होगा। आहाहा! ऐसी बातें लो यह। हें! साधारण लोगों को बेचारों को तो ऐसा लगे, पागल जैसा लगे। आहाहा! बापू! तेरा मार्ग अलग, नाथ! वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ... यह तो वे (अज्ञानी) कहे, देश की सेवा करो, भूखे को अनाज दो, प्यासे को पानी दो, रोगी को औषध दो, कपड़े न हों उसे कपड़े दो, तुमको धर्म होगा। धूल भी नहीं। सुन न!

मुमुक्षु : सर्दी हो तो कम्बल दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कम्बल, कपड़ा। झोंपड़ा बनाकर दो गरीब लोगों को बेचारों को सर्दी बहुत लगती हो तो। झोंपड़ा साधारण। बापू! वह क्रिया तो पर की है और उसमें होनेवाला भाव तो राग है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो ऐसा ही कहे, तुम पहले मानवधर्म बताओ, फिर आत्मा का धर्म।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानवधर्म ही यह है। मानव अर्थात् ज्ञायते इति मानव। मनुष्य किसे कहते हैं? जो वस्तु के स्वरूप को जाने, उसे मनुष्य कहते हैं। बाकी तो मनुष्य स्वरूपे मृगा / ढोर है, मृग हैं। वह अरबोंपति हो या धूलपति सब हो। पोपटभाई! हें! आहाहा! गोम्मटसार में पाठ है। मानव—मनुष्य कैसे कहते हैं? ज्ञायते, वस्तु को ज्ञायते इति ज्ञायक मनुष्य। आहाहा! जिसे आत्मा का मनन करना आता है। आत्मा आनन्द का नाथ, उसका—ज्ञायक का मनन करना आवे, उसे मनुष्य कहते हैं। आहाहा! कहा है न? बन्दर का दृष्टान्त। मनुष्य किसे कहते हैं? ऐसा कि, पाँच इन्द्रिय हैं, उसे मनुष्य

कहते हैं? तब तो बन्दर को पाँच इन्द्रिय उपरान्त एक पूँछ अधिक है, तो उसे बड़ा मनुष्य कहें। श्रीमद् ने कहा है। श्रीमद् राजचन्द्र पूर्व के संस्कारी जीव। सोलह वर्ष में तो मोक्षमाला बनायी श्रीमद् राजचन्द्र ने। सोलह वर्ष की उम्र देह की। देह की न? आत्मा तो अनादि-अनन्त है। यह तो देह हड्डियाँ। उन्होंने ऐसा कहा वहाँ मोक्षमाला में, कि यह पाँच इन्द्रियाँ हैं, ... है, उसे मनुष्य कहना? तब तो पाँच इन्द्रिय उपरान्त बन्दर को पूँछ है तो बड़ा मनुष्य कहना। ऐसा नहीं है। जो कोई राग से भिन्न करके आत्मा को जानता है, उसे मनुष्य कहा जाता है। आहाहा! परन्तु बात में बहुत अन्तर, भाई! दुनिया से। आहाहा!

यह कहते हैं, भाई! प्रभु! तू यदि राग के संसर्ग में गया। आहाहा! वह दोष है, उसका संसर्ग किया, उसमें एकत्वबुद्धि होगी, तुझे मिथ्यादृष्टिपना होगा। तेरा समकितपना लुट जायेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! ऐसी व्याख्या! बापू! यह मार्ग दुनिया से अलग है। आहाहा! यह **रागादि अशुद्ध भावों के सम्बन्ध से...** सम्बन्ध का अर्थ एकताबुद्धि, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कहो, शुकनलालजी! ऐसी बातें हैं। आहाहा! बापू! यह जन्म-मरण करके कचूमर निकल गया भाई तेरा। अनन्त जन्म-मरण कौवे के, कुत्ते के, चींटियों के, नारकी के, पशु के। आहाहा! भाई! तू तो अनादि का है। तेरा तत्त्व कोई नया हुआ नहीं, वह तो अनादि का है। कहाँ रहा, वह अनादि का? भवभ्रमण में रहा, वह दुःखी होकर रहा है। आहाहा! मनुष्य हुआ और पैसावाला हुआ तो भी वह दुःखी है बेचारा। पैसे मेरे और मैं उनका। मिथ्यादृष्टि में दुःखी है, आकुल है।

रागी द्वेषी अविवेकी जीवों की संगति से नाश हो जाते हैं। अशुद्ध भावों के सम्बन्ध से मलिन हो जाते हैं। लो, दोनों ली न। आहाहा! परमात्मप्रकाश की शैली ही अलग प्रकार की है। आहाहा! **जैसे अग्नि लोहे के संग से पीटी-कूटी जाती है।** अग्नि यदि अकेली हो तो उसके ऊपर घन नहीं पड़ते परन्तु अग्नि लोहे के संग में जाती है, लोहे के गोले में अग्नि प्रविष्ट होती है (तो) ऊपर घन पड़ेंगे। आहाहा! ऊपर-ऊपर पीटेंगे। आहाहा! अकेली अग्नि को कोई घन मारेगा? परन्तु वह अग्नि यदि लोहे के गोले में गयी (तो) पिटेगी, घन पड़ेंगे, प्रभु! आहाहा! इसी प्रकार अकेला आत्मा

ज्ञायकस्वभाव भिन्न रहेगा, उसके सिर पर दुःख नहीं होगा उसे। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

उसी तरह दोषों के संग से... देखो यह। जैसे लोहे के संग में अग्नि गई तो पिटेंगे उसे। इसी प्रकार दोष के संग में गया तो दुःखी होकर भटक मरेगा। आहाहा! शैली वह शैली। समझ में आया? अब वे दया, दान और व्रत, भक्ति को धर्म कहे। यहाँ कहते हैं कि दया, दान का भाव राग है। उसका संसर्ग—एकता करेगा तो तुझे मिथ्यात्व होगा। हें!

मुमुक्षु : किसकी बात मानना?

पूज्य गुरुदेवश्री : तुलना करने की शक्ति है या नहीं? पागल है यह? सब्जी में भी जाँच करके लेता है या नहीं? क्या उसमें डंकवाली हो? दाग-दाग। लौकी इतनी बड़ी हो तो दागवाली लेता है यह? दो पैसे सेर मिलती हो पहले। अब चार आना, आठ आना हो गये हैं। पहले तो दो पैसे सेर लौकी (मिलती थी)। यह दागवाली नहीं लेता। टुवा समझे न? वहाँ परीक्षा करता है या नहीं? यह आता है या नहीं इसे? आहाहा! इसी प्रकार जो राग की एकता में राग से धर्म मनावे, वह इसे दाग पड़ा है। छोड़ दे यह बात। है? आहाहा!

दोषों के संग से... जैसे वह अग्नि लोहे के संग में जाती है। यह पहिया होता है न? गाड़ा का पहिया। उस पहिये को गर्म करे और अग्नि में जाये, फिर उसे पीटते हैं। उसी प्रकार आत्मा। आहाहा! वह दोष के संग में जाये। आहाहा! दुःखी होगा, कहते हैं। तेरा निर्दोष तत्त्व भगवान पूर्णानन्द प्रभु, ऐसे पुण्य और पाप के विकल्प और राग के संसर्ग में यदि एकताबुद्धि में गया (तो) दुःख के घन पड़ेंगे। स्वयं आकुलता है, उस आकुलता के ऊपर आकुलता की पीट पड़ेगी तुझे, बापू! आहाहा! तो यह सब पैसेवाले गिने जाते हैं न, अरबोंपति और करोड़ोंपति, ये सुखी होंगे या नहीं?

मुमुक्षु : एक दुःख हो उसे, इनकमटैक्स देना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : पोपटभाई! कोई अभी कुछ कहता था कि इनकम टैक्स इतना भरना पड़ता है। अपने में से था कोई मुमुक्षु। इतना इनकम टैक्स बहुत भरना पड़ता है। ऐसे बहुत नाम सामने आते हैं। कोई पैसेवाले का कहता था। कालीदास कामदार।

बोटादवाला। है न मुम्बई, लोहे का व्यापार है। ऐ तुरखिया! पहिचानते हो? अपना कालीदास कामदार। बहुत लाखों। बाहर में करोड़पति कहलाता है। उसे इनकम टैक्स का आया था, सुना था। बहुत लाखों भरना पड़ते हैं। आहाहा! वह इनकम टैक्स का नहीं, परन्तु वह पैसा है, वह मेरा है और मैं सुखी हूँ, यह मान्यता ही दुःख और आकुलता है। आहाहा! वह अग्नि में सिंक गया है, कषाय-अग्नि से। आहाहा! एक हमारे नारणभाई थे न, वे कहते थे कि एक बार मैं पारसी के घर में गया। नारणभाई थे न? दीक्षा ली थी। पारसी के घर गया। वहाँ जीवित सूकर के पैर में लोहे के पतले सरिया बाँधे। बाँधकर अग्नि में जिन्दा डाला। जैसे शकरकन्द सेके... नारणभाई कहते थे। वे पोस्ट माटर थे न। किसी के पास गये होंगे, पारसी से मिलने। सूकर को बाँधा था। पैर में पतले सरिया लोहे के। क्या कहा?

मुमुक्षु : लोहखण्ड के तार।

पूज्य गुरुदेवश्री : पतले तार और ऐसी की ऐसी अग्नि थी, उसमें जीवित डाला। सेंककर फिर खाना होगा। आहाहा! देखो! ऐसे भव, बापू! तूने अनन्त किये हैं, तू भूल गया है बापू! तुझे खबर नहीं। आहाहा! तू अनादि काल का इस अनन्त काल में ऐसे भी प्रभु! तूने अनन्त बार किये हैं। आहाहा! जरा कुछ सुविधा मिली, पाँच-पचास लाख पैसे और धूल, स्त्री, पुत्र और हम सुखी हैं।

.... तत्त्व है अन्दर, परमात्मस्वरूप ही भगवान आत्मा है, प्रत्येक आत्मा। परमात्मा अरिहन्त हुए, वे तो पर्याय में—अवस्था में अरिहन्त हुए। यह तो स्वभाव से स्वयं भगवान परमात्मा है आत्मा। आहाहा! ऐसे भगवान को राग का संसर्ग कराना... आहाहा! वीतरागी स्वरूप प्रभु आत्मा को राग का संसर्ग अर्थात् परिचय, उसकी एकताबुद्धि करना। आहाहा! लुट जायेगा प्रभु तू पर्याय में। आहाहा! ऐसी बात। डाह्याभाई! ऐसा कहाँ से निकाला? भगवान ने ऐसा कहा है, बापू! तुझे खबर नहीं।

जिनेश्वरदेव परमेश्वर। आहाहा! वे ऐसा कहते हैं कि **दोषों के संग से गुण भी मलिन हो जाते हैं।** आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का, उसे राग जो दुःखरूप है, उसके साथ संसर्ग करने से वह दुःखी (होता है)। ऐसी बातें,

प्रभु! तुझे खबर नहीं, भाई! तेरी प्रभुता की तुझे खबर नहीं। भाई! तू पामर होकर बैठा। आहा! आहाहा! यह दया, दान का पुण्य का राग, उसकी भी यदि एकताबुद्धि करेगा तो तेरी शान्ति लुट जायेगी। यह तो कहते हैं, दया, दान के परिणाम से धर्म होगा। अरे! सुन न भाई! तुझे खबर नहीं है, बापू!

श्रीमद् में आता है, नहीं? उन आठ बोल में। जीव की रक्षा के ऊपर लक्ष्य दे। आठ बोल नहीं? स्वद्रव्य की रक्षा के ऊपर लक्ष्य दे। शीघ्रता से लक्ष्य दे, यह। भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप है, उसकी रक्षा के ऊपर शीघ्रता से लक्ष्य दे। आहाहा! सोलह वर्ष में कहते हैं श्रीमद् राजचन्द्र। समकित तो बाद में प्राप्त करते हैं, परन्तु उससे पहले भी ऐसे भणकार आते थे। उम्र तो देह की है न। यह नहीं। आत्मा तो अनादि-अनन्त है। एक व्यक्ति यहाँ आया था। पैसावाला, जामनगर में कुछ दुकान करनी थी। पाँच-पच्चीस लाख होंगे। कहा, आयुष्य गिना जाता है, वह देह का या आत्मा का? तो (उसने) कहा, हमको कुछ खबर नहीं। जामनगर में दुकान करनी थी। गृहस्थ था। ऐसे के ऐसे सब। यह आयुष्य तो देह का है। आत्मा का आयुष्य है? आत्मा तो है... है... है, अनादि-अनन्त है। व्यापार में होशियार, चतुर और इसमें बड़े मूर्ख। हें! परन्तु इतनी खबर नहीं? यह आयुष्य है, वह देह की स्थिति का है या आत्मा की स्थिति का है? परन्तु यह बात कभी विचारी न हो। जगत की होली पूरे दिन राग और द्वेष और पुण्य... आहाहा! मर गया ऐसा का ऐसा।

यहाँ तो कहते हैं कि निर्दोष इस भगवान आत्मा को राग के दोष का संसर्ग और एकताबुद्धि करेगा तो तुझे मिथ्यादृष्टि होगी। आहाहा! यह शुभभाव बहुत अच्छा है, ऐसा जो संसर्ग तूने किया तो मिथ्यात्व होगा। पण्डितजी! आहाहा! वे कहें कि, दया, दान व्यवहाररत्नत्रय है, वह निश्चय का कारण है। यहाँ कहते हैं, व्यवहाररत्नत्रय का राग है, उसकी यदि एकताबुद्धि होगी तो मिथ्यात्व होगा। डाह्याभाई! ऐसा मार्ग है, बापू! आहाहा!

दोषों के संग से गुण भी मलिन हो जाते हैं। गुण शब्द से उसकी पर्याय, हों! गुण तो त्रिकाल है। गुण है वह तो त्रिकाल है। परन्तु उसकी पर्याय में जो निर्मल पर्याय है, उसमें यदि राग की एकताबुद्धि की तो गुण की पर्याय नाश होगी। आहाहा! ऐसा उपदेश

किस प्रकार का ? कोई कहे कि जैनधर्म में तो दया पालना, व्रत पालना, ऐसा आता है। रात्रिभोजन नहीं करना, रात्रि में नहीं खाना, कन्दमूल खाना नहीं। अरे... भगवान! सुन न, बापू! तुझे खबर नहीं। यह सब क्रियायें जड़ की, उनके साथ क्या सम्बन्ध है ? आहाहा!

यहाँ तो प्रभु निर्विकल्प आनन्द का नाथ शुद्धचैतन्यघन को आत्मा कहते हैं। वह पुण्य और पाप के भाव तो आस्रव और विकार और भावबन्ध है। आहाहा! उस भावबन्ध से अबन्धस्वरूप प्राप्त होगा ? भावबन्ध को अबन्धस्वरूप में एकताबुद्धि करने से मिथ्यात्व होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह है, उसका स्पष्टीकरण करते हैं। ...ठीक, बापू! कर न तू। बापू! इसका योगफल आयेगा, तब खबर पड़ेगी तुझे। भान बिना का, क्या खबर पड़े ?

उसी तरह... उसी तरह अर्थात् ? जैसे अग्नि लोटे का पाटा होता है न ? गाड़ा का नहीं पहिया का पाटा ? गर्म करे, फिर टीपे। आहाहा! पहिया बड़ा (लोहे को)। वहाँ तो हमारी दुकान के पीछे ही एक लुहार था। पालेज में हमारी दुकान जहाँ थी न, उसके पीछे ही लुहार था। वोरा का था प्रायः। हम तो छोटी उम्र के १७-१८ वर्ष के तब की बात है। पीटे। लकड़ी का जो पहिया हो, उसे व्यवस्थित करने के लिये। बहुत चौड़ा हो, चौड़ा, इसलिए ऐसे पीटकर व्यवस्थित करे। लोहा पतला व्यवस्थित हो। उस अग्नि को लोहे में जाने से जैसे घन पड़ते हैं, उसी प्रकार प्रभु तेरा आनन्द का नाथ राग की एकता में जाने से तुझे आकुलता और दुःख होता है। आहाहा! कहो सेठ! सुना नहीं वहाँ तुम्हारे धूल में रुपये में।

मुमुक्षु : कौन सुनावे ? प्रचार कौन करे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रचार तो जिसे गरज होगी, वह आयेगा। यह कहते हैं, हमारे गाँव में आओ, सागर में। .... अब तो तुम्हारे यहाँ मकान है। तुम्हार क्या अब, लड़के करते हैं। घर में साठ तो मोटरें हैं। बड़े करोड़पति। यह दोनों भाई... धूल में भी नहीं वहाँ। विजय! तेरे पैसे-बैसे का सुख होगा ? नहीं ? यहाँ कोई हाँ नहीं करे। सुनते हैं, इसकी माँ को प्रेम है। आणन्दभाई का भानेज है। आणन्दभाई की बहिन का पुत्र है। एक दिन मैं गया था न वहाँ उनकी बहिन के यहाँ। तब एक बार मुम्बई गये तब। दस हजार रखे थे। एक दिन में दस हजार रखे थे। ...उसके परिवार में ... है, परन्तु उन लोगों को

प्रेम है। आहा! अरे... भाई! यह समझने का मिले और सुनने का मिले वह सच्चा है यहाँ जरा विचार करे, कब इसे रुचि हो? ऐसा कहते हैं यहाँ। गजब बात की है, हों! हें!

नौ तत्त्व में आत्मा किसे कहते हैं? दया, दान के परिणाम तो पुण्यतत्त्व है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग की वासना पापतत्त्व है। शरीर, वाणी, कर्म है, वह अजीवतत्त्व है। नौ तत्त्व है या नहीं? तब वह अजीवतत्त्व अजीव में रहा। पुण्य-पापतत्त्व आस्रव में रहा। जीव है, उसमें आस्रवतत्त्व नहीं। आहाहा! वह तो ज्ञायकतत्त्व है। आहाहा! ज्ञायकतत्त्व की दूसरे तत्त्व के साथ एकता करना, वह पर का कर्तव्य, वह मिथ्यादृष्टि, ऐसा कहते हैं। गजब बात, भाई! मित्रसेनजी! ऐसी बातें हैं, बापू! ऐसी बातें लोगों को मुश्किल पड़ती हैं। सुनने को मिलती नहीं, जहाँ हो वहाँ... वे कार्यकर्ता होते हैं न सब? संसार के कार्यकर्ता। यह करना और यह करना और यह करना। गिरधरभाई कार्यकर्ता थे न? काँप में। गुजर गये बेचारे। यहाँ बैठते थे व्याख्यान में। आहाहा! ...भाई गुजर गये, लो। ...सागर, सागर। ...छह वर्ष से अकेले थे। ...यहाँ से ले गये और ले गये न... आहाहा! वृद्धावस्था है, इसलिए ले जाते हैं, ऐसा कहा था। यह देह की स्थिति। आहाहा! .... देह की स्थिति की जो अवधि है, उस अवधि में देह छूट जायेगी। लाख उपाय करे, डॉक्टर... आहाहा!

यहाँ कहते हैं, जैसे उस अग्नि को लोहे में पड़ने पर घन पड़ते हैं, उसी प्रकार प्रभु आत्मा अपने स्वभाव को छोड़कर रागादि परद्रव्य है, आहाहा! उनका संसर्ग करने से उसे चार गति के दुःख के घन पड़ेंगे। देवगति भी दुःख है। वहाँ सुख नहीं। जैसे यह पैसेवाले.... दुःखी हैं बेचारे। भिखारी हैं, लाओ... लाओ... लाओ, यह लाओ, यह लाओ, यह लाओ। तीन लोक का नाथ अन्दर विराजता है, उसकी तो (कीमत) नहीं। समझ में आया? **यह कथन जानकर आकुलता रहित सुख के घातक...** क्या कहते हैं, देखो! क्या करना यह सुनकर? ऐसा कहते हैं। **आकुलता रहित सुख के घातक जो देखे, सुने, अनुभव किये भोग की वांछारूप...** जो कुछ देखा, कान से सुना, मन से अनुभव किया रागादि। आहाहा! ऐसे भोग की वांछारूप **निदानबन्ध आदि खोटे परिणामरूपी दुष्टों की संगति नहीं करना....** देखा!

गाथा - १११

अथ मोहपरित्यागं दर्शयति–

२३४) जोइय मोहु परिच्चयहि मोहु ण भल्लउ होइ।
मोहासत्तउ सयलु जगु दुक्खु सहंतउ जोइ।।१११।।

योगिन् मोहं परित्यज मोहो न भद्रो भवति।
मोहासक्तं सकलं जगद् दुःखं सहमानं पश्य।।१११।।

जोइय इत्यादि। जोइय हे योगिन् मोहु परिच्चयहि निर्मोहपरमात्मस्वरुपभावना–प्रतिपक्षभूतं मोहं त्यज। कस्मात्। मोहु ण भल्लउ होइ मोहो भद्रः समीचीनो न भवति। तदपि कस्मात्। मोहासत्तउ सयलु जगु मोहासक्तं समस्तं जगत् निर्मोहशुद्धात्मभावनारहितं दुक्खु सहंतउ जोइ अनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिक–सुखविलक्षणमाकुलत्वोपादकं दुःखं सहमानं पश्येति। अत्रास्तां तावद् बहिरङ्गपुत्रकलत्रादौ पूर्वं परित्यक्ते पुनर्वासनावशेन स्मणरुपो मोहो न कर्तव्यः। शुद्धात्मभावनास्वरुपं तपश्चरणं तत्साधकभूतशरीरं तस्यापि स्थित्यर्थमशनापानादिकं यद्गृह्यमाणं तत्रापि मोहो न कर्तव्य इति भावार्थः।।१११।।

आगे मोह का त्याग करना दिखलाते हैं–

मोह कदापि न सुखदायक है हे योगी! इसको छोड़ो।
मोहासक्त जीव जग में दुख पाते यह प्रत्यक्ष लखो।।१११।।

अन्वयार्थ :– [योगिन्] हे योगी, तू [मोहं] मोह को [परित्यज] बिलकुल छोड़ दे, क्योंकि [मोहः] मोह [भद्रः न भवति] अच्छा नहीं होता है, [मोहासक्तं] मोह से आसक्त [सकलं जगत्] सब जगत् जीवों को [दुःखं सहमानं] क्लेश भोगते हुए [पश्य] देख।

भावार्थ :– जो आकुलता रहित है, वह दुःख का मूल मोह है। मोही जीवों को दुःख सहित देखो। वह मोह परमात्मस्वरुप की भावना का प्रतिपक्षी दर्शनमोह चारित्रमोहरुप है। इसलिये तू उसको छोड़। पुत्र, स्त्री आदिक में तो मोह की बात दूर रहे, यह तो प्रत्यक्ष में त्यागने योग्य ही है, और विषय–वासना के वश देह आदिक परवस्तुओं का रागरुप मोह–जाल है, वह भी सर्वथा त्यागना चाहिये। अंतर बाह्य मोह का त्यागकर सम्यक् स्वभाव अंगीकार करना। शुद्धात्मा की भावनारुप जो तपश्चरण उसका साधक जो

शरीर उसकी स्थिति के लिये अन्न जलादिक लिये जाते हैं, तो भी विशेष राग न करना, राग रहित नीरस आहार लेना चाहिये।।१११।।

गाथा-१११ पर प्रवचन

हे योगी! शिष्य को कहते हैं, जिसने आत्मा के आनन्द में परिणति जोड़ दी है, आहाहा! वह योगी। योगी अर्थात् बाबा और वे नहीं। योग, शुद्धदशा को जिसने आत्मा के साथ जोड़ दी है, उसे योगी कहते हैं। आहाहा! बाकी सब भोगी कहते हैं। आहाहा! **हे योगी! मोह को बिल्कुल छोड़ दे,...** परसन्मुख की सावधानी का विकल्प है, वह बिल्कुल छोड़ दे। आहाहा! स्वभाव के सन्मुख होने के परिणाम को प्रगट कर। आहाहा! परसन्मुख की सावधानी के भाव को छोड़ दे। आहाहा! इस प्रकार स्वद्रव्य और परद्रव्य दोनों की बात लेते हैं। भगवान आत्मा के सन्मुख हो, वह परिणाम कर और परद्रव्य के सन्मुख हो, उस परिणाम को छोड़ दे। आहाहा! अरे! ऐसी बातें अब।

क्योंकि मोह अच्छा नहीं होता है,... परसन्मुख का विकल्प और सावधानी, वह भली नहीं। आहाहा! **मोह से आसक्त सब जीवों को क्लेश भोगते हुए देख।** आहाहा! क्या कहते हैं? जो कोई आत्मा के स्वभाव के अतिरिक्त परपदार्थ में आसक्तिवाले मोह—सावधानीवाले जीव, उन सब जीवों को तू दुःखी देख। आहाहा!

मुमुक्षु : ....उन्हें दुःखी देखना?

पूज्य गुरुदेवश्री : तू दुःख है, ऐसा देख। उन्हें दुःख है, ऐसा जान। इसलिए तुझे ज्ञान में आयेगा कि वह परसन्मुख का झुकाव है, वह दुःख है। आहाहा! कहो, यह अरबोंपति पैसेवाले को दुःखी देख, ऐसा कहते हैं। क्योंकि उसका लक्ष्य परसन्मुख के भाव में है। आहाहा! यह पैसेवाले हैं और स्त्री-पुत्रवाले हैं और सुखी हैं। धूल में भी सुखी नहीं। समझ में आया? वाळा है यह सब। एक वाळा पैर में निकले तो शोर मचाता है। यह तो तेरे कितने वाळा है, भगवान! स्त्रीवाला, पुत्रवाला, पैसेवाला, मकानवाला और कीर्तिवाला, कितने वाळा लगे हैं तुझे?

मुमुक्षु : यह तो वैभव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख का विस्तार है सब। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

सकल जगत जीवों को क्लेश भोगते हुए देख। आहाहा! क्या कहते हैं यह? यह सब पैसेवाले दिखते हैं और सेठिया दिखते हैं, राजा दिखते हैं और देव दिखते हैं, वे सब भगवान आत्मा के सन्मुख के परिणाम उन्हें नहीं हैं, उन्हें तो परद्रव्य की ओर के सन्मुखता के परिणाम हैं, तू उन्हें दुःखी देख, उन्हें तू दुःखी जान। आहाहा! कहो, समझ में आया? तुझे ऐसा लगे कि आहाहा! उन्हें तो पैसेवाले, स्त्री और पुत्र बड़े, आठ-आठ पुत्र और एक-एक पुत्र को दस-दस लाख की आमदनी और अलग कारखाने लगाये हों मुम्बई में, बहुत सुखी, बड़ा फैलाव। दुःखी है, ऐसा तू उसे देख।

मुमुक्षु : एयर कन्डीशनर बँगले में आराम से रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कन्डीशनर तो होली है, वहाँ ठण्डी बाहर की। अन्दर में सुलगता है न! परसन्मुख का विकल्प है, परसन्मुख की सावधानी है, वह होली सुलगती है, वहाँ अन्दर। (एयर) कन्डीशनर होता है न ठण्डे में। वह गर्मी न ले, इसलिए उसमें रखे। धूल में भी नहीं वहाँ।

लो, सकल जगत को तू दुःखी देख। आहाहा! जिसे स्वद्रव्य सन्मुख की सावधानी नहीं और परद्रव्य की सावधानी है, ऐसे सब जीव को तू दुःखी देख। आहाहा! ऐसा कहकर परसन्मुख का सावधानपना छुड़ाकर स्वसन्मुख का सावधानपना कराते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, पौष कृष्ण १, गुरुवार
दिनांक-०६-०१-१९७७, गाथा - १११ (१-२), प्रवचन-१७८

परमात्मप्रकाश, १११ गाथा चलती है।

भावार्थ :— जो आकुलतारहित है,... यह शब्द पड़ा है परन्तु इसका अर्थ यह कि यह आत्मा अनाकुल सुखस्वरूप है। आत्मा है, वह अनाकुल सुख परमार्थ सुखस्वरूप है। आहाहा! उससे विपरीत आकुलता, ऐसा लेना। टीका में ऐसा है। समझ में आया? भगवान आत्मा का निजस्वरूप परमार्थ से अनाकुल आनन्दस्वरूप उसका है। उसे छोड़कर जो आकुलता सहित है। **वह दुःख का मूल है।** क्या कहते हैं? समझ में आया? आकुता। पुण्य और पाप के भाव आकुलता है।

मुमुक्षु : पुण्य तो निराकुल कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य अर्थात् राग, राग अर्थात् मोह, मोह अर्थात् आकुलता, आकुलता अर्थात् दुःख। बात ऐसी है, भाई! आहाहा! मार्ग! पाठ है न अन्दर? '**अनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखविलक्षणमाकुलत्वोपादकं**' ऐसा है संस्कृत में। संस्कृत कहाँ पढ़े होंगे, मुश्किल से अभी यह समझे वहाँ....

मुमुक्षु : कहाँ खबर थी कि संस्कृत पढ़ना पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची। भले संस्कृत नहीं परन्तु वस्तु तो है, ऐसा जानना पड़ेगा न! यह आत्मा जो है, वह तो परमार्थ से अनाकुल आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्द प्रभु है। आहाहा! सत् अर्थात् शाश्वत चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द उसका स्वरूप है। सम्यग्दृष्टि का विषय वह अनाकुल आनन्दस्वरूप आत्मा, वह सम्यग्दृष्टि का विषय है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! परमात्मा जिनवरदेव त्रिलोकनाथ किसे अनाकुल कहते हैं और किसे आकुल कहते हैं? आहाहा!

कहते हैं कि अनाकुल लक्षण पारमार्थिक सुख। आहाहा! यह तुम्हारे पैसे-फैसे में सुख है, वह नहीं, वह तो दुःख है, ऐसा कहते हैं। स्त्री में, पैसे में, इज्जत में, मकान में ठीक है, सुख है, यह बात झूठी है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु ज्ञान और आनन्दस्वरूप प्रभु आत्मा... आहाहा!

आज सवेरे यह याद आया था। चार सज्झायमाला आती है न? उसमें तब पढ़ा हुआ, उसमें से यह बात (याद आयी)। उसमें यह शब्द आता है। 'सहजानन्दी रे आत्मा' चार सज्झायमाला श्वेताम्बर में आती है। हम तो दुकान पर वह वाँचते थे न! १८-१९ वर्ष की उम्र में, हों! सत्तर वर्ष पहले बहुत वाँचते थे। उसमें यह आया था। आज सवेरे (याद) आया। 'सहजानन्दी रे आत्मा' हे आत्मा! तू स्वाभाविक आनन्दस्वरूप है। 'सहजानन्दी रे आत्मा, क्यों सो रहा निश्चिन्त रे' निश्चिन्त क्यों सो गया? प्रभु! तू राग और पुण्य-पाप में पड़ा है, भाई! आहाहा! समझ में आया? 'सहजानन्दी रे आत्मा, क्यों सो रहा निश्चिन्त रे' अरे! निश्चिन्त होकर राग और विकार में सो गया, सो रहा है तू।

'मोह तणा रणिया भमे' मोहरूपी लेनदार तेरे सिर पर पड़े हैं। आहाहा! मोहरूपी कर्ज है तेरे। आहाहा! 'जाग जाग मतिवन्त रे, लूटे जगत के जन्त रे' यह स्त्री, पुत्र लूटते हैं, तुम हमको लाये किसलिए? हमारा करना पड़ेगा, पोषण करना पड़ेगा। लूटनेवाले इकट्ठे सब तुझे लूटते हैं। तुझे लूटते हैं। आहाहा! नियमसार में कहा न? यहाँ आयेगा। नियमसार में कहा है कि स्त्री, कुटुम्ब, परिवार है, वह तो ठगों की टोली तुझे मिली है। नियमसार। पद्मप्रभमलधारिदेव की टीका है, नियमसार कुन्दकुन्दाचार्य महाराज का शास्त्र है। समझ में आया? पोपटभाई! यह तो सब दुकान पर वाँचन किया हुआ है। यह सवेरे थोड़ा याद आया।

'सहजानन्दी रे आत्मा, क्यों सो रहा निश्चिन्त रे, मोह तणा रे रणिया भमे,' मोहरूपी महादुःख तेरे सिर पर पड़ा है। 'जाग जाग मतिवन्त रे, लूटे जगत के जन्त रे, नाखी वांक अनन्त रे' वांक डाले, तब विवाह किसलिए किया था? फलाना हुआ और ढीकणा हुआ। जवान बाई हो तो (ऐसा कहे), किसलिए विवाह किया? वृद्धा से विवाह करना था न! ऐसा कहकर जगत लूटता है। आहाहा! ऐई! यह सब पत्र आ गये हैं हमारे पास। आहाहा! 'जाग जाग मतिवन्त रे, लूटे जगत के जन्त' जगत के प्राणी तुझे लूटते हैं। समझे? 'लूटे जगत के जन्त, उसमें विरला कोई उगरन्त।'

मुमुक्षु : श्वेताम्बर में है?

पूज्य गुरुदेवश्री : श्वेताम्बर का शास्त्र है।

मुमुक्षु : वहाँ ऐसी बात?

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे न। कितनी ही वैराग्य की बात हो। तत्त्व की बात में भूल होती है। यहाँ अपने पास चार सज्झायमाला है। यहाँ अलमारी है। एक-एक में २००-२५० सज्झाय है, सज्झाय। तो मैं तो दुकान पर सब वाँचता था न! निवृत्ति (थी)। पिताजी की घर की दुकान थी और छोटी उम्र से रस था, १७ वर्ष की उम्र से। १० और ७। अभी तो ८७ हुए। सत्तर वर्ष, क्या कहते हैं तुम्हारे? सत्तर। 'जाग जाग मतिवन्त रे, लूटे जगत के जन्त' जगत के प्राणी तुझे लूटते हैं, प्रभु! हमारा करो, हमारा करो, हमारा करो।

मुमुक्षु : लड़के हों तो सेवा करे न!

पूज्य गुरुदेवश्री : पुत्र किसका था? सेवा किसकी? धूल में। सब लूटनेवाले हैं। ऐई...!

मुमुक्षु : छोटी उम्र से वैराग्य था।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले से निवृत्ति थी न। घर की दुकान पिताजी की, पूर्व के वैराग्य के संस्कार तो थे न!

'कोई विरला उगरंत।' उसमें अन्तिम शब्द यह आता है, भाई! 'कोई विरला उगरन्त रे, सहजानन्दी रे आत्मा।' यह यहाँ कहते हैं। भगवान! तू तो सहजानन्दस्वरूप है न! आहाहा! अनाकुल आनन्द परमार्थस्वरूप। प्रभु! तेरी चीज़ में तो अनाकुल आनन्द भरा है न! आहाहा! उससे विपरीत तू आकुलता उत्पन्न करता है। पर में सुख है, पाप में मजा है, पुण्य में धर्म है—ऐसी मिथ्यादृष्टि तुझे आकुलता उत्पन्न करती है। आहाहा! समझ में आया? यह आकुलता... है? **वह दुःख का मूल मोह है।** उस आकुलता का मूल मोह है। पर के प्रति सावधानी है, वह आकुलता और वह आकुलता दुःख है। आहाहा! समझ में आया?

मोही जीवों को दुःख सहित देखो। आहाहा! ऐसे प्राणी जो अपने आनन्दस्वरूप को भूलकर, पर में सावधानपने जो आकुलता उत्पन्न करते हैं, उन्हें तू दुःखी देख, उन्हें

तू दु:ख देख। आहाहा! देखो! यह दिगम्बर सन्तों की वाणी तो देखो! यह सब पैसेवाले और सेठियों को दु:खी देख, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : तब गरीब सुखी होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : गरीब भी दु:खी है। गरीब, वह दीनता से दु:खी है। यह पैसे के अभिमान से दु:खी है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, पोपटभाई! आहाहा! यह तो और अभी आया, याद नहीं था, सवेरे यह आया था पहले। सहजानन्दी आत्मा। अरे प्रभु! तू सहजस्वरूपी आनन्दमूर्ति प्रभु, तेरी दृष्टि वहाँ होनी चाहिए। उसके बदले बाह्य पुण्य और पाप तथा उसके फल में तेरी प्रीति, (वह) आकुलता है, प्रभु! वह दु:ख है। आहाहा! यह तो सिद्धान्त सत्य है। आहाहा!

वह आकुलता। ऐसा लेना कि अनाकुल पारमार्थिक सुख जो अपना है, उससे विरुद्ध आकुलता। समझ में आया? आहाहा! ऐसे **मोही जीवों को...** आकुलता का मूल तो मोह है। वह दु:ख है, दु:ख का मूल। आकुलता दु:ख है, उसका मूल मोह। मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेषभाव। आहाहा!

मुमुक्षु : आकुलतारहित है, वहाँ सहित होना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वह तो आकुलतारहित है अर्थात् आत्मा अनाकुल है, ऐसा लेना। क्या? आकुलतारहित आत्मा अनाकुल है, ऐसा लेना। परन्तु अनाकुल से विपरीत आकुलता उत्पन्न करता है, ऐसा लेना। समझ में आया? पाठ में संस्कृत में है।

मुमुक्षु : 'अनाकुलत्वलक्षण' लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'अनाकुलत्व' है न। **'अनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिक-सुखविलक्षणमा-कुलत्वोपादकं दु:खं सहमानं पश्येति।'** संस्कृत में है। समझ में आया? आहाहा! जिसकी दृष्टि अपने आनन्दस्वरूप भगवान के ऊपर नहीं, उसकी दृष्टि पुण्य और पाप तथा उसके फल के ऊपर है, वे सब दु:खी आकुलता उत्पन्न करनेवाले दु:खी प्राणी हैं। आहाहा! गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : दुनिया पूरी दु:खी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया पूरी दुःखी है। आहाहा! णवि सुही सेठ सेनापति — अपने आता था। सेठ और सेनापति सुखी नहीं। णवि सुही सेठ सेनापति, णवि सुही, देवता सुखी नहीं, राजा सुखी नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐगंत सुखी मुनि वीतरागी। आहाहा! जिसे रागरहित अपने आनन्द का अनुभव हुआ। आहाहा! वह एक सुखी है। समझ में आया? उसमें नहीं आता? दृगधारी की....

मुमुक्षु : चिन्मूरति दृगधारी की...

पूज्य गुरुदेवश्री : 'चिन्मूरति दृगधारी की मोहे रीति लगत है अटापटी।' वहाँ ऐसा आता है कि नारकी का जीव बाह्य से दुःख भोगता है, परन्तु समकिती, अन्तर सुख की गटागटी। आहाहा! समझ में आया? बाहर से नारकी सम्यग्दृष्टि है श्रेणिक राजा, पहले नरक में गये हैं। आगामी चौबीसी के तीर्थंकर होंगे। तीर्थंकरपना बाँधकर गये हैं और वहाँ भी बाँधते हैं। पहले नरक में है। नरक का आयुष्य बँध गया है, जाना पड़ा। अपनी योग्यता से गये हैं, कर्म से गये हैं—ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : आयु ले जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : आयु कौन ले जाये? आयु तो जड़ है। आहाहा! वहाँ आगे बाह्य का दुःख दिखता है, थोड़ा होता है, परन्तु सम्यग्दृष्टि है, क्षायिक समकिती है, तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। अन्दर में सुख की गटागटी। आहाहा! और यह सब करोड़ोंपति और अरबोंपति, वे लक्ष्मी मेरी और मैं सुखी हूँ, ऐसी मान्यता महा आकुलता और दुःख को उत्पन्न करनेवाली है। समझ में आया? कान्तिभाई! कान्तिभाई मोटाणी। मोटाणी नहीं बाहर से, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

आत्मा अन्दर, आहाहा! भगवान अनाकुल परमार्थ से सुखस्वरूप की दृष्टि का जिसे अभाव है, उसे आकुलता की उत्पन्न करनेवाली दशा, वह दुःखरूप है और... आहाहा! **मोही जीवों को दुःखसहित देखो।** आहाहा! यह सब पैसेवाले और स्त्री, पुत्र और परिवार—कबीला की बुद्धिवाले बड़े और दस-दस हजार, पन्द्रह-पन्द्रह हजार का मासिक वेतन, उन सबको दुःखी देख। ऐसा न देख, मान कि यह सब... आहाहा! कितने सुखी! सुविधा...! धूल भी नहीं, सुन न! पोपटभाई! यहाँ तो ऐसी बात है।

मुमुक्षु : मुश्किल-मुश्किल से निर्णय किया था कि हमें सुख है। अब आप कहते हो कि सुखी नहीं। तो हमारे सुखी किस प्रकार होना?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुखी तो आत्मा है अन्दर सुखरूप भगवान। आहाहा! 'तेरी नजर के आळसे रे तूने निरखा न नयने हरि।' हरि अर्थात् राग और द्वेष को हरनेवाला ऐसा भगवान आत्मा हरि। वह तेरे नयन के आळस्य रे तूने निरख्या न नयने हरि। अन्दर भगवान वीतरागस्वरूपी विराजमान है। आहाहा! उसे तूने नयन की, सम्यग्दृष्टि के नयन बिना तूने उसे नहीं देखा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह बाहर की शरीर की सुन्दरता और पैसे की सुन्दरता और मकान की चमक और यह सब हड्डियों की चमक है। यह श्मशान में हड्डियाँ नहीं होतीं? मसाण—श्मशान। चमक होती है। हड्डियाँ होती हैं न, हड्डियाँ श्मशान में। फोसफरस के हिसाब से चमक होती है। छोटा बालक हो, जाये तो कहे, वहाँ भूत है, वहाँ जाना नहीं। भूतड़ा क्या हो? भूत... भूत। परन्तु वह चमक, क्या कहा? हड्डियों में से फोसफरस वह चमक... चमक होती हो। उसी प्रकार यह सब फोसफरस है हड्डियाँ, शरीर, वाणी, पैसा, इज्जत, कीर्ति श्मशान की हड्डियों की चमक है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भगवान अनाकुल आनन्दस्वरूप प्रभु है न, तुझे तेरी खबर नहीं। आहाहा! तेरी चीज़ क्या है और तू कैसा है, यह तुझे खबर नहीं। आहाहा! और वह आत्मा के अतिरिक्त—अलावा दूसरी चीज़ को अपनी मानकर राग को, पुण्य को, पाप को, पुण्य-पाप के फल, यह पैसा धूल आदि को, अरे! पाप के फल निर्धन आदि को, कोई निर्धन हो, वह भी दु:खी है। मान्यता से दु:खी है, निर्धनता के कारण से नहीं। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! पाठ में है न। '**योगिन् मोहं परित्यज मोहो न भद्रो भवति।**' मोहासक्त को सब जगत को दु:खी देख। आहाहा! जिसे सम्यग्दर्शन का अभाव है, इस कारण से अपने आनन्दस्वरूप में जिसकी दृष्टि नहीं, वे सब प्राणी राग और पुण्य को अपना मानते हैं, वे मिथ्यादृष्टि दु:खी हैं। आहाहा! समझ में आया?

वह मोह परमात्मस्वरूप की भावना का प्रतिपक्षी... आहाहा! अपना चैतन्य आनन्दस्वरूप प्रभु से विपरीत जो राग-द्वेष के परिणाम आकुलता... आहाहा! उस

परमात्मस्वरूप की भावना। आहाहा! क्या कहते हैं? परमात्मा अपना स्वरूप है, आनन्दस्वरूप, उसकी भावना—एकाग्रता, उससे विपरीत आकुलता। आहाहा! क्या कहते हैं? सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो दिगम्बर सन्तों की अध्यात्म वाणी है। आहाहा! कहीं है नहीं। आहाहा! कहते हैं कि **वह मोह परमात्मस्वरूप की भावना...** आहाहा! क्या कहते हैं? परमात्मस्वरूप जो अपना आनन्दस्वरूप। आत्मा परमात्मस्वरूप ही है। आत्मा रागरहित है और अल्प ज्ञान से भी रहित है। वह तो पूर्णानन्द का नाथ परमात्मा आत्मा, उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। आहाहा! उस परमात्मा की भावना। क्या कहते हैं? आहाहा! अन्तरस्वरूप भगवान की एकाग्रता होनी चाहिए। इस भाव की भावना होनी चाहिए। त्रिकाल परमात्मस्वरूप परमात्मा, वह भाव, उसकी भावना—एकाग्रता, वह वस्तु। आहाहा! उससे विपरीत **दर्शनमोह चारित्रमोहरूप है।** मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष, इससे विपरीत भाव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्या कहा?

आत्मा परमात्मस्वरूप सच्चिदानन्द प्रभु 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' आता है?

चेतनरूप अनूप अमूरति, सिद्ध समान सदा पद मेरौ,
मोह महातम आतम अंग, कियौ परसंग महातम घेरौ।
ग्यानकला उपजी अब मोही, कहौं गुन नाटक आगमकेरौ,
जासु प्रसाद सधै सिवमाराग, वेगि मिटै घटवास बसेरौ।

(समयसार नाटक, काव्य ११ उत्थानिका)

आहाहा! यह बनारसीदास। कहो, ऐसो को अब, अध्यात्म की भांग पी है, ऐसा (लोग) कहते हैं, लो। अरे रे! प्रभु! क्या करता है, भाई! अध्यात्म की (भांग) ललितपुर में ऐसा बोले थे। यह उपस्थित थे न, इन्हें मारा था, इन्हें मारा था। आहाहा! यहाँ कहते हैं, बनारसीदास और टोडरमलजी, उन्हें वहाँ वे पण्डित लोग कहते थे कि वे तो अध्यात्म की भांग पीकर नाचे हैं। अरे! प्रभु! यह शोभा नहीं देता, नाथ! ऐसी बात! आहाहा! देखो न, क्या कहते हैं। आहाहा! **'ग्यानकला उपजी अब मोही,'** आहाहा! मैं तो शुद्ध आनन्द, ज्ञान हूँ, ऐसी ज्ञान की कला अब उपजी। **'कहौं गुन नाटक आगमकेरौ,'** अब आगम का नाटक मैं कहूँगा। आहाहा! **'जासु प्रसाद सधै सिवमारग,'** शिवमार्ग—मोक्षमार्ग। आहाहा! **'वेगि मिटै'** यह घट हड्डियाँ-चमड़ी में

रहना, वह तुझे मिट जायेगा। **'वेगि मिटै घटवास बसेरौ।'** इस शरीर में बसना तुझे छूट जायेगा। आहाहा! समझ में आया? यह चमड़ी, हड्डियाँ, माँस, खून इसमें—पुतले में आत्मा को रहना पड़ता था। आहाहा! पवित्र का धाम भगवान, उसे माँस और हड्डियों में रहना पड़ता है। परन्तु कहते हैं कि हम तुमको ज्ञानकला कहेंगे, उससे तुझे घट में बसने का नाश हो जायेगा। अशरीरी हो जायेगा। आहाहा! बात तो ऐसी है, भाई! आहाहा! समझ में आया?

परमात्मस्वरूप की भावना... ऐसा क्यों कहा? कि चिदानन्दस्वरूप भगवान आत्मा है, उसकी ओर की एकाग्रता छोड़कर अज्ञानी अनादि से पुण्य-पाप और राग में एकाग्रता करता है, वह दुःख है। समझ में आया? यह दर्शनमोह, चारित्रमोह का भाव ही दुःख है। मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेषभाव, वह दुःख है। आहाहा! **इसलिए तू उसको छोड़।** इस कारण से मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष को छोड़। सम्यक्श्रद्धा और वीतरागभाव को प्रगट कर। आहाहा! भाई! ऐसा मार्ग सूक्ष्म पड़े साधारण लोगों को। क्या हो? मार्ग तो यह है, भाई! आहाहा! अन्दर से कषाय के भाव से सुलगकर जल रहा है। समझ में आया? राग और द्वेष, पुण्य और पाप के दोनों भाव विकार है, कषाय है। कष अर्थात् संसार का लाभ भटकने का है, दुःखी है। आहा! समझ में आया? तो अब छोड़ प्रभु! ऐसा कहते हैं। आहाहा! अब तो छोड़। मनुष्यपना मिला। वीतराग तीन लोक के नाथ की वाणी तुझे सुनने को मिली। समझ में आया? प्रभु! अब परसन्मुख का जो राग-द्वेष और मिथ्याश्रद्धा को छोड़। छोड़, कहते हैं न? आहाहा!

पुत्र, स्त्री आदिक में तो मोह की बात दूर रहे,... लो, सेठ! स्त्री और डालचन्दजी आदि का मोह तो दूर रहो, वह तो कहते हैं अकेला पाप दूर रहो। आहाहा! पुत्र लिखा है न? पुत्र, स्त्री आदिक। पुत्र की बहू हो, पुत्र-पुत्री, उनका मोह तो दूर रहो, **वह तो प्रत्यक्ष में त्यागने योग्य ही है,...** आहाहा! **और विषय-वासना के वश...** आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषय के राग के वश होकर, आहाहा! **देह आदिक परवस्तुओं का रागरूप मोह-जाल है,...** आहाहा! शरीरादि परवस्तु का राग। आहाहा! भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप प्रभु का स्वरूप ही वीतराग आत्मा का है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य

सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले, जिनप्रवचन का मर्म।' समझ में आया ? आहाहा! **परवस्तुओं का रागरूप मोह-जाल है, वह भी सर्वथा त्यागना चाहिए।** आहाहा! स्त्री, पुत्र आदि का मोह तो छोड़नेयोग्य है ही, परन्तु उस ओर का जो अपनी पर्याय में राग, द्वेष, मोह होता है, उसे भी छोड़नेयोग्य है। सर्वथा छोड़, प्रभु! तुझे यदि दुःख का नाश करना हो तो। आहाहा! तब छूटे किस प्रकार ? परमानन्दस्वरूप भगवान का आश्रय—अवलम्बन ले तो छूट जायेगा। दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा! भगवान परमानन्दस्वरूप प्रभु परमात्मस्वरूप विराजमान तेरा स्वरूप है। समझ में आया ? तेरी शक्ति, तेरा सामर्थ्य परमात्मस्वरूप ही है। आहाहा! उसके अवलम्बन से, उसके आश्रय से मोह छूट जायेगा। आहाहा! समझ में आया ?

कर्म छूटेगा तो राग छूटेगा, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। तू तेरे स्वभाव का आश्रय लेगा तो राग छूटेगा। यह चीज़ है। कठिन बातें, भाई! ऐसा साधारण लोगों को दिमाग थोड़ा हो। महिलायें पूरे दिन बेचारी दलना, खाना, पकाना, घड़ना और पापड़ को क्या कहा जाता है वह ? वड़ी, ऐसा करने में रुके बेचारी, उनका मस्तिष्क स्थूल। अब उन्हें ऐसी बातें। भगवान! तेरा मस्तिष्क बड़ा है। तुझमें तो केवलज्ञान भरा है। आहाहा! समझ में आया ? यह गाथा गजब, भाई! एक-एक चढ़ती ले जाते हैं। आहाहा!

अन्तर-बाह्य मोह का त्यागकर... आहाहा! बाह्य शरीरादि का मोह और अन्तर में रागादि के भाव को छोड़ दे। **सम्यक् स्वभाव अंगीकार करना।** आहाहा! भगवान ज्ञायकस्वरूप आनन्दस्वरूप प्रभु को श्रद्धा में ग्रहण करना। आहाहा! त्याग-ग्रहण है न ? तो त्याग किसका ? और ग्रहण किसका ? ऐसा कहते हैं। रागादि का त्याग, स्वरूप का ग्रहण। समझ में आया ? पर का त्याग तो निमित्त से कथन है। पर का त्याग—ग्रहण आत्मा में नहीं है। आत्मा पर के त्याग-ग्रहण से शून्य है। समझ में आया ? आहाहा! गुण है न यह ? त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति। भगवान आत्मा में पर का त्याग और पर का ग्रहण, इससे आत्मा शून्य है। पर का त्याग क्या ? पर का तो अभाव है, उसमें त्याग क्या करना ? परन्तु तुझमें राग, द्वेष और मिथ्याश्रद्धा होती है, उसका त्याग करना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? ऐसा मार्ग है, भाई! परमेश्वर सर्वज्ञदेव तीन काल—तीन लोक

देखने के पश्चात् उपदेश ऐसा आया, ऐसा सन्त आड़तिया होकर माल दुनिया को देते हैं। माल तो यह है भगवान का। भाई! आहाहा!

तेरा नाथ अन्दर विराजता है। अनाकुल ज्ञान और अनाकुल आनन्द से तेरा प्रभु आत्मा विराजता है। आहाहा! उसका आश्रय लेकर मोह को छोड़। कोई क्रियाकाण्ड करने से मोह छूटता है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। क्रियाकाण्ड करना, वह राग है। उस राग को छोड़ना यहाँ तो। आहाहा! ऐसा मार्ग, देवीलालजी! ऐसा सूक्ष्म स्वरूप बहुत सरस। मार्ग तो ऐसा है, भाई! संस्कार तो डाल प्रभु अन्दर में कि यह चीज़ अन्दर आनन्दस्वरूप है, वही मैं हूँ। रागादि स्वरूप मैं नहीं। आहाहा

सम्यक्स्वभाव अंगीकार करना। सम्यक्स्वभाव अर्थात् आत्मा । सत्यस्वभाव जो आनन्दस्वरूप ज्ञायकस्वरूप शुद्धस्वरूप पवित्रस्वरूप भगवान, उसे अंगीकार करो। ओहो! सम्यग्दर्शन में उसका ग्रहण करो और मिथ्यात्वादि का त्याग करो। आहाहा! समझ में आया? **शुद्धात्मा की भावनारूप जो तपश्चरण...** अब थोड़ा कहते हैं। तपस्या किसे कहते हैं? **शुद्धात्मा की भावनारूप जो तपश्चरण...** भाषा देखो! मुनिपना किसे कहते हैं? तपस्या आती है न? दीक्षाकल्याणक। उसे तपकल्याणक कहो। दीक्षाकल्याणक, तपकल्याणक कहते हैं न उसे? तो कहते हैं, तपस्या किसे कहते हैं? दीक्षा किसे कहते हैं? कि शुद्धात्मा की भावनारूप तपश्चरण। आहाहा! कोई पंच महाव्रत पालना, वह कहीं मुनिपना नहीं। आहाहा! समझ में आया? मुनिपना भगवान उसे कहते हैं कि शुद्धात्मा की भावनारूप तपश्चरण मुनिपना। आहाहा! बात-बात में अन्तर जगत की मान्यता से। आहाहा! प्रभु! तेरी चीज़ अन्दर है। शुद्धात्मा कहा न? तू तो अन्दर शुद्धात्मा पवित्र आत्मा का पिण्ड है। आहाहा! उसकी भावना। उस शुद्धात्मा की सन्मुख की एकाग्रता, वीतरागी परिणाम। आहाहा! बहुत सरस बात है। ओहोहो!

भगवान आत्मा शरीर से भिन्न, वाणी से भिन्न, मन से भिन्न, कर्म से भिन्न, पुण्य-पाप के विकल्प अर्थात् राग से भिन्न। ओहोहो! एक समय की पर्याय से भी भिन्न, ऐसा शुद्धात्मा। द्रव्यस्वभाव सहजात्मस्वरूप सहजात्मस्वरूप ऐसा शुद्धात्मा, उसकी भावना। उसमें शुद्धोपयोग से एकाग्र होना। आहाहा! वह तपश्चरण, वह मुनिपना, वह दीक्षा।

आहाहा! दीक्षाकल्याणक कहते हैं न? उसे तपकल्याणक कहते हैं, दीक्षा कहो या तप कहो। आहाहा! वह तप किसे कहते हैं? अपवास करना, दो अपवास करना, अठ्ठम की, वह तपस्या नहीं। आहाहा! भगवान शुद्ध चैतन्यघन प्रभु पूर्ण आनन्द और पूर्ण शुद्धस्वरूप से भरपूर प्रभु भगवान की भावना—उसके सन्मुख होकर एकाग्रता, वह तपश्चरण। आहाहा! यहाँ तो अपवास किये और अठ्ठम किया... वह अभी एक आया था न? लन्दन से एक आया था। अपवास करे, अठ्ठाई करे और छठ अपवास करे न, धूल भी नहीं, सुन न! वह तो लंघन है। लंघन... लंघन।

सत्य तपस्या भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ जिनवरदेव उसे कहते हैं, सच्ची दीक्षा, सच्चा चारित्र, सच्ची तपस्या, सच्चा दीक्षा स्वरूप। आहाहा! शुद्धात्मा परम आनन्दस्वरूप भगवान में एकाग्रता। शुद्धोपयोगरूपी एकाग्रता। आहाहा! शुद्धोपयोगरूपी तपस्या। लोगों को ऐसा लगता है। यहाँ तो शास्त्र में है, उसकी बात चलती है। सोनगढ़वाले ऐसा अर्थ करते हैं, ऐसा (वे लोग) कहते हैं। यह क्या है? सोनगढ़वाले व्यवहार को उत्थापित करते हैं, ऐसा कहते हैं न? कहे, कहे। यह आचार्य क्या कहते हैं? भगवान! सुन तो सही एक बार। हें!

मुमुक्षु : व्यवहार तो राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग है। राग तो दुःख है। आहाहा! उसे छोड़ना हो तो यह बना। भगवान आत्मा के सन्मुख हो। भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु सच्चिदानन्दस्वरूप है न! आहाहा! अरे! इसे खबर नहीं।

मुमुक्षु : पहले कायक्लेश करे और फिर यह करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं कायक्लेश। कायक्लेश में राग है, दुःख है। ऐसा तो अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया, तब नहीं किया था? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' वह तो दुःख था। पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति आदि वह भाव, वह शुभराग, वह तो राग-दुःख है। आहाहा! ऐसा नहीं कहा छहढाला में? 'मुनिव्रत धारा अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन' आत्मज्ञान—भगवान—सन्मुख होकर आनन्द की दशा प्रगट करनी है, वह

आनन्द आया नहीं इसे। महाव्रत लिये और पंच महाव्रत लिये, दीक्षा ली, हजारों रानियाँ छोड़ी, उसमें क्या है? मिथ्याश्रद्धा और राग छोड़ना, वह तो छोड़ा नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! दुनिया के साथ कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं है। ऐसी बात है, बापू!

यह एक ही शब्द देखो! तपश्चरण अर्थात् मुनिपना किसे कहते हैं? चारित्रवन्त मुनि किसे कहते हैं? आहाहा! **शुद्धात्मा की भावनारूप जो तपश्चरण...** आहाहा! गजब किया है न! भगवान पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन अतीन्द्रिय आनन्दघन सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा है। आहाहा! सत् शाश्वत् रहनेवाला, चिद् ज्ञान और आनन्दस्वरूप प्रभु आत्मा। आहाहा! कैसे बैठे? सवेरे डेढ़ पाव सेर चाय पीवे, वहाँ इसे मजा लगे। उकाला-उकाला चाय का। उकाला समझते हो? उकाला को क्या कहते हैं? हमारे उकाला कहते हैं। काठियावाड़ी भाषा है। उकले। उकाला करते हैं। आधासेर पीवे, तब मस्तिष्क तृप्त-तृप्त हो। आज चाय पीकर नहीं आया, इसलिए मस्तिष्क ठिकाने नहीं है। डेढ़ पाव सेर पानी चीनी का, उसके मस्तिष्क को ठिकाने रखे। यह वह कितनी मूर्खाई। हें! आहाहा!

मुमुक्षु : ताजगी आ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं। आधासेर चाय से ताजगी आ जाये। अररर! क्या हुआ प्रभु तुझे? आहाहा! क्या हुआ? सेठ! भाषा इसकी की हिन्दी, ताजगी। ताजा शरीर हो जाये। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....अरे, प्रभु! यह मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष, यह महा अनर्थ का मूल है। इनका नाश करने से अन्दर ताजगी आती है। समझ में आया? आहाहा! सहजानन्द प्रभु के ऊपर एकाग्रता करने से जो अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है, वह आत्मा की ताजगी है। अरे! सुना न हो कभी। आहाहा! बचुभाई! ऐसी बातें हैं। राणपुर में कहीं सुनने को नहीं मिलता ऐसा। राणपुर के बैठे हैं। आहाहा! भगवान! मार्ग तो प्रभु तेरा ऐसा है। अरेरे! चौरासी के अवतार में सेठ दुःखी, राजा दुःखी, गरीब दुःखी, सब दुःखी प्राणी। क्योंकि अपने स्वभाव-सन्मुख नहीं होकर परपदार्थ और राग के सन्मुख

हुआ, आहाहा! वही दुःख है। समझ में आया? और शुद्धात्मा की भावनारूप दशा, वह सुखरूप है। आहाहा! ओहोहो! परमात्मप्रकाश गजब बात है! दिगम्बर सन्तों की कथनी कहीं नहीं है। किसी सम्प्रदाय में यह वस्तु नहीं है। आहाहा! कहते हैं, आहाहा! मुनिपना, यह वस्त्र छोड़कर नग्न होना और पंच महाव्रत के परिणाम (करना), वह कहीं मुनिपना नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : परन्तु लोग तो मुनि माने न!

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया पागल को भान नहीं होता। कुसाधु को साधु माने, साधु को कुसाधु माने, इसकी खबर कहाँ है कुछ! स्त्री, पुत्र सब लुटेरे हैं, उन्हें प्रिय माने।

मुमुक्षु : छोड़ना कहाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ इसके पास आये थे तो छोड़ना है इसे? वह तो उनके पास रहे हैं वहाँ। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। ओहोहो!

मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है क्या? कि शुद्धात्मा की भावना, वह मोक्षमार्ग है। आहाहा! समझ में आया? तीन लोक का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु पूर्णं इदम्। पूर्ण... पूर्ण इदम्। पूर्णस्वभाव से भरपूर भगवान। आहाहा! उसकी भावना। ऐसे परमात्मस्वभावभाव की भावना। आहाहा! उसका नाम मोक्ष का मार्ग, उसका नाम शुद्धोपयोग, उसका नाम तपश्चरण। उसका नाम तपश्चरण है। समझ में आया?

मुमुक्षु : भरत महाराज ने ऐसा तपश्चरण किया था?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किया था, अन्दर यह किया था। अन्तर्मुहूर्त अन्दर ध्यान में आ गये, वह उन्होंने किया था। आहाहा! ८३ लाख पूर्व तक छह खण्ड में रहे। उसका पाप लगा, एक क्षण में नाश कर डाला। समाधिशतक में एक आया था, नहीं भाई? एक लाईन आयी थी कि तुझे जब विषयकषाय का भाव हो, तब भगवान का ध्यान करना। आहाहा! एक गाथा आयी थी। कल सज्झाय नहीं की? समाधिशतक, इष्टोपदेश। आहाहा!

शुद्धात्मा, एक तो वस्तु आत्मा किसे कहते हैं? कि शुद्ध आत्मा, उसे आत्मा

कहते हैं। पवित्र वीतरागीस्वरूपी भगवान आत्मा को आत्मा कहते हैं। बीच में जो दया, दान, व्रत का राग आता है, वह तो आत्मा नहीं, वह तो अनात्मा है। आहाहा! समझ में आया? शुद्धात्मा की (अर्थात्) शुद्धात्मा वस्तु त्रिकाली, उसकी भावना वर्तमान पर्याय, वर्तमान पर्याय। त्रिकाली भाव शुद्ध चैतन्यघन भगवान पूर्ण इदम्, पूर्ण स्वरूप भगवान विराजमान आत्मा है। आहाहा! उसकी एकाग्रता, उसकी भावना, उसके सन्मुख होकर लीन होना, वह शुद्धात्मा की भावनारूप भावनास्वरूप तपश्चरण है। आहाहा! ऐसी तो बात है कहाँ? यह तो पहले की पड़ी है। यह शास्त्र तो पहले का है। परमात्मप्रकाश १३०० वर्ष पहले बनाया है। उसकी टीका हुई। आहाहा!

उसका साधक जो शरीर... अब निमित्तरूप से (कहते हैं)। यह शरीर निमित्त है न! **जो शरीर, उसकी स्थिति के लिये...** इस शरीर की स्थिति के लिये **अन्न जलादिक लिये जाते हैं,...** आहार-पानी लेना पड़ता है। **तो भी विशेष राग न करना,...** आहाहा! मात्र शरीर को निभाने जितना आहार-पानी ले। परन्तु आहार लेने में गृद्धि नहीं करना। आहाहा! विशेष राग नहीं करना। है तो इतना भी राग। परन्तु शरीर को निभाने के लिये आहार लेना पड़ता है। आहाहा! समझ में आया? कोई ऐसा कहे कि देखो! शुद्धभावना का साधक शरीर कहा। वह तो निमित्त से कथन है। साधक कहा न? निमित्त है न, इतनी बात है। वह साधकपने को निमित्त करता नहीं। परन्तु साधकपने में ऐसा एक निमित्त होता है, इसलिए उसे व्यवहारनिमित्त साधक कहा। आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों मलिन हैं, साध्य-साधक।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं, एक ही मलिन होता है। अपना शुद्धोपयोग अकेला अपने से पर की अपेक्षा बिना होता है। शुभराग की अपेक्षा बिना शुद्धोपयोग होता है तो शरीर की अपेक्षा से (होता है, यह सवाल नहीं है)। परन्तु यहाँ शरीर है। यहाँ तो राग छुड़ाने की बात करनी है न! कि शरीर के लिये आहार-पानी चाहिए। आहार में विशेष राग नहीं करना। इतना राग विकल्प आता है। वह भी छोड़नेयोग्य तो है। परन्तु जब तक शरीर टिके, तब तक छोड़ सकता नहीं, तो जल-पानी, आहार लेने में राग नहीं करना। समझ में आया?

राग रहित नीरस आहार लेना चाहिए। नीरस—रस नहीं उसमें कुछ। जो मिला, वह ले लेना। आहाहा! गाड़ा होता है न? गाड़ी। ऊँघन चाहिए न? बस, यह शरीर—गाड़ी चलाने के लिये ऊँघन (चिकनाई) दे। परन्तु ऊँघन में कोई बर्फी डाले? मैसूर डाले? तेल जितना ईंधन डाले। आहाहा! इसी प्रकार शरीर को निभाने के लिये सन्तों को विशेष राग किये बिना आहार लेना। आहाहा! हें!

मुमुक्षु : उन्हें तो क्या, जो मिल गया वह ले लेवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : जो मिला वह ले, उसमें क्या है? परन्तु राग नहीं करना, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : अच्छा आहार मिला।

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छा-बुरा कुछ नहीं। आहार अच्छा है ही नहीं, अच्छा तो भगवान आत्मा है। समझ में आया? आम का रस मिले तो अच्छा और अकेली दाल मिले तो अच्छा नहीं, ऐसा कुछ नहीं। आहाहा! वे तो ज्ञेय परपदार्थ हैं। अच्छा और बुरा, ऐसा भेद डालना, वह तो दृष्टि मिथ्यात्व है। आहाहा! मार्ग वीतराग का अलौकिक है भाई! अरे! सम्प्रदाय को तो बेचारे को सुनने को मिलता नहीं। ऐसा क्या है? यह क्या है? ऐसे जिन्दगी चली जाती है। आहाहा!

यह १११ गाथा हुई।

गाथा - १११*२

अथ स्थलसंख्याबहिर्भूतमाहारमोहविषयनिराकरणसमर्थनार्थं प्रक्षेपकत्रयमाह तधथा-

२३४) काउण णग्गरुवं बीभस्सं द्डढ-मडय-सारिच्छं।
अहिलससि किं ण लज्जसि भिक्खाए भोयणं मिट्टं।।१११*२।।

कृत्वा नग्नरुपं बीभत्सं दग्धमृतकसदृशम्।
अभिलषसि किं न लज्जसे भिक्षायां भोजनं मिष्टम्।।१११*२।।

काऊण इत्यादि। काऊण कृत्वा। किम् णग्गरुवं नग्नरुपं निर्ग्रन्थं जिनरुपम्। कथंभूतम्। बीभस्सं (च्छं?) भयानकम्। पुनरपि कथंभूतम्। दड्ढ-मडय-सारिच्छं दग्धमृतकसदृशम्। एवंविधिं रुपं धृत्वा हे तपोधन अहिलससि अभिलाषं करोषि किं ण लज्जसि लज्जां किं न करोषि किं कुर्वाणः सन्। भिक्खाए भोयणं मिट्ठं भिक्षायां भोजनं मिष्टं इति मन्यमानः सन्निति। श्रावकेण तावदाहाराभयभैषज्यशास्त्रदानं तात्पर्येण दातव्यम्। आहारदानं येन दतं तेन शुद्धात्मानुभूतिसाधकं बाह्याभ्यन्तरभेदभिन्नं द्वादशविधं तपश्चरणं दतं भवति। शुद्धात्मभावना-लक्षणसंयमसाधकस्य देहस्यापि स्थितिः कृता भवति। शुद्धात्मोपलंभप्राप्तिरुपा भवान्तरगतिरपि दता भवति। यधप्येवमादिगुणविशिष्टं चतुर्विधदानं श्रावकाः प्रयच्छन्ति तथापि निश्चय-व्यवहाररत्नत्रयाराधकतपोधनेन बहिरङ्गसाधनीभूतमाहारादिकं किमपि गृह्णतापि स्वस्वभाव-प्रतिपक्षभूतो मोहो न कर्तव्य इति तात्पर्यम्।।१११*२।।

आगे स्थलसंख्या के सिवाय जो प्रक्षेपक दोहे हैं, उनके द्वारा आहार का मोह निवारण करते हैं-

दग्ध मृतक सम नग्न रूप धारण करके भी हे योगी।
किन्तु मिष्ट भोजन को चाहे क्या लज्जा न तुझे आती।।१११*२।।

अन्वयार्थ :- [बीभत्सं] भयानक देह के मैल से युक्त [दग्धमृतकसदृशम्] जले हुए मुरदे के समान रुपरहित ऐसे [नग्नरुपं] वस्त्र रहित नग्नरुप को [कृत्वा] धारण करके हे साधु, तू [भिक्षायां] पर के घर भिक्षा को भ्रमता हुआ उस भिक्षा में [मिष्टम्] स्वादयुक्त [भोजनं] आहार की [अभिलषसि] इच्छा करता है, तो तू [किं न लज्जस] क्यों नहीं शरमाता? यह बड़ा आश्चर्य है।

भावार्थ :- पराये घर भिक्षा को जाते मिष्ट आहार की इच्छा धारण करता है, सो तुझे लाज नहीं आती? इसलिये आहार का राग छोड़ अल्प और नीरस, आहार उत्तम कुली श्रावक के घर साधु को लेना योग्य है। मुनि को राग-भाव रहित आहार लेना चाहिये। स्वादिष्ट सुंदर आहार का राग करना योग्य नहीं है। और श्रावक को भी यही उचित है, कि भक्ति-भाव से मुनि को निर्दोष आहार देवे, जिसमें शुभ का दोष न लगे। और आहार के समय ही आहार में मिली हुई निर्दोष औषधि दे, शास्त्रदान करे, मुनियों का भय दूर करे, उपसर्ग निवारण करे। यही गृहस्थ को योग्य है। जिस गृहस्थ ने यती को आहार दिया, उसने तपश्चरण दिया, क्योंकि संयम का साधन शरीर है, और शरीर की स्थिति अन्न जल से है। आहार के ग्रहण करने से तपस्या की बढ़वारी होती है। इसलिये आहार का दान तप का दान है। यह तप-संयम शुद्धात्मा की भावनारुप है, और ये अंतर बाह्य बारह प्रकार का तप शुद्धात्मा की अनुभूति का साधक है। तप संयम का साधन दिगम्बर का शरीर है। इसलिये आहार के देनेवाले ने यती के देह की रक्षा की, और आहार के देनेवाले ने शुद्धात्मा की प्राप्तिरुप मोक्ष दी। क्योंकि मोक्ष का साधन मुनिव्रत है, और मुनिव्रत का साधन शरीर है, तथा शरीर का साधन आहार है। इस प्रकार अनेक गुणों को उत्पन्न करनेवाला आहारादि चार प्रकार का दान उसको श्रावक भक्ति से देता है, तो भी निश्चय व्यवहार रत्नत्रय के आराधक योगीश्वर महातपोधन आहार को ग्रहण करते हुए भी राग नहीं करते हैं। राग-द्वेष-मोहादि परिणाम निजभाव के शत्रु हैं, यह सारांश हुआ।।१११*२।।

गाथा-१११-२ पर प्रवचन

आगे स्थलसंख्या के सिवाय जो प्रक्षेपक दोहे हैं, उनके द्वारा आहार का मोह निवारण करते हैं— आहार के मोह के निवारण के लिये प्रक्षेपक गाथायें अन्यत्र से लेकर डाली है। ११२।

२३४) **काउण णग्गरुवं बीभस्सं दड्ढ-मडय-सारिच्छं।**
अहिलससि किं ण लज्जसि भिक्खाए भोयणं मिट्ठं।।१११*२।।

आहाहा! **अन्वयार्थ :— अरे! भयानक देह के मैल से युक्त...** भयानक इस देह

के मैल से युक्त। आहाहा! **जले हुए मुर्दे के समान रूपरहित ऐसे...** नग्न। मुनिपना तो नग्न ही होता है। वस्त्रसहित जो मुनिपना लिया है, वह शास्त्र की आज्ञा नहीं है। वह सिद्धान्त विरुद्ध है। समझ में आया? मुनिपना वस्त्रसहित कभी तीन काल में नहीं होता। नग्नपना होता है और तूने दीक्षा ली और नग्नपना-वस्त्ररहितपना धारण कर रखा है तो हे योगी! **जले हुए मुर्दे के समान रूपरहित...** नग्न शरीर। आहाहा! **पर के घर भिक्षा को भ्रमता हुआ उस भिक्षा में स्वादयुक्त आहार की इच्छा करता है,...** आहाहा! स्वादिष्ट आहार मिले न, अरे! लज्जा नहीं आती तुझे? कहते हैं। आहा! मुर्दे जैसे नग्न शरीर में तू ऐसी इच्छा करता है? मुनि की बात करते हैं। आहाहा! नग्नशरीर मुर्दे जैसा शरीर, जैसे माँ से जन्मा, वैसा शरीर। ऐसे शरीर को आहार लेने में **आहार की इच्छा करता है, तो तू क्यों नहीं शरमाता? यह बड़ा आश्चर्य है।** आहाहा! मुनिराज ऐसा कहते हैं, देखो! योगीन्द्रदेव (कहते हैं)। समझ में आया? १३०० वर्ष पहले हुए यह मुनिन्द्र। समयसार कुन्दकुन्दाचार्य दो हजार वर्ष पहले हुए। यह सब नग्न दिगम्बर थे। आत्मध्यानी आत्मा में मस्त, आनन्द में मस्त। आहाहा! यह कहते हैं, तुझे परघर जाने से नग्नपने में शरीर में स्वाद की इच्छा होने पर तुझे लज्जा नहीं आती? आत्मा के आनन्द का स्वाद छोड़कर आहार का स्वाद लेने की इच्छा में आया? क्या हुआ? तुझे लज्जा नहीं आती? ऐई! उलहाना देते हैं। क्या कहते हैं? उलहाना, उलहाना देते हैं, उपलम्भ। अरे भगवान! यह कहीं ठीक कहलाये प्रभु? नग्न शरीर मुर्दा जैसा शरीर और उसमें तुझे आहार लेने में स्वाद की भावना हो, स्वादिष्ट आहार लेने की, तुझे लज्जा नहीं आती, नाथ? आहाहा! भावार्थ विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, पौष कृष्ण २, शुक्रवार
दिनांक-०७-०१-१९७७, गाथा - १११ (२-४), प्रवचन-१७९

१११/२ गाथा। मुनि के आहार की बात चलती है। **पराये घर को भिक्षा जाते...** मुनि कौन हैं ? कि जो आत्मा शुद्ध पूर्ण परमात्मस्वरूप है, उसकी अन्तर में भावना—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वह शुद्धात्मा की भावना है। समझ में आया ? द्रव्य शुद्ध जो चैतन्य आनन्द सहजानन्दस्वरूप की अन्तर में एकाग्रता—भावना, शुद्धस्वभाव की भावना भाना, इसका नाम चारित्र और मुनिपना है। मुनिपने की भी पहिचान कराते हैं। समझ में आया ? ऐसे मुनि जब **पराये घर को भिक्षा जाते मिष्ट आहार की इच्छा धारण करता है, सो तुझे लाज नहीं आती ?** आहाहा! तुझे आत्मा के आनन्द का स्वाद आया हो और नग्नपने तू भिक्षा लेने जाता है तो आहार की गृद्धि, स्वादिष्ट आहार लेने की गृद्धि (करता है तो) तुझे लाज नहीं आती ? आहाहा! वीतरागी आनन्द के अनुभवी को मिष्ट आहार की गृद्धि कैसे हो ? ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? **इसलिए आहार का राग छोड़ अल्प और नीरस, आहार...** अल्प लेना और नीरस लेना। आहाहा!

मुमुक्षु : नीरस अर्थात् क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग का रस नहीं विशेष। मिले वह न लेना, ऐसा नहीं। वृत्ति में नीरस लेने का भाव है। आहार भी मिले, रस भी मिले, परन्तु अन्तर में रूखा भाव है। आहाहा! मुनिपने की दशा तो अलौकिक है न!

उत्तम कुली श्रावक के घर... वापस साधारण घर में नहीं। धर्मात्मा श्रावक हो उत्तम कुल में, उसके घर में **साधु को लेना योग्य है। मुनि को राग-भाव रहित आहार लेना चाहिए।**

मुमुक्षु : राग रहित आहार लिया किस प्रकार जाये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् तीव्र राग। विकल्प तो है, उनके योग्य है, उससे विशेष राग, ऐसा। आहार लेने का विकल्प तो है न। उसका गृद्धि का राग, ऐसा विशेष राग नहीं। समझ में आया ? वह तो यहाँ श्रावक की बात बाद में करेंगे।

उत्तम कुली श्रावक के घर साधु को लेना योग्य है। मुनि को राग-भाव रहित आहार लेना चाहिए। स्वादिष्ट सुन्दर आहार का राग करना योग्य नहीं है। इतना। स्वादिष्ट और सुन्दर आहार का राग करना योग्य नहीं। **और श्रावक को भी यही उचित है, कि भक्ति-भाव से मुनि को निर्दोष आहार देवे...** समझ में आया? **जिसमें शुभ का दोष न लगे।** शुभ का दोष न लगे, ऐसा लिखा है, परन्तु दोष न लगे, (ऐसा) चाहिए। राग का दोष नहीं लगना चाहिए। जिसमें सुन्दर आहार की गृद्धि न हो। **और आहार के समय ही आहार में मिली हुई निर्दोष औषधि दे, शास्त्रदान करे, मुनियों का भय दूर करे, उपसर्ग निवारण करे। यही गृहस्थ को योग्य है। जिस गृहस्थ ने यति को आहार दिया, उसने तपश्चरण दिया...** निमित्त से कथन है। है तो देनेवाले का भाव शुभराग। परन्तु मुनि को तपस्या है न, आनन्द की तपस्या, हों! शुद्धात्मा आनन्द में रमते हैं, वह तपस्या। उस तपस्या में निमित्त है न शरीर। शरीर में आहार निमित्त है। ऐसी बात करते हैं। पद्मनन्दि में ऐसा है। पद्मनन्दिपंचविंशति है, उसमें यह अधिकार है। १२वीं गाथा में भी चार प्रकार के दान की बात आ गयी है। पहली बारह गाथा। और पद्मनन्दि में यह अधिकार है।

मुनियों का भय दूर करे,... यही गृहस्थ को योग्य है। जिस गृहस्थ ने यति को आहार दिया, उसने तपश्चरण दिया,... निमित्त से कथन है। **क्योंकि संयम का साधन शरीर है,...** संयम का साधन शरीर। लो, ठीक। व्यवहारसाधन रत्नत्रय का, यह तो शरीर साधन (कहते हैं)। निमित्त का कथन है। समझ में आया? **और शरीर की स्थिति अन्न जल से है। आहार के ग्रहण करने से तपस्या की बढ़वारी होती है।** निमित्त का कथन है, निमित्त से कथन है। बढ़वारी तो अपने पुरुषार्थ से है। परन्तु निमित्त का ज्ञान कराते हैं। समकिती ज्ञानी देनेवाले होते हैं तो ऐसी उसकी तपस्या में शरीर निमित्त है, शरीर में निमित्त आहार है, ऐसा। **इसलिए आहार का दान तप का दान है।** देखो! यह तप का मुनिपने का दान है यह। **यह तप-संयम शुद्धात्मा की भावनारूप है,...** देखो, तप-संयम वह क्या वस्तु है?

मुमुक्षु : मुनि को आहार देना, वह संयम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निमित्त का कथन है। देने में तो शुभभाव ही है।

परन्तु महामुनि हैं और देनेवाले समकिती हैं तो उसकी महिमा की है। पद्मनन्दि में आता है।

तप-संयम शुद्धात्मा की भावनारूप है,... यह बात है। मूल चीज़ यह है। तप और संयम उसे कहते हैं, जिसमें आनन्दमूर्ति भगवान आत्मा की अन्तर में एकाग्रता, शुद्धोपयोगरूपी एकाग्रता हो, उसे तपस्या और मुनिपना कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? पहिचान कराते हैं। अकेला नग्नपना, वह कहीं मुनिपना नहीं तथा पंच महाव्रत के विकल्प हैं, वह मुनिपना नहीं। आहाहा! वह तो राग है। मुनिपना तो शुद्धात्मा पवित्र पूर्ण आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान, उसमें रमणता का नाम तप और मुनिपना है। आहाहा! समझ में आया? वीतरागमार्ग दुर्लभ है। ओहो! ऐसे आत्मज्ञान बिना यह अपवास और वर्षीतप करते हैं न? वह तो सब लंघन है। हें!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन अटकता था? भाव छोड़ दे कि मैं यह अपवास करता हूँ। वह चीज़ नहीं। उपवास तो अपने आनन्द में रहना (इसका नाम है)। आहाहा! उपवास—भगवान आनन्दधाम अतीन्द्रिय आनन्द का धाम, उप अर्थात् उसके समीप में अन्तर में बसना, आनन्द की धाम दशा में रमना, आहाहा! वह उपवास है। बाकी आनन्द के भान बिना अपवास आदि सब लंघन है। मिथ्यात्वसहित पुण्यबन्ध होता है। ऐसी बात है। है?

और ये अन्तर बाह्य बारह प्रकार का तप... निमित्त **शुद्धात्मा की अनुभूति का साधक है।** शुद्धात्मा की अनुभूति का साधक। आहाहा! निमित्त है न? निमित्त। बाह्य बारह प्रकार के तप शुद्धात्मा की अनुभूति का साधक—निमित्त साधक है। आहाहा! भगवान आत्मा अपना चैतन्य वीतराग शुद्धात्मस्वरूप में भावना, रमणता। आहाहा! आनन्दधाम में रमणता। श्रीमद् में कहा न? 'स्वयं ज्योति सुखधाम' भगवान आत्मा स्वयं ज्योति है। किसी ने की नहीं, करायी नहीं, सहज वस्तु सहजानन्द प्रभु में सुखधाम यह भगवान... आहाहा! उस आनन्द में रमणता का नाम तपस्या और मुनिपना है। उसका नाम धर्म है। आहाहा!

तप संयम का साधन दिगम्बर का शरीर है। है? शुद्धात्मानुभूति का साधक बाह्य–अन्तर तप निमित्त। तपसा निर्जरा कहा है न? वह तो बाह्य तप की व्याख्या है। **तप संयम का साधन दिगम्बर का शरीर है।** दिगम्बर मुनि का शरीर है। **इसलिए आहार के देनेवाले ने यती के देह की रक्षा की,...** किसी की कोई रक्षा कर नहीं सकता। एक ओर ऐसा (कहे)। यह निमित्त से कथन है। निमित्त से होता नहीं, निमित्त से ऐसा हुआ, ऐसा कहने में आता है। असद्भूतव्यवहारनय से सब कथन हैं। आहाहा! **आहार के देनेवाले ने शुद्धात्मा की प्राप्तिरूप मोक्ष दी।** लो, ठीक। शुभभाव में मोक्ष में निमित्त हुआ। **क्योंकि मोक्ष का साधन मुनिव्रत है,...** परन्तु मुनिव्रत यह, हों! मुनिव्रत अर्थात् पंच महाव्रत नहीं। वह तो आ गया पहले। शुद्ध भगवान पूर्णानन्दस्वरूप में अन्तर में लपेट हो जाना, रमणता हो जाना, एकाग्र होना, आहाहा! इसका नाम तप और मुनिपना है। हें!

मुमुक्षु : निरन्तर तो अन्दर में रहा नहीं जाता।

पूज्य गुरुदेवश्री : जिसे तीन कषाय का अभाव है, वही मुनिपना है। रह न सके यह बाद में। तीन कषाय का अभाव तो कायम रहता है। सूक्ष्म बात, भाई! मुनिपना तो, अभी सम्यग्दर्शन ही कोई अलग वस्तु है। आहाहा! राग से, शरीर से भिन्न एक समय की पर्याय की भी रुचि छोड़कर त्रिकाली आनन्द का नाथ भगवान पूर्णस्वरूप का ज्ञान करके, ज्ञान की पर्याय में उस वस्तु को ज्ञेय बनाकर प्रतीति करना, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! अभी तो सब फेरफार ऐसा हो गया है कि मानो जैनदर्शन ही रहा नहीं। अजैन को जैनपना मान लिया है। क्या करे? मार्ग तो यह है, भाई! समझ में आया?

और मुनिव्रत का साधन शरीर है, तथा शरीर का साधन आहार है। निमित्त। **इस प्रकार अनेक गुणों को उत्पन्न करनेवाला आहारादि चार प्रकार का दान उसको श्रावक भक्ति से देता है, तो भी निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के आराधक योगीश्वर...** देखो! कारण कि आहार लेते हैं न, तो उस समय व्यवहाररत्नत्रय और निश्चयरत्नत्रय दोनों हैं। समझ में आया? आहार लेते समय मुनि को निश्चयरत्नत्रय भी है। शुद्ध आनन्दकन्द

प्रभु का श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र है और लेता है तो लेने का विकल्प व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प भी ऐसा हुआ। आहाहा! **निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के आराधक योगीश्वर...** आहाहा! **महातपोधन...** महा जिसे आनन्दरूपी धन घर में है। आहाहा! शुद्धात्मा की भावनारूपी जिसे अपना निजघर है। ओहोहो! वह तपोधन। समझ में आया?

मुमुक्षु : आहारसंज्ञा अशुभभाव नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहारसंज्ञा नहीं। गृद्धि हो तो आहारसंज्ञा होती है। लेने की वृत्ति है, वह आहारसंज्ञा नहीं। आहारसंज्ञा हो, तब तो पाप है। मात्र लेने की वृत्ति है। शरीर निभाने के लिये है तो पुण्य-शुभभाव है। समझ में आया? आहार लेने की वृत्ति अलग और आहारसंज्ञा अलग है, दो चीज़ भिन्न हैं। आहारसंज्ञा तो गृद्धि का पापभाव है और आहार संयम के लिये लेने का भाव, वह शुभविकल्प पुण्य है।

मुमुक्षु : आहारसंज्ञा पाँचवें गुणस्थान तक होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहारसंज्ञा छठवें में भी होती है, गृद्धि हो तो। यह तो कहते हैं। यहाँ तो वह संज्ञा बिना लेना। आहाहा! यह प्रश्न हमारे पहले हो गया है, सम्प्रदाय में चलता था। पंचास्तिकाय में आता है न? आहारसंज्ञा रहित आहार। पंचास्तिकाय में आता है। आहार लेते हैं परन्तु आहारसंज्ञा रहित है। पंचास्तिकाय में आता है। आहाहा! हें! गृद्धि से लेना, वह आहारसंज्ञा है और संयम निभाने का विकल्प है, वह आहारसंज्ञा नहीं। शुभभाव है, विकल्प है। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि को आहारसंज्ञा होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : होती है। छठवें में भी थोड़ा होता है। इसीलिए तो इनकार करते हैं। छठवें आर्तध्यान होता है। पाँचवें में रौद्रध्यान भी होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : आहार लेने का जो भाव होता है वह....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मुनिपना है। मुनिपने का व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, गृद्धिपना नहीं। आहाहा!

यहाँ तो राग का त्याग बताते हैं। तीव्र राग नहीं करना। राग है तो राग आहार लेने

का, परन्तु तीव्र राग नहीं करना, ऐसा बतलाना है। **निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के आराधक योगीश्वर महातपोधन आहार को ग्रहण करते हुए भी...** देखो! **राग नहीं करते हैं।** देखो! समझ में आया?

मुमुक्षु : आहार की वृत्ति....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दोष है। वह तो यह भी दोष है। आहार लेने की वृत्ति है, वह भी चारित्र का दोष है, परन्तु उसमें गृद्धि है, वह विशेष दोष है। ऐसा मार्ग है। आहाहा! समझ में आया? चरणानुयोग की अपेक्षा से ऐसा कहने में आया है। प्रवचनसार में आया न? आहार लेते हैं, तथापि अनाहारी हैं। अनाहारी आत्मा की दृष्टि और अनुभव है और अनाहारी को निभना है तो आहार लेने पर भी वे अनाहारी हैं। आया है न? भाई! चरणानुयोग की अपेक्षा से। द्रव्यानुयोग की अपेक्षा से तो वह विकल्प है। आहाहा! वह भी उतना प्रमाद है। तीव्र नहीं, परन्तु उस जाति का प्रमाद है न! पंच महाव्रत के परिणाम, वे प्रमाद हैं। आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप में से बाहर निकलना, वह सब दोष है। यहाँ तो तीव्र गृद्धि का राग नहीं करना, ऐसा कहना है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि गृद्धि तो करते ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : करते नहीं, तथापि कोई आ जाये, वृत्ति है, कषाय है न अभी।

राग-द्वेष-मोहादि परिणाम निजभाव के शत्रु हैं,... आहाहा! चाहे तो शुभभाव हो, वह भी निज स्वभाव का शत्रु है। समझ में आया? दोपहर में चलता है न? कल आया था न? धर्मी पुण्य की इच्छा नहीं करते। धर्म... धर्म की इच्छा नहीं करते। धर्म अर्थात् पुण्य। मुनि सम्यग्दृष्टि ज्ञानी हैं, उन्हें धर्म की इच्छा—पुण्य की इच्छा नहीं है। आहाहा! भाव होते हैं, परन्तु उसकी भावना और इच्छा नहीं है। उसे जाननेवाले रहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : आता तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है, कहा न, जाननेवाले रहते हैं। समझ में आया? उसमें कहीं... मार्ग तो मार्ग है, उसमें कहीं फेरफार हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! हें! पुण्य की

इच्छा नहीं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को पुण्य की इच्छा नहीं। शुभभाव आता है, परन्तु उसकी इच्छा नहीं, रुचि नहीं। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को भोग की वृत्ति उठती है, परन्तु उसमें रुचि नहीं, सुखबुद्धि नहीं। यह बात है। समझ में आया? आहाहा! सुखबुद्धि होना और राग होना, यह दोनों अलग-अलग चीज़ है। विषय में, भोग में सुखबुद्धि होना, वह मिथ्यात्वभाव है और आसक्ति होना, वह चारित्रदोष है। समझ में आया? आहाहा! समकिती को चारित्रदोष होता है, परन्तु उसमें सुखबुद्धि नहीं होती। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा!

राग-द्वेष-मोहादि परिणाम निजभाव के शत्रु हैं, यह सारांश हुआ। देखो! इसका तात्पर्य यह है। इतना राग है, विकल्प है, आहार लेने का विकल्प भी शत्रु है। परन्तु उसकी भूमिका के योग्य राग है, उसमें गृद्धि नहीं करना, ऐसा। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : वस्त्र लेने में इच्छा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वस्त्र लेने में मूर्च्छा है। मूर्च्छा बिना वस्त्र लेने की इच्छा नहीं होती। वस्त्र रखते हैं, वे मूर्च्छावान हैं, साधु हैं ही नहीं। मार्ग तो यह है। ऐसा कहे कि हम वस्त्र रखते हैं परन्तु हमको मूर्च्छा नहीं। झूठ (बात) है। वस्त्र रखना, वही मूर्च्छा है और मूर्च्छा है वहाँ मुनिपना नहीं। समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! इसलिए कहा न, दिगम्बर, ऐसा शब्द कहा न! दिगम्बर मुनि। वस्त्रवाले तो मुनि है ही नहीं। समझ में आया? वस्त्र का टुकड़ा रखे और मुनिपना माने, मिथ्यादृष्टि है। मार्ग ऐसा है। समझ में आया? श्रावकपना हो सकता है, समकिती हो सकता है। परिग्रह हो और समकिती हो सकता है। परन्तु परिग्रह हो और मुनिपना हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! वस्त्र परिग्रह। वस्त्र-पात्र हो और मूर्च्छा न हो और मुनिपना हो, ऐसा नहीं होता। मार्ग ऐसा है, भाई! मार्ग तो जैसा है, वैसा इसे मानना पड़ेगा। समझ में आया? हें?

मुमुक्षु : समझना चाहिए, घड़ किस प्रकार बैठाना?

पूज्य गुरुदेवश्री : घड़ बैठा देना इस प्रकार।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तो (ऐसा कहते हैं), जैसा माँ से जन्मा, वैसी मुनि की दशा होती है। समझ में आया? वस्त्र और पात्र को श्वेताम्बर में तो ढ़ेर कर डाला है।

भगवती सूत्र में सब विरुद्ध मिथ्यादृष्टि के ही कथन हैं। समकिती के कथन ही नहीं। भगवती सूत्र में १६००० श्लोक एक लाख (श्लोक प्रमाण) संस्कृत टीका है। समझ में आया? वह वीतराग की वाणी नहीं, वह समकिती की नहीं। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : आहार लेते हैं परन्तु आहारसंज्ञा नहीं, तो वस्त्र लेते हैं, उसकी मूर्च्छा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्त्र रखे, मूर्च्छा हुए बिना रहती नहीं। आहार ले और गृद्धि न हो, परन्तु वस्त्र ले और राग / मूर्च्छा नहीं है, झूठ बात है। समझ में आया? हें!

मुमुक्षु : आहार कर्तव्य है, लेना ही पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहार से तो शरीर का निभाव है और वस्त्र तो शरीर के पोषण के लिये है और जो आहार है, वह शरीर को निभाने के लिये है। उसको तो परीषह सहन नहीं हो सकता, इसलिए वस्त्र लेता है। झूठ बात है। वस्त्र का एक टुकड़ा भी रखे तो वह मुनिपना नहीं है। यह तो 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' यहाँ कोई दूसरी चीज़ है नहीं। समझ में आया? ऐ सेठ! हें!

मुमुक्षु : मुनि तो नग्न ही होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नग्नपना—अन्तर में तीन कषाय से रहित हों वह। मात्र नग्नपना नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए ही न, वह नहीं तो (मुनिपना) ही नहीं। यहाँ तो तीन कषाय का अभाव हो और शरीर नग्न हो, वस्त्र का टुकड़ा न हो, उसकी बात यहाँ चलती है।

मुमुक्षु : तीन कषाय का अभाव है, वह सूक्ष्म बात है; इसलिए गृहस्थ नहीं जान सकता।

पूज्य गुरुदेवश्री : जान सकता है, बराबर जान सकता है। उसकी प्ररूपणा आदि कथन शैली से नहीं जान सकता? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि महातपोधन। आहाहा! जिसे अतीन्द्रिय आनन्द की दशारूपी तप प्रगट हुआ है। वह तप, हों! आहा! तपयन्ते इति तप। जैसे सुवर्ण को गेरु, गेरु कहते

हैं न? गेरु। गेरु लगावे न सोने को, शोभा आती है, ओप-ओप—शोभा, इसी प्रकार भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द की उग्र दशा हो, वह ओप है, तप है। मार्ग ऐसा है, भाई! वीतरागमार्ग। उसे कम, अधिक, विपरीत मानना नहीं पड़े। जैसा है, वैसा उसे मानना पड़ेगा। आहाहा! समझ में आया?

कुछ अभी आया था न, वे आये थे न, गये भाई साथ में, कान्तिभाई के साथ। ऐसा कहते थे, श्वेताम्बर और दिगम्बर को दोनों को अब एक करो। वे कान्तिभाई नहीं? लाठीवाले मोटाणी। उनके साथ आये थे। रेल के अधिकारी थे, रेल के अधिकारी। वे रेल में मुम्बई जानेवाले, वे वहाँ से भावनगर से मुम्बई रेल में मुफ्त। क्योंकि अधिकारी थे न, इसलिए उनके साथ थे। वे कहते थे जरा। ऐसे तो वे पहले वैष्णव थे। फिर अब इस धर्म के ऊपर झुकाव है। परन्तु उन्हें ऐसा कि दोनों को एक करो, ऐसा कहते थे। किस प्रकार एक करे? दोनों मार्ग ही (परस्पर) अत्यन्त विपरीत हैं। वजुभाई! ऐसा है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : जैसा है, वैसा जान लेना।

पूज्य गुरुदेवश्री : जान लेना बराबर है परन्तु दोनों को समान मान लेना? दोनों समान करो भाई, समभाव करो। वह समभाव नहीं, वह तो मूर्खता है। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को और सुदेव, सुगुरु, सुशास्त्र को समान मानना, वह तो मूर्खता है; वह समभाव नहीं। आहाहा! श्रीमद् ने समभाव की व्याख्या यह की है। आत्मज्ञान वहाँ मुनिपना। बाद में क्या आया? समदर्शिता। आत्मज्ञान समदर्शिता की व्याख्या ऐसी की है। समदर्शी जीव कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र को उत्थापित करता है और सुगुरु को स्थापित करता है तो वह समभाव है। दोनों को समान मानना, वह मूर्खता है। मार्ग ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? श्वेताम्बर और स्थानकवासी को कठोर लगे ऐसा है। इतनी खबर नहीं कि यह ४२ वर्ष से छोड़कर बैठे हैं तो कुछ कारण है या नहीं?

मुमुक्षु : आपको जैसे भरोसा है, वैसे हमको भरोसा होना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : भरोसा करे तो होता है या नहीं? कहीं अपने आप हो जाता होगा? ऐई! आहाहा! जहाँ अन्तर में वीतरागता चारित्रदशा हो, ओहो! वहाँ वस्त्र कैसे और पात्र कैसे तथा धोना और लेना। आहाहा! सब मिथ्यामार्ग है। यहाँ तो ऐसी बात है,

भाई! आहा! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा जो कहते हैं, वह मार्ग यह है। आहाहा! दिगम्बर मार्ग वह सनातन जैनदर्शन है। वह कोई सम्प्रदाय की चीज़ नहीं। वह वस्तु का वीतरागी स्वभाव है, ऐसी दृष्टि करना और वीतरागी चारित्र करना, वह वीतरागी मार्ग है। समझ में आया? आहाहा! अभी यह बहुत (चला है), समन्वय करो, समन्वय करो, ऐसा कहते हैं। किसके साथ समन्वय करे? समन्वय इतना सही कि वे भी हैं और यह भी है, यह समन्वय। परन्तु दोनों सच्चे हैं, ऐसा नहीं। मार्ग तो ऐसा है। शान्तिभाई!

मुमुक्षु : सच्चा तो एक ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही है। मार्ग तो ऐसा है, भाई! श्वेताम्बर और स्थानकवासी, दोनों जैनमार्ग में हैं नहीं। समभाव से कोई विरोध नहीं। किसी व्यक्ति के प्रति वैर नहीं—विरोध नहीं, परन्तु वस्तु की स्थिति ऐसी है। आहाहा! समझ में आया? यह तो पहले आया न, देखो! ११२ में। **दिगम्बर का शरीर है।** आया न? **तप संयम का साधन दिगम्बर का शरीर है।** ऐसा लिया था। नग्नपना। आहाहा! 'नग्गो मोक्खो भणियो सेसा उम्मग्गा।' ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य महाराज का अष्टपाहुड़ में वचन है। नग्नपना, वह भावलिंग सहित की बात है, हों! अकेला नग्नपना (नहीं)। 'नग्गो मोक्खो भणियो'— भगवान ने नग्नपने को मोक्ष कहा है। शेष है, वह उन्मार्ग है। ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य पुकार करते हैं। नग्नमुनि के अतिरिक्त जितने मार्ग हैं, वे सब उन्मार्ग हैं। आहाहा! स्वयं पालन न कर सके, इसलिए उसमें मुनिपना मानना, ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

मुमुक्षु : व्यवहार में तो काल प्रमाण थोड़ा फेरफार होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' परमार्थ के पंथ में फेरफार नहीं होता।

मुमुक्षु : उसमें अन्तर नहीं होता, व्यवहार में?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार में अन्तर नहीं होता। आहाहा! हलुवा—शीरा बनाते हैं। घी, शक्कर और आटा। उसमें फेरफार होता है काल के अन्तर से? हलुवा में आटा नहीं, धूल डालना। घी नहीं, पानी डालना।

मुमुक्षु : घी के बदले तेल चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तेल चलता है। यह तो वह की वह वस्तु है। वह तो गरीब व्यक्ति को (पोसाता है)। तेल चलता है, परन्तु पानी चलेगा? पेशाब चलेगा? आहाहा! परमात्मा का मार्ग... दिगम्बर धर्म, वह जैनधर्म। मात्र नग्न नहीं। यह तो कहा न? शुद्धात्मा की भावनावाले मुनि। जिन्हें आनन्द का नाथ जागृत हुआ है। आहाहा! समकिती को भी जहाँ आनन्द का स्वाद आता है, तो मुनि का तो क्या कहना? उन्हें तो प्रचुर स्वसंवेदन आनन्द का होता है। यह पाँचवीं गाथा में आया न? समयसार, पाँचवीं गाथा। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, मेरा निजवैभव क्या है? मैं वैभव से कहूँगा। मेरा निजवैभव अपने आनन्द के झरना झरते हैं अन्दर। प्रचुर स्वसंवेदन में आनन्द की मोहरछाप है। हमारा प्रचुर स्वसंवेदन—अपना वेदन, उसमें आनन्द की मोहरछाप है, अतीन्द्रिय आनन्द की छाप पड़ी है। आहाहा! मुनिपने में अतीन्द्रिय आनन्द की मोहरछाप पड़ी है, उसे मुनिपना कहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सहजानन्दी रे आत्मा। प्रभु! तू आनन्दस्वरूप है। आहाहा! तेरे आनन्द की रुचि में इन्द्र के इन्द्रासन के भोग की रुचि भी उड़ जाती है। आहाहा! समझ में आया? समकिती को भी आनन्दस्वरूप की रुचि हुई, उसे आत्मज्ञान होकर, आत्मरुचि हुई। उसे इन्द्र के हजारों करोड़ों इन्द्र की इन्द्राणियों के विषयभोग सड़ा हुआ तिनका, सड़ा हुआ गधा हो, ऐसा लगे। आहाहा! भले गृहस्थाश्रम में हो। समझ में आया? विषय की वासना जहर जैसी लगती है। समझ में आया? और विषय की वासना में मिठास लगे, मिथ्यात्व है। समझ में आया? मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा! जन्म-मरण का अभाव करना, वह वस्तु अलौकिक है।

यहाँ तो मुनिपने की बात करते हैं, लो। **राग-द्वेष-मोहादि परिणाम निजभाव के शत्रु हैं,...** लो। शुभ और अशुभ दोनों स्वभाव के शत्रु हैं। आहाहा! अनिष्ट है। प्रवचनसार में आता है। भगवान ने अनिष्ट का त्याग किया और इष्ट की प्राप्ति की, ऐसा पाठ है। अनिष्ट अर्थात् वह शुभ-अशुभभाव है, वह अनिष्ट है, उसका नाश किया। इष्ट तो शुद्ध स्व में, शुद्धात्मआचरण शुद्ध की प्राप्ति की। समझ में आया? यह १११ की दूसरी गाथा कही गयी।

गाथा - १११*३

अथ :-

२३४) जइ इच्छसि भो साहू बारह-विह-तवहलं महा-विउलं।
तो मण-वयणे काए भोयण-गिद्धी विवज्जेसु।।१११*३।।

यदि इच्छसि भो साधो द्वादशविधतपःफलं महद्विपुलम्।
ततः मनोवचनयोः काये भोजनगृद्धिं विवर्जयस्य।।१११*३।।

जइ इच्छसि यदि इच्छसि भो साधो द्वादशवधतपःफलम्। कथंभूतम्। महद्विपुलं स्वर्गापवर्गरुपं ततः कारणात् वीतरागनिजानन्दैकसुखरसास्वादानुभवेन तृप्तो भूत्वा मनोवचनकायेषु भोजनगृद्धिं वर्जय इति तात्पर्यम्।।१११*३।।

आगे फिर भी भोजन की लालसा को त्याग कराते हैं-

हे मुनि यदि बारह विध तप का फल महान पाना चाहो।
तो मन वचन काय से भोजन के प्रति आसक्ति छोड़ो।।१११*३।।

अन्वयार्थ :- [भो साधो] हे योगी, [यदि] जो तू [द्वादशविधतपः फलं] बारह प्रकार तप का फल [महद्विफलं] बड़ा भारी स्वर्ग मोक्ष [इच्छसि] चाहता है, [ततः] तो वीतराग निजानंद एक रुखरस का आस्वाद उसके अनुभव से तृप्त हुआ [मनोवचनयोः] मन, वचन और [काये] काय से [भोजनगृद्धिं] भोजन की लोलुपता को [विवर्जयस्व] त्याग कर दे। यह सारांश है।।१११*३।।

गाथा-१११-३ पर प्रवचन

आगे फिर भी भोजन की लालसा को त्याग कराते हैं—

२३४) **जइ इच्छसि भो साहू बारह-विह-तवहलं महा-विउलं।
तो मण-वयणे काए भोयण-गिद्धी विवज्जेसु।।१११*३।।**

अन्वयार्थः—हे योगी... साधु है न। **जो तू बारह प्रकार तप का फल बड़ा भारी**

स्वर्ग मोक्ष चाहता है, तो वीतराग निजानन्द एक सुखरस का आस्वाद उसके अनुभव से तृप्त हुआ... आहाहा! सन्तों की वाणी तो देखो! वीतराग निजानन्द। आहाहा! अपने आनन्द का घर जो अन्दर है, उसके निजानन्द की प्राप्ति पर्याय में की। आहाहा! **एक सुखरस का आस्वाद...** वीतरागी निजानन्द एकरूप त्रिकाल के सुखरस का आस्वाद। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया। आहाहा! यह कैसी चीज़? स्त्री के शरीर का कुछ उसे भोग नहीं होता। दाल, भात, मौसम्बी, लेता है, उसका भोग आत्मा को नहीं है। उस ओर लक्ष्य करके राग होता है, उसका भोग है। आत्मा का आनन्द का भोग है, वह (विषय) तो दु:ख का—राग का भोग है। आहाहा! समझ में आया?

निजानन्द एक सुखरस का आस्वाद... त्रिकाली निजानन्द प्रभु का आस्वाद वर्तमान में। आहाहा! उसका नाम धर्म। निजानन्द का वेदन। आहाहा! गजब बात है! क्योंकि परमात्मा स्वयं निजानन्दस्वरूप आत्मा है। उस निजानन्द के स्वरूप का अनुभव करना तो अनुभव में निज आस्वाद आता है। आहाहा! है? **उसके अनुभव से तृप्त हुआ...** आहाहा! जैसे चूरमा खाकर तृप्त हो, फिर उसे रोटी की इच्छा नहीं होती। आहाहा! इसी प्रकार आत्मा के आनन्द का अनुभव हुआ, उससे तृप्त हुआ। आहाहा! **मन, वचन और काय से भोजन की लोलुपता को त्याग कर दे।** आहाहा! भोजन लेने का तो विकल्प है। खाने में भी भोजन खा सकता नहीं, उसका थोड़ा राग आता है। आहाहा! वह तो आत्मा के आनन्द के स्वाद के समक्ष भोजन की लोलुपता छोड़ दे। आहाहा! देखो, यह वाणी दिगम्बर सन्तों की!! आहा!

मुमुक्षु : मुनि भोजन की लोलुपता करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : करे। आ जाती है न संज्ञा, इसलिए छोड़ दे। वृत्ति आ जाये न?

मुमुक्षु : मुनिपना रहे?

पूज्य गुरुदेवश्री : आर्तध्यान है, तथापि मुनिपना रहे। आर्तध्यान होता है न छठवें गुणस्थान में। चारित्रदोष है, मुनिपना है। आहाहा!

मुमुक्षु : लोलुपता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस लोलुपता का अर्थ वृत्ति में जरा राग की विशेषता हुई,

इतना। एकता नहीं। उसे भी छोड़ दे अब, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : भाव आ गया....

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे, वह शुभविकल्प है, वह राग है। आवे, होता है। आहाहा! मार्ग मार्ग कठिन, भाई... शुभराग नहीं? मोक्ष अधिकार। विषकुम्भ है। आहाहा! शुभविकल्प, शुभराग आता है, वह विषकुम्भ है, जहर का घड़ा है।

मुमुक्षु : वह तो मुनि के लिये है, दूसरों के लिये?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, सबके लिये।

मुमुक्षु : अमृतस्वरूप भी कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ अमृत, वह व्यवहार से। जहर है। कहा है न, व्यवहार को अमृत। वह तो अमृतस्वरूप भगवान आत्मा का वेदन हुआ तो व्यवहारचारित्र को व्यवहार से अमृत कहने में आया, यह कथन है। अमृत का दो प्रकार का कथन है, अमृत है तो एक ही प्रकार का। समझ में आया?

मुमुक्षु : पश्चाताप भी....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह राग है। राग है, आर्तध्यान है। एकदम ज्ञाता-दृष्टा और शुद्धता, वह धर्म है। आहा! भाई! मार्ग बहुत सूक्ष्म है। आहा!

यह सारांश हुआ। देखो! त्याग करना, वह इस गाथा का सारांश है।

गाथा - १११*४

उक्तं च :-

२३४) जे सरसिं संतुट्ठ-मण विरसि कसाउ वहंति।
ते मुणि भोयण-धार गणि णवि परमत्थु मुणंति।।१११*४।।

ये सरसेन संतुष्टमनसः विरसे कषायं वहन्ति।
ते मुनयः भोजनगृध्राः गणय नैव परमार्थ मन्यन्ते।।१११*४।।

जे इत्यादि। जे सरसिं संतुट्ठमण ये केचन सरसेन सरसाहारेण संतुष्टमनसः विरसि कसाउ वहंति विरसे विरसाहारे सति कषायं वहन्ति कुर्वन्ति ते ते पूर्वोक्ताः मुणि मुनयस्तपोधनाः भोयणधार गणि भोजनविषये गृध्रसदृशान् गणय मन्यस्व जानीहि। इत्थंभूताः सन्तः णवि परमत्थु मुणंति नैव परमार्थं मन्यन्ते जानन्तीति। अयमत्र भावार्थः। गृहस्थानामाहारदानादिकमेव परमो धर्मस्तेनैव सम्यक्त्वपूर्वेण परंपरया मोक्षं लभन्ते कस्मात् स एव परमो धर्म इति चेत्, निरन्तरविषयकषायाधीनतया आर्तरौद्रध्यानरतानां निश्चयरत्नत्रयलक्षणस्य शुद्धोपयोगपरम-धर्मस्यावकाशो नास्तीति। शुद्धोपयोगपरमधर्मरतैस्तपो-धनैस्त्वन्नपानादिविषये मानापमानसमतां कृत्वा यथालाभेन संतोषः कर्तव्य इति।।१११*४।।

और भी कहा है-

स्वादिष्ट अशन में तृप्त रहें अरु नीरस में जो करें कषाय।
वे परमार्थ न मानें एवं भोजन में है गिद्ध समान।।१११*४।।

अन्वयार्थ :- [ये] जो जोगी [सरसेन] स्वादिष्ट आहार से [संतुष्टमनसः] हर्षित होते हैं, और [विरसे] नीरस आहार में [कषायं] क्रोधादि कषाय [वहंति] करते हैं, [ते मुनयः] वे मुनि [भोजन गृध्राः] भोजन के विषय में गृद्धपक्षी के समान हैं, ऐसा तू [गणय] समझ। वे [परमार्थ] परमतत्त्व को [नैव मन्यंते] नहीं समझते हैं।

भावार्थ :-जो कोई वीतराग के मार्ग से विमुख हुए योगी रस सहित स्वादिष्ट आहार से खुश होते हैं, कभी किसी के घर छह रसयुक्त आहार पावें तो मन में हर्ष करें, आहार के देनेवाले से प्रसन्न होते हैं, यदि किसी के घर रस रहित भोजन मिले तो कषाय करते हैं, उस गृहस्थ को बुरा समझते हैं, वे तपोधन नहीं हैं, भोजन के लोलुपी हैं।

गृद्धपक्षी के समान हैं। ऐसे लोलुपी यती देह में अनुरागी होते हैं, परमात्म-पदार्थ को नहीं जानते। गृहस्थों के तो दानादिक ही बड़े धर्म हैं। जो सम्यक्त्व सहित दानादि करे, तो परम्परा से मोक्ष पावे। क्योंकि श्रावक का दानादिक ही परमधर्म है। वह ऐसे हैं, कि ये गृहस्थ-लोग हमेशा विषय कषाय के आधीन हैं, इससे इनके आर्त रोद्र ध्यान उत्पन्न होते रहते हैं, इस कारण निश्चय रत्नत्रयरूप शुद्धोपयोग परमधर्म का तो इनके ठिकाना ही नहीं है, अर्थात् गृहस्थों के शुभोपयोग की ही मुख्यता है। और शुद्धोपयोगी मुनि इनके घर आहार लेवें, तो इसके समान अन्य क्या? श्रावक का तो यही बड़ा धरम है, जो कि यती, अर्जिका, श्रावक, श्राविका इन सबको विनयपूर्वक आहार दे। और यती का यही धर्म है, अन्न जलादि में राग न करे, और मान-अपमान में समताभाव रक्खे। गृहस्थ के घर जो निर्दोष आहारादिक जैसा मिले वैसा लेवे, चाहे चावल मिले, चाहे अन्य कुछ मिले। जो मिले उसमें हर्ष विषाद न करे। दूध, दहीं, घी, मिष्टान्न, इनमें इच्छा न करे। यही जिनमार्ग में यती की रीति हैं।।१११*४।।

गाथा-१११-४ पर प्रवचन

आगे भी कहा है—

२३४) जे सरसिं संतुट्ट-मण विरसि कसाउ वहंति।
ते मुणि भोयण-धार गणि णवि परमत्थु मुणंति।।१११*४।।

अन्वयार्थ :— हे योगी! स्वादिष्ट आहार से... 'संतुष्टमनसः' हर्षित होते हैं,... देखो! स्वादिष्ट आहार में हर्ष होता है। आहाहा! **नीरस आहार में क्रोधादि कषाय...** रूखी रोटी और आटा मिले, लाल ज्वार के छिलके की रोटी मिले। लाल ज्वार होती है। लाल ज्वार, ज्वार के छिलके में बहुत मिठास नहीं होती। समझ में आया? वह मिले तो क्रोध नहीं, कहते हैं। वह है, जानता है। समझ में आया? आहाहा! **वे मुनि भोजन के विषय में गृद्धपक्षी के समान हैं।** वह गृद्ध पक्षी। वह गिद्ध होता है न? गिद्ध। आहाहा! भाई! मुनिपना तो अलौकिक दशा है। आहाहा! यह वस्तु का स्वरूप बताते हैं। मुनिपने की दशा में वस्तुस्थिति ऐसी है, ऐसा ज्ञान कराते हैं। समझ में आया? **गृद्धपक्षी के**

समान हैं। लो। ओहो! **ऐसा तू समझ। वे परमतत्त्व को नहीं समझते हैं।** आहाहा! जिसे आहार की गृद्धि में स्वादिष्ट आहार का प्रेम है, रस है, हर्ष है, वे आत्मा के आनन्द को नहीं जानते। आहाहा! समझ में आया? बातें अलग प्रकार की, नयी लगे।

एक ओर राग नहीं, पुत्र नहीं, पुत्री नहीं, पैसा नहीं, मेरा कुछ नहीं। यह तो सम्यग्दर्शन। पश्चात् राग आता है, वह दोष है। राग को छोड़। आत्मा के आनन्द के स्वाद के समक्ष पर के स्वाद का प्रेम तुझे छूट जाता है और पर के स्वाद का प्रेम आया तो आत्मा आनन्द छूट जाता है। स्व से च्युत होकर पर का रस आता है और पर का रस छूट जाये तो स्व का रस आता है। ऐसा मार्ग! आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :— जो कोई वीतराग के मार्ग से विमुख हुए योगी... देखो! वीतराग स्वभाव अपना है, उससे विमुख हुए योगी **रससहित स्वादिष्ट आहार से खुश होते हैं,...** देखो! खुश होते हैं। स्वादिष्ट मिले, ले परन्तु स्वादिष्ट में खुश होते हैं। ... वहाँ गृहस्थ के घर में उत्कृष्ट भोजन हो, निर्दोष लेते हैं। मैसूर हो।

मुमुक्षु : जिसके यहाँ विवाह आदि प्रसंग हो, उसके यहाँ मुनि जाते ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रसंग में नहीं, परन्तु यों ही गृहस्थ के घर में स्वयं के लिये अच्छा भोजन बनावे न! प्रीतिभोज हो, वह नहीं। परन्तु घर में स्वयं का भोजन भी उत्कृष्ट भोजन बनाते हैं या नहीं? लड्डू बनाते हैं, मैसूर बनाते हैं। मुनि ले, परन्तु स्वादिष्ट का रस नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक जगह मिल जाये तो ले लेते हैं। एक जगह मिल जाये। यह कहते हैं, थोड़ा यहाँ खा ले और अन्यत्र खाये, ऐसा नहीं। एक स्थान में लेते हैं। दूसरे कोई हो, एक साथ मकान हो, वहाँ गये, (लेकर कोई आये) ले लेवे। एक ही बार। यहाँ थोड़ा आहार ले और फिर अन्यत्र थोड़ा ले, ऐसा नहीं। वहाँ लेते समय दूसरा घर साथ में हो और वह निर्दोष लावे तो ले लेवे। यह भ्रमर लिखा है। बहुत घरों से लेना, वह भ्रमर, ऐसा नहीं है। आहाहा! मार्ग बहुत अलग। यहाँ आया।

वीतराग के मार्ग से विमुख हुए योगी रससहित स्वादिष्ट आहार से खुश होते हैं,

कभी किसी के घर छह रसयुक्त आहार पावें... है ? **तो मन में हर्ष करें,...** मिले सही भले, परन्तु हर्ष करे। **आहार के देनेवाले से प्रसन्न होते हैं,...** इन्होंने आहार दिया, प्रसन्न हो। अरे ! इसका अर्थ क्या ? **यदि किसी के घर रसरहित भोजन मिले तो कषाय करते हैं, उस गृहस्थ को बुरा समझते हैं,...** आहाहा ! **रस रहित भोजन मिले तो कषाय करते हैं, उस गृहस्थ को बुरा समझते हैं, वे तपोधन नहीं है...** तपोधन नहीं है। आहाहा ! मुनिपने की दशा कैसी होती है वह बताते हैं, श्रद्धा कराते हैं कि ऐसे मुनि होते हैं। आहाहा ! है ? **भोजन के लोलुपी हैं।** आहाहा ! **गृद्धपक्षी के समान हैं।** श्वेताम्बर में भी एक श्लोक आता है।

ऐसे लोलुपी यति देह में अनुरागी होते हैं... आहाहा ! **परमार्थ-पदार्थ को नहीं जानते।** परमार्थ-पदार्थ भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु। आहाहा ! उसे नहीं जानते, उन्हें समकित भी नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द भगवान तो है। उसे परस्वाद में इष्ट हर्ष हो जाये तो स्व के आनन्द को भूल जाये। मैं आनन्दस्वरूप हूँ, यह दृष्टि छूट जाती है। आहाहा ! समझ में आया ? समकिती भी गृहस्थाश्रम में हो और पर के स्वाद में इष्ट और प्रेम हो जाये, एकत्वबुद्धि (हो जाये) तो वह आत्मा के स्वाद से भ्रष्ट हो जाता है। समझ में आया ? आहाहा ! भोग के काल में राग होता है। परन्तु राग में रुचि हो जाये कि यह मजा है (तो) मूढ़-मिथ्यादृष्टि हो जाये। समझ में आया ? ननुमलजी ! मार्ग ऐसा है। दिगम्बर सन्तों का पुकार है। आहाहा !

प्रभु ! तू वीतरागी आनन्द से भरपूर पड़ा है न, प्रभु ! तेरे वीतरागी आनन्द का यदि तुझे रस आया तो दूसरे में तेरा रस उड़ जाता है, दूसरा रस फीका पड़ जाता है। आहाहा ! समझ में आया ? और दूसरे का रस आया तो तेरा आनन्द फीका पड़ जाता है, तेरे आनन्द की रुचि छूट जाती है। आहाहा ! ऐसा मार्ग है।

गृहस्थों के तो दानादिक ही बड़े धर्म हैं। शुभभाव है न ! प्रवचनसार में डाला है न ? ३४८ पृष्ठ पर है, प्रवचनसार। ऐसा यहाँ मुख्य धर्म कहा न ? अर्थात् उसे पुण्य है। गृहस्थ को दानादिक धर्म अर्थात् पुण्य, शुभभाव। **जो सम्यक्त्वसहित दानादि करे,...** आत्मा के आनन्द के अनुभवसहित यदि दानादि करे **तो परम्परा से मोक्ष पावे।** तो उस

राग को छोड़कर वीतराग हो जायेगा। क्योंकि दृष्टि में राग का आदर नहीं, परन्तु राग है तो फिर राग को छोड़कर मुक्ति होगी। राग से नहीं होगी। राग का अभाव करके होगी। आहाहा! समकित सहित दानादि करे तो। आहाहा!

क्योंकि श्रावक का दानादिक ही परम धर्म है। वह ऐसे हैं कि ये गृहस्थ-लोग हमेशा विषय-कषाय के आधीन हैं,... देखा! विषय-कषाय के परिणाम बहुत हैं न उसे। **इससे इनके आर्तरौद्रध्यान उत्पन्न होते रहते हैं,...** आर्त और रौद्रध्यान उत्पन्न होते रहते हैं। आहा! **इस कारण निश्चयरत्नत्रयरूप शुद्धोपयोग परमधर्म का तो इनके ठिकाना ही नहीं है,...** मुनि को जो निश्चय रत्नत्रयरूप शुद्धोपयोग है, उसका ठिकाना नहीं, ऐसा। समझ में आया? समकिती को निश्चयरत्नत्रय के परिणाम हैं। परन्तु जो मुनि को जो निश्चयरत्नत्रय का उपयोग है, ऐसा यहाँ नहीं होता। आहाहा! इसलिए कोई ऐसा ही कहे कि गृहस्थाश्रम में समकिती को समकित ही नहीं होता, ऐसा नहीं है। मुनि के योग्य निश्चय **शुद्धोपयोग परमधर्म का तो इनके ठिकाना ही नहीं है,...** मुनियोग्य शुद्धोपयोग, ऐसा। **गृहस्थों के शुभोपयोग की ही मुख्यता है।** पाप को टालने के लिये शुभोपयोग मुख्य है, ऐसा। यह प्रवचनसार में लिया है।

और शुद्धोपयोगी मुनि इनके घर आहार लेवें,... शुद्धोपयोगी मुनि इनके घर आहार लेवे, शुद्धोपयोगी अर्थात्? घर में जाये वहाँ शुद्धोपयोग में नहीं, परन्तु जितना तीन कषाय का अभाव है, वह शुद्धोपयोगी है। समझ में आया? ध्यान में शुद्धोपयोग है तो आहार लेते हैं? परन्तु वीतरागी परिणाम शुद्धोपयोग उत्पन्न हुआ है और आहार लेने का विकल्प आता है। यह बात ली है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए तो कहा न, ऐसा शुद्धोपयोग गृहस्थ को नहीं होता। तीन कषाय के अभावरूप शुद्धोपयोग गृहस्थों को नहीं होता। परन्तु गृहस्थ को शुद्धोपयोग ही नहीं होता, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गौणता है। शुद्धोपयोगी है। उस समय शुद्धपरिणति है। मुनि

को गृहस्थ आहार देते हैं, विकल्प है, उस समय शुद्धपरिणति भी है और मुनि भी आहार लेते हैं विकल्प में, उस समय तीन कषाय के अभाव की शुद्धपरिणति भी है। उसे शुद्धोपयोगी कहा गया है। आहाहा!

तो इसके समान अन्य क्या? श्रावक का तो यही बड़ा धर्म है, जो कि यति, अर्जिका, श्रावक, श्राविका इन सबको विनयपूर्वक आहार दे। विनयपूर्वक, हों! **और यति का यही धर्म है, अन्न-जलादि में राग न करे...** लो। उसका (आहार) देने का शुभभाव है, वह उसका व्यवहारधर्म है। यति राग न करे, यह उसका धर्म है। है न? आहा! **और मान-अपमान में समताभाव रखे। गृहस्थ के घर में जो निर्दोष आहारादिक जैसा मिले वैसा लेवे, चाहे चावल मिले, चाहे अन्य कुछ मिले।** उत्कृष्ट रस भी मिले। **जो मिले उसमें हर्ष-विषाद न करे।** बस। **दूध, दही, घी, मिष्टान्न, इनमें इच्छा न करे। यही जिनमार्ग में यति की रीति है।** लो। दूध, दही मिल जाये, घी मिले। इच्छा न करे। ऐसी बात है। यह विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ११२

अथ शुद्धात्मोपलम्भाभावे सति पञ्चेन्द्रियविषयासक्त जीवानां विनाशं दर्शयतिः-

२३५) रुवि पयंगा सद्दि मय गय फासहिँ णासंति।
अलिउल गंधइँ मच्छ रसि किम अणुराउ करंति।।११२।।

रुपे पतङ्गाः शब्दे मृगाः गजाः स्पर्शैः नश्यन्ति।
अलिकुलानि गन्धेन मत्स्याः रसे किं अनुरागं कुर्वन्ति।।११२।।

रुवि इत्यादि। रुपे समासक्ताः पतङ्गाः शब्दे मृगाः गजाः [1]स्पर्शैः गन्धेनालिकुलानि मत्स्या रसासक्ता नश्यन्ति यतः कारणात् ततः कारणात्कथं तेषु विषयेष्वनुरागं कुर्वन्तीति। तथाहि पञ्चेन्द्रियविषयाकांक्षाप्रभृतिसमस्तापध्यानविकल्पै रहितः शुन्यः स्पर्शनादीन्द्रियकषायातीतनिर्दोषिपरमात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरुप-निर्विकल्पसमाधिसंजातवीतरागपरमाह्लादैकलक्षणसुखामृतरसास्वादेन पूर्ण कलक्षवद्भरितावस्थः केवलज्ञानादिव्यक्तिरुपस्य कार्यसमयसारस्योत्पादकः शुद्धोपयोगस्वभावो योऽसावेवंभूतः कारणसमयसारः तद्भावनारहिता जीवाः पञ्चेन्द्रियविषयाभिलाषवशीकृता नश्यन्तीति ज्ञात्वा कथं तत्रासक्तिं गच्छन्ति ते विवेकिन इति। अत्र पतङ्गादय एकैकविषयासक्ता नष्टाः, ये तु पञ्चेन्द्रियविषयमोहितास्ते विशेषण नश्यन्तीति भावार्थः।।११२।।

आगे शुद्धात्मा की प्राप्ति के अभाव में जो विषयी जीव पाँच इंद्रियों के विषयों में आसक्त हैं, उनका अकाज (विनाश) होता है, ऐसा दिखलाते हैं-

गज स्पर्श में रस में मछली भ्रमर गन्ध में हो आसक्त।
रूप पतंगा मृग शब्दों में हों विनष्ट तू क्यों अनुरक्त?।।११२।।

अन्वयार्थ :- [रुपे] रुप में लीन हुए [पतंगा] पतंग जीव दीपक में जलकर मर जाते हैं, [शब्दे] शब्द विषय में लीन [मृगाः] हिरण व्याध के बाणों से मारे जाते हैं, [गजाः] हाथी [स्पर्शैः] स्पर्श विषय के कारण गड्ढे में पड़कर बाँधे जाते हैं, [गंधेन] सुगंध की लोलुपता से [अलिकुलानि] भौरें काँटों में या कमल में दबकर प्राण छोड़ देते और [रसे] रस के लोभी [मत्स्याः] मच्छ [नश्यंति] धीवर के जाल में पड़कर मारे जाते हैं। एक एक

---

१. पाठान्तर - स्पर्शैः=स्पर्शे

विषय कषायकर आसक्त हुए जीव नाश को प्राप्त होते हैं, तो पंचेन्द्रि का कहना ही क्या है? ऐसा जानकर विवेकी जीव विषयो में [किं] क्या [अनुरागं] प्रीति [कुर्वंति] करते हैं? कभी नहीं करते।

भावार्थ :– पंचेन्द्रिय के विषयों की इच्छा आदि जो सब खोटे ध्यान वे ही हुए विकल्प उनसे रहित विषय कषाय रहित जो निर्दोष परमात्मा उसका सम्यक् श्रद्धान ज्ञान आचरणरुप जो निर्विकल्प समाधि, उससे उत्पन्न वीतराग परम आहलादरुप सुख–अमृत, उसके रस के स्वादकर पूर्ण कलश की तरह भरे हुए जो केवलज्ञानादि व्यक्तिरुप कार्यसमयसार, उसका उत्पन्न करनेवाला जो शुद्धोपयोगरुप कारण समयसार, उसकी भावना से रहित संसारी जीव विषयों के अनुरागी पाँच इन्द्रियों के लोलुपी भव भव में नाश पाते हैं। ऐसा जान कर इन विषयों में विवेकी कैसे राग को प्राप्त होवें? कभी विषयाभिलाषी नहीं होते। पतंगादिक एक एक विषय में लीन हुए नष्ट हो जाते हैं, लेकिन जो पाँच इन्द्रियों के विषयों में मोहित हैं, वे वीतराग चिदानन्दस्वभाव परमात्मतत्त्व उसको न सेवते हुए, न जानते हुए, और न भावते हुए, अज्ञानी जीव मिथ्या मार्ग को वाँछते, कुमार्ग की रुचि रखते हुए नरकादि गति में घानि में पिलना, करोंत से विदरना, और शूली पर चढ़ना इत्यादि अनेक दुःखों को देहादिक की प्रीति से भोगते हैं। ये अज्ञानी जीव वीतरागनिर्विकल्प परमसमाधि से पराङ्मुख हैं, जिनके चित्त चंचल हैं, कभी निश्चल चित्तकर निजरुप को नहीं ध्यावते हैं। और जो पुरुष स्नेह से रहित हैं, वीतरागनिर्विकल्प समाधि में लीन हैं, वे ही लीलामात्र में संसार को तैर जाते हैं।।११२।।

वीर संवत् २५०२, पौष कृष्ण ३, शनिवार
दिनांक-०८-०१-१९७७, गाथा - ११२, प्रवचन-१८०

परमात्मप्रकाश, ११२ गाथा। **आगे शुद्धात्मा की प्राप्ति के अभाव में...** क्या कहते हैं? इस शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा की प्राप्ति के अभाव में **जो विषयी जीव पाँच इन्द्रियों के विषयों में आसक्त हैं, उनका अकाल (विनाश) होता है, ऐसा दिखलाते हैं—**

२३५) रुवि पयंगा सद्दि मय गय फासहिं णासंति।
अलिउल गंधइँ मच्छ रसि किम अणुराउ करंति।।११२।।

अन्वयार्थ :— रूप में लीन हुए पतंग जीव दीपक में जलकर मर जाते हैं,... क्या कहते हैं? अपना जो आनन्दस्वरूप भगवान शुद्धात्मा, उसकी प्राप्ति के अभाव में, पंचेन्द्रिय के विषय के अर्थी एक-एक विषय में मर जाते हैं। आहाहा! अपना जो स्व-विषय पूर्ण आनन्दस्वरूप उसका कभी ध्यान नहीं करते। अपना चित्त उस ओर नहीं झुकाते। वे पंचेन्द्रिय के एक-एक विषय में एक-एक प्राणी मर जाते हैं, उसका दृष्टान्त है। आहाहा! समझ में आया? **पतंग जीव दीपक में जलकर मर जाते हैं,...**

शब्द विषय में लीन हिरण व्याघ के बाणों से मारे जाते हैं... शब्द के प्रेमी होते हैं न मृग? मृग, वे शिकारी उन्हें मार डालते हैं। आहाहा! एक-एक विषय में एक-एक प्राणी मर जाते हैं, तो पाँचों इन्द्रिय के विषय के अभिलाषी का क्या कहना? आहाहा! अपना जो आत्मा चिदानन्दरूप ज्ञानानन्दस्वरूप का एकाग्रचित्त होकर कभी ध्यान नहीं करते। आहाहा! उन्हें पर का ध्यान होता है। समझ में आया? शब्द के विषय में लीन मृग व्याघ अर्थात् शिकारी के बाण से मारे जाते हैं।

हाथी स्पर्श विषय के कारण गड्ढे में पड़कर बाँधे जाते हैं,... खड्डा करते हैं न बड़ा? उसमें हथिनी रखे चित्रित की हुई। उसके विषय की गृद्धि के कारण (हाथी) गड्ढे में पड़े और हाथी को बाँधे। आहाहा! एक-एक विषय में एक-एक प्राणी अपने प्राण खो बैठता है। परन्तु अपने आनन्दस्वभाव भगवान को कभी ध्यान में नहीं लेते। आहाहा! **हाथी स्पर्श विषय के कारण गड्ढे में पड़कर बाँधे जाते हैं,...**

सुगन्ध की लोलुपता से... भँवरा, भँवरा, **काँटों में या कमल में दबकर प्राण छोड़ देते...** हैं। आहाहा! भँवरे को सुगन्ध प्रिय है न, तो काँटे में हो तो भी अन्दर सुगन्ध लेने घुस जाता है। फूल हो और काँटे हों। अथवा कमल में घुसकर मर जाता है। कमल में सुगन्ध लेने जाये, कमल मुँद जाये तो मर जाता है। आहाहा!

और रस के लोभी मच्छ... मच्छ-मच्छ **'नश्यन्ति' घीवर के जल में पड़कर मारे जाते हैं।** आहाहा! लोहे के काँटे हों, उसमें माँस का टुकड़ा अथवा आटा डाले तो उसका लोलुपी (मच्छ) काँटे में फँस जाता है और उसे खींचकर मार डालते हैं। आहाहा! समझ में आया? एक-एक विषय कहे। आहाहा! **एक-एक विषय-कषायकर**

आसक्त हुए... आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषय के लोलुपी, एक-एक इन्द्रिय के विषय का लोलुपी **कषायकर आसक्त हुए जीव नाश को प्राप्त होते हैं, तो पंचेन्द्रिय का कहना ही क्या है ?** आहाहा! पंचेन्द्रिय के लोलुपी। कान से कीर्ति सुनने के लोलुपी, आँख से रूप देखने के लोलुपी, नाक से सुगन्ध के लोलुपी, जीभ में रस चखने के लोलुपी, स्पर्श में स्पर्श को भोगने के लोलुपी। आहाहा! समझ में आया? अणीन्द्रिय ऐसा भगवान अपने आनन्दस्वरूप का, चित्त की एकाग्रता होकर ध्यान करना छोड़ दे अनादि से और इन पाँच इन्द्रिय के विषयों में लोलुप हो जाये। आहाहा! प्राण जाये तो भी विषय का लोभ छोड़ता नहीं। आहाहा! **तो पंचेन्द्रिय का कहना ही क्या है ?**

ऐसा जानकर विवेकी जीव विषयों में क्या प्रीति करते हैं ? आहाहा! विषय में सुखबुद्धि से धर्मी क्यों प्रीति करता है? समझ में आया? अपना भगवान आनन्द से भरपूर है, उसमें एकाग्र होकर आनन्द का स्वाद ले नहीं। पाँच इन्द्रिय के विषय में तो मर जानेवाला है। आहाहा! समझ में आया? एक-एक विषय में एक-एक प्राणी मर जाता है तो पाँच इन्द्रिय के विषय के लोलुपी (की क्या बात करना) ? यह दृष्टान्त दिया था न? मास्टर नहीं थे अपने? हीराचन्द मास्टर नहीं कहते थे एक? कोई राजा था। मोहम्मद बेगडो। रस का लोलुपी खाते समय बाग में—बगीचा में बैठे, साथ में सुगन्ध ले। वैश्या नाचे उसका रूप देखे, वाजिंत्र सुने। इस प्रकार एक साथ पाँच इन्द्रिय के विषय। हीराचन्द मास्टर कहते थे। आहाहा! पाँच इन्द्रियों के विषयों का एकसाथ रस ले। भोजन के समय भी रस का स्वाद ले, रूप देखे, शब्द सुने, सुगन्ध—बाग-बगीचा में बैठा हो तो साथ में सुगन्ध ले। पाँचों ही इन्द्रिय। आहाहा! मोहम्मद बेगडा की बात आती है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो राजा था, दूसरे को कहाँ ऐसा होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब (आ गये)। यह तो राजा का दाखला / दृष्टान्त है। गरीब हो तो भी पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर का लोलुपी, अपने आनन्दस्वरूप की रुचि छोड़कर... अन्दर लिया है। **कभी निश्चल चित्तकर निजरूप को नहीं ध्यावते हैं।** टीका में है नहीं, ऊपर से यह शब्द डाला है। पाँच इन्द्रिय के विषय में एक के बाद एक, एक के बाद एक विषय लेता है... आहाहा! **कभी निश्चल चित्तकर...** अपना चित्त

निश्चल करके **निजरूप को नहीं ध्यावते हैं।** अपना निजरूप आनन्द, ज्ञानानन्द चिदानन्द। चिदानन्द अर्थात् ज्ञान और आनन्दस्वरूप भगवान। आहाहा! उसका ध्यान नहीं करता। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :— पंचेन्द्रिय के विषयों की इच्छा आदि जो सब खोटे ध्यान वही हुए विकल्प... राग, आहाहा! **उनसे रहित विषय-कषाय रहित जो निर्दोष परमात्मा...** आहाहा! क्या कहते हैं? पंचेन्द्रिय के विषय की जो इच्छा विकल्प, उससे रहित भगवान आत्मा तो है। आहाहा! परमानन्दस्वरूप प्रभु, वह विकल्प से रहित है। और **विषय-कषाय रहित...** पाँच इन्द्रिय के विषय-कषाय रहित भगवान आत्मा **निर्दोष परमात्मा उसका सम्यक् श्रद्धान...** निर्दोष वीतरागमूर्ति प्रभु अपना आत्मा, हों! आहाहा! वीतराग आनन्द का कुण्ड ऐसा भगवान परमात्मा अपना निजस्वरूप, उसका सम्यक् श्रद्धान, उसका सत्य श्रद्धान कि मैं पूर्णानन्द आनन्द वीतरागमूर्ति हूँ—ऐसा सम्यक् श्रद्धान। उसका सम्यक् **ज्ञान...** और परमात्मा में **आचरणरूप...** अन्तर स्वरूप में रमणतारूप **जो निर्विकल्प समाधि...** रागरहित शान्ति अन्दर उत्पन्न होती है। आहाहा! निर्विकल्प समाधि। लोगस्स में आता है, नहीं? समाहिवरमुत्तं दिंतु। लोगस्स में आता है। किया था लोगस्स? पहले? ठीक। उसमें आता है, समाहिवरमुत्तं दिंतु। पोपटभाई! यह तो भाई ने बहुत किया है। इसने भी साथ में किया था। समाहिवरमुत्तं दिंतु। समाधि, किसे कहते हैं समाधि? आहाहा! जो पंचेन्द्रियो के विषयों के विकल्प से रहित भगवान आत्मा अन्दर है। आहाहा! ऐसी बात कहाँ? मार डाला जगत को। वह सांईंबाबा और वह कैसा? रजनीश। मारा डाला जगत को, भ्रमणा में डालकर। बेचारे। आहाहा! और जैन में जन्मे, वे भी वापस मूर्खतापूर्ण हुए। ऐसा वीतरागमार्ग परमेश्वर सर्वज्ञ.... आहाहा! यह बात कहाँ है?

यहाँ तो कहते हैं कि पंचेन्द्रिय के विषय के लोलुपी विकल्परहित और विषय-कषायरहित—ऐसा निर्दोष भगवान आत्मा। आहाहा! वे सदोष हैं। यह निर्दोष परमात्मा, इसके सम्यक्श्रद्धान, ज्ञान और आचरणरूप निर्विकल्प समाधि। देखो! भगवान परमात्मा अपना स्वरूप उसके श्रद्धा, ज्ञान, आचरणरूप निर्विकल्प समाधि। आहाहा! वे बाबा समाधि करते हैं, वैसी नहीं। आहाहा! रागरहित, विषय-कषायरहित, ऐसा अपना

परमात्मा, उसकी सम्यक्‌श्रद्धा, ज्ञान, चारित्ररूप निर्विकल्प समाधि। आहाहा! यह समाधि का लक्षण कहा। वे बाबा कहें, आँख चढ़ जाये। वे सब मूढ़ हैं। समाधि कहाँ थी वहाँ?

समाधि तो उसे कहते हैं कि भगवान पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु विकल्प और विषय-कषायरहित ऐसे निर्दोष परमात्मा के सम्यक्‌श्रद्धा, ज्ञान, आचरणरूप निर्विकल्प समाधि। आहाहा! समझ में आया? **उससे उत्पन्न वीतराग परम आह्लादरूप सुख-अमृत,...** आहाहा! विषय-कषाय में कषाय उत्पन्न होती है, दुःख उत्पन्न होता है। तब भगवान आत्मा... यह तो अन्तर का मार्ग है, प्रभु! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। परमेश्वर... हें!

मुमुक्षु : सोनगढ़ के अतिरिक्त कहीं नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो सच्ची, परन्तु वस्तु तो भगवान की कही हुई है। आहाहा! सन्त—दिगम्बर सन्त कहते हैं, प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! उसमें आया नहीं? स्तुति नहीं? यह बनारसीदास (कृत)। 'जिनादेश जाता जिनेन्द्रा विख्याता' बनारसीदास। 'जिनादेश जाता...' भगवान की वाणी कैसी है? जिनादेश—जिन के आदेश से उत्पन्न हुई। वीतराग सर्वज्ञ की वाणी सर्वज्ञ के मुख्य से ध्वनि उठी। 'जिनादेश जाता।' जिन के आदेश से उत्पन्न हुई अन्दर से। आहाहा! वाणी, जिनवर वाणी। 'जिनेन्द्रा विख्याता' जिनेन्द्र ने प्रसिद्ध की। उत्पन्न की और प्रसिद्ध की। दो शब्द हैं न? आहाहा! 'जिनादेश जाता जिनेन्द्रा विख्याता।' आहाहा! 'नमो लोकमाता, विशुद्धा प्रबुद्ध नमो लोकमाता।' आहाहा! बनारसीदास। वे लोग गृहस्थ भी पके हैं न! आहाहा! 'जिनादेश जाता।' जिनेन्द्र से उत्पन्न हुई प्रभु की वाणी। आहाहा! वह यह वाणी है। जिनेन्द्रा विख्याता। जिनेन्द्र से प्रसिद्ध हुई। उत्पन्न हुई जिनेन्द्र से और प्रसिद्ध हुई। आहाहा! प्रसिद्ध हुई। थोड़ी-थोड़ी गुजराती आ जाती है अन्दर। समझ में आया? आहाहा!

विशुद्धप्रबुद्धा। यह वीतराग सर्वज्ञ की वाणी विशुद्ध है और विशुद्ध और प्रबुद्धा। प्रकर्ष बुद्ध—तत्त्वज्ञान की बतलानेवाली वाणी है। आहाहा! 'नमो लोकमाता' वीतराग की वाणी लोकमाता। आहाहा! समझ में आया? 'दुर्नैहरा, शंकरानी।' ऐसा कुछ आता है। भाषा है। 'दुराचार दुर्नैहरा शंकरानी' वीतराग ॐ ध्वनि कैसी है?

'दुराचार दुर्नैहरा' पर में स्नेह को हरनेवाली, दुराचार को नाश करनेवाली। शंकरानी—सुख की उत्पन्न करनेवाली। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनकी वाणी दुर्नैहरा—स्नेह का नाश करनेवाली पर के प्रेम का। आहाहा! और दुराचार का नाश करनेवाली है। शंकरानी—सुख की उत्पन्न करनेवाली। आहाहा! 'नमों देवि वागेश्वरी जैनवाणी।' वह यह जैनवाणी ऐसी है। आहाहा!

'सुधाधर्म संसाधनी धर्मशाला', अमृतरूपी धर्म को साधनेवाली धर्मशाला जिनवाणी है। आहाहा! समझ में आया? 'सुधा तापनिर्नाशनी मेघमाला' अमृतरूपी वाणी तापनिर्नाशनी—अज्ञानरूपी कषायरूपी ताप को नाश करनेवाली मेघमाला है। प्रपात बरसता है अन्दर। आहाहा! 'महामोहविध्वंसनी मोक्षदानी', महामोह को विध्वंस करनेवाली मोक्ष की दानी है। वाणी वीतराग परमात्मा की वह है कहाँ बापू अन्यत्र? आहाहा! ऐसे जैन में जन्मकर वापस जहाँ-तहाँ भटके। आज लीलाधरभाई को कहा था, तुम्हारे लड़के जहाँ-तहाँ भटका करते हैं। यह रामजीभाई के लड़के, वे सब इनके लड़के कहलायें। हें, लीलाधरभाई! यह हमको कहे, काका यहाँ आओ। अरे भगवान! यह वाणी, बापू! कहीं मरकर जाओगे हैरान होकर। पैसे हुए तो क्या धूल हुई? वह तो पुण्य के कारण हुई, इसके कारण नहीं कुछ। आहाहा! ऐसी वाणी सुने, वह महाभाग्यशाली है। वीतराग की वाणी। आहाहा! 'नमो देवी वागेश्वरी जैनवानी।' बहुत सरस है, पूरा बोला जाता है न। 'अखैवृक्षशाखा' वीतराग की वाणी अक्षय वृक्षरूपी अक्षर, अक्षय वृक्ष की शाखा है। आहाहा!

मुमुक्षु : इसका अर्थ ऐसा (कि) क्षय न हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षय न हो, ऐसा वृक्ष है, उसकी शाखा है। आहाहा!

'अखैवृक्षशाखा व्यतीताभिलाषा', जिसमें कोई अभिलाषा रहित वाणी वीतराग की। आहाहा! वीतरागता को बतलानेवाली है। आहाहा! 'कथा संस्कृता प्राकृता देशभाषा' यह तो फूलचन्दजी ने कहा था न चर्चा में? पण्डितों की वाणी भी हमको तो प्रमाण है। तब वह कहे—नहीं, आचार्य की वाणी। यहाँ तो चाहे जो भाषा हो, संस्कृत हो, प्राकृत हो, देशभाषा प्रचलित भाषा हो, परन्तु वह वीतराग की वाणी है। आहाहा! 'चिदानन्द

भूपाल की राजधानी' चिदानन्द भूपाल भगवान आत्मा। आहाहा! ज्ञानानन्द भूपाल—राजा की राजधानी वह वाणी। वाणी में यह बतलाना है। आहाहा! 'नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी।' यह तो इतना वह जिनादेश आ गया। जिनादेश—जिन-वीतराग की वाणी से उत्पन्न हुई, आदेश से। आहाहा! वह वीतराग वाणी है, भाई! दिगम्बर सन्तों की वाणी वह जिन की वाणी है।

मुमुक्षु : वाँचते तो सब हैं, परन्तु अर्थ कुछ समझते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उन बहियों का अर्थ वाँचे, तब कैसा व्यवस्थित बैठता है। उससे इतना लेना और उससे यह लेना। तो यह वाँचें तो रस आवे तो यह करे। नहीं, सेठ?

मुमुक्षु : उसका अभ्यास है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो आदत पड़ी हुई है अज्ञानी की। यह आदत करनी पड़ेगी या नहीं? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, ओहोहो! **निर्विकल्प समाधि, उससे उत्पन्न...** कौन? अपना आत्मा जो वीतरागमूर्ति प्रभु, आहाहा! उसकी श्रद्धा, ज्ञान और आचरणरूप निर्विकल्प शान्ति। आहाहा! निर्विकल्प शान्ति, उपशमरस से उत्पन्न हुआ भाव। आहाहा! **उससे उत्पन्न वीतराग परम आह्लादरूप (आनन्दरूप) सुख-अमृत...** आहाहा! आचार्य को शब्द थोड़े पड़ते हैं। भगवान आत्मा अन्दर निर्दोष परमात्मा अपना स्वरूप सर्वज्ञ भगवान ने जो प्रगट किया, ऐसा ही अपना स्वरूप है। आहाहा! ऐसी वाणी का, आहा! उस वाणी में परमात्मा की सम्यक्‌श्रद्धान, ज्ञान, आचरणरूप निर्विकल्प समाधि जो उत्पन्न हुई, उससे उत्पन्न वीतराग परम आनन्दरूप सुख-अमृत। आहाहा! कहते हैं कि अपना परमात्मस्वरूप, उसकी सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र—आचरण से उत्पन्न हुई निर्विकल्प समाधि, उससे उत्पन्न हुआ, आहाहा! वीतराग परम आह्लाद। वीतरागी उत्कृष्ट **आह्लादरूप सुख-अमृत...** आहाहा!

उसके रस के स्वादकर... उसके रस के स्वाद से **पूर्ण कलश की तरह भरे हुए...** जैसे पूर्ण कलश भरा हो, किसी भी रस से, मौसम्बी के रस से भरा हो। इसी प्रकार यह

भगवान आत्मा... आहाहा! **स्वादकर पूर्ण कलश की तरह भरे हुए...** है। आहाहा! बहुत सरस बात आयी है। आहाहा! क्या कहते हैं, समझ में आया? भगवान आत्मा **वीतराग परमआह्लादरूप सुख-अमृत, उसके रस के स्वादकर पूर्ण कलश की तरह भरे हुए...** वस्तु। आहाहा! उसमें से कार्यसमयसार निकालना है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा, देखो न! यह कलश जैसा है न? यह शरीर कलश जैसा है। आत्मा अन्दर शरीर के आकार और पूर्ण आनन्द से भरपूर कलश है। आहाहा! समझ में आया? यह वह फेरफार है, भाई! कहा न अभी। बात हो गयी। वरना इन्होंने ऐसा लिखा है, **भरे हुए जो केवलज्ञानादि व्यक्तिरूप...** ऐसा नहीं लेना। भरे हुए तो वस्तु है। पश्चात् उसमें से कार्यसमयसार किस प्रकार प्रगट होता है, यह बात करनी है। समझ में आया? लेखन में थोड़ा अन्तर है। पहले पण्डितजी के साथ बात हो गयी। क्या कहा?

यह आत्मा निर्दोष परमात्मा निज आत्मा, उसकी सम्यक्—सत्यश्रद्धा सम्यक् समकित, ज्ञान और अन्तर आचरण, उसरूपी विकल्परहित शान्ति—समाधि, वीतरागी आनन्द का रस। आहाहा! उससे **पूर्ण कलश की तरह भरे हुए...** भगवान आत्मा वीतरागी परम आनन्द के रस से पूर्ण कलश की भाँति भरपूर है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें भी सुनने को मिलना मुश्किल। आहाहा! यह आत्मा जिसे परमात्मस्वरूप कहते हैं, वह परमात्मा अपना, उसकी सम्यक्श्रद्धा, ज्ञान और आचरणरूपी निर्विकल्प शान्ति, उसके रस से वीतरागरस से परिपूर्ण भरा हुआ भगवान आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? वह जो परिपूर्ण **कलश की तरह भरे हुए उसमें से जो केवलज्ञानादि व्यक्तिरूप कार्यसमयसार, उसका उत्पन्न करनेवाला जो शुद्धोपयोगरूप कारणसमयसार,...** देखो! यह कारणसमयसार त्रिकाली। **केवलज्ञानादि व्यक्तिरूप कार्यसमयसार,...** केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य ऐसी व्यक्ति अर्थात् प्रगटरूप कार्यसमयसार पर्याय। **उसका उत्पन्न करनेवाला जो शुद्धोपयोगरूप कारणसमयसार,...** यहाँ पर्याय वर्तमान लेना। शुद्धोपयोगरूप कारणसमयसार वर्तमान। वह कारणसमयसार त्रिकाल। भरित अवस्था वह वास्तव में कारणसमयसार त्रिकाल और यह शुद्धोपयोगरूप कारणसमयसार, वह पर्याय। ऐसी बातें!

कल समयसार का लेख आया है, नहीं? वाँचा न? उसमें आया था न? वीर

(पत्रिका) में। समयसार का नहीं आया था? रात्रि में वाँचा था। दिन में वाँचा था, नहीं? समयसार। दोपहर में वाँचा था। समयसार का किसी ने लेख लिखा है। परन्तु उसने ऐसा (लिखा है कि) निश्चय और व्यवहार दोनों। परन्तु निश्चय और व्यवहार कब? जब अपने आत्मा के आनन्द का अनुभव हो, वीतरागदशा प्रगट हो, व्यवहार का निषेध करके, पश्चात् जो व्यवहार आता है तो उसमें व्यवहार है। राग आता है। निश्चयपूर्वक व्यवहार है। इसके बिना व्यवहार होता नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग तो देखो भाई! क्या कहा?

वीतराग परम आह्लादरूप सुख-अमृत, उसके रस के स्वादकर पूर्ण कलश की तरह भरे हुए... यह आत्मा वस्तु। उसमें से **केवलज्ञानादि व्यक्तिरूप कार्यसमयसार,...** प्रगट होता है। हें?

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में नहीं आता? इतनी सादी भाषा है। इसमें कहाँ बड़ी...

यहाँ कहते हैं कि यह बहुत विशेष... यहाँ तो कहते हैं, तीन बोल लिये। एक तो निर्दोष परमात्मा पूर्ण आनन्द से भरपूर वस्तु। सब देह में विराजमान भगवान। एक बात। दूसरी बात, उसमें से कार्यसमयसार जो प्रगट होता है केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि, उसका कारण कौन? उसका कारण शुद्धोपयोगरूपी कारणसमयसार—वीतरागी पर्याय। समझ में आया? जो पहले कहा था न? **परमात्मा उसका सम्यक् श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप...** यह तीन। यह कारणसमयसार वर्तमान पर्याय। शुद्धोपयोगरूपी कारणसमयसार केवलज्ञान की उत्पत्ति का कारण है। व्यवहार कारण नहीं, ऐसा इनकार करते हैं यहाँ तो। लोग यह विरोध करते हैं न?

मुमुक्षु : व्यवहार करते-करते होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी होता नहीं व्यवहार करते हुए। लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आवे? ऐई! व्यवहार छोड़ते हुए। भगवान ने कहा कि जब अध्यवसाय पर की एकताबुद्धि का छुड़ाते हैं तो पर का आश्रय व्यवहार सब छुड़ाते हैं, छोड़। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! वीतरागमार्ग कोई अलौकिक बात है। जैनदर्शन कोई अलौकिक

चीज़ है। आहाहा! वाडा में (आये), उन्हें भी सुनने को मिला नहीं। पोपटभाई! आहाहा! ऐसी बात।

यहाँ तीन बातें की। एक तो प्रभु! तू निर्दोष परमात्मा है न! अनादि, हों! आहाहा! वीतरागमूर्ति निर्दोष परमात्मा। उसमें तो राग या विकल्प और संसार का उदय उसमें है ही नहीं। आहाहा! ऐसे परमात्मा के शुद्धोपयोगरूपी कारणसमयसार से कार्यसमयसार उत्पन्न होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय, वह शुद्ध कारणसमयसार, वह पर्याय है। शुद्धोपयोग से उत्पन्न होता है। देखो! आहाहा! शुभ से नहीं। व्यवहाररत्नत्रय का भाव बीच में आता है; है, परन्तु उससे केवलज्ञान उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह विवाद बड़ा इन पाँच का यहाँ के नाम से। एक उपादान—निमित्त। निमित्त से उपादान में होता है, यह विवाद। व्यवहार से निश्चय होता है, यह विवाद और क्रमबद्ध होता है, इसके विरुद्ध अक्रम, यह विवाद। पाँच का विरोध है उन्हें।

मुमुक्षु : आप एक भी स्वीकार नहीं करते।

पूज्य गुरुदेवश्री : उनकी एक भी बात सच्ची नहीं है।

अपने स्वभाव की शक्तिरूप भगवान पूर्णानन्द प्रभु, शक्तिरूप—सामर्थ्यरूप—स्वभावरूप। आहाहा! जैसे पीपर की चौंसठ पहरी चरपराहट है, उसी प्रकार भगवान की चौंसठ पहरी शक्ति, अनन्त गुण, प्रत्येक गुण की चौंसठ पहरी शक्तिवन्त भगवान है। वह तो निर्दोष है। आहाहा! उस निर्दोष परमात्मा की सम्यक्श्रद्धा, ज्ञान, आचरण, वह शुद्धोपयोग। उस शुद्धोपयोगरूपी पर्याय की कारणसमयसार, उस कारणसमयसार का द्रव्य कारण, उस कारणसमयसार में से कार्यसमयसार की उत्पत्ति होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतरागी पर्याय... वीतरागी पर्याय षट्कारक के परिणमन से उत्पन्न हुई है। शुद्धोपयोग कारणसमयसार, वह भी एक वर्तमान पर्याय, उस द्रव्य को निमित्त कहा, परन्तु वास्तव में तो शुद्धपर्याय अपने षट्कारक की परिणति से उत्पन्न हुई

है और उससे षट्कारक से केवलज्ञान की उत्पत्ति उससे होती है, ऐसा कहने में आता है। बाकी केवलज्ञान की उत्पत्ति भी अपने षट्कारक के परिणमन से उत्पन्न होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : बराबर है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बराबर है, यह तो व्यवहार से बात की है न। व्यवहार से बात की है न! उपाय से उपेय, यह सिद्ध करना है न! समझ में आया ? आहाहा! वरना तो केवलज्ञान आदि उत्पन्न होते हैं, वे अपने षट्कारक की परिणति से स्वतन्त्र उत्पन्न होते हैं। मोक्ष का मार्ग है, उससे उत्पन्न हुआ, यह भी व्यवहार। पूर्व पर्याय थी, उसका अभाव होकर हुआ, इतना बतलाने के लिये कहा है। आहाहा! समझ में आया ? यह तो प्रभु! वीतरागमार्ग की कथा है, भाई! यह कोई ऐरे-गैरे की कल्पना नहीं है। आहाहा! यह तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव परमात्मा की यह वाणी है। आहाहा! समझ में आया ? ओहोहो!

प्रभु! एक बार सुन तो सही। तेरी निर्दोष परमात्मदशा तुझे जँचती है ? तू पूर्ण निर्दोष परमात्मा है, ऐसी श्रद्धा तुझे बैठती है ? आहाहा! तू पूर्ण परमात्मा है, ऐसा तेरे ज्ञान में ज्ञात होता है ? और उसमें रमणता, वह चारित्र और उसके कारण से केवलज्ञान कार्यसमयसार उत्पन्न होता है। आहाहा! समझ में आया ? इतना कहकर व्यवहार विकल्प से शुभराग से मोक्ष होता है, केवल (ज्ञान) होता है, उसका निषेध करते हैं। बाकी तो वास्तव में तो शुद्धोपयोगीरूपी कारणसमयसार से भी केवलज्ञान उत्पन्न होता है, यह भी व्यवहार है। परन्तु उस व्यवहार से उत्पन्न नहीं होता, इतना निषेध करने के लिये निश्चय से उत्पन्न होता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! अरे भगवान! आहाहा! 'जिनादेश जाता' यह तो जिनेन्द्र की आज्ञा से उत्पन्न हुआ मार्ग है। आहाहा! समझ में आया ? 'जिनेन्द्रा विख्याता' जिनेन्द्र से प्रसिद्ध हुआ है, भाई! आहाहा! समझ में आया ? कायर को तो कठिन पड़े, ऐसा लगे। आहाहा! क्या हो, भाई!

प्रभु! तू निर्दोषपरमात्मा है न! तुझमें सदोष उदयभाव तीन काल में है नहीं। आहाहा! सदोष भाव—व्यवहाररत्नत्रय, वह सदोष है। आहाहा! वह तेरी चीज़ में है

नहीं। तू तो निर्दोष वीतरागी मूर्ति है न, नाथ! आहाहा! तुझे कारण बनाकर जो शुद्धोपयोग हुआ, वह शुद्धोपयोग, वह कारणसमयसार है—मोक्ष का मार्ग। आहाहा! उससे मोक्ष अर्थात् केवलज्ञान उत्पन्न होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या शैली है! निश्चय में तो, परमार्थ निश्चय में तो समय-समय की जो विकारी पर्याय होती है, वह भी अपने षट्कारक से उत्पन्न होती है। आहाहा! जिसे पर निमित्त की अपेक्षा है नहीं, तो फिर निर्विकारी केवलज्ञान, आनन्द अनन्त प्रगट हो, वह भी वर्तमान पर्याय षट्कारक से उत्पन्न होती है। आहाहा! परन्तु यहाँ तो व्यवहार से उत्पन्न नहीं होती, यह बतलाने के लिये निश्चय से—शुद्धोपयोग से उत्पन्न होती है, इतना बतलाना है। आहाहा! अरे, भगवान! ऐसा समय कहाँ से (मिले), भाई? आहाहा! फिर झगड़ा उत्पन्न करे। कोई शिक्षा दे कि सोनगढ़वालों को भी कुछ बदलना पड़ेगा। क्या बदले, बापू? सत्य है, उसमें दूसरा क्या हो? हें! व्यवहार से होता है, ऐसा कहो, निमित्त से होता है, ऐसा कहो, कथंचित् निमित्त से कहीं होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी नहीं होता तीन काल में। अभी तो यहाँ निश्चय उपयोग से भी केवलज्ञान होता है, यह कहना भी व्यवहार है। आहाहा! चेतनजी! ऐसी बात है, भगवान! आहाहा! हें? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : पक्षपात हो जाये ऐसा नहीं करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पक्षपात ही है। अपने स्वरूप का पक्ष करना, दूसरा पक्ष छोड़ देना, यह न्याय है। अपना स्वपक्ष करना, वही न्याय है, वही सत्य है, वही सरल है, वही परमार्थ है। आहाहा! नन्दूमलजी! दुनिया मानो, न मानो, बापू! मार्ग तो यह है। चाहे जो कहो, हमको कुछ घात हो, ऐसा नहीं है। वे कहे कि दिगम्बर नहीं, ऐसे नहीं। चाहे जो कहो। अभी के प्रचलित दिगम्बर की श्रद्धा नहीं, यह बात सच्ची है। सनातन दिगम्बर की शैली है, वह है। आहाहा! अरे प्रभु! तू सुन न, भाई! एक बार पक्षपात छोड़कर सुन तो सही कि क्या मार्ग है, भाई! आहाहा! बहुत अच्छी गाथा। चेतनजी कहते हैं, एक-एक गाथा उत्कृष्ट आती है। नहीं? हें? ऐसी गाथा है। आहाहा! वे राख

निकाले और भभूति बतावे। सब कल्पित गहल-पागल हैं। आहाहा! यह तो भभूति वीतराग में से निकली हुई वाणी, आहाहा! और वीतरागभाव में से निकला हुआ धर्म स्वभाव। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अरे प्रभु! तूने कभी पर का ध्यान छोड़कर स्व का चित्त में... आहाहा! आया है न अन्त में? **कभी निश्चल चित्तकर निजरूप को नहीं ध्यावते हैं।** प्रभु! आहाहा! विकल्प का जाल छोड़कर, आहाहा! अपने निजस्वरूप सन्मुख तेरा ध्यान जाता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भरपूर जो द्रव्य, उसमें से केवलज्ञानादि व्यक्तिरूप कार्यसमयसार, वह पर्याय है, हों! केवलज्ञान, केवलदर्शन वह (पर्याय है)। **उसका उत्पन्न करनेवाला जो शुद्धोपयोगरूप कारणसमयसार,...** आहाहा! कितनी स्पष्टता की है! कहो, इसमें पक्ष किसका करना? शुद्धोपयोगरूपी समयसार से केवलज्ञान होता है, ऐसा कहा। अब यह पक्ष है या वस्तु की स्थिति? आहाहा! हें?

मुमुक्षु : झगड़ा हो, ऐसा नहीं कहना।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया झगड़ा करे तो उसके कारण से, परन्तु वस्तु तो यह है। यह तो मोक्षमार्गप्रकाशक में नहीं कहा? ऐसी कौन सी बात है कि जगत को सबको जँच जाये? शराब पीनेवाले को शराब की बात करें तो खराब लगे, वह तो उसके कारण से है। मोक्षमार्गप्रकाशक में आया है। आहाहा! मार्ग तो यह है। ऐसा कहना, उसमें झगड़ा कहाँ आया? आहाहा!

उसकी भावना से रहित संसारीजीव... आहाहा! देखा! भगवान निर्दोष परमात्मा से भरपूर तत्त्व, उसका कार्य जो समयसार केवलज्ञान, उसे उत्पन्न करनेवाला शुद्धोपयोगरूपी समयसार, उसकी भावना रहित जीव। आहाहा! **उसकी भावना से रहित संसारीजीव विषयों के अनुरागी पाँच इन्द्रियों के लोलुपी भव भव में नाश पाते हैं।** आहाहा! एक-एक इन्द्रिय के विषयवाला नाश पाता है तो पाँच इन्द्रियवाला भव-भव में (नाश पाता है)। पंचेन्द्रिय की ओर की उसकी प्रीति है। अणीन्द्रिय भगवान के प्रति प्रीति नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसा है। **संसारी जीव विषयों के अनुरागी...** इस ओर की—चैतन्यद्रव्य की ओर की भावना है नहीं तो विषय के ओर के अनुराग में वहाँ

भावना है। आहाहा! **पाँच इन्द्रियों के लोलुपी भव-भव में नाश पाते हैं।** देखा, यहाँ पाँचों इन्द्रियाँ ली हैं एक साथ। आहाहा!

ऐसा जानकर इन विषयों में विवेकी कैसे राग को प्राप्त होवें ? आहाहा! प्रीति और रुचि से उसे कैसे भाव आते हैं ? आहाहा! **विवेकी कैसे राग को प्राप्त होवें ?** आहाहा! **कभी विषयाभिलाषी नहीं होते।** विषय का प्रेम और रुचि—अभिलाषा कभी नहीं करता। आहाहा! समझ में आया ? अभिलाषा नहीं। आसक्ति हो, वह अलग बात है, परन्तु उसमें रुचि नहीं। समझ में आया ? आहाहा! विषय की अभिलाषा नहीं कि यह हो तो मुझे ठीक पड़ता है, ऐसा ज्ञानी को होता नहीं। आहाहा!

पतंगादिक एक-एक विषय में लीन हुए नष्ट हो जाते हैं, लेकिन जो पाँच इन्द्रियों के विषयों में मोहित हैं, वे वीतराग चिदानन्दस्वभाव परमात्मतत्त्व उसको न सेवते हुए,... आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषय के सेवन में पड़े हैं मूढ़, आहाहा! वह अपना वीतराग चिदानन्दस्वभाव परमात्मतत्त्व को सेवन नहीं करता। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द के नाथ की सेवा नहीं करते—उसमें एकाग्र नहीं होते। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा मार्ग है, भाई! फिर चाहे जो कहो, मानो, उससे कहीं वीतरागमार्ग है, वह कहीं बदल नहीं जाता। आहाहा! निश्चय का पक्ष न करो, व्यवहार का भी पक्ष करो। ऐसा ? चेतनजी! उपादान से ही होता है, ऐसा पक्ष न करो, निमित्त से भी होता है। अरे प्रभु! यह झूठ है। आहाहा! भाई! तुझे सत्य तो यह है न, प्रभु! तेरा पंथ और तेरी स्थिति—दशा ऐसी है। उससे असत्य कहे तो पक्ष छोड़ दिया, ऐसा कहा जाये ? आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! यह तेरी जवानी झोला खाये, बापू! जवानी चली जायेगी। वृद्धावस्था आयेगी, मृत्यु के सन्मुख होगा, भाई! किसमें तूने प्रीति की भाई ? तुझे कहाँ जाना है ? आहाहा! समझ में आया ? यह शरीर और इन सबकी राख होगी, भाई! श्मशान की राख है, यह तो सब राख। यहाँ अग्नि की चिंगारी सुलगेगी। हें, आहाहा! हड... हड... हड... अग्नि सुलगेगी, बापू! वह कहाँ आत्मा है, वह तो जड़ है, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : आधे घण्टे में जला दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो है न, देखा है, खबर है। आहाहा! सुन्दर शरीर हो और अकस्मात देह छूटी हो हार्टफेल होकर। शरीर तो अच्छा हो, उसे जलाना हो, उसे सख्त अन्तड़ियों में जलाने में भी देरी लगे। लठ्ठ जैसा शरीर। अरे प्रभु! यह तो माँस है न, भाई! यह तो हड्डियाँ जगत की चीज़ जड़ है न! आहाहा! जड़ तो बिखर जायेगा, प्रभु नहीं बिखरेगा। प्रभु तो आनन्द का कन्द निर्दोष परमात्मा है। आहाहा!

वीतराग चिदानन्दस्वभाव परमात्मतत्त्व उसको न सेवते हुए,... देखो! **न जानते हुए, और न भावते हुए,...** उसकी भावना करते नहीं। आहाहा! **अज्ञानी जीव मिथ्यामार्ग को वांछते,...** हैं। देखो! जो मिथ्यामार्ग है, सम्यक्मार्ग नहीं, उसे चाहते हैं। आहाहा! भगवान और भगवान की वाणी, देव, गुरु सबको इन्द्रिय में लिया है, (समयसार) ३१ गाथा में। यह जड़ इन्द्रिय है और भावेन्द्रिय एक-एक विषय को जाननेवाली भावेन्द्रिय है और उसका विषय भगवान की वाणी, स्त्री, परिवार सबको इन्द्रिय कहा गया है, ३१ गाथा में। तीनों मिलकर इन्द्रिय है। आहाहा! भावेन्द्रिय एक-एक विषय को जाने, वह क्षयोपशम का अंश; यह जड़ इन्द्रिय और विषय, इन तीनों को इन्द्रिय कहा गया है। आहाहा! भगवान और भगवान की वाणी को कुन्दकुन्दाचार्य ने इन्द्रिय कहा है। उसे जीतना है, उसका लक्ष्य छोड़ना है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जीतने का अर्थ (यह कि) उसका लक्ष्य छोड़ना है। उससे आत्मा में कुछ लाभ नहीं होता। आहाहा! यह बात कठिन पड़ती है। उस वाणी को परस्त्री कहते हैं। परस्त्री वाणी को नहीं, बापू! तुझे खबर नहीं। जैसे स्त्री पर है, वैसे वाणी पर है, ऐसा कहना है। अरे! इसका अर्थ ऐसा करे। क्या करना इसमें? करो, बापू! वस्तु है, वह कहीं बदलेगी नहीं। हें! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **मिथ्यामार्ग को वांछते, कुमार्ग की रुचि रखते हुए...** जो मार्ग नहीं, उसकी रुचि करते हैं। आहाहा! **नरकादि गति में घानी में पिलना,...** आहाहा! वह दुःख की बात की। आहाहा! प्रभु! तुझे इतना अधिक दुःख हुआ, रात्रि में नहीं कहा था? वादिराज मुनि। वादिराज मुनि कहते हैं, मुनि हैं, हों! भावलिंगी। शरीर में कोढ़ था, कोढ़। आहाहा! भगवान से प्रार्थना करते हैं, प्रभु! हम तुम्हारी भक्ति करते हैं, प्रभु!

तुम जहाँ आओ, वहाँ सोने की नगरी हो जाती है। आहाहा! प्रभु! आपको हम पधरावे और इस शरीर में रोग रहे? आहाहा! द्रव्यरोग की बात है, हों! भावरोग तो (है नहीं)। प्रभु! तेरी जन्म की पधरामणी हो, वहाँ नगरी स्वर्ण की हो जाती है, स्वर्ण के गढ़ और रत्न के कंगूरे, प्रभु! आपको यहाँ पधरावे और इस नगरी में यह रोग रहे? ऐसा करके, आहाहा! भक्ति को उछाला है न! प्रभु! यह राजा ऐसा कहेंगे कि इन मुनि को कोढ़ है और मनुष्य (भक्त) कह आया है कि मेरे महाराज को कोढ़ नहीं। प्रभु! अब क्या होगा? आहाहा! कोढ़ मिट गया। भावरोग तो मिटा है, परन्तु द्रव्यरोग मिट गया। आहाहा! समझ में आया? वे मुनिराज ऐसा कहते हैं, प्रभु! मैं भूतकाल के दुःख को याद करता हूँ तो आयुध लगते हैं। आयुध जैसे शस्त्र की चोट लगे, वैसे चोट लगती है। इतने दुःख मैंने सहन किये। उस दुःख की व्याख्या करेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, पौष कृष्ण ४, रविवार
दिनांक-०९-०१-१९७७, गाथा - ११२, ११३, ११४ प्रवचन-१८१

परमात्मप्रकाश, दूसरे अधिकार की ११२ गाथा। यहाँ कहते हैं कि **पतंगादिक एक-एक विषय में लीन हुए...** पाँच दृष्टान्त दिये न पाँच विषय के? वे **पतंगादिक एक-एक विषय में लीन हुए नष्ट हो जाते हैं,...** पाँच दृष्टान्त दिये। **लेकिन जो पाँच इन्द्रियों के विषयों में मोहित हैं,...** आहाहा! **वे वीतराग चिदानन्दस्वभाव परमात्मतत्त्व उसको न सेवते हुए,...** आहाहा! जो परमात्मत्त्व वीतरागी आनन्दस्वरूप चिदानन्दस्वभाव, उसकी दृष्टि न करके, उसे सेवन न करके। सेवन न करके पाँच इन्द्रिय के विषय को सेवन करते हैं।

अपना स्वभाव **वीतराग चिदानन्दस्वभाव परमात्मतत्त्व उसको न सेवते हुए,...** अणीन्द्रिय अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप ऐसा परमात्मतत्त्व अपनी वस्तु सन्मुख की दृष्टि नहीं करते हुए, उसकी सेवा नहीं करते हुए, **न जानते हुए...** मैं वीतरागी सुखस्वरूप चिदानन्द आत्मा हूँ, ऐसा जिसे ज्ञान नहीं और नहीं मानते हुए, मानते नहीं कि मैं ऐसा हूँ। मैं तो राग हूँ और पुण्य हूँ और पाँच इन्द्रियों के विषयों में सुख है, ऐसी बुद्धि है। वह अज्ञानी चार गति में भटकनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? **और न भावते हुए...** वीतरागी चिदानन्द परमात्मस्वरूप अपना, वह कैसे बैठे इसे? परमात्मस्वरूप अपना है, उसे मानते नहीं, उसे भाते नहीं, उसकी एकाग्रता होकर। आहाहा! पर से चित्त हटाकर निज आनन्दस्वरूप भगवान में चित्त लगाते नहीं—एकाग्रता नहीं करते। आहाहा! वे **अज्ञानी जीव मिथ्यामार्ग को वांछते,...** हैं। आहाहा! वह पाँच इन्द्रियों के विषयों में सुखबुद्धि वह मिथ्यामार्ग है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात, भाई! भगवान की वाणी सुने, भगवान को देखे, वह भी इन्द्रिय का विषय है। आहाहा! वह इन्द्रिय है। उसमें जिसकी एकताबुद्धि में सुख मानते हैं। आहाहा! समझ में आया? वे **अज्ञानी जीव मिथ्यामार्ग को वांछते,...** हैं। आहाहा! अन्तर्मुख जाना, वह अन्तर का मार्ग है, उसे छोड़कर बहिर में मार्ग है, ऐसे कुमार्ग को मानते हैं, ऐसा कहते हैं जरा। समझ में आया? शुभराग में भी मजा है, वह माननेवाले कुमार्ग में जाते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

वीतराग चिदानन्दस्वभाव को छोड़कर रागादिभाव जो है, उसमें मिथ्यामार्ग को चाहते हैं, वे **कुमार्ग की रुचि रखते हुए...** आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषयों में जो राग उत्पन्न होता है, उस राग में रुचि है, वह कुमार्ग की रुचि है। आहाहा! **नरकादि गति में घानी में पिलना,...** आहाहा! वह नरकगति में जाते हैं, वहाँ परमाधानी घानी में पीलते हैं। आहाहा! समझ में आया? परसन्मुख के विषय में राग उत्पन्न होता है और राग में जिसकी रुचि है, उसे चिदानन्द वीतरागस्वभाव के प्रति अरुचि है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! मिथ्यामार्ग की कुमार्ग की रुचि रखते हैं। आहाहा! वह राग और विषयवासना सब कुमार्ग है। आहाहा! वह चिदानन्द वीतरागस्वभाव के सन्मुख ढलने का वह मार्ग नहीं। वह तो बन्ध की ओर झुकने का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया?

घानी में पिलना,... आहाहा! **करोंत से विदरना,...** करवत से विदारे, टुकड़े करे। आहाहा! नरक में, तिर्यंच में भी ऐसा होता है न, काट डाले, टुकड़े करे। आहाहा! कहा नहीं था एक बार नारणभाई का? नारणभाई, कोई पारसी था, उससे मिलने गये। वहाँ सूकर को—सूकर को लोहे के पतले सरिया से पैर बाँधे पैर। आहाहा! और अग्नि की भट्टी थी, उसमें सेंकने के लिये डाल दिया। आहाहा! परन्तु वह तो पारसी, इसलिए यह नारणभाई तो क्या कह सके? पोस्टमास्टर था। आहाहा! इसी प्रकार जिसे आत्मा वीतरागी चिदानन्द प्रभु की रुचि नहीं, सन्मुखता नहीं, उससे विमुख मार्ग में रुचि में पड़े हैं, उन्हें नरकादि गति में करवत से विदारण करना, घानी में पिलना आदि दुःख सहन करने पड़ते हैं। आहाहा!

और शूली पर चढ़ना... लोहे की शूली हो, उसके ऊपर चढ़ावे। आहाहा! परमाधामी ऐसे लटकावे। आहाहा! एक पतली वस्तु होती है, शरीर पूरा निकल जाये, अन्दर घुस जाये। ऐसी वेदना अनन्त बार सहन की है, आत्मा के अतीन्द्रिय वीतरागी आनन्द की रुचि बिना। समझ में आया? पाँच इन्द्रिय के विषय में रुचि / प्रेम है, वह कुमार्ग में है। आहाहा! अणीन्द्रिय ऐसा जो भगवान आत्मा की ओर का जिसे झुकाव नहीं, वह स्वभाव चैतन्य आनन्द प्रभु का जिसे प्रेम नहीं, रुचि नहीं, श्रद्धा नहीं, जानना नहीं, भावना नहीं... आहाहा! वह पर में श्रद्धा और जानना रखता है। ऐसा मार्ग है,

भाई! **इत्यादि अनेक दुःखों को देहादिक की प्रीति से भोगते हैं।** आहाहा! देह का प्रेम, राग का प्रेम, स्त्री-कुटुम्ब का प्रेम, आहाहा! धन्धा आदि करने का प्रेम। यह देहादि, आदि शब्द है न? आहाहा! **देहादिक की प्रीति से भोगते हैं।** आहाहा! देह के प्रेम से और स्वरूप के अप्रेम से। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु के अप्रेम से; देह, विषयादि के प्रेम से। आहाहा! वह दुःख भोगते हैं।

ये अज्ञानी जीव वीतरागनिर्विकल्प परमसमाधि से पराङ्मुख हैं,... आहाहा! अपना स्वभाव वीतराग निर्विकल्प अभेद परमशान्ति, वह अपना स्वभाव है। आहाहा! उससे पराङ्मुख है, अज्ञानी उससे विमुख है। आहाहा! बाहर के पाँच इन्द्रिय के विषयों की ओर के प्रेम में पड़े, आहाहा! उन्हें यह देहादि की प्रीति से दुःख भोगने पड़ते हैं। आहाहा! **जिनके चित्त चंचल हैं,...** आहाहा! चित्तचंचल अर्थात् पर की ओर, विकल्प की ओर में झुकाव है। आहाहा! समझ में आया? एकदम परमात्मप्रकाश ग्रन्थ है न! तो परमात्मस्वरूप ही अपना है। उसका सामर्थ्य—भगवान प्रभु आत्मा का सामर्थ्य ही परमात्मस्वरूप है। अतीन्द्रिय आनन्द, चिदानन्द वीतरागी निर्विकल्प आनन्द, वह अपना स्वभाव त्रिकालीस्वरूप ही वह है। आहाहा! उस ओर की अतीन्द्रिय आनन्द की श्रद्धा, ज्ञान और भावना बिना इन्द्रियों की ओर के विषयों की श्रद्धा, भावना और जानने से इस देह की—पर की प्रीति है। समझ में आया? उससे चार गति में दुःख भोगने पड़ते हैं। आहाहा!

ब्रह्मदत्त ७०० वर्ष चक्रवर्ती पद में रहा। सात सौ वर्ष में जन्म से तो कहीं चक्रवर्ती पद तो नहीं होता, बाद में मिला। सात सौ वर्ष रहा। आहाहा! हीरा के ढोलिया। ढोलिया को क्या कहते हैं? हें? पलंग। हीरा के पलंग। सोना, चाँदी की ऐसे हीरा के रतन से जड़ी हुई लकड़ी हाथ में। समझे? उन ७०० वर्ष के जितने श्वास होते हैं, उसके एक-एक श्वास का दुःख सातवें नरक में ग्यारह लाख पल्योपम का दुःख (भोगता है)। ओहोहो! गजब बात, भाई! एक श्वास का यहाँ कल्पना का सुख, एक श्वास, हों! उसके फलरूप से ग्यारह लाख पल्योपम का एक श्वास में इतना दुःख उसे वहाँ। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : तीव्र रुचि हुई हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीव्र हुई न, रुचि तीव्र हुई उसमें। आहाहा! राग में, पुण्य और पाप में रुचि उग्र हो गयी। आहाहा! पुण्य के फल में। सामग्री चक्रवर्ती पद, छियानवें हजार स्त्रियाँ। आहाहा! छियानवें करोड़ सैनिक, उनका स्वामी मरकर सातवें नरक में गया। आहाहा! सातवें नरक में गया। अपनी चीज़ की सम्हाल नहीं की और अपने अतिरिक्त दूसरी चीज़ की सम्हाल में रुक गया। आहाहा!

मुमुक्षु : पर में रुक जाये, मन्दकषाय में रुक जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्दकषाय में रुक जाये, वह कुमार्ग है। यह तो आया था न, मोक्षमार्गप्रकाशक में, कषाय की मन्दता के कार्य में प्रवर्ते, परन्तु निश्चय का भान न करे तो वह भी चार गति में भटकता है। आहाहा! समझ में आया? मन्दकषाय भी विषय है, एक राग। आहाहा! भगवान आत्मा का स्वरूप तो वीतराग आनन्दस्वरूप प्रभु है अन्दर। आहाहा! ओहोहो! कहो, ऐसे दुःख। एक श्वास में ग्यारह लाख पल्योपम। एक पल्योपम के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष (जाते हैं)। एक पल्योपम के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष, ऐसे-ऐसे ग्यारह लाख पल्योपम। एक श्वास में विषय की गृद्धि। आहाहा! परविषय, ऐसा कहना है न। स्वविषय छोड़कर परविषय के प्रेम में पड़ा तो वह चार गति के दुःख में नरक में विदारण, शूली पर चढ़ना। आहाहा! बहुत ही गृद्धि, विषय के प्रेम में रस में इतनी गृद्धि। आहाहा! मानो सब सर्वस्व उसमें आ जाता हो, पाँच इन्द्रिय के भोग में। आहाहा! उस विषय में स्त्री के साथ रमते हुए, बालक-पुत्र के साथ रमते हुए दूसरी क्रीड़ायें, यह दूसरी क्रीड़ायें, सब क्रीड़ायें पर की हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! पर की क्रीड़ा में अपनी रमणता भूल गया। ऐसा मार्ग है।

ये अज्ञानी जीव वीतरागनिर्विकल्प... परम शान्ति, परम शान्ति। परमात्मा परम शान्ति। आहाहा शान्ति का सरोवर, शान्ति का समुद्र ऐसा जो भगवान आत्मा शान्त... शान्त सुखरूप और शान्तरस। आहाहा! उससे पराङ्मुख होकर **जिनके चित्त चंचल हैं,...** आहाहा! **कभी निश्चल चित्तकर निजरूप को नहीं ध्यावते हैं।** आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप का कभी ध्यान, लीनता, उस ओर का झुकाव कभी करते नहीं। समझ में आया? **निश्चल चित्तकर...** निजस्वरूप को कभी ध्याते नहीं। निजस्वरूप

सन्मुख कभी झुकाव करते नहीं। आहाहा! परसन्मुख के झुकाव में पूरी जिन्दगी मस्तरूप से पागलरूप से व्यतीत की, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

और जो पुरुष स्नेह से रहित हैं,... आहाहा! अपने अतिरिक्त पर, सब रागादि परपदार्थ में प्रेम रहित है, वे **वीतरागनिर्विकल्प समाधि में लीन हैं,...** आहाहा! सम्यग्दर्शन भी वीतराग निर्विकल्प की श्रद्धा है, समाधि है। आहाहा! वीतराग निर्विकल्प शान्ति में लीन है, वे ही जीव **लीलामात्र में संसार को तैर जाते हैं।** आनन्द... आनन्द से संसार को पार कर जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? क्या करना परन्तु इसमें? आहाहा! यह तो कहते हैं, प्रभु! तेरी चीज़ वीतराग आनन्द से, शान्त रसेन्द्र शान्तरस का इन्द्र प्रभु तू तो है। आहाहा! उस ओर चित्त की चंचलता रोककर अन्दर कभी जाता नहीं। स्वरूप सन्मुख का ध्यान कभी करता नहीं। आहाहा! वह करना। सेठ!

मुमुक्षु : साधन मिले तब हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : साधन किसका? अन्तर साधन है न! आनन्द नाम का करण गुण है उसमें। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द नाम का करण—साधन गुण है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा में करण नाम का, साधन नाम का एक अनादि गुण है। ओहोहो! उस ओर का झुकाव, प्रेम, रुचि कभी की नहीं और बाहर के प्रेम में फँसकर भ्रष्ट हो गया। आहाहा! ऐसे एक के बाद एक काम आवे कि उसे किये बिना छुटकारा न हो, जिन्दगी चली जाये, हो गया। लड़के छोटे हैं, बड़े करना है, बड़े हों तो विवाह करना है। कन्या कुँवारी पाँच-सात हों, उनका विवाह करना है, एक के बाद एक। ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली जाती है। अररर!

मुमुक्षु : जिम्मेदारी है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी जिम्मेदारी नहीं।

मुमुक्षु : घर में स्त्री रहने न दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्त्री कहाँ इसकी थी, वह रहने न दे। वह तो कोई है, पर है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। जिम्मेदारी में ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली जाती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! लड़का बड़ा हो तो उसका विवाह करना, और उसे लड़के हुए। वह कहा

नहीं ? मनुष्य था, तब तक दो पैर थे, स्त्री से विवाह किया, तब चार पैरवाला ढोर हुआ। भाई ने नहीं लिखा ? दुर्घटना। हुकमचन्दजी (भारिल्ल ने लिखा है) । भगवान ने विवाह नहीं किया था। स्त्री हुई तो दुर्घटना, स्त्री हुई तो दुर्घटना (घटी) । आहाहा ! एक के बाद एक विषय और भोग और उसे सम्हालना और उसके पुत्र... आहाहा ! बड़ी दुर्घटना खड़ी हुई। आहाहा ! हें !

मुमुक्षु : दुर्घटना उत्पन्न हो, उसे मिटाना किस प्रकार ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उस समय ही इसे रुचि छोड़ देना। उसका होना होगा वह होगा, हमारे क्या है यहाँ ? हम तो हमारा करते हैं या तेरा करें ? आहाहा ! हें ! आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि जो अपना वीतरागी निर्विकल्पस्वरूप है, उसमें ध्यान करने से लीलामात्र में आनन्द... आनन्द से संसार को पार हो जाता है। आहाहा !

मुमुक्षु : चारित्र पालना तो बहुत कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले अभी आत्मा के दर्शन तो करे, चारित्र बाद में। समझ में आया ? आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसकी निर्विकल्प प्रतीति और ज्ञान तो पहले करे। चारित्र धर्म है। धर्म का मूल तो सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन बिना चारित्र कहाँ से आया ? लोगों को यह कठिन पड़ता है न !

मुमुक्षु : व्रत ले, वह चारित्र नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्रत, कौन सा व्रत था ? सम्यग्दर्शन बिना व्रत कैसे ? बेगारी है सब राग की। आहाहा ! बालव्रत और बालतप है। आहाहा ! भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु वीतराग सहजानन्द शान्ति का पिण्ड प्रभु के प्रेम और रुचि बिना यह सब है, वह सब वृथा बालव्रत और बालतप है। आहाहा ! महाप्रभु की रुचि नहीं हुई, महाप्रभु स्वयं है। आहाहा !

मुमुक्षु : महाप्रभु तो वैष्णव में होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ आत्मा में है। यह वे कहते थे, उमराला में न समझे न वे। सहजानन्दी शुद्धस्वरूपी बोले न ? तब जीवाभाई की माँ वहाँ थीं, वह कहे, यह सहजानन्दी अपने कहाँ से आया ? सहजानन्द तो स्वामी नारायण को होता है। वह ऐसा कहे। परन्तु

यह सहजानन्दस्वरूप ही आत्मा है। वह सहजानन्द तो जगत का एक व्यक्ति था। आहाहा! समझ में आया? यह आत्मा सहजानन्दस्वरूपी है।

वह तो अभी दो-तीन दिन पहले कहा नहीं था? सज्झाय। सज्झाय कही थी न? 'सहजानन्दी रे आत्मा...' सहजानन्दी आत्मा स्वयं। भूल गये भाषा। 'सूतो कांई निश्चिन्त रे, मोह तणा रे रणिया भमे' बड़ा मोह का लेनदार भरता है सिर पर। आहाहा! 'जाग जाग मतिवन्त रे' यह तो दुकान पर वाँचा हुआ है छोटी उम्र में, १८-१९ वर्ष। आहाहा! कैसी एक सज्झाय है न! जयन्तीभाई! चार सज्झायमाला आती है श्वेताम्बर में। वह यहाँ है, अपने चारों हैं। तब दुकान पर थी। 'सहजानन्दी रे आत्मा, सूतो कांई निश्चिन्त रे।' निश्चिन्त (होकर) सो रहा है, स्त्री-पुत्र सम्हालकर। मर गया है। 'मोह तणा रे रणिया भमे' मोह के लेनदार खड़े हैं बड़े महापापी। आहाहा! 'जाग जाग मतिवन्त रे, लूटे जगतना जंत रे...' स्त्री, पुत्र, परिवारी सब लूटते हैं। हमको अभी व्यस्थित तो करो, बाद में निवृत्त होओ। हमको व्यवस्थित लाईन पर चढ़ा दो। 'लूटे जगतना जंत रे, नाखी वांक अनंत रे।' वांक डाले, हमको किसलिए विवाहा था? किसलिए तुमने लड़के किये थे? ऐई... शान्तिभाई!

मुमुक्षु : वचन दिया हो तो पालना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं, वहाँ पाले कौन?

मुमुक्षु : जाल खड़ा किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाल खड़ा किया। नहीं कहा था? स्त्री हुई, तब चार पैरवाला हुआ, ढ़ोर हुआ ढ़ोर। और उसे लड़का हुआ तो वह भँवरा हुआ, छह पैरवाला। भँवरे को छह पैर होते हैं। उसका विवाह करे, तब आठ पैरवाला हुआ, मकड़ी हुआ मकड़ी। करोळियो समझते हो? मकड़ी। लार निकालकर फँसती है न उसी और उसी में। आहाहा! अर र! अकेला तू प्रभु! कहाँ-कहाँ रुका है तू? समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं, देखो! आहाहा! **वीतरागनिर्विकल्प समाधि में लीन हैं, वे ही लीलामात्र में...** आहाहा! उस ओर लीन है, उसे नरकादि का दुःख भोगना पड़ता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह ११२ (गाथा पूरी हुई)।

गाथा - ११३

अथ लोभकषायदोषं [1]दर्शयति :-

२३६) जोइय लोहु परिच्चयहि लोहु ण भल्लउ होइ।
लोहासत्तउ सयलु जगु दुक्खु सहंतउ जोइ।।११३।।

योगिन् लोभं परित्यज लोभो न भद्रः भवति।
लोभासक्तं सकलं जगद् दुःखं सहमानं पश्य।।११३।।

हे योगीन् लोभं परित्यज। कस्मात्। लोभो भद्रः समीचीनो न भवति। लोभासक्तं समस्तं जगद् दुःखं सहमानं पश्येति। तथाहि-लोभकषायविपरीतात् परमात्मस्वभावाद्विपरीतं लोभं त्यज हे प्रभाकरभट्ट। यतः कारणात् निर्लोभपरमात्मभावनारहिताजिवा दुःखमुपभुञ्जा-नास्तिष्ठन्तीति तात्पर्यम्।।११३।।

आगे लोभकषाय का दोष कहते हैं-

क्योंकि लोभ नहिं कभी भला हो अतः योगि तुम लोभ तजो।
लोभासक्त समस्त जगत जन दुख सहते हैं यह देखो।।११३।।

अन्वयार्थ :- [योगिन्] हे योगी, तू [लोभं] लोभ को [परित्यज] छोड, [लोभो] यह लोभ [भद्रः न भवति] अच्छा नहीं है, क्योंकि [लोभासक्तं] लोभ में फँसे हुए [सकलं जगत्] सम्पूर्ण जगत् को [दुःखं सहमानं] दुःख सहते हुए [पश्य] देख।

भावार्थ :- लोभकषाय से रहित जो परमात्मस्वभाव उससे विपरीत जो इसभव परभव का लोभ, धन धान्यादि का लोभ उसे तू छोड़। क्योंकि लोभी जीव भव भव में दुःख भोगते हैं, ऐसा तू देख रहा है।।११३।।

गाथा-११३ पर प्रवचन

आगे लोभकषाय का दोष कहते हैं— अब लोभ, लोभ। आहाहा! ११३।

---

१. पाठान्तर – दर्शयति=प्रतिपादयति

२३६) जोइय लोहु परिच्चयहि लोहु ण भल्लउ होइ।
लोहासत्तउ सयलु जगु दुक्खु सहंतउ जोइ।।११३।।

अन्वयार्थ :— हे योगी... हे मुनि! हे आत्मा! **लोभ को छोड़,...** आहाहा! इस भव का लोभ, परभव का लोभ, स्त्री का लोभ, पैसे का लोभ, कीर्ति का लोभ। आहाहा! **यह लोभ अच्छा नहीं है, क्योंकि लोभ में फँसे हुए...** लोभ में फँसे हुए प्राणी जगत। आहाहा! **सम्पूर्ण जगत को...** आहाहा! **'दुःखं सहमानं' दुःख सहते हुए देख।** लोभ में फँसे हुए प्राणी दुःख सहन करते देख। आहाहा! ऐसी की ऐसी जिन्दगी पूरी हो जाये, ५०-६० वर्ष में। फिर कमाऊँगा, और फिर ऐसा करना और फिर... वहाँ देह छूट जाये, जाये ढोर में। आहाहा! पशु में। माँस आदि न हो, इसलिए (नरक में न जाये)। समझ में आया? नहीं सत्समागम, नहीं श्रवण करना, नहीं विचारना आत्मा का। कमाना, कमा-कमाकर स्त्री हुई और पुत्र हुए और सम्हाले। वहाँ एकदम आयुष्य पूरा। जाओ मरकर ढोर, कौवे और कुत्ते में भटको। आहाहा!

मुमुक्षु : कौआ और कुत्ता में भटकने का डर बहुत बड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह डर की कहाँ बात है। तिर्यंच हो ही, वह अन्यत्र जाये कहाँ वह? क्योंकि मनुष्यपने के सरलपने के परिणाम नहीं, देव के परिणाम नहीं, दया, दान, पूजा के भाव भी कुछ किये नहीं। आहाहा! उसी और उसी में जिन्दगी चली जाये, अभी करूँगा, बाद में करूँगा, बाद में करूँगा। एक लड़की का विवाह कर दें, लड़के का विवाह कर दें, अमुक का इतना (कर लें), इतने पैसे इकट्ठे कर लें, फिर निश्चिन्त। परन्तु इकट्ठा करने से पहले मर जायेगा, उसका क्या?

मुमुक्षु : होवे तो वृद्धावस्था में काम आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वृद्धपन में काम आवे, कहते थे वे। आहाहा!

मुमुक्षु : पैसा हो तो निश्चिन्तता से सोनगढ़ में रहा जाये न!

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी रहा जाये नहीं पैसेवाले को। आहाहा!

यह लोभ भला नहीं है। **'भद्रः न भवति'** आहाहा! भगवान आत्मा की भावना के अतिरिक्त लोभ अच्छा नहीं है, दुःखरूप है। आहाहा!

मुमुक्षु : लोभ पाप का बाप।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाप।

सम्पूर्ण जगत को **लोभ में फँसे हुए सम्पूर्ण जगत को दुःख सहते हुए देख।** आहाहा! वह सुखी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पैसेवाले लोभी प्राणी दुःखी बेचारे हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ऊपर से तो सुखी दिखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी सुखी नहीं। दुःखी हैं। निवृत्ति लेने का समय नहीं। उसी और उसी में पड़ा है, दिखता नहीं दुःखी ? सेठ! आहाहा!

यहाँ तो भगवान आचार्य महाराज, निज परमात्मस्वरूप के अतिरिक्त जितने पर सन्मुख के विकल्प में रुकता है, वह लोभी चार गति में दुःख सहन करेगा, ऐसा देख— ऐसा कहते हैं। क्योंकि उसे चार गतियाँ मिलेंगी। आहाहा! समझ में आया ?

भावार्थ :— लोभकषाय से रहित परमात्मस्वभाव... तीन बातें लेते हैं, तीन बातें। पहले तो, आत्मा कैसा है यह ? कि लोभकषाय से रहित। परमात्मस्वभाव भगवान परमात्म वीतरागस्वभाव।

मुमुक्षु : उससे विपरीत।

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे विपरीत। लोभकषाय से विपरीत परमात्मस्वभाव और परमात्मस्वभाव से विपरीत लोभ। आहाहा! है ? शैली ऐसी है। जयसेनाचार्य की ऐसी शैली है, इनकी ऐसी शैली है।

लोभकषाय से रहित... लोभ को छोड़ने का बतलाना है न! तो छोड़े कब ? कि वस्तु लोभरहित ही है। आहाहा! इच्छामात्र है, वह सब दुःख, उससे रहित भगवान आत्मा तो है। आहाहा! **लोभकषाय से रहित जो परमात्मस्वभाव...** अपना। आहाहा! **उससे विपरीत जो इसभव परभव का लोभ,...** इस भव का स्त्री का, परिवार का, लड़के का—पुत्र का, मकान का, इज्जत का सबका। आहाहा! इस भवसम्बन्धी लोभ। इस भव में फिर सब आया। स्त्री, पुत्र, पुत्री, व्यापार-धन्धा, वह इस भवसम्बन्धी लोभ। पर भवसम्बन्धी लोभ। आहाहा!

मुमुक्षु : अच्छा भव मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छा भव मिले तो ऐसा हो। भव कब अच्छा था? यहाँ से मरकर अच्छा भव मिले। भक्ति करे, पूजा करे। यह लोभ है परभव का। चारगति का भव करना, वही लोभ है। आहाहा! क्योंकि आत्मा तो चारगति और चारगति के भावरहित से रहित स्वरूप है भगवान तो। आहाहा! उसका यह अन्तर विश्वास करता नहीं। उसका यह ज्ञान करता नहीं। उस ओर की लीनता है नहीं और इस भव तथा परभव के लोभ में घुस गया है। आहाहा!

अरे! जिन्दगी... बाद में करूँगा, बाद में करूँगा, वहाँ तो मर जाये, हो गया, चला उठा। आहाहा! बहुत लोग देखे हैं। अभी-अभी तो पचास वर्ष की उम्र है। अभी क्या? बहुत समय है, अभी कमा लो। कमा लो, मरकर जायेगा ढोर में। पशु होगा, पशु। कौआ, कुत्ता और या कुत्ती का बच्चा। समझ में आया? आहाहा!

धन-धान्यादि का लोभ... है? धन का लोभ। अनाज—धान आदि का लोभ। इतना संग्रह रखो, इतने मकान बनाकर रखो तो अपने पैसे सम्हले। आहाहा! किसी को दिये तो ले जाये और न दे तो? मकान बनाकर रखो अपने, पैसे तो न जाये। आहाहा! अरे... अरे..! मार डाला।

मुमुक्षु : मकान बनाया वहाँ पैसे तो चले गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे चले गये बाद में, किसी को दिये हों और दे नहीं, इसकी अपेक्षा किराया उपजे, मकान अपने आधीन रहे। आहाहा! मार डाला जगत को।

भगवान निर्लोभस्वरूप भगवान आत्मा... आहाहा! सन्तोष का सागर। प्रभु तो सन्तोष का सागर। आहाहा! उस पर नजर न करने से, उससे विरुद्ध के लोभ में पड़ा है, पचा है। आहाहा! भाई! तुझे कब काम करना है? आहाहा! हें!

मुमुक्षु : है उसका क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ है? वह तो उसके घर में है, तुम्हारे पास कहाँ है? है तो उसके पास है या तुम्हारे पास है? तुम्हारा है? आहाहा!

धन-धान्यादिक... धान आदि है न? आदि अर्थात् कीर्ति, वंश बढ़े, बाहर में

महत्ता मिले, अच्छी पदवी मिले। इतना पढ़ूँगा तो पदवी अच्छी मिलेगी। बड़ी पदवी। पाँच हजार का, दस हजार का महीने में वेतन हो। उसके **लोभ उसे तू छोड़।** आहाहा!

प्रभु! तेरे पास खान पड़ी है आनन्द की। आनन्द की खान है, वहाँ देख न, वहाँ सुख है। आहाहा! बाहर में सुख कहाँ से आया? **क्योंकि लोभी जीव भव-भव में दुःख भोगते हैं,...** आहाहा! इस भव में दुःख और परभव में दुःख। आहाहा! **ऐसा तू देख रहा है।** ऐसा कहा, देखा! आहाहा! **'दुःखमुपभुञ्जानास्तिष्ठन्तीति'।** उसे भोगता है, ऐसा देख। यह भोगता है, खबर नहीं यह प्राणी बेचारा? आहाहा!

गाथा - ११४

अथामुमेव लोभकषायदोषं दृष्टांन्तेन समर्थयतिः-

२३७) तलि अहिरणि वरि घण-वडणु संडस्सय-लुंचोडु।
लोहहँ लग्गिवि हुयवहहँ पिक्खु पडंतउ तोडु।।११४।।

तले अधिकरणं उपरि धनपातनं संदशकलुञ्चनम्।
लोहं लगित्वा हुतवहस्य पश्य पतत् त्रोटनम्।।११४।।

तले अधस्तनभागेऽधिकरणसंज्ञोपकरणं उपरितनभागे घनघातपातनं तथैव संडसकसंज्ञेनोपकरणेन लुञ्चनमाकर्षणम्। केन। लोहपिण्डनिमितेन। कस्य। हुतभुजोऽग्नेः त्रोटनं खण्डनं पतन्त पश्येति। अयमत्र भावार्थः। यथा लोहपिण्डसंसर्गादग्निरज्ञानिलोकपूज्या प्रसिद्धा देवता पिट्टनक्रियां लभते तथा लोभादिकषायपरिणतिकारणभूतेन पञ्चेन्द्रियशरीरसंबन्धेन निर्लोभपरमात्मतत्त्वभावना रहितो जीवो घनघातस्थानीयानि नारकादिदुःखानि बहुकालं सहत इति।।११४।।

आगे लोभकषाय के दोष को दृष्टांत से पुष्ट करते हैं-

लौह संग से अग्नि नीचे ऊपर सहती घन की चोट।
संडासी से खींची जाती टूटे गिरे सहे दुख कोष।।११४।।

अन्वयार्थ :- [लोहं लगित्वा] जैसे लोहे का संबंध पाकर [हुतवहं] अग्नि [तले] नीचे रक्खे हुए [अधिकरणं उपरि] अहरन (निहाई) के ऊपर [धनपातनं] धन की चोट, [संदशकुलुंचनम्] संडासी से खेंचना, [पतत् त्रोटनम्] चोट लगने से टूटना, इत्यादि दुःखों को सहती हैं, ऐसा [पश्य] देख।

भावार्थ :- लोहेकी संगतिसे लोकप्रसिद्ध देवता अग्नि दुःख भोगती हैं, यदि लोहेका सम्बन्ध न करे तो इतने दुःख क्यों भोगे, अर्थात् जैसे अग्नि लोहपिंडके सम्बन्धसे दुःख भोगती है, उसी तरह लोह अर्थात् लोभके कारणसे परमात्मतत्त्वकी भावनासे रहित मिथ्यादृष्टि जीव घनघातके समान नरकादि दुःखोंको बहुत काल तक भोगता है।।११४।।

गाथा-११४ पर प्रवचन

आगे लोभकषाय के दोष को दृष्टान्त से पुष्ट करते हैं —

२३७) तलि अहिरणि वरि घण-वडणु संडस्सय-लुंचोडु।
लोहहँ लग्गिवि हुयवहहँ पिक्खु पडंतउ तोडु।।११४।।

अन्वयार्थ :— जैसे लोहे का सम्बन्ध पाकर अग्नि नीचे रखे हुए... ऐरण... ऐरण। वहाँ यह कहते हैं ? नीचे लोहे की ऐरण होती है। **लोहे का सम्बन्ध पाकर अग्नि नीचे रखे हुए ऐरण के ऊपर घन की चोट...** आहाहा! हथौड़ा पड़ता है ऊपर से, यह लोहे में घुस गया है न। ऐसा जो लोभ में घुसता है, उसे चार गति के हथौड़ा—दुःख सहन करना पड़ते हैं। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा तो भाई हमारे स्त्री, पुत्र, परिवार करना, बाबा हों तब ऐसा हो। बाबा ही है, कब तेरी चीज़ है यहाँ ? यहाँ तो तेरी चीज़ में राग भी नहीं, वहाँ और दूसरी चीज़ कहाँ से आ गयी ? आहाहा! दृष्टि का विषय का भगवान परमात्मा वही दृष्टि का विषय है। अकेला। आहाहा!

उस भाई ने लिखा था, वह याद आया। भाई तलुखिया गये ? भावनगर गये, वे लाये थे वह लेख जुगलकिशोर का, कोटा... कोटा। उन्होंने यह डाला होगा कि दृष्टि के विषय में परद्रव्य नहीं। यह फिर अपने यहाँ बात हुई थी न! यह अपेक्षा दूसरी बात है। दृष्टि का विषय है, वह द्रव्यस्वभाव है, उसमें ज्ञान, दर्शन का स्वभाव है। वह ज्ञान, दर्शन स्व-पर को जाने, ऐसी उसकी शक्ति है। समझ में आया ? तो द्रव्य की प्रतीति में ज्ञान-दर्शन में स्वपरप्रकाशक का भाव अन्दर आ गया। समझ में आया ? भेदरूप से नहीं परन्तु अन्दर आ गया। अपना ज्ञान और दर्शन का स्वभाव स्वपरप्रकाशक है तो पर के प्रकाश की अस्ति और स्व की अस्ति ज्ञान-दर्शन में आ गयी। समझ में आया ? आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है। तो अपने द्रव्य की प्रतीति करने में उसके ज्ञान, दर्शन में स्वपरप्रकाशक शक्ति है तो पर का ज्ञान उसमें है, उसकी प्रतीति आ गयी। समझ में आया ?

मुमुक्षु : श्रद्धा का विषय तो मात्र गुणस्वभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, कहा वह सुना नहीं। श्रद्धा का विषय द्रव्य है न? द्रव्य में ज्ञानगुण, दर्शनगुण है या नहीं? ज्ञान-दर्शनगुण का स्वपरप्रकाशक स्वभाव है या नहीं? ऐसा कहा। अभेद है न? परन्तु अभेद में ज्ञान, दर्शन गुण अन्दर है न? तो ज्ञान-दर्शनगुण की शक्ति त्रिकाल में स्व-पर जानने की उसकी शक्ति है। आहाहा! बात थोड़ी सूक्ष्म पड़े। वह तो यह है, यह है—ऐसा नहीं। परन्तु शक्ति में पर की प्रतीति आ गयी। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : पर का ज्ञान आया, पर की प्रतीति....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्ञान नहीं, ज्ञान में स्वपरप्रकाशक का सामर्थ्य है तो पर का प्रकाशकपना अन्दर आ गया। हें? ज्ञान में आ गया। ज्ञान की प्रतीति हुई, वहाँ दोनों इकट्ठे आ गये। सब गुण की प्रतीति हुई तो सब इकट्ठा आ गया। जरा सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो उनके पास से लाये थे। कोटा में डाला है। परन्तु यह वस्तु अलग।

पर की सत्ता सम्बन्धी का जो ज्ञान, अपने ज्ञान का स्वभाव, पर का अस्तित्व और अपना अस्तित्व दोनों को जाने ऐसा अपना अस्तित्व है, एक गुण में। तो ऐसे अनन्त गुण के पिण्ड की प्रतीति करता है तो उसमें स्व-पर का आ गया। भेद नहीं। समझ में आया? जरा सूक्ष्म बात है थोड़ी। और सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में तो प्रतीति इस प्रकार से ली है कि ज्ञेय—ज्ञायक की प्रतीति, ऐसा लिया है। अकेला ज्ञायक नहीं। ज्ञानप्रधान कथन है न? कौन सी गाथा? पीछे है न? (प्रवचनसार-२४२)।

दंसणणाणचरित्तेसु तीसु जुगवं समुट्ठिदो जो दु।
एयग्गगदो त्ति मदो सामण्णं तस्स पडिपुण्णं ॥२४२॥

ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व की तथाप्रकार (जैसी है, वैसी यथार्थ) प्रतीति जिसका लक्षण है, वह सम्यग्दर्शनपर्याय है... समझ में आया? अकेला ज्ञायक नहीं है। ज्ञायक में वह ज्ञेय की वस्तु आ गयी। पश्चात् यहाँ ज्ञानप्रधान में भिन्न कर डाला। ज्ञेयतत्त्व छह द्रव्य आदि सब, और ज्ञातृतत्त्व **तथाप्रकार (वैसा है, वैसा यथार्थ) प्रतीति जिसका लक्षण है, वह सम्यग्दर्शनपर्याय है,...** आहाहा! **ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व की तथाप्रकार अनुभूति जिसका लक्षण है, वह ज्ञानपर्याय है; ज्ञेय और ज्ञाता की जो क्रियान्तर से**

निवृत्ति उसके द्वारा रचित दृष्टज्ञातृतत्त्व में परिणति जिसका लक्षण है, वह चारित्रपर्याय है। समझ में आया? २४२।

मुमुक्षु : ज्ञानप्रधान श्रद्धा में आ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : आ जाये, अन्दर आ जाता है। उसे सम्यग्दर्शन की पर्याय कहा है। ज्ञेयतत्त्व और ज्ञानतत्त्व की दोनों की यथार्थ प्रतीति, वह सम्यग्दर्शन। उस अकेले ज्ञायक में शक्तिरूप से आ गया। वस्तु तो आवे न।

वास्तव में तो एक आत्मा की एक समय की पर्याय में छह द्रव्य ज्ञात होते हैं। ऐसी एक पर्याय की प्रतीति करने से छह द्रव्य की प्रतीति साथ ही आ गयी। और एक पर्याय, ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायें ज्ञानगुण में हैं। तो इस पर्याय में आया तो ज्ञानगुण में सब आ गया। समझ में आया?

मुमुक्षु : फिर से।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय की पर्याय में छह द्रव्य की... यह कलशटीका में लिया है। जो एक समय की पर्याय की प्रतीति करे, उसे छह द्रव्य आ जाते हैं। क्योंकि छह द्रव्यों को जानने का एक पर्याय में सामर्थ्य है। तो जिसने एक पर्याय को माना, उसने छह द्रव्य माने। समझ में आया? तो एक पर्याय में जब इतनी सामर्थ्य है तो ऐसी पर्याय ज्ञानगुण में शक्ति में अनन्त है। आहाहा! जरा बात (सूक्ष्म है)। समझ में आया? प्रवीणभाई! सूक्ष्म बात है। आहाहा! एक जाना उसने सब जाना, इसका अर्थ क्या? यह अन्दर आ जाता है।

मुमुक्षु : स्वपने है और परपने नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह ज्ञान आ गया उसका। आहाहा! यह तो नौ तत्त्व की श्रद्धा में भी एक प्रकार ऐसा है, अस्तिरूप से लो भले, संवर-निर्जरा। परन्तु वास्तव में तो सातों ही पर्याय नास्ति है और अस्ति त्रिकाल है, उसमें नास्ति है नहीं। तो उसकी श्रद्धा करने से सातों ही पर्याय में उसमें नहीं, ऐसी श्रद्धा आ जाती है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! ओहो! सर्वज्ञ देवाधिदेव परमात्मा का मार्ग कैसा! अलौकिक मार्ग! आहाहा! कलशटीका में तो यह लिया है कि पर्याय की जिसे श्रद्धा नहीं, उसे छह द्रव्य

की श्रद्धा नहीं। भाई! उसमें लिया है। चौदह बोल है न? चौदह बोल। चौदह बोल हैं, उसमें है, कलश में है। एक समय की पर्याय की श्रद्धा करने से छह द्रव्य की श्रद्धा आ जाती है। क्योंकि पर्याय की सामर्थ्य छह द्रव्य को जानने की है। तो पर्याय की श्रद्धा में छह द्रव्य की श्रद्धा आ गयी। और एक पर्याय ऐसी अनन्त पर्यायें अन्दर में हैं.... आहाहा! भेदरूप से नहीं परन्तु अन्दर शक्तिरूप से, तो अन्दर आ गयी। स्व-पर अस्तित्व है, उसकी जानने की पर्याय ऐसी अनन्त अन्दर में है। तो अभेद मानने में सब आ गया। थोड़ी सूक्ष्म बात है। यहाँ तो भाई जो बात हो वह स्पष्ट निकलती है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि लोभी, लोभ जो करता है वह, **जैसे लोहे का सम्बन्ध पाकर अग्नि नीचे रखे हुए ऐरण के ऊपर घन की चोट, संडासी से खेंचना...** खेंचे न? आहाहा! वह अग्नि को खेंचे ऐसे। आहाहा! उसमें जीव महादुःखी हों अन्दर अग्नि के। आहाहा! लोहे में अग्नि प्रविष्ट करे, तो लोहे को खींचे तो अग्नि खिंचती है। आहाहा! अरे! वह जीव है भगवान! भले एकेन्द्रिय हो, परन्तु वह परमात्मतत्त्व है। आहाहा! पर्याय का लक्ष्य छोड़ दे तो वह परमात्मतत्त्व ही है। आहाहा! उसे कुछ क्षेत्र की आवश्यकता नहीं। उसके स्वभाव की शक्तिरूप सामर्थ्य इतना है। परमात्मस्वरूप ही उसकी शक्ति है। आहाहा! परन्तु वह जब अग्नि लोहे का सम्बन्ध करती है तो अग्नि को घन पड़ते हैं और खींचते हैं। इसी प्रकार लोभी प्राणी अपने स्वभाव को छोड़कर पर में प्रीति करता है तो उसे चार गति के दुःख सहन करना पड़ते हैं। आहाहा! और उसमें भी गाँव का मुसलमान कोई हो और करोड़पति हो जाये तो उसका कुछ नहीं बहुत। परन्तु एक पिता के चार पुत्र और बँटावारा करके अलग हुए, फिर एक यह बढ़ गया और मेरे रह गया, वह बढ़ गया और मेरे रह गया। मार डाला जगत को। गाँव में मुसलमान करोड़पति हो तो उसका कुछ नहीं। परन्तु चार भाई को बँटावारा दिया तो एक-एक को पचास-पचास लाख दिये, भाई! अब? उसको पचास लाख के दो अरब हो गये। दो, पाँच करोड़ हो गये। एक पिता के दो...

मुमुक्षु : अपनी कीमत गयी न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ कीमत गई ? गाँव में कोई हरिजन हो और पैसेवाला हो, उसका कुछ नहीं इसे। लोगों को मार डाला है ऐसा का ऐसा। यह तो सब संसार का स्पष्टीकरण होता है। आहाहा!

घन की चोट, संडासी से खेंचना, चोट लगने से टूटना,... लोहा टूट जाये न, टुकड़े हो जायें। ऐसे अग्नि के... हो जाये। **इत्यादि दुःखों को सहती है, अग्नि ऐसा देख।**

भावार्थ :— लोह की संगति से लोकप्रसिद्ध देवता... अग्नि, देवता कहलाती है न ? अग्निदेव कहते हैं न ? उसी प्रकार यह भगवान देव आत्मा। आहाहा! अग्निदेव है, वह लोहे की संगति करता है तो दुःख पाता है। उसी प्रकार भगवान आत्मा परमात्मदेव है परन्तु लोभ में जाता है तो दुःख सहन करना पड़ता है, ऐसा कहते हैं। यह लोहा और यह लोभ। आहाहा!

मुमुक्षु : थोड़ा-बहुत सहन करना पड़े, पैसे तो रहें।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल पैसा कहाँ था ? देखा नहीं ? वह बाई मर गयी न अभी ? शान्तिलाल खुशाल की। दो अरब चालीस करोड़ रुपये उसके पास हैं। मर गया रात्रि में डेढ़ बजे पाँच मिनिट में। और स्त्री डेढ़ वर्ष से... क्या कहलाता है तुम्हारे वह ? हेमरेज। असाध्य जड़ जैसी। दो अरब चालीस करोड़। धूल में क्या करे वहाँ ? क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु : पुराना अंक है, नया अंक....

पूज्य गुरुदेवश्री : है उसके पास, अभी है। अभी सब पैसा है उसके पास। मशीन, मशीन, हों! मशीन में सब पैसे घुस गये। मरने के पश्चात् बीस लाख डेढ़ प्रतिशत से लेने पड़े खर्च करने के लिये। आहाहा! सब दुःखी प्राणी है। अपने यहाँ है न ? बहिन की पुत्रियाँ हैं न ? पोपटभाई की। पोपटभाई का एक आया है न ? उसके पुत्र का पुत्र तो यहाँ रहता है एक। एक आया है, कल आया है न। गया ? छोटा। पोपटभाई का पुत्र आया था। कल कहता था, मेरा काका आया है। वहाँ आया था दोपहर में। है न! पोपटभाई का पुत्र है न। शान्तिलाल की बहिन का पुत्र। शान्तिलाल खुशाल। उसमें

धूल में क्या है ? आहाहा ! मरकर हाय... हाय... वापस पशु में गया होगा बेचारा। पशु। अररर ! आहाहा ! और यह तो डेढ़ वर्ष से ढोर की भाँति पड़ी थी। आहाहा ! वह मरकर कहाँ गया बेचारा ? माँस और मदिरा न हो, इसलिए (नरक न जाए, परन्तु) पशु एकेन्द्रिय में, दो इन्द्रिय में, निगोद में (जाये)। आहाहा ! अरे रे ! प्रभु ! ऐसी चीज़ है। यहाँ बड़े चालीस लाख के बँगले में सो रही हो और मरकर जाये एकेन्द्रिय-ढोर में। बापू ! इसका फल यही कहते हैं। आहाहा ! **ऐसा देख।**

लोकप्रसिद्ध देवता अग्नि दुःख भोगती है, यदि लोहे का सम्बन्ध न करे तो इतने दुःख क्यों भोगे, अर्थात् जैसे अग्नि लोहपिण्ड के सम्बन्ध से दुःख भोगती है,... अब सिद्धान्त। **उसी तरह लोह...** लोह अर्थात् लोभ। वह लोह (अर्थात्) लोहा। **लोभ के कारण से परमात्मतत्त्व की भावना से रहित...** आहाहा ! भगवान शुद्ध चिदानन्द वीतरागमूर्ति प्रभु मैं हूँ—ऐसी श्रद्धा-ज्ञान से रहित। आहाहा ! यह बनिये को बहुत लागू पड़ता है, इस लोभ का। **मिथ्यादृष्टि जीव घनघात के समान नरकादि दुःखों को बहुत काल तक भोगता है।** आहाहा ! नरक में, पशु में दुःख भोगता है। इसलिए लोभ छोड़। निर्लोभी भगवान आत्मा की दृष्टि और रुचि कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! परमात्मतत्त्व की रुचि कर। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

गाथा - ११५

अथ स्नेहपरित्यागं कथयति:-

२३८) जोइय णेहु परिच्चयहि णेहु ण भल्लउ होइ।
णेहासत्तउ सयलु जगु दुक्खु सहंतउ जोइ।।११५।।

योगिन् स्नेहं परित्यज स्नेहो न भद्रो भवति।
स्नेहासक्तं सकलं जगद् दु:खं सहमानं पश्य।।११५।।

रागादिस्नेहप्रतिपक्षभूते वीतरागपरमात्मपदार्थध्याने स्थित्वा शुद्धात्मतत्त्वाद्विपरीतं हे योगिन् स्नेहं परित्यज। कस्मात्। स्नेहो भद्रः समीचीनो न भवति। तेन स्नेहेनासक्तं सकलं जगन्निःस्नेहशुद्धात्मभावनारहितं विविधशारीरमानसरुपं बहुदुःखं सहमानं पश्येति। अत्र भेदाभदरत्नत्रयात्मकमोक्षमार्गं मुक्त्वा तत्प्रतिपक्षभूते मिथ्यात्वरागादौ स्नेहो न कर्तव्य इति तात्पर्यम्। उक्तं च-''तावदेव सुखी जीवो यावन्न स्निह्यते क्वचित्। स्नेहानुविद्धहृदयं दुःखमेव पदे पदे।।''।।११५।।

आगे स्नेह का त्याग दिखलाते हैं-

राग कभी भी भला नहीं है अत: योगि तू उसको छोड़।
स्नेहासक्त जगत जन देखो, सदा दु:ख ही दुख भोगें।।११५।।

अन्वयार्थ :- [योगिन्] हे योगी, रागादि रहित वीतराग परमात्मपदार्थ के ध्यान में ठहरकर ज्ञान का वैरी [स्नेहं] स्नेह (प्रेम) को [परित्यज] छोड़, [स्नेहः] क्योंकि स्नेह [भद्रःन भवति] अच्छा नहीं है, [स्नेहासक्तं] स्नेह में लगा हुआ [सकलं जगत्] समस्त संसारी जीव [दुःखं सहमानं] अनेक प्रकार शरीर और मन के दुःख सह रहे हैं, उनको तू [पश्य] देख। ये संसारी जीव स्नेह रहित शुद्धात्मतत्त्व की भावना से रहित हैं, इसलिए नाना प्रकार के दुःख भोगते हैं। दुःख का मूल एक देहादिक का स्नेह ही है।

भावार्थ :-यहाँ भेदाभदरत्नत्रयरुप मोक्ष के मार्ग से विमुख होकर मिथ्यात्व रागादि में स्नेह नहीं करना, यह सारांश है। क्योंकि ऐसा कहा भी है, कि जब तक यह जीव जगत् से स्नेह न करे, तब तक सुखी है, और जो स्नेह सहित हैं, जिनका मन स्नेह से बँध रहा है, उनको हर जगह दुःख ही है।।११५।।

वीर संवत् २५०२, पौष कृष्ण ५, सोमवार
दिनांक-१०-०१-१९७७, गाथा - ११५, ११६, ११७ प्रवचन-१८२

परमात्मप्रकाश, १५५ गाथा।

२३८) **जोइय णेहु परिच्चयहि णेहु ण भल्लउ होइ।**
णेहासत्तउ सयलु जगु दुक्खु सहंतउ जोइ।।११५।।

अन्वयार्थ :— हे योगी... उनके शिष्य को लक्ष्यकर है न। **रागादि रहित वीतराग परमात्मपदार्थ के ध्यान में ठहरकर....** आहाहा! **रागादि रहित वीतराग परमात्मपदार्थ...** अपना स्वभाव। राग से रहित वीतराग परमात्मपदार्थ में ध्यान में स्थिर होकर, उसे ध्येय बनाकर, अन्दर ध्यान में स्थिर होकर। **ज्ञान का वैरी...** प्रेम और स्नेह ज्ञानस्वभाव के वैरी हैं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान का अर्थात् आत्मा का। वीतराग परमात्मपदार्थ ऐसा जो ज्ञान, उसका वैरी स्नेह है। आहाहा! मिथ्यात्व, राग-द्वेष में प्रेम करना, वह स्वभाव परमात्मपदार्थ से विपरीत वैरी है। उसमें स्नेह करने से... **स्नेह को छोड़, क्योंकि स्नेह अच्छा नहीं है,...** भगवान परमानन्दस्वभाव का प्रेम छोड़कर मिथ्यात्व, राग-द्वेष आदि, शरीरादि परपदार्थ में स्नेह करना... आहाहा! वह अच्छा नहीं है। तेरे लिये वह ठीक नहीं है। आहाहा! एक ओर भगवान वीतराग परमात्मस्वरूप को छोड़कर रागादि, मिथ्यात्व आदि की रुचि, प्रेम करना, वह आत्मा का वैरी है। आहाहा!

स्नेह में लगा हुआ समस्त संसारी जीव... आहाहा! अपना भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप परमात्मपदार्थ का प्रेम छोड़कर सकल जगत संसारी जीव स्नेह में लगे हुए हैं। आहाहा! **अनेक प्रकार शरीर और मन के दुःख सह रहे हैं,...** शरीर से और मानसिक दुःख सहन कर रहे हैं। आहाहा! **उनको तू देख।** आहा! **शरीर और मन के दुःख सह रहे हैं, उनको तू देख।** आहाहा! **ये संसारीजीव...** परिभ्रमण में भटकनेवाला प्राणी, आहाहा! **स्नेह रहित शुद्धात्मतत्त्व की भावना से रहित हैं,...** भगवान आत्मा स्नेहरहित है। वर्तमान में वह आत्मा स्नेहरहित है। आहाहा! **स्नेह रहित शुद्धात्मतत्त्व...** ज्ञायकस्वभाव वीतरागस्वभाव त्रिकाली अपना, उसकी भावना से रहित। आहाहा!

अन्तर सन्मुखता से रहित और स्नेह में विमुखता स्वभाव से स्नेह में लीन। आहाहा! समझ में आया?

स्नेह। संसारी प्राणी एकेन्द्रिय से लेकर सब। आहाहा! **शुद्धात्मतत्त्व की भावना...** अर्थात् मोक्षमार्ग। जो अपना पूर्ण स्वरूप आनन्द, ज्ञान, उसकी अन्तरभावनारहित स्नेह की भावनासहित, उस प्राणी को तू दुःखी देख—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **इसलिए नाना प्रकार के दुःख भोगते हैं।** आहाहा! नाना अर्थात् अनेक प्रकार के। एकेन्द्रिय के, नारकी के, तिर्यंच के दुःख भोगते हैं। आहाहा! **दुःख का मूल एक देहादिक का स्नेह ही है।** दुःख का मूलकारण अपने स्वभाव से विरुद्ध परपदार्थ का प्रेम और रुचि मिथ्यात्व आदि भाव, वह आत्मा के शत्रु हैं। आहाहा! उसमें स्नेह नहीं करना। लो। है? **दुःख का मूल एक देहादिक का स्नेह ही है।** वह स्नेह है, ऐसा कहते हैं। राग में प्रेम करना, शुभराग से लेकर सब पदार्थों में प्रेम, वह शुद्धात्मतत्त्व की भावना से रहित है। आहाहा! यह दुःख का मूल स्नेह है। आहाहा!

भावार्थ :— एक ओर राम भगवान तथा एक ओर गाँव—राग से लेकर सब परपदार्थ। आहाहा! निज परमात्मतत्त्व की भावना, शुद्ध चैतन्य की श्रद्धा, ज्ञान, रमणतारूप भावना छोड़कर राग से लेकर सब पदार्थों में स्नेह करता है। आहाहा! **यहाँ भेदाभेद-रत्नत्रयरूप मोक्ष के मार्ग से विमुख...** भेदाभेदरत्नत्रयरूप मोक्ष के मार्ग। अपने शुद्ध पूर्णस्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह निश्चयमोक्षमार्ग है। बीच में राग, पूर्ण वीतरागता न हो, तब तक भेदरत्नत्रय आता है। है राग, परन्तु इस अभेद रत्नत्रय की उपमा (आरोप) देकर उसे भेद रत्नत्रय कहा है। उसकी आराधना बिना... आहाहा! **विमुख होकर....**

मुमुक्षु : .... निश्चयसम्यग्दर्शन, निश्चयसम्यग्ज्ञान...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके साथ व्यवहार, उसके साथ व्यवहार। दोनों साथ में लिये हैं। आहाहा!

मिथ्यात्व रागादि में स्नेह नहीं करना,... राग का प्रेम, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! झूठा भाव है। सत्यपरमात्मा अपने स्वरूप में प्रेम करना, वह सत्यभाव है। राग

का प्रेम करना, वह मिथ्या—झूठा भाव—असत्यभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : निःस्वार्थ प्रेम करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : निःस्वार्थ प्रेम होता ही नहीं। आहाहा! अनासक्ति से काम करना, ऐसा कहते हैं न? सब झूठ बात है। आहा! भगवान आत्मा ज्ञान और वीतरागस्वरूपी प्रभु की रुचि—दृष्टि छोड़कर, कोई भी पदार्थ हो, राग हो, देव-गुरु-शास्त्र हो, उनमें भी प्रेम, आहाहा! वह स्वरूप को नुकसान करनेवाला, विमुख है। समझ में आया?

मिथ्यात्व रागादि में स्नेह नहीं करना, यह सारांश है। क्योंकि ऐसा कहा भी है, कि जब तक यह जीव जगत से स्नेह न करे, तब तक सुखी है,... आहाहा! अपने स्वभाव में प्रेम करे और जगत से प्रेम न करे, तब तक वह सुखी है। आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : स्नेह और राग में क्या अन्तर है?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही है। स्नेह कहो, राग कहो या प्रेम कहो। आहाहा! आज तो यह लड़के का सुना न! विजय लड़का था गुना का। बहुत होशियार, बहुत प्रेम। छोटी उम्र परन्तु प्रेम बहुत। यहाँ पन्द्रह दिन रह गया था, कुँवारा रह गया था, विवाह करके रह गया था। किडनी का दर्द। गत वर्ष हम गये थे उसके मकान में। बड़ी कम्पनी में बड़ा नौकर था। बहुत होशियार। दो बार तो अमेरिका जा आया है। तीस वर्ष तो नहीं हुए हो, पच्चीस, सत्ताईस हुए होंगे। किडनी का दर्द हुआ। आहाहा! बारह महीने किडनी का दर्द हुआ। शरीर जीर्ण हो गया। उसकी माँ ने किडनी दी। ऑपरेशन किया। कोई होशियार आया होगा। वहाँ कोई बड़ा दवाखाना है मुम्बई में। ऑपरेशन किया। देह छूट गयी।

मुमुक्षु : गलती रह गयी, इसलिए छूट गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आयुष्य पूरा हुआ। शरीर बारह महीने से जीर्ण हो गया था। बहुत जवान व्यक्ति। उसे धर्म का बहुत प्रेम। अपने यहाँ विमलचन्दजी थे न, वैसा दिमागवाला व्यक्ति। वह तो बोलता बहुत कम, बहुत कम बोले। शान्त... शान्त... शान्त। माँ-बाप है, गृहस्थ है। बड़ा मकान है। गत वर्ष वहाँ गये थे। आहाहा! यह

संसार देखो! बारह महीने का विवाह और बारह महीने रोग में गये। देह छूट गयी। शरीर की स्थिति ऐसी है, बापू! किसके प्रति प्रेम? नाशवान में प्रेम क्या? अविनाशी भगवान आनन्द का नाथ... आहाहा! उसका प्रेम छोड़कर नाशवान में प्रेम (करता है)। जगत को दु:खी देख इस प्रमाण, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्षण में बदलते देर लगती है?

सनतकुमार चक्रवर्ती जैसा सुन्दर रूप, परन्तु वह तो धूल है, सुन्दर मिट्टी। आहाहा! राज में बैठे थे। देव देखने आये। ओहोहो! देव कहे, बहुत सुन्दर। उसे जरा ऐसा हुआ—देव! अभी नहीं। मैं जब स्नान करके आऊँ तत्पश्चात् देखना। स्नान करके आये, दीवानखण्ड में बैठे। देव आये। ऐसा कहा देव ने, यह नहीं, यह नहीं। अररर! क्या हुआ? देखो! थूको, शरीर में ईयल पड़ गयी है। ईयल को क्या कहते हैं? कीड़ा। आहाहा! भाई! इस अनित्य वस्तु को पलटने में देरी क्या? आहाहा! किसे सुन्दर कहना और किसी अठीक कहना। आहाहा! सुन्दर तो भगवान आनन्द निरोगस्वरूप है, वह सुन्दर है। आहाहा!

रागरहित कहा न? आहाहा! आया था न वहाँ? पहली लाईन। **रागादि रहित...** वीतराग परमात्मपदार्थ। आहाहा! भगवान आत्मा तो ज्ञानस्वरूप परमात्मपदार्थ अतीन्द्रिय आनन्द की खान वह पदार्थ है। आहाहा! वह स्नेहरहित वस्तु है। उसमें प्रेम अर्थात् रुचि करना, वह तो यथार्थ सत्य है। ऐसा अविनाशी भगवान वीतरागमूर्ति प्रभु का प्रेम छोड़कर चाहे तो शुभराग हो या अशुभ हो, अथवा शुभराग का फल चक्रवर्तीपद आदि हो, आहाहा! 'इन्द्र सरीखी सम्पदा, चक्रवर्ती का भोग, कागवीट सम मानत है, सम्यग्दृष्टि लोक।' आहाहा! कौवे की विष्टा जो खाद में भी काम नहीं आती। खातर समझते हो? खाद। मनुष्य की विष्टा तो खाद में भी काम आवे। आहाहा! धर्मी जीव की दृष्टि, आहाहा! अपने शुद्ध परमात्मपदार्थ पर होने से वह पुण्य के फल, कौवे की विष्टा समान देखता है। आहाहा! यह अरबों पैसा और करोड़ों रुपये, चक्रवर्ती के सैकड़ों पुत्र हों और सैकड़ों पुत्रियाँ हों और सैकड़ों दामाद। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि प्रभु! तू एक बार देख। **जब तक यह जीव जगत से स्नेह न**

करे,... आहाहा! **तब तक सुखी है,...** इन सब चीज़ों में प्रेम न करे, तब तक सुखी है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। उस ओर लक्ष्य करने से, स्नेह करने से प्राणी दुःखी है। आहाहा! आनन्द का सागर भगवान में प्रेम करे तो सुखी और इसके अतिरिक्त आनन्द तो कहीं दूसरे पदार्थ में है नहीं। रागादि में है नहीं। समझ में आया? पर में स्नेह न करे, तब तक सुखी। जब अपने स्वभाव का प्रेम छोड़कर पर में राग करे, (तब) वह दुःखी। सुख-दुःख की यह व्याख्या। पैसेवाला सुखी और निर्धन दुःखी, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह वीतरागमार्ग तो देखो, भाई! आहाहा!

सर्वज्ञ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं। आहाहा! **जब तक यह जीव जगत से स्नेह न करे, तब तक सुखी है,...** आहाहा! अरे! देव-गुरु-शास्त्र का राग भी दुःख है। आहाहा! ऐसी बात वीतराग करे। समझ में आया? क्योंकि परद्रव्य है। कल आया था, नहीं? राजमल में। रात्रि में राजमल का वाँचा नहीं था? उसमें आया था। भगवान का ध्यान करे तो? भगवान है, वे परद्रव्य हैं और परोक्ष हैं तथा भगवान आत्मा किसी अपेक्षा से प्रत्यक्ष है, ऐसा आया था। कल आया था न? आहाहा! प्रत्यक्ष अर्थात् राग की अपेक्षा छोड़कर अन्तर भगवान सन्मुख देखे तो वह आत्मा प्रत्यक्ष ही है। आहाहा! समझ में आया?

यह अलिंगग्रहण के छठवें बोल में कहा है न? अलिंगग्रहण के बीस बोल हैं न? उसमें छठवें बोल में कहा है। आत्मा अपने स्वभाव से प्रत्यक्ष होनेवाला, स्वभाव से ज्ञात हो ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा अपने स्वभाव से ज्ञात होता है। रागादि स्वभाव नहीं, उससे ज्ञात नहीं होता। आहाहा! वह अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा भगवान प्रत्यक्ष ज्ञाता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? आहाहा!

यहाँ आचार्य कहते हैं, भगवन्त! एकबार सुन। आहाहा! **जब तक यह जीव जगत से स्नेह न करे,...** आहाहा! किसी के प्रति भी स्नेह करना, वह दुःख है, आहाहा! आकुलता है, दुःख है। शान्ति नहीं, वह दुःख है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आचार्य कहते हैं, हे जीव! **जब तक यह जीव जगत से (पर में) स्नेह न करे, तब तक सुखी है,...** ऐसा देख। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! ऐसी बात है। उसमें सब पैसेवाले सुखी हैं, यह इसमें कहीं नहीं आया। दुःखी है, ऐसा आया। पर में स्नेह रचता है, वह दुःखी है।

मुमुक्षु : जब तक शरीर साथ है, वहाँ तक....

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर कब साथ में था? वह तो भिन्न है। वह तो जड़ है, उसके कारण से आया है और उसके कारण से टिका है और उसके कारण से छूट जायेगा। तुम्हारे अस्तित्व में उसका सम्बन्ध नहीं है। तुम्हारे आत्मा के अस्तित्व में राग का सम्बन्ध नहीं तो शरीर का कहाँ आया? आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! धर्म, वीतराग का धर्म, वह धर्म अन्यत्र कहीं नहीं है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त (कहीं नहीं है)। आहाहा! परमात्मा ने दिव्यध्वनि द्वारा यह धर्म फरमाया। आहाहा! जिसे इन्द्र और गणधर सुनते थे। जगत के लोक के नाथ अर्धलोक के नाथ शकेन्द्र और अर्धलोक के नाथ ईशानइन्द्र। आहाहा! वहाँ भगवान ऐसा फरमाते थे। जगत के प्राणी जब तक पर के प्रति स्नेह न करे, वहाँ तक वे प्राणी सुखी हैं। आहाहा! सुविधा है और सुखी है, पैसे मिले और सुखी है, धूल में भी नहीं। समझ में आया? आहाहा! शरीर का सम्बन्ध है न? सेठ कहते थे। सम्बन्ध है ही नहीं। आत्मा में राग का सम्बन्ध नहीं, राग से भिन्न अबन्ध है तो शरीर से तो भिन्न ही है। आहाहा! समझ में आया? (समयसार) चौदहवीं गाथा में कहा है न? पन्द्रहवीं में। **'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठ।'** राग से भी सम्बन्ध नहीं, देह के साथ तो कहाँ से आया? देह तो जड़ रहा। आहाहा!

मुमुक्षु : योगीन्द्र आचार्य ने मन्दिर की उपमा दी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्दिर, उस देव की अपेक्षा से। मुर्दा नहीं लिया? कल (समयसार) ९६ गाथा नहीं बतलायी? अमृत का सागर भगवान मृतक कलेवर में मूर्च्छित है। आहाहा! समझ में आया? अमृत, आनन्द के अमृत से भरपूर भगवान, वह मूर्च्छित हो (गया)। शरीर मुर्दा है, यह तो मुर्दा है। इसमें चेतन नहीं। शरीर के रजकण में चेतन नहीं, चेतन तो भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? अमृत का सागर। अमृतचन्द्राचार्य हैं न! तो ऐसा लगाया। अमृत का सरोवर, महान अमृत का भण्डार मृतक कलेवर में मूर्च्छित है। सेठ! यह मृतक कलेवर कहा अभी! सम्बन्ध किसका? मुर्दे के साथ? मुर्दे के साथ सगाई की, अब विवाह करेगा। नहीं आता? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है।

मुमुक्षु : जीव चला जायेगा तब मुर्दा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी मुर्दा है। कल बतलाया था दोपहर में, समयसार—९६ गाथा। आहाहा! बापू! एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ का अभाव है। भगवान आत्मा में देह और राग का तो अभाव है और राग तथा देह में भगवान का अभाव है—आत्मा का अभाव है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, बापू! सत्य का मार्ग बहुत अलौकिक है। आहाहा! यह शरीर... कुछ आया है न? दूसरे प्रश्न में (खानिया चर्चा में) जीवित शरीर से धर्म अधर्म होता है या नहीं? अरे! प्रभु... प्रभु... प्रभु! राग से धर्म नहीं होता, तब फिर शरीर से धर्म? वह तो जड़ मिट्टी है।

मुमुक्षु : जीवित....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तुम्हारे गाँव में यह प्रश्न हुआ है। जयपुर से है न पण्डितजी। आहाहा!

प्रभु! यहाँ तो कहते हैं, जगत के जीव जब तक पर का प्रेम न करे, तब तक सुखी है। शरीर का प्रेम करे और शरीर की क्रिया से लाभ माने, वह तो दु:खी है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : एक आचार्य मृत कलेवर कहते हैं, एक आचार्य देवालय कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : देवालय किस अपेक्षा से? देव भगवान के लिये देवालय का निमित्त कहा। आहाहा! परमात्मा विराजता है भगवान देह देवालय में। वह तो देव की उपमा देकर देवालय कहा। महिमा देव की है, देवालय की नहीं। आहाहा! अरे! मृतक कलेवर में भगवान अमृतसागर देव... अपने आ गया न कलश में? अचिन्त्यदेव। आहाहा! जिसकी शक्ति अचिन्त्य है, भाई! क्या वस्तु है आत्मा! आत्मा की लोगों को (खबर नहीं)। भगवान परमानन्दमूर्ति अचिन्त्य शक्तिसम्पन्न प्रभु है। आहाहा! अरे! इसने कभी सुना नहीं, इसे सुनने को मिला नहीं। समझ में आया? सुने बिना विचार में कहाँ से लावे? आहाहा! हमारे भाई कहते थे, प्रवीणभाई। हिम्मतभाई के भाई। अरे! सुनने को मिला नहीं, वह विचार कब करे? बात सच्ची। उसे प्रेम है, रस है। आहाहा! रविवार रविवार आवे। अरे! ऐसी बात सुनने को न मिले, वह कब विचारे और कब रुचि करे? आहाहा!

मुमुक्षु : .... द्वेष हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : ... उपेक्षा लक्ष्य छोड़ देना। लक्ष्य छोड़ना, उसमें द्वेष कहाँ आया? यहाँ लक्ष्य करके वहाँ का लक्ष्य छोड़ देना। पर की उपेक्षा करके स्व की अपेक्षा करना। आहाहा! मार्ग वीतराग का, सम्प्रदाय में इतनी सब बातें फेरफार हो गयीं, भाई! इसलिए यह बात बाहर आने पर लोगों को बेचारों को (कठिन पड़ती है)। ४२ वर्ष हो गये, इसलिए अब विरोध नहीं। प्रभु! यह विरोध करने की चीज़ नहीं। आहाहा! व्याख्या आवे कि राग है, वह दुःखदायक है। यह कहे, नहीं। सवेरे की संध्या का राग सूर्य उगावे। शाम की संध्या का राग अस्त करे। किस अपेक्षा से प्रभु? जिसे आत्मा का भान हुआ है, उसे देव-गुरु-शास्त्र के प्रति जो राग आता है, वह राग टालकर वीतरागता हो जायेगी। आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब का जो राग है, वह तो अशुभ पाप है। आहाहा! कठिन मार्ग, भाई!

ऐसे जवान मनुष्य, कैसा दिमागवाला लड़का था वह, शान्त... शान्त था। कुँवारा यहाँ रहा था, पन्द्रह दिन। शान्त, बोले बहुत कम, दिमाग बहुत। विमलचन्दजी का जैसे बहुत अभ्यास था न, इसी प्रकार इसे दिमाग बहुत। बोले कम। गुजर गया दस-बारह दिन पहले। आहाहा! विवाह करके आया था बेचारा, यहाँ पन्द्रह दिन रहा था। आहाहा! देह की स्थिति पूरी हो, वहाँ उसे रोके कौन? देह की स्थिति में रहने का काल इतना, उसकी योग्यता हो। आयुष्य उतना हो। आहाहा! आयुष्य पूर्ण हो और देह में रहने की स्थिति की योग्यता इतनी हो, छूट जाये। आहाहा!

जब तक यह जीव जगत से स्नेह न करे,... आहाहा! **तब तक सुखी है,...** आहाहा! पैसेवाले सुखी हैं और कीर्तिवाले सुखी हैं और स्त्री, पुत्रवाले सुखी हैं, ऐसा यहाँ नहीं कहा।

मुमुक्षु : वह तो मुनियों को खबर न हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि को खबर नहीं सब? उन्हें दुनिया की सब खबर है। नाचे न हो, परन्तु नाचनेवाले को देखा नहीं हो उन्होंने? आहाहा! समझ में आया? तुम्हारी संस्था की बातें गूढ़ हों, वह भी मुनि तो जानते हैं। आहाहा!

और जो स्नेह सहित हैं,... दो सिद्धान्त। जगत के प्राणी अपने स्वभाव को छोड़कर जगत का स्नेह न करे, तब तक सुखी और अपना स्वभाव छोड़कर पर में स्नेह करे, तब दु:खी। आहाहा! यह सुख-दु:ख की व्याख्या। जब तक भगवान आत्मा का प्रेम छोड़कर पर में प्रेम न करे, तब तक सुखी और अपना प्रेम छोड़कर पर में प्रेम करे तो दु:खी। आहाहा! समझ में आया? राजमल में कहा नहीं था कल? कि भगवान का ध्यान करे तो? वे परमात्मा हैं न, सर्वज्ञ परमेश्वर। बापू! परन्तु वे परद्रव्य हैं, हों! आहाहा! और परद्रव्य है, वह परोक्ष है और भगवान आत्मा स्वद्रव्य है, इससे वह किसी अपेक्षा से प्रत्यक्ष है। अनुभूति की अपेक्षा से। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग, इसलिए लोगों को कठिन पड़े न! यह पूजा करते हैं और भक्ति करते हैं और यात्रा करते हैं, उसमें धर्म मनावे। वह तो राग है। आहाहा! व्रत पालना और अपवास करना, वह सब राग है। शुभराग है। परन्तु है तो राग, पुण्य है; धर्म नहीं। आहाहा! और राग का राग न करे, तब तक आत्मा सुखी। आहाहा! देखो, यह दिगम्बर सन्तों के रामबाण कथन। आहाहा!

जो स्नेह सहित हैं, जिनका मन स्नेह से बँध रहा है,... आहाहा! राग के स्नेह में चिकनाई में जिसका मन (बँधा हुआ है)। यह आया नहीं था? पहले आया था। जैसे तिल में तेल है तो चिकनाई के कारण पिलना पड़ता है। आहाहा! उसी प्रकार जिसे... अब आयेगा न? अब आयेगा। सच्ची बात है। **जिनका मन स्नेह से बँध रहा है,...** चाहे तो शुभराग हो, चाहे अशुभराग हो या उसके फल अनुकूल-प्रतिकूल जगत में हो, परन्तु जब तक मन पर के ऊपर स्नेह से बँधा हुआ है, आहाहा! **उनको हर जगह दु:ख ही है।** समझ में आया? ऐसी व्याख्या भारी कठिन पड़े लोगों को। क्या हो, बापू? मार्ग ऐसा है, भाई! आनन्दस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द का सागर प्रभु की रुचि, प्रीति छोड़कर, वह प्रीति का आया था न? निर्जरा अधिकार में। अपने में प्रीति करे, तब तक रुचि यथार्थ है, सन्तोष है। आहाहा! पर में प्रीति करे, आहाहा! पर शब्द से भगवान वीतरागमूर्ति के अतिरिक्त कोई भी विकल्प और कोई भी विकल्प के फल... आहाहा! प्रेम करे तो वह दु:खी, सब प्रकार से दु:खी है। शान्तिभाई! यह तुम्हारे इतनी अवस्था

और छोटा लड़का कमावे वहाँ से, यह लड़का यहाँ कमाये। पैसेवाले लोग मानो हम सुखी हैं। आहाहा! प्रभु! तू कहाँ सुखी है, भाई?

सुख का भण्डार परमात्मा स्वयं आत्मा स्वयं है न। आहाहा! वहाँ तो तेरी दशा है नहीं। उस दिशा की ओर की दशा है नहीं। आहाहा! और पर दिशा की ओर की दशा का स्नेह है, दु:खी है, सर्व प्रकार से दु:खी है। आहाहा! वह परजीव की दया पालने का भाव है, वह परसन्मुख का है, वह भी दु:ख है। ऐसी बातें लोगों को कठिन पड़ती हैं। क्या हो, भाई! वीतराग का मार्ग इसे पहले जानने तो पड़ेगा न। आहाहा! अनन्त तीर्थंकर, अनन्त जिनवर लाखों केवली तो वर्तमान में विराजते हैं। तीर्थंकर बीस विराजते हैं। आहाहा!

यह वीतरागभाव के स्वभाव के पक्ष में न जाकर, रागादि परपदार्थ और उनके फल के संग में जाने से वह सर्व प्रकार से दु:खी है। आहाहा! कहो सेठ! तुमको सुखी नहीं कहते, ऐसा कहते हैं। दु:खी कहते हैं।

मुमुक्षु : ऐसी बात बताओ मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि दोनों को लागू पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दोनों को लागू पड़े, कहा न! राग की रुचिवाले दु:खी, आत्मा की रुचिवाले सुखी। यह दोनों को लागू पड़ा। आहाहा! जन्म-मरण रहित के उपाय, बापू! वह कहीं साधारण है! आहाहा! अनन्त बार व्रत लिये, तप किये, मुनि हुआ दिगम्बर मुनि अनन्त बार हुआ। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' आत्मज्ञान क्या चीज़ है, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द के नाथ का अन्दर में सन्मुख का प्रेम नहीं। आहाहा! उसका आदर नहीं और उससे विरुद्ध राग और राग के फल में आदर और प्रेम। सर्व प्रकार से वह क्षण-क्षण में दु:खी है, ऐसा देख। आहाहा! और स्वभाव की सन्मुख की दृष्टिवाला क्षण-क्षण में सुखी है, ऐसा देख। आहाहा! समझ में आया? **हर जगह दु:ख ही है।** आहाहा! यह ११५ हुई।

गाथा - ११६

अथ स्नेहदोषं दृष्टान्तेन द्रढयतिः-

२३९) जल-सिंचणु पय-णिद्दलणु पुणु पुणु पीलण-दुक्खु।
णेहहँ लग्गिवि तिल-णियरु जंति सहंतउ पिक्खु।।११६।।

जलसिञ्चन पादनिर्दलनं पुनः पुनः पीडनदुःखम्।
स्नेहं लगित्वा तिलनिकरं यन्त्रेण सहमानं पश्य।।११६।।

जलसिंचनं पादनिर्दलनं पुनः पुनः पीडनदुखं स्नेहनिमितं तिलनिकरं यन्त्रेण सहमानं पश्येति। अत्रवीतरागचिदानन्दैकस्वभावं परमात्मतत्त्वमसेवमाना अजानन्तो वीतरागनिर्विकल्प-समाधिबलेन निश्चलचितेनाभावयन्तश्च जीवा मिथ्यामार्गं रोचमानाः पञ्चेन्द्रियविषयासक्ताः सन्तो नरनारकादिगतिषु यन्त्रपीडनक्रकचविदारणशूलारोहणादि नानादुःखं सहन्त इति भावार्थः।।११६।।

आगे स्नेह का दोष दृष्टान्त से दृढ़ करते हैं-

पानी में भीगे, पैरों से कुचली जाए, घानी में-
पेली जाए, स्नेहमयी तिल हे योगी प्रत्यक्ष लखो।।११६।।

अन्वयार्थ :- [तिलनिकरं] जैसे तिलों का समूह [स्नेहं लगित्वा] स्नेह (चिकनाई) के सम्बन्ध से [जलसिंचनं] जल से भीगना, [पादनिर्दलनं] पैरों से खुँदना, [यंत्रेण] घानी में [पुनः पुनः] बार बार [पीडनदुःखम्] पिलने का दुख [सहमानं] सहता है, उसे [पश्य] देखो।

भावार्थ :- जैसे स्नेह (चिकनाई तेल) के सम्बन्ध होने से तिल घानी में पेले जाते हैं, उसी तरह जो पंचेन्द्रिय के विषयों में आसक्त हैं-मोहित हैं वे नाश को प्राप्त होते हैं, इसमें कुछ संदेह नहीं है।।११६।।

गाथा-११६ पर प्रवचन

११६। आगे स्नेह का दोष दृष्टान्त से दृढ़ करते हैं—

२३९) जल-सिंचणु पय-णिद्दलणु पुणु पुणु पीलण-दुक्खु।
णेहहँ लग्गिवि तिल-णियरु जंति सहंतउ पिक्खु।।११६।।

अन्वयार्थः—जैसे तिलों का समूह (चिकनाई) स्नेह के सम्बन्ध से... जो चिकनाई है न अन्दर में? आहाहा! उस तिल में चिकनाई है न चिकनाई तेल की। आहाहा! **जैसे तिलों का समूह स्नेह (चिकनाई) के सम्बन्ध से...** तिल में चिकनाई है न? चिकनाई। **'जलसिंचन' जल से भीगना,...** वह घानी में पीलते हैं, तब उस तिल को पानी में पहले भिंगोते हैं, गीला करते हैं। आहाहा! पानी में गीला करे वहाँ दुःख है उसे अन्दर। जीव है न। आहाहा! **'पादनिर्दलनं'** आहाहा! पैर से मसलना तिल को-तिल को। **पैरों से खुंदना, घानी में बार-बार पिलने का दुःख...** आहाहा! क्या कहते हैं? तिल कहते हैं न, तिल? तिल में जब तक तेल की चिकनाई है तो चिकनाईवाले तिल पानी में सिंचना पड़ते हैं, घानी में पिलते हैं, पैर से कुचले जाते हैं। आहाहा! **सहता है उसे देखो।**

भावार्थ :— जैसे स्नेह (चिकनाई तेल) के सम्बन्ध होने से... चिकनाईरूपी तेल का **सम्बन्ध होने से तिल...** चिकनाई का सम्बन्ध होने से तिल। हमारे (गुजराती में) तल कहते हैं, तुम्हारे तिल (कहते हैं)। आहाहा! उस तिल में तेल की चिकनाई है। आहाहा! यहाँ स्नेह का दृष्टान्त है न! आहाहा! **(चिकनाई तेल) के सम्बन्ध होने से तिल घानी में पेले जाते हैं, उसी तरह जो पंचेन्द्रिय के विषयों में आसक्त हैं...** आहाहा! पंचेन्द्रिय की ओर के शुभ-अशुभराग में जो आसक्त है, आहाहा! **मोहित हैं, वे नाश को प्राप्त होते हैं,...** आहाहा! तिल में चिकनाई के कारण से पानी में पैर से मर्दन और अन्दर घानी में पिलना। इसी प्रकार जब तक आत्मा परपदार्थ में राग है, आहाहा! **पंचेन्द्रिय के विषयों में आसक्त हैं...** विषय शब्द से? आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! देव-गुरु और वाणी भी सुनाई देती है, वह राग है। परद्रव्य है न!

मुमुक्षु : मर्दन अर्थात् ज्ञान है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान उसे अन्दर से होता है, सुनने से नहीं होता। आत्मा ज्ञान का सागर है, भण्डार, उसमें से ज्ञान उसके आश्रय से होता है। पर के आश्रय से नहीं होता। यह तो निमित्त का कथन है। अपना ज्ञान वाणी में है वहाँ? यह ज्ञान वहाँ भगवान

के आत्मा में है ? उनके शरीर में यह ज्ञान है कि ज्ञान वहाँ से आवे ? यह तो मार्ग दुनिया से विपरीत है, भाई ! आहाहा ! ज्ञानस्वरूप भगवान तो स्वयं ज्ञान का समुद्र है। उस ओर का लक्ष्य करने से ज्ञान होता है। परसन्मुख का लक्ष्य करने से तो राग होता है, स्नेह होता है। आहाहा !

मुमुक्षु : सुने तो विचारे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सुने तो विचारे, ऐसा नहीं, यह विचारे, तब सुना निमित्त कहने में आवे। सुना तो अनन्त बार, भगवान की वाणी सुनी है, समवसरण में अनन्त बार गया। साक्षात् भगवान विराजते हैं महाविदेह में। विहरमान तीर्थंकर सदा होते हैं। एक के बाद एक सादा तीर्थंकर (होते हैं)।

मुमुक्षु : सुनने जाये वह भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सुनकर इस आत्मा की रुचि करे तो इसने सुना व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा ! यह आया नहीं चौथी गाथा में ? श्रुत परिचित अनुभूता। राग की कथा और राग को भोगने की कथा अनन्त बार सुनी है।

मुमुक्षु : सुनी नहीं, ऐसा आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सुनी नहीं। सुनी हो तो इसे रुचि अन्दर स्वभाव में हो, तब सुनी कहने में आवे। ऐसी बातें, बापू ! बहुत अन्तर। अरेरे ! ऐसे जवान व्यक्ति देखो न चले जाते हैं। आहा ! उसके माँ-बाप को बेचारों को कितना दुःख होता होगा। स्त्री को कितना दुःख होता होगा। एक वर्ष का विवाहित और एक वर्ष का कठोर रोग। जवान व्यक्ति, शान्त व्यक्ति, दिमागवाला व्यक्ति। यह प्रेम, इस धर्म का बहुत प्रेम। इसीलिए तो हम उसे दर्शन देने गये थे। शाम को भोजन का था। मणिभाई, मणिभाई के यहाँ। अपने शान्ताबहिन के बहनोई नहीं ? उनके बहनोई। रसिकभाई के बहनोई गृहस्थ व्यक्ति हैं, पाँच करोड़ रुपये। उन्होंने आहार का कहा था, महाराज! मेरे यहाँ भोजन (करने पधारना)। मंजिल पर। गये थे तब विजय का उनसे आधे में घर था। वह खाट में पड़ा था बेचारा गत वर्ष। गये थे, दर्शन (देने), मांगलिक सुनाया था। फिर तो शुक्ल दूज को वहाँ आया था दादर, दर्शन करने आया था (वैशाख) शुक्ल दूज। रोग तो था परन्तु उसे

प्रेम है न बेचारे को। आहाहा! यह संसार। दुःख का समुद्र भरा है संसार में तो। भगवान आनन्द का समुद्र है। आहाहा! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। संसार में कोई भी विकल्प से लेकर सब चीज़ दुःख के क्षण हैं। आहाहा!

यह पैसेवाले अरबोंपति और करोड़ोंपति बेचारे दुःखी हैं। ये बेचारे हैं। वरांका, ऐसा शब्द है शास्त्र में। यह शास्त्र में पाठ है, हों! वरांका कहा है। भिखारी, आत्मा की लक्ष्मी की रुचि छोड़कर पर की लक्ष्मी के प्रेमी भिखारी हो तुम। आहाहा! उन्हें कहाँ वीतराग को कुछ लेना था इनके पास से। दिगम्बर सन्तों को कहाँ (लेना था) ? वे तो वीतरागी मुनि थे। आहाहा! दिगम्बर मुनि अर्थात् आत्मा के आनन्द में रमनेवाले। शुद्धोपयोग की दशा जिन्हें प्रगट है। आहाहा! उन्हें मुनि कहते हैं। आहाहा! उन मुनि को जगत की कहाँ पड़ी है कि जगत को यह ठीक लगेगा या नहीं लगेगा।

शास्त्र में ऐसी भाषा है। भिखारी, वरांका! आत्मिक लक्ष्मी को छोड़कर पर की भिक्षा माँगते हैं। पोपटभाई! यहाँ तो बापू! यह हो न, प्रभु! तुम भगवान हो न! आहाहा! तेरे भगवान की शक्ति का सामर्थ्य कितना है, यह बतलाते हैं। राग और वह कहीं तेरी शक्ति का सामर्थ्य नहीं। आहाहा! तेरी शक्ति का सामर्थ्य तो ज्ञान, आनन्द, श्रद्धा, वीतरागता, वह तेरी शक्ति का सामर्थ्य है। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : दान करे....

पूज्य गुरुदेवश्री : दान करे तो भी भिखारी है। दान में भी दीनता है, मैंने दान दिया, पैसे दिये, यह अभिमान मिथ्यात्व का है। आहाहा! सम्यग्दर्शनसहित राग मन्द करके करे तो वह शुभभाव पुण्य है। परन्तु जिसकी दृष्टि ही मिथ्यात्व है, अभी तो राग में धर्म मानता है... आहाहा! वह क्रियाकाण्ड व्रत का, तप का करता है, वह तो राग है, उसे धर्म मानता है, उसे दान का भाव है, वह तो मिथ्यादृष्टिसहित पापानुबन्धी पुण्य है। आहाहा! प्रभु का मार्ग अलग है, भाई! आहा! यह दिगम्बर सन्तों ने स्पष्ट कर दिया है, वीतराग का मार्ग स्पष्ट कर दिया है कि मार्ग यह है, बापू! तुझे रुचे, न रुचे, आदर हो, न हो, मार्ग यह है। आहाहा!

जैसे स्नेह (चिकनाई तेल) के सम्बन्ध होने से तिल घानी में पेले जाते हैं, उसी

तरह जो पंचेन्द्रिय के विषयों में आसक्त हैं... अनीन्द्रिय भगवान आत्मा की रुचि छोड़कर, आहाहा! पंचेन्द्रिय की ओर की चिकनाहट... आहाहा! वह सब दुःखदायक है। उससे सहित है, **मोहित हैं, वे नाश को प्राप्त होते हैं,...** अपनी शान्ति का नाश करता है। आहाहा! **इसमें कुछ सन्देह नहीं है।** परसन्मुख के लक्ष्यवाले प्राणी दुःखी है, इसमें सन्देह नहीं, दुःखी ही है। आहाहा! किसी प्रकार से वह बाहर की सुविधावाले सुखी हैं, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! **इसमें कुछ सन्देह नहीं है।** अनीन्द्रिय का ध्यान छोड़कर पंचेन्द्रिय की ओर के झुकाव में सब प्राणी दुःखी हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

गाथा - ११७

अक्तं चः-

२४०) ते चिय धण्णा ते चिय सप्पुरिसा ते जियंतु जिय-लोए।
वोद्दह-दहम्मि पडिया तरंति जे चेव लीलाए।।११७।।

ते चैव धन्याः ते चैव सत्पुरुषाः ते जीवन्तु जीवलोके।
यौवनद्रहे पतिताः तरन्ति ये तैव लीलया।।११७।।

ते चैव धन्यास्ते चैव सत्पुरुषास्ते जीवन्तु जीवलोके। ते के। वोद्दहशब्देन यौवनं स एव द्रहो महाह्दस्तत्र पतिताः सन्तस्तरन्ति ये चैव। कया। लीलयेति। अत्र विषया-कांक्षारुपस्नेहजलप्रवेशरहितेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमूल्यरत्नभाण्डपूर्णेन निजशुद्धात्मभावनापोतेन यौवनमहाह्दं ये तरन्ति त एव धन्यास्त एव सत्पुरुषा इति तात्पर्यम्।।११७।।

इस विषय में कहा भी है-

धन्य धन्य सत्पुरुष वही वे सदा लोक में जीवित हैं।
तरुणाई सागर में गिरे नहीं, लीला में ही तैरें।।११७।।

अन्वयार्थ :- [ते चैव धन्याः] वे ही धन्य हैं, [ते चैव सत्पुरुषाः] वे ही सज्जन हैं, और [ते] वे ही जीव [जीवलोके] इस जीवलोक में [जीवंतु] जीवते हैं, [ये चैव] जो [यौवनद्रहे] जवान अवस्थारुपी बड़े भारी तालाब में [पतीताः] पड़े हुए विषय-रस में नहीं डूबते, [लीलया] लीला (खेल) मात्र में ही [तरंति] तैर जाते हैं। वे ही प्रशंसा योग्य है।

भावार्थ :- यहाँ विषय-वाछाँरुप जो स्नेह-जल उसके प्रवेश से रहित जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररुपी रत्नों से भरा निज शुद्धात्मभावनारुपी जहाज उससे यौवन अवस्थारुपी महान् तालाब को तैर जाते हैं, वे ही सत्पुरुष हैं, वे ही धन्य हैं, यह सारांश जानना, बहुत विस्तार से क्या लाभ है।।११७।।

गाथा-११७ पर प्रवचन

इस विषय में कहा भी है—११७।

२४०) ते चिय धण्णा ते चिय सप्पुरिसा ते जियंतु जिय-लोए।
वोद्दह-दहम्मि पडिया तरंति जे चेव लीलाए।।११७।।

अन्वयार्थ :— आहाहा! **वे ही धन्य हैं,...** जो सत्पुरुष, सज्जन उसे कहते हैं। आहाहा! सत् जन। ज डबल है न? सज्जन। ज डबल है, सत्जन, उसे सत्जन कहते हैं। किसे? **वही जीव इस जीवलोक में जीवते हैं,...** आहाहा! **जो जवान अवस्थारूपी बड़े भारी तालाब में...** आहाहा! धन्य अवतार तेरा सत्पुरुष, तू सज्जन है। क्यों? जवान अवस्था, २५, ३०, ४०, ५० वर्ष की जवान अवस्था, सुगठित शरीर, इन्द्रियाँ पुष्ट... आहाहा! यह **बड़े भारी तालाब में पड़े हुए विषय-रस में नहीं डूबते,...** आहाहा! क्या कहते हैं? **'यौवनद्रहे'** बड़ा तालाब, जवान अवस्था। पाँच इन्द्रिय मजबूत, निरोग शरीर, रूपवान शरीर, स्त्री, कुटुम्ब भी सब अनुकूल। आहाहा! उस यौवनरूपी तालाब में जो कोई डूबते नहीं... आहाहा! उसमें रस लेकर उसमें गृद्धि नहीं करते, वे सत्पुरुष हैं। आहाहा! ऐसा कहते हैं। देखो तो सही। जवान अवस्था, जिसे भोग का काल है, कहते हैं, वह भर यौवन के काल में, आहाहा! उसमें जो रस नहीं लेता, विषय का यौवन का रस नहीं लेता, उस पुरुष को सत् कहा जाता है। वह सत्पुरुष है। आहाहा! आचार्य ने भी बात की है न! यौवन अवस्था ऐसे २५-३० वर्ष की, ४० वर्ष की उम्र ऐसी, शरीर रूपवान सुन्दर, मक्खन जैसा शरीर हो। आहाहा! भगवान! वह तो यौवन अवस्था, प्रभु! जड़ की है न, नाथ! आहाहा! वह यौवनरूपी द्रह, ऐसा कहा है न? आहाहा! तालाब।

जीवते हैं,... 'यौवनद्रहे' आहाहा! **जवान अवस्थारूपी बड़े भारी तालाब में पड़े हुए...** ऐसे भरे हुए तालाब में युवा अवस्था, आहाहा! **जवान अवस्थारूपी बड़े भारी तालाब में पड़े हुए विषय-रस में नहीं डूबते,...** आहाहा! जिसे विषयरस मीठा नहीं लगता। आहाहा! जहर जैसा लगता है। भगवान आत्मा के आनन्द के रस में यौवन अवस्था का रस है, वह जहर जैसा लगता है। आहाहा! सर्वोत्कृष्ट बात की। हें! आहाहा! उसमें पाँच, पचास करोड़ पैसा हो, युवा अवस्था हो, उसे स्त्री रूपवान व्यवस्थित हो। आहा! प्रभु! उसमें उसे रस नहीं, वह सज्जन पुरुष है, ऐसा कहते हैं। उसमें रस पड़ा है, वह असत्जन है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! निकल गये नेमिनाथ भगवान जैसे तीर्थंकर, युवा अवस्था। ऐसे पशुओं को बाँधे हुए देखकर (कहते हैं), अरे... सारथी! यह पशुओं की पुकार क्यों होती है? अन्नदाता! आपके विवाह प्रसंग में राजाओं को बुलाया है, राजाओं के लिये पशु! अरे... सारथी! रथ मोड़। यह विवाह हमारे नहीं होगा। आहाहा! वे तो तीर्थंकर, इन्द्र जिनकी सेवा करे। हें! सारथी! इस विवाह के प्रसंग में राजाओं के लिये बाँधे हुए पशु और जानवर हिरण और वह, यह विवाह नहीं होगा हमारे। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, थे न! सब कोई होते हैं? कोई हो अन्दर। भगवान तीर्थंकर। दूसरे राजा हों, वे भी साथ में होते हैं न! यह तो उन्हें निमित्त ऐसा हुआ। वैराग्य तो था अन्दर। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, था। यह दिखाव किया था। राजा होते हैं न, राजा साथ में होते हैं न। आहाहा! जवान अवस्था, सुगठित अवस्था, इन्द्र सेवा करे। यह नहीं, यह नहीं। हमारे आनन्द के समक्ष यह क्या भाई? हमारे लिये यह क्या प्रसंग? छोड़, रथ मोड़। अन्दर दिशा बदल। आहाहा! समझ में आया? उस पुरुष को कहते हैं कि धन्य है। आहाहा! हें!

लीलामात्र में ही तैर जाते हैं। आहाहा! रस में डूबते नहीं और लीलामात्र आनन्द में रहकर संसार तिर जाते हैं। उन्हें यहाँ धन्य कहा गया है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, पौष कृष्ण ६, मंगलवार
दिनांक- ११-०१-१९७७, गाथा - ११६ से ११९ प्रवचन-१८३

परमात्मप्रकाश, ११७ का भावार्थ है। ११६ में थोड़ा टीका का रह गया है। ११६ है न? टीका का अर्थ थोड़ा उसमें नहीं किया। भावार्थ, ११६ का भावार्थ।

जैसे स्नेह (चिकनाई तेल के) सम्बन्ध होने से तिल घानी में पेले जाते हैं,... तिल में तेल—चिकनाई है, इसलिए तिल को पिलना पड़ता है। तिल-तिल है न? तिल में चिकनाई है न? तेल। इसलिए तिल को पीसा जाता है। है न? फिर थोड़ा शब्द संस्कृत में है। अर्थ में नहीं किया। '**वीतरागचिदानन्दैकस्वभावं परमात्मतत्त्वमसेवमाना**' आहाहा! पंचेन्द्रिय के विषय में उसे रस और प्रेम क्यों है? ऐसा कहते हैं। कि अपना आत्मा वीतराग चिदानन्द एकस्वभाव। संस्कृत में है, अर्थ में नहीं। '**परमात्मतत्त्वम-सेवमाना**' आहाहा! वीतराग चिदानन्द एकस्वभाव यह परमात्मतत्त्व अपना। आहाहा! उस तत्त्व को '**असेवमाना।**' ऐसे तत्त्व को नहीं सेवन करता हुआ '**अजानन्तो**' नहीं जानता हुआ। '**वीतरागनिर्विकल्पसमाधिबलेन**' उसे नहीं जानता और नहीं सेवन करता हुआ '**वीतरागनिर्विकल्पसमाधिबलेन**' आहाहा! '**निश्चलचित्तेनाभावयन्तश्च**' रागरहित अन्तर निर्विकल्प शान्ति—समाधि। आहाहा! उसे न भाता हुआ, अपनी भावना अन्तर में नहीं करते।

वह '**जीवा मिथ्यामार्ग सेवमानाः पंचेन्द्रियविषयासक्ताः सन्तो**' जिसे भगवान निजानन्द वीतराग परमात्मा और उसकी असेवना, उसकी सेवना नहीं (अर्थात्) प्रभु भगवान में एकाग्रता नहीं और '**अजानन्तो वीतरागनिर्विकल्पसमाधिबलेन**' रागरहित वीतराग परिणति की शान्ति के बल से। आहाहा! '**निश्चलचित्तेनाभावयन्तश्च**' निश्चल चित्त करके आत्मा की भावना नहीं करते। आहा! समझ में आया? वह जीव पंचेन्द्रिय के विषय में गृद्धि होकर राग की गृद्धि की चिकनाई में चार गति में परिभ्रमण करते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह टीका का अर्थ हो गया। अब १७७ का भावार्थ।

भावार्थ :— यहाँ विषय-वांछारूप जो स्नेह-जल... आहाहा! अपने आनन्दस्वभाव की भावना रहित अज्ञानी **विषय-वांछारूप जो स्नेह-जल...** चिकनाईरूपी जल **उसके प्रवेश से रहित...** आहाहा! **जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी अमूल्य रत्नों से भरा...** एक 'अमूल्य' शब्द रह गया है। अमूल्य शब्द चाहिए। है ? अमूल्य शब्द रह गया है। टीका में अमूल्य है। **विषय-वांछारूप जो स्नेह-जल...** पर में विषय के प्रेम के जल में भींग गया अज्ञानी। आहाहा! समझ में आया ? **उसके प्रवेश से रहित... उसके प्रवेश से रहित जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी अमूल्य रत्नों से भरा निजशुद्धात्म-भावनारूपी जहाज...** आहाहा! शास्त्र की भाषा तो देखो!

उससे यौवन अवस्थारूपी महान तालाब को तैर जाते हैं,... आहाहा! यौवन अवस्था २५, ३०, ४० वर्ष की जवान, सुगठित अवस्था, शरीर कोमल। अरेरे! यह क्या ? यह तो माँस और हड्डियाँ हैं, कहते हैं। आहाहा! ऐसी दशा में अपने आनन्दस्वभाव की भावना से। आहाहा! **यौवन अवस्थारूपी महान तालाब...** पाठ है न ? द्रह—यौवनरूपी बड़ा तालाब है डूबने का। आहाहा! समझ में आया ? शरीर की यौवन अवस्था, शरीर की पुष्टि, इन्द्रियों की पुष्टि, उसमें गृद्धि होकर जो आसक्त है, वह यौवन वय में अपने आनन्द से भरपूर जहाज, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूपी रत्न से भरपूर जहाज। आहाहा! उससे यौवनवय का तालाब तिर जाता है। समझ में आया ? आहाहा! यौवन अवस्था में शरीर पुष्ट हो, इन्द्रियाँ पुष्ट हों और उनकी गृद्धि बहुत हो। आहाहा! उसकी यहाँ बात करते हैं।

भगवान आत्मा की यौवन अवस्था, परमानन्दस्वभाव में लीन होना, वह आत्मा की यौवन अवस्था है। आहाहा! समझ में आया ? वह तो मिट्टी की—जड़ की अवस्था है। आहाहा! **उससे यौवन अवस्थारूपी महान तालाब को तैर जाते हैं, वे ही सत्पुरुष हैं,...** आहाहा! **वे ही धन्य हैं, यह सारांश जानना,...** लो! **बहुत विस्तार से क्या लाभ है।** आहाहा! है न ? **'धन्यास्त एव सत्पुरुषा इति तात्पर्यम्।'** आहाहा! सम्यग्दर्शन, ज्ञान अपना स्वभाव पूर्णानन्द की प्रतीति, उसका स्वसंवेदनज्ञान और उसमें आनन्द में लीनतारूपी चारित्र, उससे यौवन अवस्था के द्रह को—तालाब को तिर जाते हैं। आहाहा! वे सत्पुरुष हैं, वे धन्य हैं, वे मोक्षगामी आत्मा हैं। आहाहा!

पाँच इन्द्रिय के विषय में रस में आसक्ति और गृद्धि, वह चार गति में भटकने का कारण है। आहाहा! क्योंकि सुख अपने में है, उसे छोड़कर विषयों में सुख है, मिठास है, ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। आहा! इसलिए कहा न अन्दर, मिथ्यामार्ग है। समझ में आया? मिथ्या कहा न यहाँ? **वांछारूप जो स्नेह-जल उसके प्रवेश से रहित जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी...** उसमें जो अन्दर घुस जाता है। आहाहा! वह मिथ्यामार्ग है, ऐसा कहते हैं। पहले आ गया है, पहले आ गया है। ११६ में आ गया है, '**मिथ्यामार्ग रोचमाना:**' रुचता है, रुचने के ऊपर बात है। विषय आसक्ति तो ज्ञानी को भी होती है, परन्तु आसक्ति में रस नहीं, रुचि नहीं, सुखबुद्धि नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह सुखबुद्धि माननेवाले मिथ्यामार्ग में रस लेते हैं, ऐसा कहते हैं। आहा! जो चार गति में भटकने का पंथ, उसका रस लेते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप की रुचि, ज्ञान और रमणता के अभाव में इसमें रमणता करते हैं, कहते हैं। दिशा बदल गयी है, कहते हैं। विषय कषाय का रस जिसे उड़ गया, उसकी दिशा स्व के ऊपर जाती है और दशा बदल गयी है। आहाहा! क्या कहा? विषय पाँच इन्द्रिय के विषय का रस जिसे उड़ गया है, उसे आत्मा के आनन्द के रस में रुचि है, तो उसे बाहर की रुचि होती नहीं। आहाहा! (बाहर में रस लेना), वह तो मिथ्यामार्ग है।

यौवनद्रह, ऐसा लिखा है पाठ में। पाठ है न? '**दहम्मि**' '**वोद्दह-दहम्मि**' तीसरा पद, मूल पाठ। यौवनरूपी द्रह—बड़ा तालाब। आहाहा! उसे वह तिर जाता है। अज्ञानी पाँच इन्द्रिय के विषय के रस में डूब जाता है। आहाहा! समझ में आया? यह ११७ हुई।

गाथा - ११८

किं बहुना विस्तरेण-

२४१) मोक्खु जि साहिउ जिणवरहिँ छंडिवि बहु-विहु रज्जु।
भिक्ख-भरोडा जीव तुहुँ करहि ण अप्पउ कज्जु।।११८।।

मोक्षः एव साधितः जिनवरैः त्यक्त्वा बहुविधं राज्यम्।
भिक्षाभोजन जीव त्वं करोषि न आत्मीयं कार्यम्।।११८।।

मोक्खु जि इत्यादि पदखण्डनारुपेण व्याख्यानं क्रियते। मोक्खु जि साहिउ मोक्षएव साधितः निरवशेषनिराकृतकर्ममलकलङ्कस्यात्मनः आत्यन्तिकस्वाभाविकज्ञानादिगुणास्पद-मवस्थान्तरं मोक्षः स साधितः। कैः। जिणवरहिं जिनवरैः। किं कृत्वा। छंडिवि त्यक्त्वा। किम्। बहु-विहु रज्जु सप्ताङ्गराज्यम्। केन। भेदाभेदरत्नत्रयभावनाबलेन। एवं ज्ञात्वा भिक्ख-भरोडा जीव भिक्षाभोजन हे जीव तुहुँ त्वं करहि ण अप्पउ कज्जु किं न करोषि आत्मीयं कार्यमिति। अत्रेदं व्याख्यानं ज्ञात्वा बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहं त्यक्त्वा वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा च विशिष्टतपश्चरणं कर्तव्यमित्यभिप्रायः।।११८।।

आगे मोक्ष का कारण वैराग्य को दृढ़ करते हैं-

सभी जिनवरों ने बहुविध वैभव तज साधा है शिवमार्ग।
हे भिक्षा-भोजी योगी तू क्यों नहिं करता अपना कार्य।।११८।।

अन्वयार्थ :- [जिनवरैः] जिनेश्वरदेव ने [बहुविधं] अनेक प्रकार का [राज्यम्] राज्य का विभव [त्यक्त्वा] छोड़कर [मोक्ष एव] मोक्ष को ही [साधितः] साधन किया, परंतु [जीव] हे जीव, [भिक्षाभोजन] भिक्षा से भोजन करनेवाला [त्वं] तू [आत्मीयं कार्यम्] अपने आत्मा का कल्याण भी [न करोषि] नहीं करता।

भावार्थ :-समस्त कर्ममल-कलंक से रहित जो आत्मा उसके स्वाभाविक ज्ञानादि गुणों का स्थान तथा संसार-अवस्था से अन्य अवस्था से अन्य अवस्था का होना, वह मोक्ष कहा जाता है, उसी मोक्ष को वीतरागदेव ने राज्यविभूति छोड़कर सिद्ध किया। राज्य के सात अंग हैं, राजा, मंत्री, सेना वगैरः। ये जहाँ पूर्ण हों, वह उत्कृष्ट राज्य कहलाता है, वह राज्य तीर्थंकरदेव का है, उसको छोड़ने में वे तीर्थंकर देरी नहीं

करते। लेकिन तू निर्धन होकर आत्म-कल्याण नहीं करता। तू माया-जाल को छोड़कर महान् पुरुषों की तरह आत्मकार्य कर। उन महान् पुरुषों ने भेदाभेदरत्नत्रय की भावना के बल से निजस्वरुप को जानकर विनाशीक राज्य छोड़ा, अविनाशी राज्य के लिये उधमी हुए। यहाँ पर ऐसा व्याख्यान समझकर बाह्याभ्यंतर परिग्रह का त्याग करना, तथा वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में ठहरकर दुर्धर तप करना यह सारांश हुआ।।११८।।

गाथा-११८ पर प्रवचन

११८। **आगे मोक्ष का कारण वैराग्य को दृढ़ करते हैं—**

२४१) **मोक्खु जि साहिउ जिणवरहिँ छंडिवि बहु-विहु रज्जु।**
भिक्ख-भरोडा जीव तुहुँ करहि ण अप्पउ कज्जु।।११८।।

भाषा सादी परन्तु माल है अन्दर। क्या कहते हैं, देखो।

अन्वयार्थ :— जिनेश्वरदेव ने अनेक प्रकार का राज्य का वैभव छोड़कर मोक्ष को ही साधन किया, परन्तु हे जीव, भिक्षा से भोजन करनेवाला तू... भिखारी जैसा है तू। गृहस्थाश्रम में हो तो भी भिखारी जैसा है। आहाहा! **भिक्षा से भोजन करनेवाला...** आहाहा! अरे जीवडा! **अपने आत्मा का कल्याण भी नहीं करता...** तू। है न? जिसने विशाल चक्रवर्ती राज एक क्षण में छोड़ दिया। आहाहा! छियानवें हजार स्त्रियाँ, चौदह हजार देव सेवा करनेवाले। हमारे आनन्द के रस में हम तो वन में चले जाते हैं। जिसके इन्द्र सेवक, ऐसे तीर्थंकर भी... आहाहा! राज्य को छोड़कर मोक्ष का साधन करते हैं। अरे, जीव! तू भिखारी जैसा, तेरे आत्मा का कार्य तू नहीं करता। ऐसा कहते हैं। है न? **'भिक्ख-भरोडा'। भिक्षा से भोजन करनेवाला...** ऐसा। यह पाँच-पच्चीस लाख रुपये, वह भिक्षा से भोजन करनेवाला है, भिखारी है सब। विशाल राज चक्रवर्ती का राज किसे कहते हैं? आहाहा!

मुमुक्षु : चक्रवर्ती को छह खण्ड का राज हो तो बड़ा भिखारी?

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा नहीं। वह छोड़ देता है, ऐसा यहाँ कहना है। इतनी बड़ी सम्पदा। छह खण्ड एक क्षण में कफ छोड़ दे, वैसे छोड़ देता है। आहाहा! वैराग्य दृढ़

कराते हैं न! आहाहा! तेरे पास क्या चीज़ है? समझ में आया? चक्रवर्ती तीर्थंकर १६, १७ और १८वें। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ। १६, १७, १८वें। शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ चक्रवर्ती, तीर्थंकर और कामदेव तीन पदवियाँ। आहाहा! उनके जैसा रूप नहीं। आहाहा! वह तो जड़ की चीज़ है। आहाहा! यौवन अवस्था में भी त्याग करके, आहाहा! अपने स्वरूप का कार्य किया राज्य छोड़कर। भिखारी! तू तो भिक्षा-भोजन करनेवाला है, भिखारी जैसा। तेरे आत्मा का कार्य करने में तुझे प्रमाद है? आत्मा का कार्य क्यों नहीं करता? ऐसा कहते हैं। लिखा है न? **'जीव तुहुँ करहि ण अप्पउ कज्जु।'** जीव! तू अपना कार्य नहीं करता। आहाहा! समझ में आया? है? **अपने आत्मा का कल्याण भी नहीं करता।** आहाहा! अब मोक्ष की अवस्था की व्याख्या करते हैं।

भावार्थ :— समस्त कर्ममल-कलंक से रहित... मोक्ष कहा न! जिनवर मोक्ष को प्राप्त हुए, ऐसा कहा न? चक्रवर्ती आदि राज्य छोड़कर मोक्ष को प्राप्त हुए, तो मोक्ष कैसा है? **समस्त कर्ममल-कलंक से रहित जो आत्मा, उसके स्वाभाविक ज्ञानादि गुणों का स्थान...** आहाहा! स्वाभाविक गुण अर्थात् पर्याय निर्मल, उसका स्थान **तथा संसार-अवस्था से अन्य अवस्था का होना,...** पहले अस्ति कही। **समस्त कर्ममल-कलंक से रहित...** अपने शुद्ध स्वाभाविक ज्ञानादि गुणों का स्थान **तथा संसार-अवस्था से अन्य अवस्था का होना,...** संसार विकारी अवस्था से अन्य निर्विकारी अवस्था होना। आहाहा! **वह मोक्ष कहा जाता है,...** मोक्ष की व्याख्या की, लो। श्रीमद् में आता है न? 'मोक्ष कह्यो निज शुद्धता, वह पावे सो पंथ।' 'मोक्ष कह्यो निज शुद्धता'। आत्मा की पूर्ण पवित्रता, वह मोक्ष। आहाहा!

अथवा संसार अवस्था से रहित कहा न? मोक्ष है न, मोक्ष में तो अभाव हुआ न! दुःख का सर्वथा अभाव और आनन्द की पूर्ण अवस्था की प्राप्ति। आहाहा! समझ में आया? मोक्ष है न? तो मोक्ष का, छूटना—ऐसा अर्थ है। तो किससे छूटना? दुःख से। दुःख से छूटना और प्राप्ति किसकी हुई? समस्त कर्ममल से रहित आत्मा की स्वाभाविक पूर्ण दशा की प्राप्ति हुई। आत्मा का लाभ हुआ। नियमसार में ऐसा शब्द है। समझ में

आया? आत्मा का लाभ हुआ, पूर्ण आत्मा की पर्याय का लाभ हुआ, वह मोक्ष है। आहाहा! नियमसार में पहले गाथाओं में आता है।

उसी मोक्ष को वीतरागदेव ने राज्यविभूति छोड़कर सिद्ध किया। आहाहा! **राज्य के सात अंग हैं,...** पाठ है न अन्दर? सप्तांग है। संस्कृत में है। **राजा, मन्त्री, सेना वगैरह। ये जहाँ पूर्ण हों, वह उत्कृष्ट राज्य कहलाता है, वह राज्य तीर्थंकरदेव का है,...** आहाहा! **उसको छोड़ने में वे तीर्थंकर देरी नहीं करते।** ऐसी विभूति तीर्थंकरदेव को होती है। समझ में आया? आहाहा! **उसको छोड़ने में वे तीर्थंकर देरी नहीं करते।** देरी नहीं लगाते। आहाहा!

लेकिन तू निर्धन होकर... ऐसा कहते हैं। भिक्षा-भोजन का अर्थ यह है। तू तो निर्धन है, तेरे पास है क्या? आहाहा! समझ में आया? **आत्म-कल्याण नहीं करता।** आहाहा! तेरे पास क्या है धूल में? दो, पाँच, दस लाख हो, वह तो सब धूल है। तेरे कहाँ? तू तो निर्धन है। आहाहा! तीर्थंकर त्रिलोकनाथ जिनकी चौदह-चौदह हजार देव सेवा करे। आहाहा! चक्रवर्तीपद। आहाहा! उस राज विभूति का पार नहीं। छियानवें करोड़ सैनिक, छियानवें करोड़ गाँव, अड़तालीस हजार पाटण, बहत्तर लाख नगर। आहाहा! समझ में आया? अभी तो यह चीन बड़ा कहलाता है न देशों में? नहीं? देश में नब्बे करोड़ की आबादी। आबादी में बड़ा कहलाता है। सत्ता में यह रशिया और अमेरिका। आबादी में वह है। यह तो बड़ी आबादी। समझ में आया? आहाहा! छियानवें करोड़ तो गाँव। छियानवें करोड़ गाँव। आहाहा! तुझे तो एक भी गाँव नहीं, निर्धन है भिखारी। आचार्य उलहाना देते हैं, चन्दुभाई! आहाहा! जिसके वैभव का... पाठ है न?

'मोक्खु जि साहिउ जिणवरहिँ छंडिवि बहु-विहु रज्जु।' है न? अनेक प्रकार के राज्य का वैभव। **'बहुविधं राज्यम्'**। आहाहा! यह वैभव भगवान आत्मा का तो तूने प्रगट किया नहीं। धूल के वैभव में रस लेकर जिन्दगी व्यर्थ गँवायी। आहाहा! आचार्य वैराग्य करते हैं। आहाहा! **लेकिन तू निर्धन होकर आत्म-कल्याण नहीं करता।** आहाहा! **तू माया-जाल को छोड़कर महान पुरुषों की तरह आत्मकार्य कर।** आहाहा! महापुरुष

तीर्थंकर हुए, वैसा तू आत्मकार्य कर। आहाहा! आत्मकार्य करने में दोनों समान हैं। भगवान ने आत्मकार्य विभूति छोड़कर किया और तू न छोड़, परन्तु आत्मकार्य में समान है। आहाहा! आत्मकार्य करने में तू हीन है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **तू माया-जाल को छोड़कर महान पुरुषों की तरह आत्मकार्य कर।**

उन महान पुरुषों ने भेदाभेदरत्नत्रय की भावना के बल से... साथ में लिया है न, निश्चय और व्यवहार दोनों। कथन की शैली में यह साथ में दो आते हैं। अभेदरत्नत्रय और भेदरत्नत्रय। भेदरत्नत्रय है तो विकल्प परन्तु दोनों की आराधना की। समझ में आया? मोक्षमार्ग है तो एक ही, परन्तु दो मार्ग की कथनशैली है। इसी प्रकार अभेद रत्नत्रय आराधक है, परन्तु कथन में भेदरत्नत्रय भी साथ में आता है। आहाहा! समझ में आया? **भेदाभेदरत्नत्रय की भावना....** अन्तर में स्वरूप में एकाग्रता। रागरहित अत्यन्त अभेदरत्नत्रय, वह निश्चय और अशुभरागरहित जो शुभराग में एकाग्रता, वह व्यवहार। समझ में आया? ऐसी बात है। **निजस्वरूप को जानकर विनाशीक राज्य छोड़ा,...** आहाहा! अविनाशी राज्य लिया। आहाहा! यह अविनाशी विभूति। छियानवें हजार स्त्रियाँ, चक्रवर्ती पद, कफ छोड़े वैसे छोड़ दिया। शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ। आहाहा!

पुराण में आता है, शान्तिनाथ पुराण में। जब भगवान दीक्षित होते हैं, शान्तिनाथ तीर्थंकर, चक्रवर्ती और बलदेव (कामदेव)। सुन्दररूप, उनके जैसा भरत में नहीं। स्त्रियाँ चोटियाँ खींचती हैं। अरे रे! प्रभु! तुम कहाँ (चले)? अरे! तुम्हारे लिये हम रहे थे? तुम्हारे आकर्षण के कारण मैं रहा था? मेरा राग था, इसलिए मैं रहा था। अब मेरा राग मर गया है। आहाहा! मेरा राग मर गया है, जीवित नहीं होगा। आहाहा! तुम्हारे कारण से हम नहीं रहे थे। मेरे राग के कारण से मैं रहा था। तुम्हारा आकर्षण मुझे हो यह है नहीं। ऐसा पुराण में आता है। दीक्षा लेते हैं एकदम। श्वेताम्बर की तरह नहीं कि बारह महीने तक दान दे, वर्षी, क्या कहलाता है वह? वर्षीदान। ऐसा नहीं है। वह तो एकदम वैराग्य हुआ। ओहो! रानियाँ एकदम, आहाहा!

वह भर्तृहरि का नहीं कहा था? भर्तृहरि के नाटक में आता है। भर्तृहरि को जब

पिंगला की खबर पड़ती है। अरर! अरे! मैं अधिपति... भाई और मैं भर्तृहरि ९२ लाख मालवा का अधिपति। नाटक में सब आता है, सब देखा है न! आहाहा! उसकी स्त्री अश्वपाल के साथ? अरेरे! यह संसार! 'देखा नहीं कुछ सार जगत में, देखा नहीं कुछ सार।' ऐसा बोलता है भाई नाटक में, भर्तृहरि। अरेरे! रानी मेरी प्यारी पिंगला, अश्वपाल संग प्यार, अरे रे! यह क्या हुआ? आहाहा! वैराग्य की बात है न! इस वैराग्य की दृष्टि की खबर नहीं होती तत्त्व की। आहाहा! दीक्षित होता है। उसके गुरु कहते हैं, पिंगला से आहार लेकर आओ, फिर हमारे साथ आओ। जाता है। 'भिक्षा देने मैया पींगला' वह पिंगला शोक में है। अपमान हो गया, चल निकलती है, बाहर बात प्रसिद्ध हो गयी। शोक में थी, कुछ पकाया नहीं था। जाते हैं योगीराज। 'भिक्षा देने मैया पिंगला' अरे! राजन्! माता न कहो। आहाहा! ९२ लाख का अधिपति वह जोगीराज के साथ चल निकलता है। आहाहा! दृष्टि नहीं, तत्त्व की बात नहीं, यह तो बाहर का वैराग्य। आहाहा! माता! मुझे भिक्षा दे, मेरी जमात चली जा रही है, मैं खड़ा नहीं रहूँगा। आहाहा! वैराग्य के नाटक थे पहले, भाई! अभी तो कुकर्म हो गये हैं, फिल्म... फिल्म न! आहाहा!

भिक्षा देने मैया। तब पिंगला कहती है, 'खीर रे बनाऊँ क्षण एक में, जीमते जाओ जोगीराजजी', मेरे पास अभी कुछ नहीं है। मैं एक दूध की खीर बना दूँ अभी। दूसरा तो तुम खड़े नहीं रह सको। 'खीर रे बनाऊँ क्षण एक में, जीमते जाओ जोगीराजजी'। माता! हम एक क्षण भी खड़े नहीं रहेंगे। आहाहा! चन्दुभाई! उस समय नाटक देखकर धुन चढ़ जाती थी।

मुमुक्षु : तब से आपको वैराग्य चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। पहले से है। वह कैसी कहलाये? मीराबाई। उस समय छोटी उम्र की (संवत्) १९६४ की बात है। तब से देखे हैं। नाटक देखने जाते थे न, वैरागी देखने जाते और फिर उसकी पुस्तक हाथ में लेते। लाओ भाई, तुम्हारे बारह आने, जो लेते हों वे। टिकिट के बारह आना और पुस्तक के बारह आना। हमें खबर तो पड़े कि तुम क्या बोलते हो। आहाहा! मीराबाई भी ऐसा कहती है, आहाहा! उस समय

लोगों को वैराग्य—उदास हो, ऐसी कोई चीज़ हो न! दृष्टि का विषय तो सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं है। समझ में आया? सर्वज्ञ ज्ञान आत्मा का होता है, तो ज्ञान के साथ वैराग्य हो, उसे वैराग्य कहा जाता है। निर्जरा अधिकार में आया न? ज्ञान-वैराग्य शक्ति। अस्ति-नास्ति की है। अस्ति का भान हुआ है तो राग से नास्ति का वैराग्य हो गया। आहाहा! समझ में आया? अकेला वैराग्य... वैराग्य यह... आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ जहाँ प्रतीति में अनुभव में आया तो उसका ज्ञान हुआ और जब ज्ञान हुआ तो पर से हट गया, राग से हट गया, वह वैराग्य हुआ। ऐसी दो शक्तियाँ ज्ञानी की निरन्तर होती है। आहाहा! समझ में आया? यह निर्जरा अधिकार में आया न? तीसरी, चौथी गाथा। १९३ में कर्म की निर्जरा, १९४ में अशुद्ध निर्जरा—भावनिर्जरा, पश्चात् वैराग्य और ज्ञानशक्ति की दो गाथायें आती हैं। है न! आहाहा! यह बातें ऐसी तो कहीं है नहीं, बापू! उन लोगों में वैराग्य की बातें हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! तीन लोक का नाथ, जिसे वैभव का पार नहीं, वे कफ की भाँति छोड़कर चल निकले, प्रभु! तुझे निर्धन, आहाहा! पाठ में तो यह है, **'भिक्षाभोजन'**, **'भिक्ख-भरोडा'।** भिक्षा से अनाज लेनेवाला साधारण निर्धन प्राणी तू। आहाहा! तुझे आत्मा का कार्य करने का सूझता नहीं? आहाहा! आत्मा का कार्य कर। आहाहा! जिसने अपने आत्मा के आनन्द की भावना के बल से **निजस्वरूप को जानकर...** देखो! निजस्वरूप जाना कैसे, यह भी साथ में लिया। है? **भेदाभेदरत्नत्रय की भावना के बल से निजस्वरूप को जानकर...** यह वापस जानने में आया, यह अकेला शास्त्र का ज्ञान किया, ऐसा नहीं है। आहाहा! अन्तर में भगवान आत्मा की एकाग्रतारूपी अभेदरत्नत्रय, (साथ में) विकल्प है व्यवहार है, उसकी भावना से। आहाहा! **निजस्वरूप को जानकर...**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार डाला है, भाव नहीं व्यवहार डाला है। मोक्षमार्ग दो प्रकार से कहा जाता है न, इस अपेक्षा से दो डाला है। इस अपेक्षा से। मार्ग तो एक ही है। यह कथनशैली ऐसी आती है। पुरुषार्थसिद्धि में भी ऐसा आया है मूल श्लांक में है।

निश्चय-व्यवहार से मुक्ति होती है—ऐसा पाठ, श्लोक ही है। वह इस अपेक्षा से कथन है। समझ में आया? भेदरत्नत्रय में अशुभ टलता है। निश्चयरत्नत्रय में शुभाशुभभाव दोनों टलते हैं, यह अपेक्षा ली है। आहाहा! भाई! आता है न? नहीं। आज भाई हिम्मतभाई गये हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह होता है, यह होता है। अशुभवंचनार्थं, ऐसा पाठ है पंचास्तिकाय टीका में। अशुभवंचनार्थं अस्थान का राग टालने के लिये शुभभाव आता है।

मुमुक्षु : अस्थान का राग....

पूज्य गुरुदेवश्री : दो बोल हैं, खबर है न! पंचास्तिकाय टीका में है। आहाहा! वह बुद्धिपूर्वक आता है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। बाकी निश्चय से तो उस समय में आता है। समझ में आया? उस समय का काल ही है। आहाहा! जिसे निश्चय क्रमबद्ध बात बैठ गयी, आहाहा! वह क्रमबद्ध का निर्णय द्रव्य के आश्रय से होता है। तो द्रव्य के आश्रय से जब जिस समय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान उत्पत्ति का काल है, उसी समय में, उसी समय का राग की उत्पत्ति का काल व्यवहार का है। समझ में आया?

यह कहा न? द्रव्यसंग्रह—४७ गाथा। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**'। आहाहा! ४७ गाथा, द्रव्यसंग्रह। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**'। दो प्रकार के मोक्षमार्ग ध्यान में नियम से पाते हैं। समझ में आया? क्या? जब अपने भगवान आत्मा का झुकाव हुआ अन्दर से, वह निश्चयमोक्षमार्ग और अभी पूर्ण हुआ नहीं तो राग बाकी है। ध्यान में यह दोनों प्राप्त होते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! राग बाकी रहा, उसे आरोप से व्यवहारमार्ग कहा। निश्चय से तो क्रमबद्ध के निर्णय में तो जिस समय निश्चय हुआ, उसी समय में राग बाकी है, वह तो राग ही है। इसलिए उसका अर्थ ऐसा नहीं कि व्यवहार है, तो निश्चय हुआ। व्यवहार से निश्चय हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अपने स्वभाव का आश्रय करके जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र हुए, वे ही उसकी उत्पत्ति का, मोक्षमार्ग की परिणति की उत्पत्ति का काल—निजक्षण था। आहाहा! समझ में आया? उसी क्षण में

राग बाकी रहा, उसे व्यवहाररत्नत्रय कहकर कहा है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। यह भेदाभेद की व्याख्या चली। भेदाभेद की भावना शब्द है न? **भेदाभेदरत्नत्रय की भावना...** ऐसा है, देखा? इसका अर्थ यह हुआ। आहाहा!

स्वरूप का अभेदपना होने पर निश्चय कहलाता है उसे। वह तो कल कहा नहीं था? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को एक-एक को जब कहो तो वह सद्‌भूतव्यवहार कहा, पर्याय है। और तीन का एकरूप हुआ, तब निश्चय हुआ। वह भी पर्याय है तो उसे अभेद होकर निश्चय कहा। वास्तव में तो द्रव्य निश्चय और वह पर्याय अभेद हुई, वह भी व्यवहार है। आहाहा! कैसी शैली है, देखो! आहाहा! क्या कहा? इन दो के ऊपर की बात चलती है।

भेदाभेदरत्नत्रय की भावना यहाँ कहा। तो भेदरत्नत्रय में तो विकल्प है, राग है। समझ में आया? परन्तु वह साथ में आता है तो उसे भेदाभेदरत्नत्रय की भावना कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? और उसमें तो यह सिद्धान्त है, अभी ऐसा कहते हैं न? कि व्यवहार से निश्चय होता है, यह बात उड़ जाती है। आहाहा! जब अपने अभेदरत्नत्रय के काल में जब निश्चय परिणति षट्कारक से उत्पन्न होती है, उसी समय राग बाकी रहा, वह भी षट्कारक से परिणत राग, एक पर्याय में दो भाग षट्कारक से परिणत होते हैं। चन्दुभाई! बापू! ऐसा मार्ग है। आहाहा! क्या कहा?

फिर से। आहाहा! जिस समय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की परिणति उत्पन्न होने का काल है, निजक्षण है, उस समय उत्पन्न होता है। अब उसी समय में राग बाकी है, वह भी उस क्षण में उत्पन्न होने का काल है। तो एक समय में पर्याय एक और भाग दो। एक पर्याय में स्व के आश्रय से जो उत्पन्न हुई है, उसे निश्चय कहते हैं; पर के आश्रय से उत्पन्न हुई, उसे व्यवहार कहते हैं। समझ में आया? तो यहाँ भेदाभेदरत्नत्रय को साथ लेकर आराधना—भावना कहा है। आहाहा! वास्तविक आराधना तो अभेद की है। अभेद पर्याय है, उसे निश्चय कहा। वह तो भेद से छूटने की अपेक्षा से अभेद को निश्चय कहा। परन्तु अभेदरत्नत्रय की परिणति—पर्याय है, वह द्रव्य की अपेक्षा से तो वह पर्याय भी व्यवहार है। परमार्थवचनिका में आया है। निश्चय, वह द्रव्य है और

जो मोक्षमार्ग साधना, वह व्यवहार है। निश्चयमोक्षमार्ग साधना, वही व्यवहार है। हें! आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें, बापू! वीतराग का मार्ग। आहाहा! कितनी अपेक्षायें पड़ती हैं इसमें। वह सब ज्ञान की बहुलता है, ज्ञान की विशालता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, यह भेदाभेद का आया, उसमें से आया। **भेदाभेदरत्नत्रय की भावना के बल से निजस्वरूप को जानकर...** आहाहा! **विनाशीक राज्य छोड़ा, अविनाशी राज्य के लिये उद्यमी हुए।** आहाहा! निजाधन भगवान आत्मा, निज-धन। पूर्णानन्द की लक्ष्मी का भण्डार भगवान। आहाहा! यह आ गया न? उसमें आया था, उसमें नहीं? शुद्धात्मा... सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूपी अमूलख रतन पर्याय को लिया, हों! ११७ में आया था। **सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूपी अमूलख रत्नों से भरा निज शुद्धात्मभावनारूपी जहाज...** पर्याय को, हों! आहाहा! **उससे यौवन अवस्थारूपी महान तालाब को तैर जाते हैं,...** आहाहा!

यह यहाँ लेना, अभेदरत्नत्रय से तिरता है परन्तु साथ में भेदरत्नत्रय है, उसका व्यवहार, साथ में ज्ञान कराया है। आहाहा! **अविनाशी राज्य के लिये उद्यमी हुए। यहाँ पर ऐसा व्याख्यान समझकर...** देखो! **ऐसा व्याख्यान समझकर बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करना,...** मुनिपने की विशेष दशा लेते हैं न! आहाहा! बाह्य में वस्त्रादि का, अन्तर में राग का त्याग। **बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करना,...** यह तो नास्ति से बात की, अस्ति क्या? **वीतराग निर्विकल्पसमाधि में ठहरकर...** आहाहा! यह मुनिपना। बापू! मुनिपना अलौकिक बात है, भाई! यह तो व्यवहार की क्रियायें हैं पंच महाव्रत की, वह कहीं वस्तु के स्वरूप में नहीं है। समझ में आया?

अलिंगग्रहण में कहा है, यति का बाह्य व्यवहार आत्मा में नहीं है। आहाहा! वह भेद कहा, वह (भी आत्मा में नहीं)। समझ में आया? आहाहा! सत्रहवाँ बोल है। बीस बोल हैं न, बीस, उसमें सत्रहवाँ बोल है। यति का बाह्य व्यवहार जो पंच महाव्रत आदि का विकल्प, वह बाह्य व्यवहार है। वह अलिंगग्रहण, उससे आत्मा पकड़ में आता नहीं। ऐसा लिंग उसमें है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? यति की बाह्य क्रिया का जिसमें अभाव है, ऐसा भगवान अलिंगग्रहण कहने में आता है। आहाहा! अब यहाँ

कहते हैं कि जो यति की बाह्य क्रिया का अभाव है, उस बाह्यक्रिया से निश्चय प्राप्त हो, यह कहाँ से आया? समझ में आया? मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! लोग आगम के अर्थ को समझते नहीं और अपनी दृष्टि से आगम वाँचते हैं। समझ में आया? और सत्य बात को उड़ा देते हैं। आहाहा!

बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करना,... आहाहा! **तथा वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में ठहरकर दुर्धर तप करना...** अर्थात् मुनिपना, हों! तप शब्द से। दीक्षाकल्याणक, तपकल्याणक कहते हैं न? तपकल्याणक कहते हैं। आहाहा! वीतराग निर्विकल्प शान्ति में स्थिर होकर **दुर्धर तप करना...** अलौकिक उग्रता पुरुषार्थ से लीन होना। चारित्र में उग्र पुरुषार्थ, वह तप। चारित्र में उग्र पुरुषार्थ, वह तप। चारित्र है, उसे उग्र तप होता है। आहाहा! 'तप्यंते इति तप।' जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द तपे, शोभे, अन्दर ओपे। जैसे स्वर्ण को गेरु लगाने से शोभा होती है, वैसे भगवान आनन्द की ओप चढ़ती है अन्दर में। आहाहा! अरे... ऐसी बातें, लो! समझ में आया? इसका नाम भगवान तप कहते हैं। क्या पण्डितजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतपन तपः। स्वरूप में विश्रांति, निस्तरंग—विकल्प की तरंग नहीं, उसमें तपना, वह तप है। आहाहा! लोग तो यह अपवास करे और यह करे और यह किया। धूल भी नहीं वहाँ। आहाहा!

यह सारांश हुआ। लो। अन्दर में यह ध्यान करना, इसका नाम शास्त्र का सारांश है, ऐसा कहते हैं। ११८ (गाथा हुई)। यह सब आ गयी टीका, हों! पूरी टीका ले ली।

गाथा - ११९

अथ हे जीव त्वमपि जिनभट्टारकवदष्टकर्मनिर्मूलनं कृत्वा मोक्षं गच्छेति संभोधयति-

२४२) पावहि दुक्खु महंतु तुहँ जिय संसारि भमंतु।
अट्ठ वि कम्मइँ णिद्दलिवि वच्चहि मुक्खु महंतु।।११९।।

प्राप्नोषि दुःखं महत् त्वं जीव संसारे भ्रमन्।
अष्टापि कर्माणि निर्दल्य व्रज मोक्षं महान्तम्।।११९।।

पावहि इत्यादि। पावहि दुक्खु महंतु प्राप्नोषि दुःखं महद्रुपं तुहुं त्वं जिय हे जीव। किं कुर्वन्। संसारि भमंतु निश्चयेन संसारविपरीतविशुद्धात्मविलक्षणं द्रव्यक्षेत्रकालभवभावपञ्चभेदभिन्नं संसारं भ्रमन्। तस्मात्किं कुरु। अट्ठ वि कम्मइं णिद्दलिवि शुद्धात्मोपलम्भबलेनाष्टापि कर्माणि निर्मूल्य वच्चहि व्रज। किम्। मुक्खु स्वात्मोपलब्धिलक्षणं मोक्षम्। तथा चोक्तम्-'सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः'। कथंभूतं मोक्षम्। महंतु केवलज्ञानादिमहागुणयुक्तत्वान्महान्त-मित्यभिप्रायः।।११९।।

आगे हे जीव, तू भी श्रीजिनराज की तरह आठ कर्मों का नाशकर मोक्ष को जा, ऐसा समझाते हैं-

अरे जीव! संसार भ्रमण करते-करते दुख पायेगा।
अत: अष्ट कर्मों का क्षय कर महामोक्ष पदवी को पा।।११९।।

अन्वयार्थ :- [जीव] हे जीव, [त्वं] तू [संसारे] संसार-वन में [भ्रमन्] भटकता हुआ [महद् दुःखं] महान् दुःख [प्राप्नोषि] पावेगा, इसलिए [अष्टापि कर्माणि] ज्ञानावरणादि आठों ही कर्मों को [निर्दल्य] नाश कर, [महांतम् मोक्षं] सबमें श्रेष्ठ मोक्ष को [व्रज] जा।

भावार्थ :-निश्चयकर संसार से रहित जो शुद्धात्मा उससे जुदा जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरुप पाँच तरह के परावर्तनस्वरुप संसार उसमें भटकता हुआ चारों गतियों के दुःख पावेगा, निगोद राशि में अनंतकाल तक रुलेगा। इसलिए आठ कर्मों का क्षय करके शुद्धात्मा की प्राप्ति के बल से रागादिक का नाश कर निर्वाण को जा। कैसा है वह निर्वाण, जो निजस्वरुप की प्राप्ति वही जिसका स्वरुप है, और जो सबमें श्रेष्ठ है। केवलज्ञानादि महान् गुणोंकर सहित है। जिसके समान दूसरा कोई नहीं।।११९।।

गाथा-११९ पर प्रवचन

११९। **आगे हे जीव, तू भी श्री जिनराज की तरह आठ कर्मों का नाशकर मोक्ष को जा,...** आहाहा! प्रभु! तुझे मोक्ष में ले जाना चाहते हैं। इस संसारदशा में दुःख में नहीं। आहाहा! समझ में आया? जिनराज की भाँति, आहाहा! **आठ कर्मों का नाशकर मोक्ष को जा, ऐसा समझाते हैं।**

२४२)　　**पावहि दुक्खु महंतु तुहँ जिय संसारि भमंतु।**
　　　　अट्ठ वि कम्मइँ णिद्दलिवि वच्चहि मुक्खु महंतु।।११९।।

आहाहा! **अन्वयार्थः—हे जीव! संसार-वन में भटकता हुआ...** आहाहा! संसाररूपी चौरासी के अवतार में भवसिन्धु में भटकता हुआ। आहाहा! भगवान! भवसिन्धु में भटकने का अब छोड़, कहते हैं। आहाहा! **महान दुःख पावेगा,... हे जीव, संसार-वन में भटकता हुआ महान दुःख पावेगा, इसलिए ज्ञानावरणादि आठों ही कर्मों को... 'निर्दल्य' नाश कर...** नि-विशेष, दल—नाश करके। **'महांतम् मोक्षं' सबमें श्रेष्ठ मोक्ष को जा।** आहाहा! पूर्णानन्द की प्राप्ति, वहाँ जा। आहाहा! **'व्रज'** है न? **'व्रज'** अर्थात् जा। आहाहा! संसार में महावन में दुःख में भटकना छोड़कर भगवान पूर्णानन्द की प्राप्तिरूपी मुक्ति। संसार के दुःख से रहित और पूर्णानन्द की प्राप्ति सहित—ऐसा मोक्ष, वहाँ जा न, भाई! आहाहा! भाई! तेरा अविनाशी स्थान तो वह है। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थः—निश्चयकर... यथार्थरूप से देखो तो **संसार से रहित शुद्धात्मा,...** आहाहा! उदयभाव से तो भगवान आत्मा रहित है। उदयभाव, वह संसार है। आहाहा! द्रव्य, क्षेत्र, काल लेंगे। भावसंसार। उदयभाव जिसमें नहीं, उसे आत्मा कहते हैं। नियमसार। आहाहा! यहाँ शुद्धात्मा शब्द प्रयोग किया है। **निश्चयकर संसार से रहित शुद्धात्मा,...** आहाहा! उदयभाव से रहित ऐसा शुद्धात्मा, परमपारिणामिकभावसहित ऐसा शुद्धात्मा। आहाहा! ऐसी बात। **उससे जुदा...** टीका में त्रिपटी बात करते हैं। एक तो संसार से रहित शुद्धात्मा, उससे भिन्न। संसार उससे भिन्न लेना है। **द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरूपी पाँच तरह के परावर्तनरूप संसार...** लो, पहले तो कहा था कि पाँच

प्रकार के संसाररहित शुद्धात्मा। आहाहा! शुद्धात्मा की व्याख्या की और फिर शुद्धात्मा से भिन्न द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव। यह शुभ-अशुभभाव भी शुद्धात्मा से भिन्न, भव शुद्धात्मा से भिन्न। द्रव्य, क्षेत्र, काल शुद्धात्मा से भिन्न। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसी ही शैली है परमात्मप्रकाश की।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शैली सब यह है। यह शैली है, एक प्रकार की, एक जाति की। समयसार की। जो बोल आता हो, उससे विरुद्ध कहकर वापस उससे विरुद्ध (कहे), यह शैली है। उसे तीन प्रकार का एक साथ ज्ञान होता है।

द्रव्य—परमाणु आदि। क्षेत्र बाह्य। काल, भव—स्वर्गादि के भव से भी रहित भगवान है। भाव—शुभ, अशुभभाव, वह संसार का भाव है। आहाहा! लो, वहाँ कहा, भेदाभेदरत्नत्रय और यहाँ वापस (यह कहा)। शुभ-अशुभभाव, वह संसार का पंच परावर्तन का भाव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी संसारभाव है, आहाहा! उदयभाव है। समझ में आया? १४८ प्रकृति को जहर का फल कहा है। १४८ प्रकृति आठ कर्म की। जहर, उसमें से फल पकता है जहर। आहाहा! आत्मा अमृत के फल पके, ऐसा आत्मा है। अमृत का चिन्तामणि है। भगवान अमृतचिन्तामणि। अन्दर में एकाग्र हो तो आनन्द प्रगट हो, ऐसा वह चिन्तामणि रत्न है। आहाहा!

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव... भाव। देखो, पाँचों ही संसार कहा। भव भी संसार और भाव भी संसार। आहाहा! शुभाशुभभाव संसार। **पाँच तरह के परावर्तनस्वरूप संसार उसमें भटकता हुआ...** आहाहा! निःसहाय, पर की सहायता बिना अकेला भटकता है। समझ में आया? **चारों गतियों के दुःख पावेगा,...** देखो! देव को भी दुःख, गति और दुःख में ले लिया। आहाहा! चारों गतियों का दुःख। ऐसा नहीं कि स्वर्ग में सुख है और नरक में दुःख है। आहाहा! समझ में आया? **उसमें भटकता हुआ चारों गतियों के दुःख पावेगा,...** आहाहा! वह स्वर्ग में भी दुःख पायेगा, राग—क्लेश है वहाँ। आहाहा! **निगोद राशि में अनन्त काल तक रुलेगा।** आहाहा! निगोद राशि में अनन्त काल भटकेगा।

श्रुत, परिचित अनुभूति आता है न ? (समयसार) चौथी गाथा। निगोद के जीव ने राग की कथा सुनी है और भोगी है। वह संसार है, ऐसा कहते हैं। '**सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंध कहा।**' सब प्राणियों ने निगोद से लेकर सबने काम अर्थात् राग की इच्छा कर्ता और भोक्ता, यह बात सब जीवों ने सुनी है, परिचय में आयी है, रमणता—वेदन में आयी है। आहाहा! अनुभूति। निगोद के जीव को यह भाव वेदन में है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! एक शरीर में, राई के कण जितना शरीर, कण लो तो असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव हैं। सबका श्वास एक, आहार एक। आहाहा! तथापि उस एक-एक आत्मा ने राग की बात सुनी है, परिचय में आयी है, वेदन में आयी है। सुनी भले न हो, परन्तु उसका फल वेदन में आया। समझ में आया ? यह चार गति के दुःख... आहाहा! भटकेगा। इसलिए क्या करना, यह विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, पौष कृष्ण ७, बुधवार
दिनांक- १२-०१-१९७७, गाथा - ११९, १२० प्रवचन-१८४

परमात्मप्रकाश, ११९ गाथा। भावार्थ। **निश्चयकर संसार से रहित...** यह शुद्धात्मा जो है, वह संसार से रहित है। अर्थात् पुण्य और पाप तथा उसका फल बाह्य और कर्म, इन सब चीज़ से रहित है। वह शुद्धात्मा निश्चय से **संसार से रहित जो शुद्धात्मा उससे जुदा जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरूप,...** यह कल आया था इतना। **पाँच तरह के परावर्तनरूप संसार उसमें भटकता हुआ...** आहाहा! चौरासी लाख योनि में अनन्त काल में भटकते हुए प्राणी को। आहाहा! **चारों गतियों के दुःख पावेगा,... भटकता हुआ चारों गतियों के दुःख पावेगा,...** स्वर्ग में भी दुःख है, नरक में भी दुःख है, तिर्यंच में दुःख है, मनुष्य में भी दुःखी, गति में दुःखी है। आनन्द तो एक आत्मा में है। उस ओर का लक्ष्य किया नहीं और बाह्य के व्यवहार और निमित्त में अनादि से झुक गया। आहाहा! इसलिए **निगोद राशि में अनन्त काल तक रुलेगा।** आहाहा! एक शरीर में अनन्त जीव, एक-एक जीव को दो-दो—कार्मण और तैजसशरीर। ओहोहो! ऐसे निगोद में अनन्त काल तक भटकेगा, यदि आत्मा का भान न किया तो। समझ में आया?

इसलिए आठ कर्मों का क्षय करके... लो, यहाँ तो साता-असाता सब आठ कर्म में आते हैं। सबका नाश करके। **शुद्धात्मा की प्राप्ति के बल से...** लो, रागादि कैसे टले? यह कहते हैं। **शुद्धात्मा की प्राप्ति के बल से रागादिक का नाश कर...** समझ में आया? राग किस प्रकार टले? पहले एक प्रश्न हुआ था न वहाँ, (संवत्) २०१३ के वर्ष। तुम थे वहाँ? चन्दुभाई नहीं होंगे। प्रतिबद्ध कर्म टले तो राग टले। यहाँ कहते हैं कि, राग कैसे टले? ऐ... सेठ! है? अन्दर है?

मुमुक्षु : आपकी परिभाषा अलग प्रकार की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची, भगवान की बात ही अलग प्रकार की है। आहाहा! ११वीं गाथा में कहा न, समयसार। भाई! अनादि काल से भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो तुझे अनादि काल से चला आता है। कर्म से होता है, यह बात तो एक ओर दूर रही। समझ में आया? कर्म से विकार होता है, यह तो कहीं दूर रह गयी। परन्तु अन्दर

भेदरूप जो व्यवहार कहा, द्रव्य त्रिकाली है, उसका भेद पर्याय का भेद के लक्ष्य से बतलाया, भेदरूप व्यवहार, आहाहा! उसका पक्ष तो तुझे अनादि से है। और भेदरूप व्यवहार पक्ष का परस्पर उपदेश भी करता है। ओहो! कैसी शैली ली है! पण्डित जयचन्द्रजी (ने)। आहाहा! राग से लाभ होता है, यह तो है नहीं, परन्तु भेद से लाभ होता है, यह भी यहाँ छोड़ देना है। आहाहा! समझ में आया? कब छूटे? यदि कर्म से विकार होता हो तो कर्म छूटे तो राग छूटे। ऐसा तो है नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, है न? **शुद्धात्मा की प्राप्ति के बल से रागादिक का नाश कर...** आहाहा! इन लोगों का पक्ष यह है कि शास्त्र में तो व्यवहार और निमित्त के बहुत कथन हैं। आचार्यों ने कहे हैं और तुम उन्हें मानते नहीं, उड़ा देते हो, ऐसा कहा है। फूलचन्दजी को कहा है। खानिया चर्चा में बीस बोल के तो आधार दिये हैं आगम के। फूलचन्दजी ने ऐसा जवाब दिया कि, व्यवहार के कथन की पूरी पुस्तक हो, ऐसा है। क्योंकि व्यवहार... ऐसा कहा न? तीसरा बोल। एक तो ऐसा कहा कि भेदरूप व्यवहार का पक्ष अनादि का है। वह चीज़ नहीं। दूसरा, भेदरूप व्यवहार का उपदेश परस्पर पारस्परिक करते हैं। आहाहा! तीसरा, अब तीसरी बात में है, भेदरूप व्यवहार का कथन हस्तावलम्ब जानकर सहायक अर्थात् साथ में होता है, ऐसा जानकर, सहायक शब्द है न? जिनाज्ञा से भी बहुत कथन किये हैं। आहाहा! तो कहे, लो, वीतराग जिनाज्ञा आगम कहे, उसे तुम उत्थापते हो? परन्तु सुन तो सही। भगवान के आगम को तुम मानते नहीं, आचार्य के कथन मानते नहीं। आचार्य और तीर्थंकर व्यवहार की बात तो मुख्य करते हैं। मुख्य नहीं, व्यवहार की बात करते हैं, निमित्त जानकर। आहाहा! परन्तु उसका फल संसार है। जिनाज्ञा में कहा हुआ व्यवहार, परन्तु उसका फल संसार है। आहाहा! अरेरे! उसे जीव का क्या करना है? यह शास्त्र की आज्ञा है। भाई! शास्त्र में तो स्वयं शास्त्रकार कहते हैं। समझ में आया? स्वयं कहते हैं कि जिनाज्ञा में आगम में भेदरूप व्यवहार का पक्ष सहायक जानकर, सहायक अर्थात् साथ में होता है—ऐसा जानकर कथन किया गया है। चन्दुभाई!

मुमुक्षु : सहायक पर....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं। धर्मास्तिकायवत्, उसका अर्थ क्या? यह निमित्त है तो गति करते हैं, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : धर्मास्तिकाय मदद नहीं करता?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या मदद करे? मदद नहीं करता। है, इतना, बस! इसीलिए तो इष्टोपदेश में कहा, इष्टोपदेश, धर्मास्तिकायवत् सब निमित्त जानना। आहाहा! आचार्यों ने कितना स्पष्ट किया है। धर्मास्तिकायवत्। समझ में आया? यह ध्वजा फर्र... फर्र... होती है न? तो हवा के कारण से ऐसा होता है न बराबर? नहीं। अपने कारण से ऐसा होता है, उसमें इस हवा को निमित्तरूप धर्मास्तिकायवत् कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : प्रेरक निमित्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रेरक की व्याख्या, वह तो निमित्त के भेद हैं। पर के लिए तो उदासीन है। पर के लिये धर्मास्तिकायवत् दोनों हैं। आहाहा! बहुत बारीक—सूक्ष्म बात लगती है लोगों को। बहुत भेद का, व्यवहार का कथन आवे कि इसके कारण से होगा, इसके कारण से होगा। इस बात के लिये शास्त्र का आधार दे। चर्चा करो, चर्चा करो। परन्तु बापू! कौन सी चर्चा? क्या चर्चा? और वह चर्चा हो गयी है। खानियाचर्चा में। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जिनाज्ञा में भी सहायक जानकर अर्थात् साथ में होता है, ऐसा जानकर; मोक्षमार्गप्रकाशक में भी ऐसा कहा न? कि निश्चयसम्यग्दर्शन है, वह अपने भगवान आत्मा के अवलम्बन से होता है। वह निश्चयसम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन निश्चय। द्रव्य की अपेक्षा से भले वह पर्याय व्यवहार, परन्तु सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से वह निश्चय। आहाहा! उसके साथ देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का राग साथ में 'सहचर' शब्द है, सहचर देखकर और निमित्त देखकर, आहाहा! उपचार से उसे समकित कहा गया है। आहाहा! वास्तविक रीति से समकित है नहीं। आहाहा! और निश्चय है, वहाँ वह व्यवहार निमित्त देखने में आया तो उपचार से कहा कि यह समकित है। वह समकित है? राग, समकित की पर्याय है? वह तो राग की पर्याय है व्यवहार तो। परन्तु यहाँ निश्चय है, उसका आरोप करके कथन किया गया है। और वापस ऐसा लिया कि यह स्थिति निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र यह लक्षण जानना। चन्दुभाई! है? बस, एक पंक्ति में तो सब स्पष्टीकरण कर दिया। आहाहा! निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र यह लक्षण

जानना। देवीलालजी! आहाहा! यह मानना नहीं। वे तो कहें, नहीं, यह आचार्य का कथन कहाँ है? परन्तु यह आचार्य का कथन है या क्या है? व्यवहार। समझ में आया? और इसलिए तो व्यवहार अभूतार्थ आचार्य कहते हैं।

अभूतार्थ का अर्थ चीज़ है सही, अभूत अर्थात् नहीं है, ऐसा नहीं, परन्तु अभेद की दृष्टि मुख्य कराने के लिये व्यवहार को गौण करके अभूतार्थ कहा गया है। आहाहा! 'नहीं' कहकर असत्य कहा है, ऐसा नहीं। आहाहा! कितनी स्थिति है, देखो न! और जो व्यवहार कहने में आया है वीतराग की आज्ञा में... आहाहा! वह सहायक अर्थात् निमित्त साथ में सहचर देखकर कहा, परन्तु उसके फल का लक्ष्य करे तो उसका फल (संसार है)। बहुत कहा है, ऐसा लिखा है न? भाई! जैन आज्ञा में बहुत जगह उसे कहा है। आहाहा! बहुत उपदेश दिया है। आहाहा! अब यह ऐसे शास्त्र के आधार दे। समझ में आया? तो उस शास्त्र के आधार का अर्थ खबर नहीं उसे।

मुमुक्षु : वे ऐसा कहते हैं कि यह तो पण्डित का कथन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे परन्तु यह '**ववहारोऽभूदत्थो**' यह किसका कथन है? इसीलिए तो यहाँ से यह दृष्टान्त दिया। व्यवहार अभूतार्थ है, असत्य है। किसने कहा? मुनि-आचार्य ने कहा। क्यों कहा? व्यवहार जो असत्य है, वह है तो सही, पर्याय नहीं—ऐसा नहीं, परन्तु उसकी दृष्टि छुड़ाने और स्वभाव की दृष्टि कराने के अपने प्रयोजन सम्यग्दर्शन की सिद्धि के लिये... आहाहा! अभेद को मुख्य करके, भेदरूपी व्यवहार को होने पर भी गौण करके असत्यार्थ कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? वीतरागमार्ग भाई! ऐसी बात है यह। इसलिए यह शास्त्र के आधार दे। परन्तु शास्त्र में यह किस नय का कथन है? समझ में आया? यह शास्त्र और तुम मानते नहीं शास्त्र को। परन्तु शास्त्र का कथन किस नय का है? समझ में आया? आहाहा! उसके आधार तो कहे न, बहुत है शास्त्र में। आहाहा! भाई! वस्तु की स्थिति, आहाहा!

जिसे पर्याय भी है, उसे असत्य कहकर गौण करने के लिये। आहाहा! यह वचन किसका है? पण्डितजी का है या आचार्य का है? आहाहा! बहुत गूढ़ है। वस्तु भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप ध्रुव का आश्रय करने से सुखरूपी दशा प्रगट होती है। यहाँ दुःख की बात चलती है न! समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द मुख्य

ध्रुव के आश्रय से, उसके अवलम्बन से सम्यग्दर्शन अर्थात् वस्तु की स्थिति है, उसका वर्तमान सत्यदर्शन। आहाहा! और जिससे सुख की प्राप्ति। वह सम्यग्दर्शन अर्थात् सुख की प्राप्ति। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : यह तो मुनियों का धर्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समकित किसका धर्म है? समकित किसका मुनि का है? यह तो समकित की व्याख्या है। नवरंगभाई! ऐसा सब अभी तक सेठ ने चलाया था। लोग कहे, ऐसा माने यह। नहीं सेठ? यह तो नहीं था वह। आहाहा!

यहाँ तो दुःख से मुक्त होने.... कहेंगे न अन्त में? **केवलज्ञानादि महान गुणोंकर सहित है।** समझे? **निजस्वरूप की प्राप्ति वही जिसका स्वरूप है...** आहाहा! देखा? निर्वाण। अपने स्वरूप निर्वाण की प्राप्ति कब होती है मुक्ति? कि अपना जो निजस्वरूप ध्रुव, उसका अवलम्बन लेने से, उसका आश्रय लेने से समकित होता है, उसका आश्रय लेने से चारित्र होता है, उसका आश्रय लेने से केवलज्ञान होता है, उसका आश्रय लेने से सिद्ध होता है। आहाहा! देवीलालजी! ऐसी बातें हैं, भाई! इसमें वाद-विवाद करके क्या करना है, कहो? इसीलिए तो शास्त्र में यह आया है कि कोई भी गाथा हो, उसका शब्दार्थ करना, आगमार्थ लेना कि आगम क्या कहता है, ऐसा उसमें से निकालना, अन्यमति क्या कहते हैं, ऐसा उसमें से निकालना और नयार्थ निकालना कि निश्चयनय से कथन है या व्यवहार से है। और तात्पर्य निकालना। उसका तात्पर्य—रहस्य क्या? तात्पर्य अर्थात्। समझ में आया? आहाहा! प्रत्येक गाथा के पाँच अर्थ करना। ऐसा ही मान ले कि यह भगवान की वाणी है, इसलिए बराबर है। परन्तु किस नय की वाणी है? समझ में आया? आहाहा! आगम में कथन आया, इसलिए बस अपने ऐसा मान लेना। परन्तु मान लेना तो किस प्रकार से? किस नय का वाक्य और किस नय से उसे मानना? चन्दुभाई! आहाहा! ऐसी बात है!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके लिये तो बात चलती है। भगवान के शास्त्र के आधार देते हैं। परन्तु किस नय का वह वाक्य—आधार है? वह व्यवहारनय का वाक्य है, वह तो निमित्त देखकर उसका कथन किया है। आहाहा! यह तो कहा न, '**ववहारोऽभूदत्थो**

भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ' यह गाथा तो जैनशासन का प्राण है। समझ में आया? उसमें से निश्चय-व्यवहार क्या अपेक्षा है, उसका सब स्पष्टीकरण इसमें है। आहाहा! व्यवहार पर्याय असत्यार्थ है, ऐसा कहना है। इसलिए तो एक व्यक्ति कहता था न? मुम्बईवाला नहीं? भाई क्या? मुम्बईवाला पण्डित। नाथूराम? नाथूराम प्रेमी। नाथूराम प्रेमी कहते थे कि कुन्दकुन्दाचार्य ने पर्याय नहीं है, ऐसा कहकर वेदान्त की ओर समयसार को ढाला है। उसमें ऐसा आया न, व्यवहार अभूतार्थ आया न? व्यवहार शब्द से पर्याय, हों! पर्याय, भेद, राग सब। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार पर्याय झूठी है, यह तो वेदान्त हो गया। द्रव्य रहा अकेला, पर्याय रही नहीं। पर्याय झूठी है और द्रव्य सत्य है। यह तो वेदान्त हो गया। वहाँ वेदान्त कहना है? आहाहा! अरे! एक गाथा में एक ही गाथा बराबर समझे न तो पूरे शास्त्र का रहस्य उसमें भरा है। आहाहा!

तो कहा कि, व्यवहार असत्य है और निश्चय सत्य है। ऐसा कहकर निश्चय पर्याय है, वह भी निश्चय तो है। ऐसा उसमें गुणभेद भी निश्चय तो है। परन्तु निश्चय मुख्य करके जिसे निश्चय कहा। निश्चय कहकर मुख्य कहा—ऐसा नहीं। समझ में आया? मुख्य अभेद एकाकार चैतन्य भगवान, अभेद को मुख्य करके निश्चय कहा। निश्चय को मुख्य कहा, ऐसा नहीं। समझ में आया? एक-एक बोल में बहुत अन्तर है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : निश्चय को मुख्य कहो तो पर्याय भी निश्चय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय निश्चय उसकी अपनी पर्याय है। आहाहा! पर्याय निश्चय है, राग भी अशुद्धनिश्चय से निश्चय से उसमें है। चन्दुभाई! ऐसा है। अरे! चर्चा करने आते हैं अब, ग्यारस से रखी है, मीटिंग। मीटिंग नहीं। कमेटी। कमेटी कहे, चर्चा करो। हुकमचन्दजी और बाबूभाई साथ में और फूलचन्दजी के साथ में। ये तीन सामने हैं न प्रसिद्ध। उसमें लिखा है। और नहीं तो वह साधु कहे, मैं वहाँ सोनगढ़ जाऊँगा। अरे भगवान! परन्तु इसमें किस शैली के कथन हैं? आगम का कथन है, आगम की वाणी है, आचार्य की वाणी है, वीतराग की वाणी है परन्तु वह वाणी किस नय से कही है, यह जाने बिना चर्चा किसके साथ करे? समझ में आया? आहाहा! और वहाँ तो ऐसा कहा कि, व्यवहार पर्याय असत्य है। अभूतार्थ का अर्थ असत्य, हों! यह

इनकार किया है उसने, नहीं, अभूतार्थ कहा है, असत्यार्थ नहीं कहा। ऐसा कहते हैं। टीका में असत्य कहा है। यहाँ तो गौण करके बिल्कुल असत्य है, ऐसा कहने में आया है। अभाव करके असत्य है, ऐसा नहीं कहने में आया है। जिनवाणी स्याद्वाद की शैली यह है। आहाहा!

मुमुक्षु : एक पण्डितजी ने ऐसा अर्थ किया, भूतकाल की पर्याय चली गयी, किसे अभूतार्थ कहा? वर्तमान को थोड़ा अभूतार्थ कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! भूतार्थ बाद में कहा, दूसरी लाईन में ऐसा कहा, व्यवहार अभूतार्थ कहा, दूसरी में ऐसा कहा, '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**'। भूतार्थ वह शुद्धनय है। शुद्धनय का विषय है, ऐसा भी नहीं कहा। भाई! आहाहा! भूतार्थ सत्यार्थ भगवान पूर्णानन्द सत्, महासत्, महासत्। आहाहा! वस्तु द्रव्य सत्। भेद से रहित अभेद सत्। आहाहा! पर्याय से रहित वस्तु सत्। आहाहा! उसे शुद्धनय कहा। शुद्धनय का विषय पहले नहीं कहा। पहले तो ऐसा कहा, भूतार्थ सत्यार्थ भगवान त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु परमात्मस्वरूप है, वह शुद्धनय है। पोपटभाई! यह ऐसी बातें हैं। आहाहा! अरे! समय-जिन्दगी चली जाती है। यहाँ कहेंगे अभी। भाई! तेरे व्यवहार के उसमें समय जाता है और आत्मा के चिन्तवन के लिये तुझे समय नहीं रहता। प्रभु! तुझे क्या करना है? अभी कहेंगे बाद की गाथा में। समझ में आया? आहाहा! पश्चात् १२१ में कहेंगे। है न? १२१ में कहेंगे। आहाहा! है न? '**धांधे पतितं' जगत के धन्धे में पड़ा हुआ सब जगत अज्ञानी हुआ ज्ञानावरणादि आठों कर्मों को करता है, परन्तु मोक्ष के कारण शुद्ध आत्मा को एक क्षण भी नहीं चिन्तवन करता।** आहाहा! भगवान! तू व्यवहार के, राग के और संसार के काम में—धन्धे में पड़ा है। व्यवहार के विकल्प में पड़ा है, परन्तु अन्दर से भिन्न है, इस चिन्तवन का समय एक क्षण भी तू नहीं लेता भाई! आहाहा! समझ में आया? यह तो बाद में आयेगा।

यहाँ तो कहा, पूर्णानन्दस्वरूप ध्रुवचैतन्य, वह भूतार्थ है, वह सत्य है और वही शुद्धनय है, निश्चयनय वही है। आहाहा! नय और नय के विषय का भेद नहीं करके, नय का विषय है, वही नय है। आहाहा! ऐसी बात है कहाँ बापू? यह क्या है? आहाहा! यह त्रिकाली चीज़ आनन्द का नाथ प्रभु, वह सत्य है, वह सत्यसाहेब है।

आहाहा! और उसे ही हम निश्चय कहते हैं अथवा उसे ही हम शुद्धनय कहते हैं। थोड़ी गुजराती भाषा आ जाती है। समझ में आया? आहाहा! बाद में कहा, यह गाथा तो गजब है! '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' वहाँ भूतार्थ, उसे शुद्धनय कहा। पश्चात् तीसरे पद में वापस बदल डाला। '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' सत्यार्थ भगवान अभेद त्रिकाल के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**'। ओहोहो! एक गाथा यह... चौदह पूर्व और बारह अंग का रहस्य भरा है। आहाहा! उसमें से निकास करते-करते सब निकालते हैं। समझ में आया? देवीलालजी! आहाहा!

'**भूदत्थमस्सिदो खलु**' आहाहा! प्रभु! एक बार सुन तो सही, कहते हैं। आहाहा! तेरा नाथ भूतार्थ सत्यार्थ त्रिकाल स्थित है, उसके आश्रय से तुझे सम्यग्दर्शन होगा। तो धर्म की शुरुआत त्रिकाल के आश्रय से होती है। निमित्त से नहीं, राग से नहीं, पर्याय के आश्रय से नहीं। आहाहा! बराबर है? यह उसका स्पष्टीकरण फिर बारह अंग में है। आहाहा! समझ में आया? हें?

मुमुक्षु : टकोरा बजा।

पूज्य गुरुदेवश्री : टकोरा बजे, कुदरत तो साथ में है न! आहाहा!

'**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**' आहाहा! अब उसमें व्यवहार से समकित हो, निमित्त से हो, राग से हो, यह कुछ आया नहीं। यह वस्तु तो ऐसी है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

शुद्धात्मा की प्राप्ति बल से रागादिक का नाश कर... देखो! शुद्धात्मा ध्रुव की प्राप्ति के आश्रय से, बल से राग का नाश होता है। व्यवहार करते-करते राग का नाश होता है, ऐसा कोई कहता है। काँटा लगा हो न काँटा? तो दूसरे काँटे द्वारा वह काँटा निकलता है। वे कहते थे, सम्प्रदाय में हमको तो कहते थे, हमारे तो पहले से यह चलता है न!

मुमुक्षु : अभी भी।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी भी कहते हैं। काँटा लगा हो, काँटा समझते हो? काँटा लगे तो दूसरे काँटे द्वारा काँटा निकलता है। इसी प्रकार शुभराग द्वारा शुभराग और अशुभराग दोनों निकलते हैं। अरे भगवान! ऐसी बात है, बापू! तुझे सत्य बात जिस

प्रकार से है, उस प्रकार से तुझे बैठने में सन्देह होता है। अरे... प्रभु! कहाँ जाना है तुझे अब? आहाहा! और यह बात अभी नहीं है न बाहर में; इसलिए लोगों को बेचारों को ऐसा लगता है। यह दया करते हैं, दया करते हैं कि अरे! यह उल्टे रास्ते चढ़ गया है। ईश्वरचन्दजी! यह तो सनावद में से गये हैं वहाँ। आहाहा!

भगवान! यहाँ तो शुद्धात्मा की प्राप्ति के बल से विकार का नाश होता है। राग से—शुभराग से... डाला है न उसने। भाई! जयधवल में है न भाई? ऐसा कि कर्म का क्षय शुभ और शुद्ध से होता है, दूसरी कोई रीति नहीं है। एक पाठ है, जयधवल में है। शुभ और शुद्ध। यह तो शुद्ध के साथ शुभ है, उसका आरोप करके कथन किया है। जैसे यह निश्चय सम्यग्दर्शन का विकल्प में व्यवहार समकित का सहकार निमित्त देखकर आरोप किया है, वैसे शुद्ध के साथ शुभ को व्यवहार कहकर, आरोप करके निर्जरा कही है, बाकी इस प्रकार से है नहीं। अरे... अरे! अब ऐसी बातें। भाई ने फूलचन्दजी ने थोड़ा दूसरा अर्थ किया। ऐसा कि व्यवहार है और छूटता है, इसलिए व्यवहार के साथ निर्जरा का कारण कहा है। ऐसा डाला है। शुद्ध से निर्जरा होती है परन्तु साथ में शुभ है, उसे इकट्ठा करके फिर शुद्ध होता है, इसलिए आरोप से उसे शुभ को निर्जरा का कारण कहा है। वास्तव में तो ऐसा है। समझ में आया?

निश्चय-व्यवहार का जो लक्षण बाँधा है भाई ने, मोक्षमार्गप्रकाशक (में), बहुत अलौकिक, बहुत अलौकिक!! ओहोहो! मध्यस्थ होना चाहिए। पण्डितों का कथन हो तो क्या? तिर्यंच का समकित और सिद्ध के समकित में कुछ अन्तर होगा? समकित में कुछ अन्तर है? इसी प्रकार पण्डित हो सम्यग्ज्ञानी और केवली सम्यग्ज्ञानी हो, उसमें कहीं तत्त्व की वस्तु में अन्तर है? वह तो चारित्र में स्थिरता, अस्थिरता में अन्तर है। समझ में आया? यह अलग बात है। आहाहा! वस्तु की दृष्टि और ज्ञान है, वह तो एक ही प्रकार का है। चाहे तो समकिती कहे या चाहे तो केवलज्ञानी कहे। आहाहा!

मुमुक्षु : शुभभाव से अकाम निर्जरा होती है....

पूज्य गुरुदेवश्री : अकाम निर्जरा होती है, दूसरा अर्थ करते थे। शुभ से अशुभ टले कितना ही और शुद्ध से शुभ-अशुभ दोनों टले, इस अपेक्षा से भी कहने में आता है। समझ में आया? भाई! ऐसा है। यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। वाद-विवाद से

कहीं पार पड़े, ऐसा नहीं। आहाहा! मूल पॉईन्ट निश्चय का लक्ष्य में रखकर, फिर सब व्यवहार के अर्थ होते हैं। समझ में आया?

यहाँ राग का नाश कैसे होता है? कि **शुद्धात्मा की प्राप्ति बल से रागादिक का नाश कर...** समझ में आया? आहाहा! शुभराग से राग का नाश नहीं होता, ऐसा कहते हैं। शुभभाव स्वयं राग है स्वयं, उससे राग का नाश नहीं होता। आहाहा! शुद्धात्मा की प्राप्ति भगवान पूर्णानन्द शुद्धस्वरूप निर्विकल्प अभेद शान्तरस का कन्द कुण्ड प्रभु है। शान्त... शान्त... शान्त... आहाहा! 'जिनादेश जाता जिनेन्द्रा विख्याता, प्रबुद्धा विशुद्धा नमो लोकमाता' जिनवाणी। बनारसीदास में आता है। प्रणव मन्त्र बाद में कहा। अपने बाहर प्रकाशित किया है। तब यहाँ (संवत्) १९९५ में प्रकाशित किया है। 'जिनादेश जाता...' जिनेश्वर की जिनादेश, उससे उत्पन्न हुई वाणी—जिनवाणी। 'जिनादेश जाता जिनेन्द्रा विख्याता।' जिनेन्द्र ने प्रसिद्ध की। समझ में आया? 'प्रबुद्धा विशुद्धा' प्रबुद्धा है, उस वाणी में प्रबोध—ज्ञान के भण्डार भरे हैं। समझने की शक्ति से। 'प्रबुद्धा विशुद्धा' विशुद्ध वाणी है वीतराग की। आहाहा! 'नमो लोकमाता।' हे माता! जगत की माता! तुझे नमस्कार करता हूँ। आहाहा! समझ में आया? 'नमो लोकमाता'। आहाहा! ऐसा आया है न? 'जिनेन्द्र विख्याता, जिनादेशजाता, जिनेन्द्रा विख्याता, प्रबुद्धा विशुद्धा नमो लोकमाता' तीसरा पद रह गया। 'दुराचार दुर्नैहरा शंकरानी', दुराचार का निषेध करनेवाली, दुर्निहार—राग का निषेध करनेवाली। 'दुराचार दुर्नैहरा शंकरानी' माता! तू सुख को उत्पन्न करनेवाली है। उसकी वाणी में सुख को उत्पन्न करने का भाव कहा है। सुख को उत्पन्न अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! इसमें है न? इसमें है।

जिनादेशजाता जिनेन्द्रा विख्याता,
विशुद्धा प्रबुद्धा नमो लोक माता।
दुराचार दुर्नैहरा शंकरानी,
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी॥

यह वाणी। 'नमो देवी वागेश्वरी...' वागेश्वरी अर्थात् वाघेश्वरी नहीं। बाघ के ऊपर बैठती है सरस्वती अन्यमति में। यह तो नमो वाकेश्वरी, वाकेश्वरी। वाक् में

ईश्वरी वाणी, नाथ! तेरी दिव्यध्वनि। आहाहा! है न? 'नमो देवी वागेश्वरी जैनवाणी' आहाहा! इस जैनवाणी में यह कहा है। समझ में आया? शुद्ध अभेद का आश्रय करने का कहा गया है और भेद को गौण करके उसका आश्रय छोड़ने का कहा है। आहाहा! यहाँ तो जिनवाणी की गोद में बैठे हैं, देखो! जिनवाणी है। चारों ओर जिनवाणी है, ऊपर-नीचे। आहाहा!

'सुधा धर्मसंसाधनी धर्मशाला' सुधा—पवित्र धर्म संसाधनी धर्मशाला। आत्मा के आनन्द को साधनेवाली वाणी है। निमित्तरूप से कथन है न। 'सुधा तापनिर्शानी मेघमाला' अमृत का सागर भगवान तेरी वाणी ताप के नाश को करनेवाली मेघमाला है। वर्षा की धारा पड़ती है अन्दर से ताप के ऊपर। आहाहा! दु:ख का नाश करनेवाली तेरी वाणी, प्रभु! आहाहा! सुख को उत्पन्न करनेवाली और दु:ख को नाश करनेवाली। आहाहा! समझ में आया? यह भाव इसमें से निकलना चाहिए। शास्त्र में से चाहे जहाँ से यह, जिसमें से सुख की उत्पत्ति और दु:ख का नाश हो। समझ में आया? आहाहा!

'महामोहविध्वंसनी मोक्षदानी' महामोह का नाश करनेवाली मोक्षदानी—मोक्ष को देनेवाली, 'नमो देवी वागेश्वरी जैनवानी।' आहाहा! देखो! फिर आता है। 'अखैवृक्षशाखा...' हे वाणी! हे जैनमाता! अक्षयवृक्ष की शाखा तू है। जो वृक्ष अक्षय है, उस अक्षयवृक्ष की तू शाखा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अक्षयवृक्ष है भगवान आत्मा, उसकी वीतराग परिणति, वह उसकी शाखा है। उस जिनवाणी में ऐसा कहना है। आहाहा! अरे... भाई! इसमें वाद-विवाद का कहाँ है, बापू! प्रभु! तेरे हित की बात है न, नाथ! आहाहा! उसे अहित के पंथ में ले जाना, बापू! यह वीतराग का मार्ग नहीं है। आहाहा! देखो!

'कथा संस्कृता प्राकृता देशभाषा' चाहे तो तेरी वाणी संस्कृत में हो, प्राकृत में हो या प्रचलित भाषा में हो। 'चिदानन्द भूपाल की राजधानी' चिदानन्द—भूपाल, आहाहा! चिदानन्द आनन्द का नाथ, ज्ञान के आनन्द का भूपाल ऐसा भगवान आत्मा, उसकी राजधानी वाणी, वहाँ उसे बैठाते हैं। आहाहा! 'चिदानन्द भूपाल की राजधानी, नमो देवी वागेश्वरी जैनवानी'। आहाहा! उसमें से यह अर्थ निकाले तो जैनवाणी समझा कहलाये, ऐसा कहना है। समझ में आया?

आठ कर्मों का क्षय करके... आहाहा! **शुद्धात्मा की प्राप्ति के बल से...** आहाहा! शुद्ध जो ध्रुव आत्मा भगवान, उसकी प्राप्ति के बल से संसार का—राग का नाश होता है। आहाहा! अपवास किये और यह किया, इसलिए कर्म का नाश होता है, निर्जरा होती है, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! तब वे लोग ऐसा कहते हैं, तुम समकित की बात करते हो, परन्तु चारित्र तो लेते नहीं, ऐसा कहते हैं। परन्तु बापू! चारित्र वह कहीं बाहर से लिया जाता होगा? आहाहा! चारित्र तो कहा न, रात्रि में कहा था न? ऋषभदेव भगवान चौरासी लाख पूर्व का आयुष्य, क्षायिक समकिती, उस भव में केवलज्ञान लेनेवाले... आहाहा! तीर्थंकर प्रकृति बाँधकर आये, ध्रुव सिद्धि—जिन्हें उस भव में मुक्ति सिद्ध है, निश्चित है। उन्हें भी ८३ लाख पूर्व तक चारित्र नहीं आया।

मुमुक्षु : उस काल में नहीं आता था, इस काल में जल्दी आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जल्दी भी आवे किसी को, उसका कुछ प्रश्न नहीं। परन्तु यह तो ऐसा कि समकित आवे तो उसे चारित्र हो, नहीं तो वह समकित ही नहीं, यह बात झूठी है। ऐसा वे ठहराते हैं न। व्रत लो, चारित्र करो। परन्तु चारित्र किसे कहना? यह व्रत बाहर के ले, वह चारित्र है? आहा! स्वरूपे चरणं चारित्रं। भाई! है न? प्रवचनसार में है और एक ओर में सर्वगुणांश, वह समकित है और एक ओर में स्वरूपे चरणं चारित्रं। यह दोनों स्वाध्यायमन्दिर के दरवाजे के (ऊपर लिखे हैं)। आहाहा! स्वरूपे चरणं चारित्रं। भाई! चरणं—चारित्र, वह कोई व्रत और तप करे, इसलिए चारित्र हो गया, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! विरले को सुनने को मिले, ऐसा है। विरला धारे कोई। विरला सुने कोई और विरला धारे कोई और विरले श्रद्धा जोई। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा?

रागादिक का नाश कर... आहाहा! **निर्वाण को जा।** वह निर्वाण जा, ऐसा कहते हैं आचार्य। भाई! यह संसार छोड़ दे। संसार अर्थात् मिथ्यात्व और राग-द्वेष, वह संसार। हें!

मुमुक्षु : निर्वाण में जा अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : जा अर्थात् परिणति कर।

मुमुक्षु : मेरे साथ चल।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुझे जाना हो तो तू अभी शीघ्र जा न। उसमें क्या है ? आहाहा! क्षण में, एक क्षण में निगोद का निकला तिर्यंच आदि हुआ हो एक बार, फिर मनुष्य हुआ हो, एक क्षण में समकित, एक क्षण में केवल (ज्ञान) और एक क्षण में मोक्ष। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में है। समझ में आया? आहाहा! जहाँ भगवान उछल निकला अन्दर से आनन्द का नाथ, आहाहा! अपने स्वरूप में रेलमछेल हो गयी अन्दर। आहाहा! जैसे पूरणपोली होती है न? गर्म-गर्म करके, पूरणपोली कहते हैं? समझते हो? गर्म-गर्म और घी में डालकर ऐसे ऊँची करे तो टपके सब रस। उसी प्रकार भगवान को ऊँचा किया अन्दर से, तो आनन्द टपके। ऐसी बात है, भाई! आहाहा! राग से भिन्न करके ऊँचा किया उसे। भगवान! तेरा स्वरूप ही यह है न, भाई! आहाहा! वह पूरणपोली, वह तो धूल की, वह तो विष्टा होती है। यह तो आनन्द आवे। आहाहा!

कैसा है वह निर्वाण, जो निजस्वरूप की प्राप्ति वही जिसका स्वरूप है,... देखो! निर्वाण की व्याख्या की। **जो निजस्वरूप की प्राप्ति...** स्वयं जैसा है, वैसी पर्याय में प्राप्ति अर्थात् निजस्वरूप की प्राप्ति, उसका नाम निर्वाण। आहाहा! समझ में आया? निर्वाण अर्थात् कोई भगवान वहाँ विराजता है और वहाँ जाना, ऐसा नहीं है। आहाहा! निर्वाण अर्थात् मुक्तिशिला के ऊपर रहना, वह निर्वाण नहीं। स्वरूप पूर्णानन्द का नाथ भगवान सच्चिदानन्द आत्मा की पर्याय में पूर्ण स्वरूप की प्राप्ति को निर्वाण कहते हैं। आहाहा! **और जो सबमें श्रेष्ठ है।** निर्वाण तो सबमें श्रेष्ठ है। आहाहा! अकेला निर्वाण शीतलीभूत स्वरूप उपशमरस की परिणति पूर्ण, अकषाय वीतरागी परिणति पूर्ण, वह सर्वश्रेष्ठ—सर्व में श्रेष्ठ है। आहाहा!

केवलज्ञानादि महान गुणोंकर सहित है। यह स्वरूप बतलाया वापस। वह तो कहा न, निजस्वरूप की प्राप्ति और सर्व से श्रेष्ठ। परन्तु है क्या वह? वस्तु क्या? **केवलज्ञानादि महान गुणोंकर सहित है।** अकेली ज्ञानदशा, अकेली आनन्ददशा, वीर्यदशा, अनन्त गुण की पूर्ण पवित्र दशा ऐसे **महान गुणोंकर सहित है। जिसके समान दूसरा कोई नहीं।** आहाहा! ११९ गाथा हुई।

गाथा - १२०

अथ यधप्यल्पमपि दुःखं सोढुमसमर्थस्तथापि कर्माणि किमिति करोषीति शिक्षां प्रयच्छति-

२४३) जिय अणु-मित्तु वि दुक्खडा सहण ण सक्कहि जोइ।
चउ-गइ-दुक्खहँ कारणइँ कम्मइँ कुणहि किं तोइ।।१२०।।

जीव अणुमात्राण्यपि दुःखानि सोढुं न शक्नोषि पश्य।
चतुर्गतिदुःखानां कारणानि कर्माणि करोषि किं तथापि।।१२०।।

जिय इत्यादि। जिय हे मूढजीव अणु-मित्तु वि अणुमात्राण्यपि। कानि। दुक्खडा दुःखानि सहण ण सक्कहि सोढुं न शक्नोषि जोइ पश्य। यधपि चउ-गइ-दुक्खहं कारणइं परमात्म-भावनोत्पन्नतात्त्विकवीतरागनित्यानन्दैकविलक्षणानां नारकादिदुःखानां कारणभूतानि कम्मइं कुणहि किं कर्माणि करोषि किमर्थं तोइ यधपि दुःखानीष्टानि न भवन्ति तथापि इति। अत्रेदं व्याख्यानं ज्ञात्वा कर्मास्त्रवप्रतिपक्षभूत-रागादिविकल्परहित निजशुद्धात्मभावना कर्तव्येति तात्पर्यम्।।१२०।।

आगे जो थोड़े दुःख भी सहने को असमर्थ है, तो ऐसे काम क्यों करता है, कि जन्मों से अनंत काल तक तू भोगे, ऐसी शिक्षा देते हैं-

यदि अत्यल्प दुखों को भी तू सहन न कर सकता रे जीव।
तो फिर चौगति दुख के कारण क्यों करता है कर्म सदैव।।१२०।।

अन्वयार्थ :- [जीव] हे मूढ़जीव, तू [अमुमात्राण्यपि] परमाणुमात्र (थोड़े) भी [दुःखानि] दुःख [सोढुं] सहने को [न शक्नोषि] नहीं समर्थ है, [पश्य] देख [तथापि] तो फिर [चतुर्गतिदुःखानां] चार गतियों के दुःख के [कारणानि कर्माणि] कारण जो कर्म हैं, [किं करोषि] उनको क्यों करता है?

भावार्थ :-परमात्मा की भावना से उत्पन्न तत्त्वरुप वीतराग नित्यानंद एक परम स्वभाव उससे भिन्न जो नरकादिक के दुःख उनके कारण कर्म ही हैं। जो दुःख तुझे अच्छे नहीं लगते, दुःखों को अनिष्ट जानता है, तो दुःख के कारण कर्मों को क्यों उपार्जन करता है? मत कर। यहाँ पर ऐसा व्याख्यान जानकर कर्मों के आस्त्रव से रहित

तथा रागादि विकल्प-जालों से रहित जो निजशुद्धात्मा की भावना वही करनी चाहिए, ऐसा तात्पर्य जानना।।१२०।।

गाथा-१२० पर प्रवचन

आगे जो थोड़े दुःख भी सहने को... प्रभु! तुझे थोड़ा दुःख सहन करने में शक्ति असमर्थ है तो बहुत दुःख को उत्पन्न करनेवाले कर्म तू कैसे उत्पन्न करता है? आहाहा! भगवन्त! तुझे थोड़ा दुःख सहन करने की शक्ति नहीं, वहाँ तू कायर होता है तो बहुत दुःख उत्पन्न हो, ऐसे कर्म किसलिए करता है? आहाहा! समझ में आया? **तो ऐसे काम क्यों करता है कि जन्मों से अनन्त काल तक दुःख तू भोगे,...** आहाहा! शैली तो देखो, परमात्मप्रकाश की। प्रभु! तुझे थोड़ा दुःख भी ठीक नहीं लगता है। आहाहा! तो बहुत दुःख जिससे उत्पन्न हों, ऐसे कर्म तू किसलिए करता है? आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कहा नहीं था एक बार बाई का? नहीं? लाठी का। लाठी में अठारह वर्ष की रूपवान बाई थी। उसे शीतला निकली। सुना था न भाई, चन्दुभाई? कहा था। शीतला, शीतला समझे? चेचक। दाने-दाने में कीड़े। हजारों कीड़े। हम तो वहाँ थे। ऐसे फिरे तो ऐसे कीड़े पड़े। ऐसे फिरे तो कीड़े निकले शरीर में से। सहा जाये नहीं, सोया जाये नहीं। आहाहा! फिर ऐसा बोली, माँ! मैंने ऐसे पाप इस भव में किये नहीं, यह कहाँ से आये? आहाहा! मुझसे रहा नहीं जाता, सहा नहीं जाता। सोते हुए भी कीड़े बटका भरते हैं अन्दर। ईयळ समझे? कीड़े, छोटे कीड़े। आहाहा! देह छूट गयी। आहाहा! अरे प्रभु! तुझे थोड़े दुःख होने पर भी मुश्किल पड़ती है, प्रभु! तो महान दुःख के कारण कठोर कर्म क्यों बाँधता है भाई? आहाहा! कहो, बराबर है? आहाहा! शरीर में बुखार आवे तो, अरे! यह? बापू! वह तो साधारण दुःख है। आहाहा! नरक के और चार गति के दूसरे बड़े दुःख, उन दुःख का कारण तो तेरे कर्म बाँधे हुए भाव। तुझे ऐसे दुःख सहन न हो तो इतने दुःख के कारणरूप कर्म को क्यों बाँधता है, भाई? आहाहा! करुणा की वाणी तो देखो! आहाहा! एक के बाद एक... आहाहा!

२४३) जिय अणु-मित्तु वि दुक्खडा सहण ण सक्कहि जोइ।
चउ-गइ-दुक्खहँ कारणइँ कम्मइँ कुणहि किं तोइ।।१२०।।

आहाहा! है ? **अन्वयार्थ :— हे मूढ़ जीव, तू परमाणुमात्र (थोड़े) भी दुःख सहने को नहीं समर्थ है,...** थोड़े दुःख भी, थोड़े अल्प दुःख भी तुझे सहन करने की शक्ति नहीं, प्रभु! चिल्लाहट मचाता है। आहाहा! **देख तो फिर...** आहाहा! देखा ? चतुर्गति, वापस लिया है। स्वर्ग का भी दुःख है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वहाँ आकुलता है, प्रभु! कहीं सुख है नहीं। आहाहा! देखा ? शुभ का फल स्वर्ग, वह दुःख है। आहाहा! कैसे बाँधता है शुभ-अशुभ ? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह भाषा ऐसी मीठी है न! '**जिय अणु-मित्तु वि दुक्खडा सहण ण सक्कहि जोइ**' जीवडा! थोड़े दुःख को सहन करने की शक्ति नहीं। '**चउ-गइ-दुक्खहँ कारणइँ कम्मइँ कुणहि किं तोइ**' तो चारगति के दुःख के कर्म तू किसलिए करता है ? आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! उसमें तो चारगति के दुःख लिये, उसके कारण जो शुभाशुभभाव, वह भी बन्धन के कारण को तू क्यों करता है ? ऐसा कहते हैं। हें! आहाहा! शुभयोग से भी कर्म बँधते हैं और उससे स्वर्गादि मिले, वह भी दुःख है वहाँ तो। आहाहा! आहाहा!

गतियों के कारण जो कर्म हैं, उनको क्यों करता है ? तो उसमें शुभाशुभभाव क्यों करता है, यह आ गया। आया न उसमें ? शुभभाव भी क्यों करता है ? उसका फल तो दुःख है। आहाहा! ऐसा कठिन लगता है लोगों को। शुभयोग है, वह तो संवर, निर्जरा है। अरे भगवान! ऐसा कि राग का अंश है, उतना वह है परन्तु उसमें दूसरे राग का अभाव है शुभ में, इसलिए संवर-निर्जरा है। अरे! कहाँ से बापू ? भगवान! तू भूल गया, तेरे रास्ते को भूल गया, भाई! दूसरे रास्ते चढ़ गया, प्रभु! आहाहा! सुख के पंथ को छोड़कर दुःख के पंथ में दौड़ गया प्रभु तू। आहाहा! भाषा कैसी है, देखो न! थोड़े दुःख तुझे सहन नहीं होते। प्रभु! बहुत दुःख के कारण ऐसे पुण्य-पाप के भाव को कैसे कर्म बाँधता है तू ? आहाहा! समझ में आया ? इसका भावार्थ आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

...प्रकाशक...
श्री सीमंधर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट
राजकोट